www.vitragvani.com

अष्टपाहुड़ प्रवचन

(हिन्दी)

(भाग-१)

श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव विरचित

अष्टपाहुड़ शास्त्र पर

पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी के अध्यात्मरसपूरित प्रवचन

Shree kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

श्री परमात्मने नमः

ॐ

श्री सीमन्धर-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन साहित्य स्मृति संचय-पुण्य नं. 5

अष्टपाहुड़ प्रवचन

भाग-1

परमपूज्य आचार्य कुन्दकुन्द विरचित अष्टपाहुड़ शास्त्र पर
पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी के अध्यात्मरसपूरित प्रवचन
(दर्शनपाहुड़-गाथा 1 से 36, सूत्रपाहुड़-गाथा 1 से 27)

:: हिन्दी अनुवाद व सम्पादन ::
देवेन्द्रकुमार जैन
बिजौलियाँ, जि. भीलवाड़ा (राज.)

:: प्रकाशक ::
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट
सोनगढ़ - 364250 (सौराष्ट्र)

:: प्रस्तुतकर्ता ::
श्री शान्तिलाल रतिलाल शाह - परिवार, सायन (मुम्बई)
श्री सूरजबेन अमुलखभाई सेठ स्मृति ट्रस्ट, सायन (मुम्बई)

Shree kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

प्रथमावृत्ति : 2100

वीर नि. सं. 2529 वि सं. 2059 ई.स. 2002

श्री महावीर निर्वाण महोत्सव के अवसर पर (4 नवम्बर, 2002)

न्यौछावर – रुपये 25 मात्र

प्राप्ति स्थान

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट
सोनगढ़ - 364250 जिला-भावनगर (सौराष्ट्र)

श्री सूरजबेन अमुलखभाई सेठ स्मृति ट्रस्ट,
218, बीणा विहार, सायन (मुम्बई)-22

लेजर टाइप सेटिंग :
अजय गुप्ता, वेव कम्प्यूटर एवं प्रिन्टर कोटा (राज.)

मुद्रक :
चन्द्रकांत आर. मेहता
816, स्टार चेम्बर्स, हरिहर रोड़, राजकोट - 360001

Shree kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

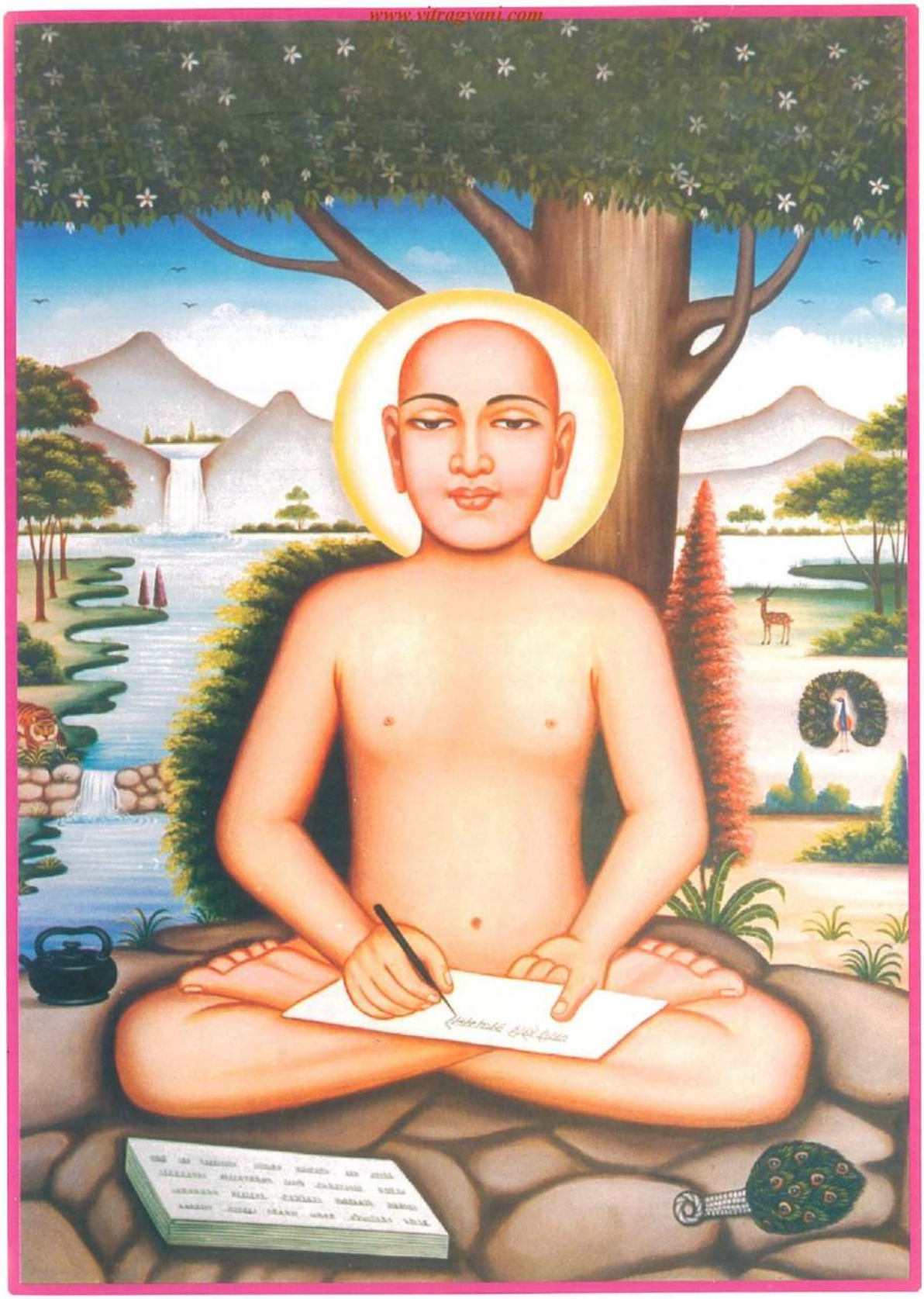

श्रीमद् भगवद् कुंदकुंदाचार्यदेव

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

दो शब्द

(प्रकाशकीय)

श्री समयसार आदि परमागमों के गंभीर रहस्य को स्वानुभवगत करके श्री तीर्थंकर भगवान के शुद्धात्मानुभव प्रधान आध्यात्मिक शासन को जीवन्त रखने वाले आध्यात्मिक सन्त परम कृपालु पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी ने सरल तथा सुगम प्रवचनों द्वारा उनके अनमोल रहस्य मुमुक्षु समाज को समझाये हैं; और इस प्रकार इस काल में अध्यात्म रुचि का नवयुग प्रवर्ता कर आपने असाधारण महान उपकार किया है। इस विषम भौतिक युग में सम्पूर्ण भारतवर्ष तथा विदेशों में भी ज्ञान, वैराग्य और भक्तिपूर्ण अध्यात्म विद्या के प्रचार का जो आन्दोलन प्रवर्तित है वह पूज्य गुरुदेवश्री के चमत्कारी प्रभावना योग का अद्भुत फल है।

ऐसे परमोपकारी पूज्य गुरुदेवश्री के अध्यात्मरस भरपूर प्रवचनों के प्रकाशन करने का अवसर प्राप्त होना भी अपना परम सौभाग्य है। तदनुसार परम पूज्य श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव विरचित 'अष्टपाहुड़' पर पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचनों का संकलन 'अष्टपाहुड़-प्रवचन' भाग-1 के रूप में प्रकाशित करते हुए कल्याणी गुरुवाणी के प्रति अति भक्तिपूर्ण प्रसन्नता का अनुभव करते हैं।

इस 'अष्टपाहुड़' के प्रवचनकार परमोपकारी पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी शुद्धात्म दृष्टिवंत, स्वरूपानुभवी, वीतरागी देव-गुरु धर्म के परम भक्त, कुमार ब्रह्मचारी, समयसार आदि अनेक गहन अध्यात्म शास्त्रों के पारगामी, स्वानुभवरचंदी भावश्रुतलब्धि के धनी, सततज्ञानोपयोगी, वैराग्यमूर्ति, नयाधिराज शुद्धनय की मुख्यतासहसम्यक् अनेकान्तरूप अध्यात्म तत्व के असाधारण उत्तम प्रवचनकार और आश्चर्यकारी प्रभावना उदय के धारक अध्यात्म युग सृष्टा महापुरुष थे। उनके इन प्रवचनों का अवगाहन करते ही अध्येता को उनके गाढ़ अध्यात्म प्रेम, शुद्धात्म अनुभव, स्वरूप सन्मुख ढल रही परिणति, वीतराग-भक्ति के रंग से रंगा हुआ चित्त, ज्ञायकदेव के तल को स्पर्शता अगाध श्रुतज्ञान और सातिशय परम कल्याणकारी अद्भुत वचनयोग का ख्याल आ जाता है।

पूज्य गुरुदेव ने अध्यात्म नवनीत पूर्ण इस 'अष्टपाहुड़' की प्रत्येक गाथा को सर्व ओर से छानकर, विराट अर्थों को इन प्रवचनों में खोला है। अतिशय सचोट, पर सुगम ऐसे अनेक न्यायों द्वारा और प्रकृत विषयसंगत अनेक यथोचित दृष्टान्तों द्वारा पूज्य गुरुदेव ने 'अष्टपाहुड़' के अर्थ गंभीर सूक्ष्म भावों को अतिशय स्पष्ट और सरल बनाये हैं। जीव को कैसे भाव सहज रहें तब जीव पुद्गल का स्वतन्त्र परिणमन समझा कहा जाए, कैसे भाव रहें तब आत्मा का यथार्थ स्वरूप समझा गिना

जाए, भूतार्थ ज्ञायक निज ध्रुव तत्व का (अनेकान्त सुसंगत) कैसा आश्रय हो तो द्रव्यदृष्टि यथार्थ परिणमी मानी जाए, कैसे-कैसे भाव रहें तब स्वावलम्बी पुरुषार्थ का आदर, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र-तप वीर्यादि की प्राप्ति हुई कहलाये – इत्यादि मोक्षमार्ग के प्रयोजनभूत विषयों को मनुष्य जीवन में बनते अनेक प्रसंगों के सचोट दृष्टान्तों से ऐसे स्पष्ट किये गये हैं कि आत्मार्थी को उस-उस विषय का स्पष्ट भाव भासन होकर अपूर्व गंभीर अर्थ दृष्टिगोचर होते हैं और वह शुभभावरूप बंधमार्ग में मोक्षमार्ग की मिथ्या कल्पना छोड़कर, शुद्धभावरूप यथार्थ मोक्षमार्ग को समझकर सम्यक् पुरुषार्थ में जुड़ता है। इस प्रकार 'अष्टपाहुड़' के स्वानुभूति दायक गंभीर भाव हृदय में सीधे उतर जायें ऐसी असरकारक भाषा में अत्यन्त स्पष्टरूप से समझाकर गुरुदेव ने आत्मार्थी जगत पर अनहद उपकार किया है। 'अष्टपाहुड़' की गाथाओं में छिपे हुए अनमोल तत्वरत्नों का मूल्य स्वानुभव विभूषित कहान गुरुदेव ने जगत विदित किया है।

यह परम पुनीत प्रवचन स्वानुभूति के पंथ को अत्यन्त स्पष्टरूप से प्रकाशित करते हैं, इतना ही नहीं, परन्तु साथ-साथ मुमुक्षुजीवों के हृदय में स्वानुभव की रुचि और पुरुषार्थ जागृत करके कुछ अंशों में सत्पुरुष के प्रत्यक्ष उपदेश जैसा चमत्कारिक कार्य करते हैं। – ऐसी अपूर्व चमत्कारिक शक्ति पुस्तकारूढ़ प्रवचन वाणी में कदाचित् ही दृष्टिगोचर होती है।

इस प्रकार 'अष्टपाहुड़' शास्त्र में निहित अध्यात्म तत्त्वविज्ञान के गहन रहस्य अमृत झरती वाणी में समझाकर, साथ ही शुद्धात्म रुचि जागृत करके पुरुषार्थ प्रेरक, प्रत्यक्ष सत्समागम की झाँकी खड़ी कराने वाले ये प्रवचन जैन साहित्य में अजोड़ हैं। प्रत्यक्ष सत्समागम के वियोग में ये प्रवचन मुमुक्षुओं को अनन्य आधारभूत है। निरावलम्बन पुरुषार्थ समझाना और प्रेरित करना ही उद्देश्य होने के साथ 'अष्टपाहुड़' के सर्वांग स्पष्टीकरणरूप इन प्रवचनों में समस्त शास्त्रों के समस्त प्रयोजनभूत तत्त्वों का तलस्पर्शी दर्शन आ गया है। मानों श्रुतामृत का सुख सिंधु ही इन प्रवचनों में हिलोरे ले रहा है। यह प्रवचन ग्रन्थ शुद्धात्म तत्व की रुचि उत्पन्न करके पर के प्रति रुचि नष्ट करने वाली परमऔषध है, स्वानुभूति का सुगम पथ है और भिन्न-भिन्न कोटि के सभी आत्मार्थियों का अत्यन्त उपकारक है। पूज्य गुरुदेव ने यह अमृतसागर समान प्रवचनों की भेंट देकर देश-विदेश में स्थित मुमुक्षुओं को निहाल कर दिया है।

स्वरूपसुधा प्राप्ति के अभिलाषी जीवों को इन परम पवित्र प्रवचनों का बारम्बार मनन करना योग्य है। यह संसाररूपी विषवृक्ष को छेदने के लिये अमोघ शस्त्र है; जो डाली और पत्रों को छुए बिना ही मूल पर ही सीधा प्रहार करता है। इस अल्पायु मनुष्यभव में जीव का प्रथम

में प्रथम कर्तव्य एक निज शुद्धात्मा का बहुमान, प्रतीति और अनुभव है। उन बहुमानादि कराने में ये प्रवचन परम निमित्तभूत है।

इस प्रवचन ग्रन्थ में दर्शनपाहुड़ व सूत्रपाहुड़ के प्रवचन संकलित हैं। आगे के भागों का अनुवाद व सम्पादन कार्य प्रारम्भ है, जो अतिशीघ्र प्रकाशित होंगे।

इस प्रसंग पर मुमुक्षु समाज पर जिनका विशिष्ट उपकार है उन धर्मरत्न प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन के चरण कमल में अत्यन्त भक्तिभाव से अभिवंदन करके भावना भाते हैं कि – मुमुक्षु अतिशय उल्लासपूर्वक इन प्रवचनों का गहन अभ्यास करके, उग्र पुरुषार्थ से इनमें कथित भावों को सम्पूर्ण रीति से हृदय में उतारकर निज शुद्धात्मा की रुचि, प्रतीति तथा अनुभव करके शाश्वत परमानन्द को पायें।

इस प्रवचन ग्रंथ के प्रकाशन प्रसंग पर इनके गुजराती संकलनकार श्री अमृतभाई एन. सेठ तथा श्री खीमचंद जे. सेठ का हार्दिक आभार व्यक्त करते है। जिन्होंने करुणासागर गुरुदेवश्री के प्रवचनों को लिपिबद्ध कर 'सद्गुरु प्रवचन प्रसाद' के रूप में संकलित कर जीवंत रखा। सद्गुरु प्रवचन प्रसाद से इन प्रवचनों का हिन्दी अनुवाद व सम्पादन कार्य पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री जैनदर्शनाचार्य, छिन्दवाड़ा के मार्गदर्शन में पण्डित देवेन्द्रकुमारजी जैन, बिजौलियाँ, राज. ने किया है। लेजर टाइप सेटिंग वेव कम्प्यूटर कोटा एवं मुद्रण कार्य श्री चन्द्रकांत आर. मेहता राजकोट के मार्गदर्शन में पण्डित रमेशचन्दजी शास्त्री, जयपुर द्वारा सम्पन्न हुआ है। अतः उक्त सभी के आभारी हैं।

इस ग्रंथ के स्वाध्याय द्वारा मुमुक्षु निज कल्याण साधें – ऐसी भावना भाते हैं।

– प्रस्तुतकर्त्ता

"जिन्होंने अनन्त आनन्द की पर्याय प्रगट की है" –ऐसे सिद्ध परमात्मा और केवली भगवान का आदर किसने किया ? कि जो अपनी वर्तमान अल्पज्ञ पर्याय आदर नहीं करता, परन्तु ज्ञायकस्वभाव का आदर करता है, वही सिद्ध भगवन्तों का सच्चा आदर कर सकता है। उसके अवलम्बन बिना सिद्धों का यथार्थ आदर नहीं हो सकता।

हे नाथ ! "आप आदरणीय और सत्कार करने योग्य परमात्मा हो" -- ऐसा वह किसके आधार से कहता है ? क्या शुक्ल लेश्या के परिणामों के आधार से उनका आदर करता है ? नहीं। सिद्धों का आदर करे, परन्तु यदि आत्मा का आदर नहीं करे तो उसे शुक्ल लेश्या का आदर है, अर्थात् संसार का आदर है; परन्तु वस्तुतः वह सिद्धों का आदर नहीं करता। **– मोक्षमार्गप्रकाशक प्रवचन से साभार**

उपोद्घात

'अष्टप्राभृत' – सनातन दिगम्बर जैन आम्नाय के निर्ग्रन्थ श्रमणोत्तम भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव द्वारा प्रणीत दर्शनप्राभृत, सूत्रप्राभृत, चारित्रप्राभृत, बोधप्राभृत, भावप्राभृत, मोक्षप्राभृत, लिंगप्राभृत और शीलप्राभृत – इन आठ प्राभृतों का समूह संस्करण है।

श्रमणभगवन्त ऋषीश्वर श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव विक्रम संवत् के प्रारम्भ में हो गये हैं। दिगम्बर जैन परम्परा में भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव का स्थान सर्वोत्कृष्ट है।

मंगलम् भगवान वीरो मंगलम् गौतमो गणी।
मंगलम् कुन्दकुन्दार्यो जैन धर्मोऽस्तु मंगलम्॥

यह श्लोक प्रत्येक दिगम्बर जैन, शास्त्राध्ययन प्रारम्भ करते समय, मंगलाचरण के रूप में बोलता है। यह सुप्रसिद्ध 'मंगल' का श्लोक भगवान् श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव की असाधारण महत्ता प्रसिद्ध करता है क्योंकि इसमें सर्वज्ञ भगवान श्री महावीरस्वामी एवं गणधर भगवान श्री गौतमस्वामी के पश्चात् अनन्तर ही, उनका मंगलरूप में स्मरण किया गया है। दिगम्बर जैन साधु स्वयं को कुन्दकुन्दाचार्य की परम्परा के कहलाने में अपना गौरव मानते हैं। भगवान् कुन्दकुन्दाचार्यदेव के शास्त्र साक्षात् गणधरदेव के वचनतुल्य ही प्रमाणभूत माने जाते हैं। उनके उत्तरवर्ती ग्रन्थकार आचार्य, मुनि एवं विद्वान अपने किसी कथन को सिद्ध करने के लिये कुन्दकुन्दाचार्यदेव के शास्त्रों का प्रमाण देते हैं और इसलिये वह कथन निर्विवाद ठहरता है। उनके पश्चात् लिखे गये ग्रन्थों में उनके शास्त्रों में से बहुत अवतरण लिये गये हैं। वि.सं. 990 में होने वाले श्री देवसेनाचार्यवर अपने 'दर्शनसार' ग्रन्थ में कहते हैं कि –

तई पउमणंदिणाहो सीमंधरसामिदिव्वणाणेण।
ण विबोहइ तो समणा कह सुमग्गं पयाणंति॥

– (महाविदेहक्षेत्र के वर्तमान तीर्थंकरदेव) श्री सीमन्धरस्वामी के पास से (समवसरण में जाकर) प्राप्त हुए दिव्यज्ञान से श्री पद्मनन्दीनाथ ने (श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने) यदि बोध न दिया होता तो मुनिजन सच्चे मार्ग को कैसे जानते ? दूसरा एक उल्लेख कि जिसमें कुन्दकुन्दाचार्यदेव को 'कलिकालसर्वज्ञ' कहा गया है सो इस प्रकार है। – 'पद्मनन्दी, कुन्दकुन्दाचार्य, वक्रग्रीवाचार्य, एलाचार्य एवं गृध्रपिच्छाचार्य ये पाँच नाम से विभूषित, चार अंगुल ऊँचाई पर आकाश में गमन की जिनके ऋद्धि थी, पूर्व विदेहक्षेत्र में जाकर जिन्होंने सीमन्धरभगवान की वन्दना की थी और उनके

पास से प्राप्त हुए श्रुतज्ञान से जिन्होंने भारतवर्ष के भव्य जीवों को प्रतिबोध किया है ऐसे जो श्री जिनचन्द्रसूरि भट्टारक के पट्ट के आभरणरूप कलिकालसर्वज्ञ (भगवान् कुन्दकुन्दाचार्यदेव) उनके द्वारा रचित इस षट्प्राभृतग्रन्थ में .....मोक्षप्राभृत की टीका समाप्त हुई।' भगवान् कुन्दकुन्दाचार्यदेव की महत्ता सूचित करने वाले ऐसे अनेकानेक उल्लेख+ जैन साहित्य में उपलब्ध हैं। इससे सुप्रसिद्ध होता है कि सनातन दिगम्बर जैन आम्नाय के कलिकाल सर्वज्ञ भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव का स्थान अद्वितीय है।

भगवान् कुन्दकुन्दाचार्यदेव द्वारा रचित अनेक शास्त्र हैं, उनमें से कतिपय अधुना उपलब्ध हैं। त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव के श्रीमुख से प्रवाहित श्रुतामृत की सरिता में से भरे गये वे अमृताभाजन अभी भी अनेक आत्मार्थियों को आत्मजीवन समर्पित करते हैं। उनके समयसार प्रवचनसार और पंचास्तिकायसंग्रह नामक तीन उत्तमोत्तम शास्त्र 'प्राभृतत्रय' कहे जाते हैं। यह प्राभृतत्रय एवं नियमसार तथा अष्टप्राभृत – इन पाँच परमागमों में हजारों शास्त्रों का सार आ जाता है। भगवान् श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव के पश्चात् लिखे गये अनेक ग्रन्थों के बीज इन परमागमों में निहित हैं ऐसा सूक्ष्म दृष्टि से अभ्यास करने पर ज्ञात होता है।

यह प्रकृत परमागम आठ प्राभृतों का समुच्चय होने से वह 'अष्टप्राभृत' अभिधान से सुप्रसिद्ध है। उसमें प्रत्येक प्राभृत की गाथा संख्या एवं उसका विषय निर्देश निम्न प्रकार है –

'दर्शनप्राभृत' में गाथा संख्या 36 है। 'धर्म का मूल दर्शन (– सम्यग्दर्शन) है – 'दंसणमूलो धम्मो' – इस रहस्यगम्भीर महासूत्र से प्रारम्भ करके सम्यग्दर्शन की परम महिमा का इस प्राभृत शास्त्र में वर्णन किया गया है।

'सूत्रप्राभृत' में 27 गाथा है। इस प्राभृत में, जिनसूत्रानुसार आचरण जीव का हितरूप है और जिनसूत्रविरुद्ध आचरण अहित है – यह संक्षेप में बताया गया है, तथा जिनसूत्रकथित मुनिलिंगादि तीन लिंगों का संक्षिप्त निरूपण है।

'चारित्रप्राभृत' में 45 गाथा है। उसमें सम्यक्त्वचरणचारित्र और संयमचरणचारित्र के रूप में चारित्र का वर्णन है। संयमचरण का देशसंयमचरण और सकलसंयमचरण – इस प्रकार दो भेद

+जासके मुखारविन्दतें प्रकाश भासवृन्द, स्यादवाद जैन वैन इन्दु कुन्दकुन्दसे।
तासके अभ्यासतें विकाश भेदज्ञान होत, मूढ़ सो लखे नहीं कुबुद्धि कुन्दकुन्दसे॥
देत हैं अशीस शीस नाय इन्दु चन्द जाहि, मोह मार-खण्ड मारतंड कुन्दकुन्दसे।
विशुद्धिबुद्धिवृद्धिदा प्रसिद्ध ऋद्धि सिद्धिदा हुए न, हैं न, होंहिंगे, मुनिंद कुन्दकुन्दसे॥
– कविवर वृन्दावनदासजी

से वर्णन करते हुए, श्रावक के बारह व्रत और मुनिराज के पंचेन्द्रियसंवर, पाँच महाव्रत, प्रत्येक महाव्रत की पाँच-पाँच भावना, पाँच समिति इत्यादि का निर्देश किया गया है।

'बोधप्राभृत' में 62 गाथा है। आयतन, चैत्यग्रह, जिनप्रतिमा, दर्शन, जिनबिम्ब जिनमुद्रा, ज्ञान, देव, तीर्थ, अर्हन्त और प्रव्रज्या – इन ग्यारह विषयों का इस प्राभृत में संक्षिप्त कथन है। 'भावश्रमण हैं सो आयतन हैं, चैत्यगृह हैं, जिनप्रतिमा हैं' – ऐसे वर्णनविशेषात्मक एक विशिष्ट प्रकार से आयतनादि कतिपय विषयों का इसमें (जिनोक्त) विशिष्ट निरूपण है। जिनोपदिष्ट प्रव्रज्याका सम्यक् वर्णन 17 गाथाओं के द्वारा अति सुन्दर किया गया है।

'भावप्राभृत' में 165 गाथा है। अनादिकाल से चतुर्गति में परिभ्रमण करते हुए, जीव जो अनन्त दुःख सहन कर रहे हैं उसका हृदयस्पर्शी वर्णन इस प्राभृत में किया गया है; और उन दुःखों से छूटने के लिये शुद्ध भावरूप परिणमन कर भावलिंगी मुनिदशा प्रगट किये बिना अन्य कोई उपाय नहीं है ऐसा विशदता से वर्णन किया है। उसके लिये (दुःखों से छूटने के लिये) शुद्धभावशून्य द्रव्यमुनिलिंग अकार्यकारी है यह स्पष्टतया बताया गया है। यह प्राभृत अति वैराग्यप्रेरक और भाववाही है एवं शुद्धभाव प्रगट करने वाले सम्यक् पुरुषार्थ के प्रति जीव को सचेत करने वाला है।

'मोक्षप्राभृत' में 106 गाथा है। इस प्राभृत में मोक्ष का – परमात्मपद का – अति संक्षेप में निर्देश करके, पश्चात् वह (-मोक्ष) प्राप्त करने का उपाय क्या है उसका वर्णन मुख्यतया किया गया है। स्वद्रव्यरत जीव मुक्त होता है और परद्रव्यरत जीव बन्धको प्राप्त होता है – यह इस प्राभृत का केन्द्रवर्ती सिद्धानत है।

'लिंगप्राभृत' में 22 गाथा है। जो जीव मुनि का बाह्यलिंग धारण करके अतिभ्रष्टाचारीरूप से आचरण करता है, उसका अति निष्कृष्टपना एवं निन्द्यपना इस प्राभृत में बताया है।

'शीलप्राभृत' में 40 गाथा है। ज्ञान विना (-सम्यग्ज्ञान बिना) जो कभी नहीं होता ऐसे शील के (-सत्शीलके) तत्त्वज्ञानगम्भीर सुमधुर गुणगान इस प्राभृत में जिनकथन अनुसार गाये गये हैं।

– इस प्रकार भगवान् श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत 'अष्टप्राभृत' परमागम का संक्षिप्त विषय-परिचय है।

अहो ! जयवन्त वर्तो वे सातिशयप्रतिभा सम्पन्न भगवान् श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव कि जिन्होंने महातत्त्वों से भरे हुए इन परमागमों की असाधारणा रचना करके भव्यजीवों पर महान उपकार किया है। वस्तुतः इस काल में यह परमागम शास्त्र मुमुक्षु भव्यजीवों को परम आधार है। ऐसे दुःषम काल

में भी ऐसे अद्भुत अनन्य-शरणभूत शास्त्र-तीर्थंकरदेव के मुखारविन्द से विनिर्गत अमृत विद्यमान है वह हमारा भाग्य है। पूज्य सद्गुरुदेव श्री कानजीस्वामी के शब्दों में कहें तो –

''भगवान् कुन्दकुन्दाचार्यदेव के यह पाँचों ही परमागम आगमों के भी आगम हैं; लाखों शास्त्रों का निचोड़ इनमें भरा हुआ है, जैन शासन का यह स्तम्भ हैं; साधक की यह कामधेनू हैं, कल्पवृक्ष हैं। चौदह पूर्वों का रहस्य इनमें समाविष्ट है। इनकी प्रत्येक गाथा छठवें-सातवें गुणस्थान में झूलते हुए महामुनि के आत्म-अनुभव में से निकली हुई है। इन परमागमों के प्रणेता भगवान् श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव महाविदेहक्षेत्र में सर्वज्ञ वीतराग श्री सीमन्धर-भगवान के समवसरण में गये थे और वे वहाँ आठ दिन रहे थे सो बात यथातथ है, अक्षरशः सत्य है, प्रमाणसिद्ध है, उसमें लेशमात्र भी शंका को स्थान नहीं है। उन परोपकारी आचार्य भगवान के रचे हुए इन परमागमों में श्री तीर्थंकरदेव के निरक्षर ॐकार दिव्यध्वनि से निकला हुआ ही उपदेश है।''

अन्त में, यह अष्टप्राभृत परमागम भव्यजीवों को जिनदेव द्वारा प्ररूपित आत्मशान्ति का यथार्थ मार्ग बताता है। जब तक इस परमागम के परम गम्भीर और सूक्ष्म भाव यथार्थतया हृदयगत न हो तब तक दिन-रात वही मन्थन, वही पुरुषार्थ कर्तव्य है। इस परमागम का जो कोई भव्य जीव आदर सह अभ्यास करेगा, श्रवण करेगा, पठन करेगा, प्रसिद्ध करेगा, वह अविनाशी स्वरूपमय, अनेक प्रकार की विचित्रता वाले, केवल एक ज्ञानात्मक भाव को उपलब्ध कर अग्र पद में मुक्तिश्री का वरण करेगा।

('पंच परमागम' के उपोद्घात से संकलित)

- हिम्मतभाई जेठालाल शाह
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट,
सोनगढ़ - 364 250 (सौराष्ट्र)

युगप्रधान आचार्य कुन्दकुन्द – एक संक्षिप्त परिचय

पृष्ठभूमि -

अनादिनिधन जैनदर्शन का सर्वाधिक मौलिक एवं महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है – **''सभी आत्मायें स्वरूपतः समान हैं, कोई छोटी-बड़ी नहीं है। अपने अज्ञान से जीव दुःखी है एवं चार गति – चौरासी लाख योनियों में परिभ्रमण कर रहा है। तथा अपने को जानकर आत्मिक पुरुषार्थ से प्रत्येक प्राणी परमात्मा बन सकता है।''** – इससे स्पष्ट है कि अपने बारे में सच्ची रुचि एवं निर्णय न होने से जीव मात्र परपदार्थों में ही मोहित रहता है तथा उनमें इष्ट-अनिष्ट कल्पनायें करता हुआ दुःख भोगता है। क्योंकि परपदार्थ में सुख है नहीं, और यह परपदार्थ में सुख की कामना करता है। इसीलिए इसे वास्तविक सुख की प्राप्ति कभी नहीं हुई। अपने अज्ञानमय परिणामों से पतित होने तथा अपने बारे में यथार्थ ज्ञान होने पर पावन बनने की गौरवगाथा समस्त महापुरुषों के जीवन-चरित्र की मूलतत्त्व रही है। ऐसे ही एक अनपढ़ गाय चराने वाले बालक के महाज्ञानी संत-शिरोमणि होने की महान कथा के नायक रहे हैं **'आचार्य कुन्दकुन्द'**; जोकि विगत दो हजार वर्षों से भी अधिक समय से प्रत्येक जैन के लिए युगप्रधान एवं युगप्रवर्तक आदर्श बने हुये हैं। जिनमन्दिरों में प्राप्त होने वाली पूज्य प्रतिमाओं की प्रामाणिकता पुष्ट करने के लिए उनकी प्रशस्ति में अत्यन्त गौरवपूर्वक यह लिखा जाता है कि **'यह प्रतिमा आचार्य कुन्दकुन्द के आम्नाय में प्रतिष्ठित है'**, तो वीतराग जैनधर्म में दीक्षा लेने वाले श्रमण अत्यन्त गौरवपूर्वक अपने आपको **'आचार्य कुन्दकुन्द की परम्परा का'** बताते हैं। यहाँ तक कि जो शास्त्र लिखे जाते हैं, उनमें भी 'आचार्य कुन्दकुन्द के द्वारा प्रतिपादित शुद्ध आम्नाय के अनुसार ही लिखे जाने' का उल्लेख कर उस ग्रन्थ की प्रामाणिकता बतायी जाती है। – इस प्रकार विगत **दो हजार वर्षों से जो देव (जिनबिम्ब), शास्त्र एवं गुरु-परम्परा की प्रामाणिकता की कसौटी बने हुये हैं**; उन युगप्रधान, युगप्रवर्तक महामनीषी परमपूज्य आचार्य कुन्दकुन्द का यशस्वी जीवनवृत्त एवं उनकी लोककल्याणकारी कृतियों का परिचय समस्त सज्जनों के मन को उसी प्रकार आकर्षित एवं आनन्दित करता है, जैसे कि वर्षा ऋतु में घने काले बादलों को देखकर मोर आनन्द से नाचने लगता है।

परम्परा -

वर्तमानकाल में हुये चौबीस तीर्थंकर भगवन्तों में अभी अन्तिम तीर्थंकर **भगवान महावीर स्वामी** का शासन चल रहा है। 527 ईसा पूर्व में उनके निर्वाण के पश्चात् **गौतम स्वामी, सुधर्मास्वामी**

एवं **जम्बूस्वामी** ये तीन 'केवली' हुये तथा **विष्णुनन्दि, नन्दिमित्र, आचार्य अपराजित, गोवर्द्धनाचार्य** एवं **आचार्य भद्रबाहु** – ये पाँच '**श्रुतकेवली**' हुये। अन्तिम 'श्रुतकेवली' आचार्य भद्रबाहु महान् **सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य** के समकालीन थे। इतिहास साक्षी है कि **सम्राट् चन्द्रगुप्त ने श्रुतकेवली भद्रबाहु से दिगम्बर जैन मुनि-दीक्षा ली थी** एवं घोर तपस्या की थी। इनके उपरांत **विशाखाचार्य** आदि ग्यारह आचार्य **दसपूर्व ज्ञान के धारी** हुये। तथा इनके बाद **नक्षत्राचार्य** आदि पाँच आचार्य हुये, जिन्हें **ग्यारह अंगप्रमाण** श्रुत का ज्ञान था। फिर क्रमशः **दस, नौ और आठ अंगों के ज्ञाता आचार्य सुभद्राचार्य, यशोभद्राचार्य, आचार्य-भद्रबाहु** (द्वितीय) एवं **लोहाचार्य** हुये। इनके बाद मात्र **एक अंग ज्ञान के धारी पाँच आचार्य** हुये।

यहाँ तक केवली के द्वारा दिये गये धर्मोपदेश को बुद्धिबल एवं तपस्या के प्रभाव के द्वारा ये आचार्य श्रुत-परम्परा से सुरक्षित रखते आये; किन्तु इसके बाद काल-प्रभाव एवं स्मृति-क्षीणता आदि कारणों से यह श्रुत-परम्परा प्रायः विच्छिन्न होने लगी। मात्र बारहवें अंग के भेद चौदह पूर्वों में से कुछ ज्ञान ही शेष बचा, तब तत्कालीन आचार्यों ने उसे बचे हुये श्रुतज्ञान को ग्रंथबद्ध करने का निर्णय लिया। और इस प्रकार से श्रुत का साहित्यिकरूप प्रवर्तित हुआ। इस युगान्तरकारी महान् कार्य के प्रवर्तकों में चार नाम प्रमुख हैं – **1. गुणधराचार्य** (कसायपाहुडसुत्त के रचयिता), 2-3. **आचार्य पुष्पदंत** एवं **भूतबलि** ('छक्खंडागमसुत्त' के प्रणेता) एवं 5. **आचार्य कुन्दकुन्द** (चौरासी पाहुड ग्रंथों के निर्माता)। इस प्रकार केवलियों एवं श्रुतकेवलियों की परम्परा से प्राप्त मूल तत्त्वज्ञान का संरक्षण कर उसे ग्रंथबद्ध करने वाले आचार्यों में आचार्य कुन्दकुन्द का भारी योगदान एवं अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है।

युगप्रवर्तक -

यद्यपि आचार्य गुणधर एवं आचार्य पुष्पदंत-भूतबलि ने मूल तत्त्वज्ञान का ही संरक्षण किया था, तथापि उनके ग्रंथों में देश-काल के अनुरूप स्पष्ट मार्गदर्शन का अभाव था। क्योंकि उस समय जहाँ एक ओर जैनसंघ में अन्तिम श्रुतकेवली **भद्रबाहु** के समय हुये संघभेद से उत्पन्न श्वेताम्बर-सम्प्रदाय की आडम्बरपूर्ण बातें जहाँ जनमानस को दिग्भ्रमित कर रही थीं; वहीं पर भारतीय समाज में धर्म के मूल तत्त्वज्ञान एवं वैराग्य के स्थान पर श्रृंगारिक भक्ति, कर्मकाण्ड एवं अन्य आडम्बर जोर-शोर से चल पड़े थे। ऐसे विषम वातावरण में मूल तत्त्वज्ञान को सुरक्षित रखते हुए उक्त समस्त आडम्बरों का दो-टूक निराकरणपूर्वक समाज को अध्यात्म-दृष्टि एवं निर्दोष आचरण-पद्धति का अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से निरूपण कर **आचार्य कुन्दकुन्द ने मूल दिगम्बर जैन आम्नाय की**

रक्षा ही नहीं की, अपितु उसकी अत्यन्त स्पष्ट व्याख्या भी प्रस्तुत की। इस प्रकार **श्रद्धा, ज्ञान एवं आचरण – तीनों क्षेत्रों में सही अर्थों में अभूतपूर्व 'युग-प्रवर्तक' आचार्य थे।** उनके इस गरिमामय व्यक्तित्व का अखंड प्रभाव आज भी बना हुआ है, तथा आज भी जैन-परम्परा आचार्य कुन्दकुन्द के नाम से पहचानी एवं प्रमाणित की जाती है।

मंगलमूर्ति -

आचार्य कुन्दकुन्द का साहित्य जितना महत्त्वपूर्ण एवं जनकल्याणकारी था, उनका व्यक्तित्व भी उतना ही अलौकिक एवं महान् था। जहाँ उन्होंने मात्र बारह वर्ष की अल्प आयु में ही दिगम्बर जैन श्रमण की दीक्षा का अत्यन्त कठिन व्रत अंगीकार किया था और 95 वर्ष की आयुपर्यंत उसका अखंड एवं निर्दोष पालन किया था, वहीं विदेह-क्षेत्र-गमन, चारण-ऋद्धि की प्राप्ति एवं **भवरोग-विनाशिनी अध्यात्मविद्या की अभूतपूर्व प्रभावना के द्वारा जन-जन के हृदय में वीतराग दिगम्बर जैनधर्म की प्रतिष्ठा करने के कारण उन्हें साक्षात् मंगलमूर्ति माना गया है।** और इसी कारण उन्हें शासननायक तीर्थंकर **महावीर स्वामी,** श्रुतकर्ता **गौतम गणधर** के बाद मंगलरूप में सादर स्मरण किया गया है –

''मंगल भगवदो वीरो, मंगलं गौदमो गणी।
मंगलं कोण्डकुंदाइरिओ, जेण्हं धम्मोऽत्थु मंगलं।।''

यह मूल प्राकृत पाठ है, इसी को संस्कृत भाषा में निम्नानुसार पढ़ा जाता है –

''मंगल भगवान् वीरो, मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो, जैनधर्मोऽस्तु मंगलम्।।''

वस्तुतः आचार्य कुन्दकुन्द का जीवन, दर्शन एवं साहित्य – तीनों ही पापरूपी मल को गलाने वाले तथा 'मंग' अर्थात् अतीन्द्रिय आत्मिक सुख की प्राप्ति में सहायक होने से उनका स्मरण भी 'साक्षात् मंगलमूर्ति' मानकर किया गया है। जनमानस में उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व की यह मांगलिक प्रतिष्ठा विगत दो हजार वर्षों से निरन्तर बढ़ी हुई है – यह अपने आप में उनके कालजयीरूप को बताता है।

पतित-पावन व्यक्तित्व -

भारतीय-परम्परा में महापुरुषों ने जहाँ अनेक विषयों पर अपार लेखन-कार्य किया है, वहीं उन्होंने व्यक्तिगत परिचय देने में संकोच का अनुभव करते हुए प्रायः मौन ही रखा है। अतः उनके

बारे में जानने के लिये प्रायः परवर्ती विद्वानों के साहित्य एवं अन्य ऐतिहासिक प्रमाणों की मदद लेनी पड़ती है। आचार्य कुन्दकुन्द का जीवन भी इस परम्परा का अपवाद नहीं रहा है। उपलब्ध कुन्दकुन्द-साहित्य में कहीं भी आचार्य कुन्दकुन्द के बारे में कोई विवरण प्राप्त नहीं होता है, किन्तु परवर्ती साहित्यकारों के ग्रंथों, विभिन्न शिलालेखों एवं अन्य प्रमाणों के आधार पर आचार्य कुन्दकुन्द का जो जीवन-परिचय प्राप्त होता है, वह संक्षेपतः निम्नानुसार है।

पूर्वभव -

ब्रह्मनेमिदत्त–विरचित 'आराधना कथाकोश' के अनुसार दक्षिण भारत के किसी छोटे से गाँव में एक ग्वाला रहता था, और वह प्रतिदिन समीपस्थ जंगल में अपनी गायें चराने जाता था। एक दिन उसने देखा कि उस वन में भयंकर दावानल के कारण सभी छोटे-बड़े वृक्ष जलकर नष्ट हो गये हैं, किन्तु उस भयानक विनाश-लीला के दुष्प्रभाव से अछूता एक विशाल वृक्ष उस आग से पूर्णतः सुरक्षित बचा हुआ था। आश्चर्य से भरकर वह ग्वाला उस वृक्ष के पास पहुँचता है, तो देखता है कि उसके कोटर में ताड़पत्रों पर लिखा हुआ कोई शास्त्र रखा था। उस ग्वाले ने सोचा कि शायद इस शास्त्र की महिमा के कारण ही यह वृक्ष इस भयानक दावानल से बच गया है, तो उसने श्रद्धा से भरकर वह शास्त्र मस्तक को लगाया एवं एक दिगम्बर मुनिराज को सादर भेंट कर दिया। क्योंकि वह जानता था कि अनपढ़ होने के कारण वह उस ग्रंथ का कोई उपयोग नहीं कर सकता है, जबकि काम-भोग के वैचारिक दावानल से अप्रभावित रहने वाले परम तपस्वी संत के पास ही इस भौतिक दावानल से अछूते ग्रंथराज की सच्ची उपयोगिता हो सकती है। ऐसा विचारकर ग्वाले ने अत्यन्त भक्तिपूर्वक वह शास्त्र उन मुनिराज को सविनय समर्पित कर दिया। वहाँ से वापस लौटते समय किसी विषैले सर्प के काटने से उस ग्वाले की मृत्यु हो गई। तथा इस देह का त्यागकर वह भव्य आत्मा **आन्ध्रप्रदेश** के '**अनन्तपुर**' जिले की '**गुटि**' **तहसील** में स्थित **कौण्डकुन्दपुर** (कौण्डकुन्दी) नामक **ग्राम** जो कि उस समय अत्यन्त समृद्ध नगर था, के नगरसेठ **गुणकीर्ति** की धर्मपरायणा पत्नी **शांतला** के गर्भ में पुत्र के रूप में उत्पन्न हुई।

वर्तमान जीवन -

गर्भकाल पूर्ण कर **ईसापूर्व 108 के शार्वरी संवत्सर** के **माघ मास** के **शुक्लपक्ष की पंचमी तिथि** के दिन एक तेजस्वी बालक का जन्म हुआ। गुणकीर्ति एवं शांतला का लाड़ला वही बालक बड़ा होकर युगप्रधान **आचार्य कुन्दकुन्द** बना। चूँकि गर्भधारण के पूर्व माँ शांतला ने स्वप्न में चन्द्रमा की चाँदनी देखी थी, अतएव बालक का नाम '**पद्मप्रभ**' रखा गया। बाल्यकाल से ही इनकी माँ

पालने में झुलाते समय –

"शुद्धोऽसि बुद्धोऽसि निरंजनोऽसि।
संसार माया-परिवर्जितोऽसि ॥
आजन्मलीनं त्यज मोहनिद्राम्।
शान्तालसावाक्यमुपयासि पुत्र !"

ऐसी लोरियाँ सुनाती थी, जिसके फलस्वरूप आत्मरुचि एवं वैराग्य के संस्कार बचपन में ही प्रबल हो गये थे। ऐसे मांगलिक वातावरण में दूज के चाँद की भाँति क्रमशः वृद्धि होते हुये बालक पद्मप्रभ ने **ग्यारहवें** वर्ष में प्रवेश किया। तभी अष्टांग-महानिमित्त के ज्ञाता आचार्य **आचार्य अनन्तवीर्य** कौण्डकुन्दी ग्राम में पधारे एवं उस बालक को देखकर बोले कि – **"यह बालक महान् तपस्वी एवं परम प्रतापी संत होगा तथा जब तक जैन-परम्परा रहेगी, इस काल में इसका नाम अमर रहेगा।"** मुनिराज की यह वाणी सफल सिद्ध हुई तथा उस अल्प आयु में ही वह बालक घर-बार को त्यागकर नग्न दिगम्बर श्रमण के रूप में दीक्षित हो गया। दीक्षा के बाद उनका नाम **पद्मनन्दी** प्रसिद्ध हुआ। तथा नन्दि-संघ की पट्टावलि के अनुसार आत्मवेत्ता **आचार्य जिनचन्द्र** इनके **दीक्षागुरु** प्रतीत होते हैं।

आचार्यपद -

'मुनि' पद पर लगभग **तेंतीस** वर्ष तक निरन्तर ज्ञानाराधना एवं वैराग्यरस से ओतप्रोत तपःसाधनापूर्वक दिगम्बर जैन श्रमण की कठिन चर्या का निर्दोष पालन करते हुए **ईसा पूर्व 64** में **मार्गशीर्ष कृष्ण अष्टमी, गुरुवार** के दिन चतुर्विध संघ ने इन्हें **44 वर्ष की आयु** में **आचार्य पद** पर प्रतिष्ठित किया। इस पद पर रहते हुए चतुर्विध-संघ के नायक होकर ग्रंथ-निर्माण एवं अन्य अनेकों पुनीत कार्यों के द्वारा समाज एवं राष्ट्र को नई दिशा प्रदान करते हुए **95 वर्ष, 10 माह एवं 15 दिन** की दीर्घायु व्यतीत कर **ईसापूर्व 12** आपने समाधिमरण-पूर्वक स्वर्गारोहण किया।

प्रमुख घटनायें -

1. विदेहगमन – आचार्य देवसेनकृत (दसवीं शताब्दी ईस्वी) 'दर्शनसार' नामक ग्रंथ में स्पष्ट लिखा है कि –

"जइ पउमणंदिणाहो सीमंधरसामि-दिव्वणाणेण।
ण विवोहइ तो समणा कहं सुमग्गं पयाणंति ॥"

अर्थ – यदि **सीमंधर स्वामी** (महाविदेह क्षेत्र में विद्यमान तीर्थंकरदेव) से प्राप्त हुये दिव्यज्ञान द्वारा श्री **पद्मनन्दिनाथ** (श्री कुन्दकुन्दाचार्य) ने बोध नहीं दिया होता, तो मुनिजन सच्चे मार्ग को कैसे प्राप्त करते ?

इसी बात को बारहवीं शताब्दी के **आचार्य जयसेन** ने **'पंचास्तिकाय' ग्रंथ की टीका** के प्रारम्भ में तथा **'षट्प्राभृत'** के **टीकाकार आचार्य श्रुतसागरसूरि** ने अपनी टीका के अंत में स्पष्टरूप से समर्थन प्रदान किया है। कहा जाता है कि **विक्रम संवत् 49** में आचार्य कुन्दकुन्ददेव तमिलनाडु प्रांत के **पोन्नूर पर्वत क्षेत्र** से पूर्वविदेह क्षेत्र में विद्यमान सीमंधर परमात्मा के दर्शन करने गये थे। और उन्होंने वहाँ पर सात दिन तक दिव्यध्वनि सुनी। तथा कलिकाल में सर्वज्ञ परमात्मा के दर्शन कर एवं उनसे साक्षात् तत्त्वों का सूक्ष्म विवेचन प्राप्तकर जो अद्वितीय कार्य सम्पन्न किया। इसके कारण भरत-क्षेत्र के लोगों ने उन्हें 'कलिकाल सर्वज्ञ' के विरुद से विभूषित किया था।

2. चारणऋद्धिः – श्रवणबेलगोल-स्थित अनेकों शिलालेखों में आचार्य कुन्दकुन्द को चारणऋद्धि की प्राप्ति एवं उसके द्वारा पृथ्वी से चार अंगुल ऊपर गमन करने के स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होते हैं। यथा –

"वन्द्यो विभुर्भुवि न कैरिह कोण्डकुन्दः,
कुन्दप्रभाप्रणयकीर्ति-विभूषिताशः।
यश्चारूचारणकराम्बुज-चंचरीक-
श्चक्रे श्रुतस्य भरते प्रयतः प्रतिष्ठाम्॥"

– (चन्द्रगिरि शिलालेख, 54/67)

अर्थ – कुन्दपुष्प की प्रभा धारण करनेवाली जिनकी कीर्ति के द्वारा दशों दिशायें विभूषित हुई हैं, जो चारणों के चारणऋद्धिधारी महामुनियों के सुन्दर कर-कमलों के भ्रमर थे और जिन पवित्र आत्मा ने भरतक्षेत्र में श्रुत की प्रतिष्ठा की है, वे विभु कुन्दकुन्द इस पृथ्वी पर किसके द्वारा वन्द्य नहीं है।

".....कौण्डकुन्दो यतीन्द्रः।
रजोभिरस्पृष्टतमत्वमन्तर्बाह्योऽपि संव्यंजयितुं यतीशः।
रजः पदं भूमितलं विहाय चचार मन्ये चतुरंगलं सः॥"

– (श्रवणबेलगोल शिलालेख, 105)

अर्थ – यतीश्वर (आचार्य कुन्दकुन्ददेव) रजःस्थान-पृथ्वीतल को छोड़कर चार अंगुल ऊपर

गमन करते थे, जिसमें मैं समझता हूँ कि वे अन्तर और बाह्यरज से अत्यन्त अस्पृष्टता व्यक्त करते थे। अर्थात् वे अंतरंग में रागादि मल से तथा बाह्य में धूल से अस्पृष्ट थे।

''तस्यान्वये भूविदिते बभूव यः पद्मनंदि-प्रथमाभिधानः।
श्री कौण्डकुन्दादि-मुनीश्वराख्यस्तत्संयमादुद्गत-चारणर्द्धि ॥

– (श्रवणबेलगोल शिलालेख, 40/60)

अर्थ – जिनका नाम प्रारम्भ से **पद्मनंदि** था। बाद में जिन्हें **कोण्डकुन्द** मुनिश्रेष्ठ यह नामाभिधान प्राप्त हुआ। मुनि-अवस्था में संयम से जिन्हें चारणऋद्धि प्राप्त हुई थी, ऐसे भूलोक में प्रसिद्ध.....।

''श्रीपद्मनंदीत्यनवद्यनामाचार्य-शब्दोत्तर-कौण्डकुन्दः।
द्वितीयमासीदभिधानमुद्यच्चरित्र-संजातसुचारणार्द्धिः ॥

– (श्रवणबेलगोल शिलालेख, 42/32/47/50)

अर्थ – निर्दोष अता उत्स्फूर्त चारित्र से जिन्हें उत्तम चारणऋद्धि की प्राप्ति हुई थी और जिन्हें 'पद्मनंदि' ऐसा निर्दोष नामाभिधान था, इनका ही दूसरा नाम 'आचार्य कोण्डकुन्द' था।

इनके अतिरिक्त गिरनार पर्वत पर श्वेताम्बराचार्य को वाद-विवाद में पराजित करना तथा उसमें पाषाण प्रतिमा के द्वारा कुन्दकुन्द एवं दिगम्बर जैन आम्नाय के सत्य होने का समर्थन करना प्रमुख उल्लेखनीय है। इसके बारे में **भट्टारक शुभचन्द्र** लिखते हैं –

''कुन्दकुन्दो गणी येनोर्जयंतगिरि-मस्तके।
सोऽवताद्वादिता ब्राह्मी पाषाणघटिका कलौ।''

– (पाण्डव पुराण, प्रशस्ति पद्य 17)

श्रमणकुल कुन्दकुन्द मूलसंघ के प्रतिष्ठापक आचार्य थे। इस बारे में विशेष परिचय **सन् 1085 ई.** में विजयनगर के जैनमन्दिरस्थ दीपस्तम्भ पर उत्कीर्णित लेख में निम्नानुसार प्राप्त होता है–

''श्री मूलसंघेऽजनि नंदिसंघस्तस्मिन् बलात्कारगणोऽस्ति रम्यः।
तत्रापि सारस्वतनाम्निगच्छे स्वच्छाशयोऽभूदिह पद्मनन्दिः ॥''

इसके अनुसार आचार्य पद्मनन्दी (कुन्दकुन्द) **मूलसंघ** में समुत्पन्न **नन्दिसंघ** के **बलात्कारगण** में **'सारस्वत' नामक गच्छ** में हुये थे।

जबकि 'षट्प्राभृत' के टीकाकार **श्रुतसागर मुनि** ने 'भावसंग्रह' की प्रशस्ति में आचार्य

कुन्दकुन्द को मूलसंघस्थ **देशीयगण** एवं **पुस्तकगच्छ** का आचार्य बतलाया है –

''सिरिमूलसंघ-देसियगण-पौत्थगगच्छ-कोण्डकुंदाणं।'' – (पद्य 226)

नामकरण –

यह निर्विवाद तथ्य है कि आचार्य कुन्दकुन्द का मूल दीक्षानाम **'पद्मनन्दि'** था तथा 'कोण्डकुण्डपुर' के वासी होने के कारण इनका नाम **कोण्डकुन्द** ही अधिक प्रचलित हुआ। संभवतः ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय 'पद्मनन्दि' नाम के और भी मुनिराज। आचार्य रहे होंगे, अतः कौनसे पद्मनन्दि' ? – ऐसे प्रश्न के उत्तरस्वरूप 'कोण्डकुण्डपुर वाले' – ऐसा प्रचलन रहा होगा। फिर धीरे-धीरे उनका यही नाम अधिक प्रचलित हो गया। प्राचीन शिलालेखों में उनका नाम 'कोण्डकुण्ड' अथवा 'कोण्डकुन्द' ही मिलता है, जो बाद में 'कुण्डकुन्द' और फिर 'कुन्दकुन्द' बन गया।

इनके 'कुन्दकुन्द' नामकरण के बारे में जयपुर निवासी **कवि बख्तराम साह** ने 'बुद्धि-विलास' नामक ग्रंथ में एक अन्य आधार प्रस्तुत करते हुए लिखा है कि गिरनार पर विवाद के समय जब विपक्षियों ने इनके कमण्डलु में मदिरा भर दी और कहा कि 'तुम श्रमण होकर भी कमण्डलु में मदिरा क्यों लिये घूमते हो ?' तब आचार्य पद्मनन्दि के प्रभाववश चक्रेश्वरी देवी ने उनके कमण्डलु को सुगन्धित, श्वेत कुन्द-पुष्पों से भर दिया था; इसी घटना के प्रभाव से इनका 'कुन्दकुन्द' नाम प्रसिद्ध हुआ –

''देवि कुन्द-पुसपनितैं कमंडल भरि दियो।
तबतैं लागे कहन 'मुनि कुन्दकुन्द' है॥'' – (पद्य 572)

प्राचीन शिलालेखों, टीकाओं एवं अन्य साहित्य में इनके तीन अन्य नाम भी प्राप्त होते हैं – **वक्रग्रीव, एलाचार्य** एवं **गृद्धपिच्छ**। इस प्रकार **कुल पाँच नाम** आचार्य कुन्दकुन्द के मिलते हैं–

''आचार्य-कुण्डकुन्दाख्यो वक्रग्रीवो महामतिः।
एलाचार्यो गृद्धपिच्छ इति तन्नाम पञ्चधा॥''

– (विजयनगर, दीपस्तम्भ लेख)

जबकि मूलदीक्षा नाम 'पद्मनन्दि' एवं प्रचलित नाम 'कुन्दकुन्द' होने का समर्थन प्राचीन शिलालेख करते हैं–

''श्री पद्मनन्दीत्यनवद्यनामा ह्याचार्यशब्दोत्तर-कोण्डकुन्दः।
द्वितीयमासीदभिधानमुद्यच्चारित्रसंजात-सुचारणर्द्धिः॥''

– (चंद्रगिरि शिलालेख, क्रं. 43, सन् 1123)

जबकि स्वयं आचार्य कुन्दकुन्द ने अपना नाम 'कुन्दकुन्द' ही लिखा है –

''इति णिच्छय-ववहारं जं भणियं कुन्दकुन्द-मुणिणाहे।
जो भावइ सुद्धमणो सो पावइ परमणिव्वाणं॥''

– (बारस-अणुवेक्खा, गाथा 91)

गुरु -

आचार्य कुन्दकुन्द ने अपने दीक्षागुरु के बारे में स्वयं कोई उल्लेख नहीं किया है, मात्र 'गमकगुरु' के रूप में अन्तिम **श्रुतकेवली भद्रबाहु** का सादर स्मरण 'बोधपाहुड' में किया है। कुन्दकुन्द-साहित्य के टीकाकार आचार्य जयसेन ने इन्हें **'कुमारनन्दि सिद्धान्तदेव'** का शिष्य बतलाया है, जबकि नन्दिसंघ की पट्टावलि के अनुसार इनके गुरु **'आचार्य जिनचन्द्र'** थे।

आचार्य कुन्दकुन्द का साहित्य -

जैसाकि कहा जा चुका है कि प्राप्त उल्लेखों के अनुसार आचार्य कुन्दकुन्द ने **चौरासी पाहुड-ग्रंथों** की रचना की थी। इनमें से अधिकांश रचनायें आज उपलब्ध नहीं है। **डॉ. ए.एन. उपाध्ये** ने ऐसे 43 पाहुड़ ग्रंथों के नाम खोजे हैं, जो आचार्य कुन्दकुन्द के द्वारा लिखित माने गये हैं, किन्तु इनमें से कोई भी प्राप्त नहीं होता। आज उपलब्ध कुन्दकुन्द-साहित्य में मात्र **चौदह ग्रंथ** ही ऐसे हैं, जो निर्विवादरूप से आचार्य कुन्दकुन्द की रचनाओं के रूप में माने जाते हैं। वे हैं – 1. समयसार, 2. पवयणसार, 3. नियमसार, 4. पंचत्थिकायसंगहो, 5. दंसणपाहुड, 6. चरित्रपाहुड, 7. सुत्तपाहुड, 8. बोधपाहुड, 9. भावपाहुड, 10. मोक्खपाहुड, 11. लिंगपाहुड, 12. सीलपाहुड, 13. बारसअणुवेक्खा एवं 14. भत्तिसंगहो (इसमें सिद्धभक्ति आदि आठ भक्तियाँ संग्रहीत हैं)। इनके अतिरिक्त 'षट्खंडागम' के प्रथम दो खंडों पर रचित 'परिकर्म' नामक टीका, 'तिरुक्कुरल' नामक नीतिग्रंथ, 'मूलाचार' एवं 'रयणसार' आदि ग्रंथ भी कुन्दकुन्द के द्वारा रचित माने जाते हैं; किन्तु इस बारे में सभी विद्वानों का एक मत नहीं हैं।

'पाहुड' शब्द का अर्थ -

सामान्यतः 'पाहुड' (प्राभृत) शब्द का अर्थ 'भेंट' या 'उपहार' माना जाता है; किन्तु **आचार्य**

अमृतचंद्रसूरि ने 'प्राभृत' शब्द का अर्थ 'जिन-प्रवचन के अंश' के रूप में किया है, जो कि वस्तुत: सार्थक ही है; क्योंकि द्वादशांगी जिनवाणी के बारहवें अंग के भेद चौदह पूर्वों में से एक पूर्व के अवान्तर भेदों में '**प्राभृत**' नाम का एक पूरा अधिकार है, इसलिये '**अहियारोपाहुडयं**' (गोम्मटसार जीवकांड, गाथा 340) इस वाक्य के द्वारा 'प्राभृत' को द्वादशांगी जिनवाणी का एक अधिकार भी कहा गया है। समस्त **चौदह पूर्वों में कुल 3900 प्राभृत** माने गये हैं। **इन्हीं में से 84 पाहुडों की रचना आचार्य कुन्दकुन्द ने की थी।** उपलब्ध पाहुडों में 'अष्टपाहुड' के अन्तर्गत संगृहीत आठ पाहुड-ग्रंथों के अतिरिक्त अन्य ग्रंथों का नामकरण 'सार' नामांत से भी किया गया है। तथा इसका स्पष्टीकरण करते हुये टीकाकार आचार्य जयसेन स्पष्ट लिखते हैं कि ''पाहुडं सारः'' अर्थात् 'पाहुड' और 'सार' – ये दोनों पर्यायवाची ही हैं। जितना कुन्दकुन्द-साहित्य प्राप्त होता है, उसके अवलोकन से अनुपलब्ध कुन्दकुन्द-साहित्य की गरिमा को सहज ही समझा जा सकता है। विद्वानों ने तो यहाँ तक माना है कि यदि मात्र 'समयसार' की भी रचना कुन्दकुन्द ने की होती, तो भी कुन्दकुन्द का महत्त्व इतना ही रहता; क्योंकि इस ग्रंथराज में 'समय' अर्थात् 'सम्पूर्ण श्रुतज्ञान' का 'सार तत्त्व' (शुद्धात्मा का निरूपण) अद्वितीय भाषा-शैली में विवेचित है। आचार्य कुन्दकुन्द ने अपने जीवन की साधना के निचोड़ को इन ग्रंथों में प्रस्तुत किया था, अतः इनकी भाषा आम जनता में बोली जाने वाली प्राकृतभाषा है। आचार्य कुन्दकुन्द के द्वारा विरचित साहित्य पर परवर्ती आचार्यों एवं विद्वानों ने पर्याप्त परिमाण में व्याख्यापरक साहित्य का सृजन कर उसे महिमामंडित किया है।

प्रभाव –

आचार्य कुन्दकुन्द का व्यक्तित्व जितना महान् था, उनके द्वारा लिखे गये वाक्य भी परवर्ती आचार्यों एवं विद्वानों के द्वारा अत्यन्त आदरपूर्वक ग्रहण किये गये हैं। **पाँचवी शताब्दी** ई. के **आचार्य पूज्यपाद देवनन्दि** ने कुन्दकुन्द के अनेक गाथासूत्रों का संस्कृत रूपांतरण प्रस्तुत किया है। 'तिलोयपण्णति' के कर्त्ता **आचार्य यतिवृषभ** ने तो कुन्दकुन्द की गाथाओं को अपने ग्रन्थ में ज्यों का त्यों प्रस्तुत कर दिया है। कुन्दकुन्द के साक्षात् शिष्य **आचार्य उमास्वामी** ने 'तत्त्वार्थसूत्र' में अनेकों सूत्र कुन्दकुन्द के प्राकृत वचनों के आधार पर लिखे हैं। इतना ही नहीं अपने अगाध ज्ञान के कारण 'सर्वज्ञकल्प' कहे जाने वाले धवलाकार **आचार्य वीरसेन स्वामी** ने भी कुन्दकुन्द की अनेकों गाथाएँ 'धवला टीका' में ज्यों की त्यों प्रस्तुत की हैं। 'द्रव्यस्वभावप्रकाशक नयचक्र' के कर्त्ता **माइल्लधवल** ने तो स्पष्ट ही घोषणा की है कि ::**मैं कुन्दकुन्द आचार्य के द्वारा लिखे गये शास्त्रों का सार ग्रहण करके ही इस :नयचक्र' नामक ग्रंथ की रचना कर रहा हूँ।**'' उन्होंने

आचार्य कुन्दकुन्द के अनेक गाथासूत्रों को अपने ग्रंथ में प्रमाणस्वरूप लिखा है। इस प्रकार आचार्य कुन्दकुन्द के परवर्ती आचार्यों ने अपने कथन की प्रामाणिकता को पुष्ट करने के लिए कुन्दकुन्द के वचनों को 'आप्तवाक्य' के रूप में प्रस्तुत कर उनकी अद्वितीय प्रामाणिकता सिद्ध कर दी है।

चूँकि आचार्य कुन्दकुन्द ने मूल आगम को प्रस्तुत करने के साथ-साथ समस्त तत्कालीन समस्याओं पर अपनी लेखनी चलाई थी, तथा समकालीन एकांत दर्शनों की मिथ्या मान्यताओं की भरपूर खोज-खबर ली थी, अतः उन्हें 'युग का प्रतिष्ठापक' माना गया। इसके साथ ही उनके प्रतिपाद्य विषयों की मौलिकता भी अपने आप में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। **एकत्व-विभक्त आत्मा के वर्णन में उन्होंने जैसा मौलिक विवेचन प्रस्तुत किया है, वैसा समस्त दिगम्बर-श्वेताम्बर साहित्य में अन्यत्र कहीं भी नहीं मिलता है। ''तं एयत्तविहत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण'' कहकर उन्होंने यह सिद्ध कर दिया है कि आत्मा के वर्णन में उन्होंने अपने ज्ञान व अनुभव का निचोड़ प्रस्तुत कर दिया है।** यही कारण है कि उनके आत्मा-सम्बन्धी विवेचन को पढ़कर ऐसा लगता है कि **'यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्'** (जो यहाँ नहीं है, वह और कहीं भी नहीं मिल सकता है) वाली कहावत साक्षात् घटित हो रही है। साथ ही प्रतिपाद्य विषयों के बारे में दो टूक निर्णय शैली आचार्य कुन्दकुन्द की महत्ती विशेषता है। इसी प्रचंड प्रभाव के कारण आचार्य कुन्दकुन्द के काल से लेकर आज तक हुये समस्त आचार्यों ने अपने आपको कुन्दकुन्द की आम्नाय से जोड़कर गौरव का अनुभव किया है। तथा समस्त मूर्तिलेखों ग्रंथ-प्रशस्तियों आदि में भी 'कुन्दकुन्दान्वय' का प्रयोग असंदिग्ध प्रामाणिकता के लिये सर्वत्र प्राप्त होता है। विद्वानों ने तो यहाँ तक कहा है कि **''आज जो दिगम्बर-परम्परा जीवित है, उसका सर्वाधिक श्रेय आचार्य कुन्दकुन्द और उनके साहित्य को जाता है।''**

शक संवत् 997 'कुप्पडरू' के लेख में **आचार्य कुन्दकुन्द को 'श्रुत का पारंगत' कहा गया है।** इसी प्रकार शक संवत् 1320 के एक शिलालेख में **'आध्यात्मिक विद्या के क्षेत्र में कुन्दकुन्द को सर्वश्रेष्ठ माना गया है।'**

धर्मप्रभावना -

जहाँ आचार्य कुन्दकुन्द ने अपार साहित्य-सृजन कर व्यापक लोकहित किया था, वहीं उन्होंने वृहत्तर भारत के विशाल भूभाग में पैदल विहार कर व्यापक धर्मप्रभावना की थी। विद्वानों के अनुसार उन्होंने दक्षिण भारत के तमिलनाड़ प्रान्त से लेकर कर्नाटक, आंध्र, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, राजस्थान, गुजरात आदि प्रांतों में उस विषमकाल में पदयात्रा की तथा गिरनार पर्वत पर जाकर नेमिनाथ तीर्थंकर की पावन निर्वाणभूमि के दर्शन किये थे। आज के साधन-सम्पन्न युग में बैठकर दो हजार वर्ष प्राचीन

भारत के वातावरण की कल्पना नहीं की जा सकती है। उस विकट परिस्थिति में भी धर्मप्रभावना की उत्कट अभिलाषा से आचार्य कुन्दकुन्द ने सम्पूर्ण भारत को अपने पावन व्यक्तित्व एवं मांगलिक उपदेशों से एकता के सूत्र में पिरो दिया था तथा आध्यात्मिक जागरण का शंखनाद किया था। इतनी विपरीत जलवायु, वातावरण एवं अकल्पनीय बाधाओं की परिस्थिति में भी अत्यंत धैर्य, साहस एवं लगन से दिगम्बर जैनश्रमण की कठोर चर्या का निर्दोषविधि से निर्वाह करते हुए उन्होंने जो यह अभूतपूर्व कार्य किया था, वह अपने आप में एक अनूठी घटना है तथा इसे विश्व का अद्भुत आश्चर्य माना जा सकता है।

आचार्य कुन्दकुन्द और पोन्नूर तीर्थ -

आचार्य कुन्दकुन्द का पावन साधनाभूमि **'पोन्नूर तीर्थ'** रहा है, जो कि तमिलनाडु प्रांत में है। इसे आज **'नीलगिरि'** के नाम से भी जाना जाता है। **इसी पर्वत से आचार्य कुन्दकुन्द विदेहक्षेत्र में विद्यमान तीर्थंकर सीमंधर परमात्मा के दर्शन के लिए गये थे और वहाँ वे वापस आकर इसी पर्वत शिखर पर बैठकर उन्होंने शास्त्र रचना की थी।**

यह पर्वत चैन्नई (मद्रास) से 130 किलोमीटर दूरी पर और वन्देवास गाँव से केवल 8 किलोमीटर अन्तर पर है। बस अड्डे से 50 फीट की दूरी पर ही पोन्नूर पर्वत की सीढ़ियाँ प्रारम्भ होती हैं। नीचे जमीन से पर्वत पर पहुँचने के लिए कुल 325 सीढ़ियाँ हैं।

पर्वत शिखर पर दो हजार वर्ष से भी पुराना चम्पक नामक का वृक्ष है। इस वृक्ष के पास ही आचार्यश्री कुन्दकुन्द देव की अत्यन्त प्राचीन, अतिदीर्घ, पवित्र चरणपादुकाएँ हैं। इस परम पवित्र चरणचिन्हों पर **ईस्वी सन् 1970** में मण्डप की रचना हुई है। इन चरण-पादुकाओं के दक्षिण दिशा में लगभग सौ-सौ फीट की दूरी पर दो प्राकृतिक गुफाएँ हैं, जिनमें चौकाकार बड़ी शिलाएँ हैं।

गुफा का अन्तर्भाग देखते ही इस शिलाखण्ड पर बैठकर आचार्य कुन्दकुन्द ने तपस्या की थी – ऐसी जनश्रुति है। इस गुफा में एक साथ एक ही मनुष्य झुककर प्रवेश कर सकता है। गुफा के प्रवेशद्वार के पास एक बड़ी चट्टान होने से गुफा के पास जाने पर भी 'यहाँ गुफा है' – ऐसा ज्ञान नहीं हो पाता। आसपास का परिसर, गुफा का अन्तरभाग देखकर यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि 'यह ध्यान के लिए सर्वोत्तम जगह है।'

पर्वत की पश्चिम दिशा में **पोन्नूर गाँव** है। यह गाँव पहाड़ से **पाँच किलोमीटर दूरी** पर है। पर्वत की पूर्व दिशा से ही पर्वत पर चढ़ना-उतरना संभव है। पश्चिम दिशा में पहाड़ से उतरकर

पोन्नूर पहुँचना शक्य नहीं है, क्योंकि रास्ता नहीं है। पोन्नूर गाँव में श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर है। मन्दिर में बारहवीं शताब्दी का एक शिलालेख है। इस शिलालेख में ''श्री पार्श्वनाथ जिनबिम्ब का पोन्नूर पर्वत पर ले जाकर अभिषक-पूजा की है'' ऐसा उल्लेख मिलता है। दूसरा **सतरहवीं शताब्दी** का शिलालेख – उसमें ''आदिनाथ मनकमलै आलवा'' के मन्दिर का जीर्णोद्वार किया गया है– ऐसा उत्कीर्ण किया हुआ है। **500 वर्ष पूर्व** पर्वत पर महाभिषेक हुआ था – ऐसा भाव एक अन्य शिलालेख में स्पष्ट मिलता है।

अब वर्तमान काल में भी इस पर्वत पर प्रतिवर्ष 'मंदरपुष्प' नामक उत्सव सामान्यतः जनवरी माह में मनाया जाता है। जिस प्रकार उत्तर भारत में चैत्र महीने में वर्ष का प्रारम्भ मानते हैं, उसी प्रकार तमिलवासी 'तयी' मास से वर्ष का प्रारम्भ मानते हैं। इस उत्सव में हजारों लोक इकट्ठे होते हैं। और आचार्यश्री की चरणपादुकाओं पर पुष्पांजलि अर्पित करके अपनी श्रद्धा-भक्ति व्यक्त करते हैं।

इस पर्वत की पूर्व दिशा से तमिलनाडु प्रदेश की राज्य परिवहन की बसें 'पोन्नूर रोड' से आया-जाया करतीं हैं। उसी रास्ते पर एक 'विद्यार्थी निलय' है। इसमें विद्यार्थी धार्मिक और लौकिक अध्ययन करते हैं। यहीं पर एक विशाल जैन मन्दिर है। उसमें तीर्थंकर आदिनाथ, सीमन्धर स्वामी, शान्तिनाथ, पार्श्वनाथ और बाहुबली भगवान की मूर्तियाँ हैं। मंदिर की व्यवस्था उत्तम है।

इस 'विद्यार्थी-निलय' के ग्रन्थ-भंडार में **लगभग पाँच सौ ताड़पत्रीय ग्रंथ हैं।** ये सभी ग्रंथ प्राकृत, संस्कुत भाषा में और 'ग्रंथिलिपि' में लिखे गए हैं। प्राभृतत्रय की मूलभाषा प्राकृत, ग्रंथि लिपि और उन पर टीका तमिल भाषा में लिखी गई है। यहाँ ग्रन्थ तो संग्रहीत करके रखे गये हैं, पर शोधकार्य नहीं चल रहा है। यहाँ के कार्यकर्त्ताओं का कहना है कि ''ग्रन्थि-लिपि को जाननेवाले विद्वान् बहुत विरल हैं।''

तमिल तथा कन्नड़ प्रान्तीय संस्थाओं को आचार्य कुन्दकुन्द-विषयक शोध-खोज कार्य विशेष रीति से करना आवश्यक है। इससे भूगर्भ से प्राप्त अवशेषों तथा ताड़पत्रीय ग्रन्थों से प्राप्त जानकारी के आधार से कुछ प्रमेय हाथ लग सकते हैं। हिन्दी प्रान्तीय संस्थाओं को तमिल तथा कन्नड़ भाषा-भाषियों को इस कार्य के लिए प्रेरणा देना आवश्यक है।

पोन्नूर तीर्थ की यात्रा के प्रसंग में (सन् 1958 ई. में) **आध्यात्मिक सत्पुरुष श्री कानजी स्वामी** हजारों धर्मानुरागी भाई-बहिनों के साथ यहाँ पधारे थे तथा यहाँ स्थापित परमपूज्य आचार्यश्री कुन्दकुन्द के पावन चरणों की वंदना कर भावविभोर हो उठे थे। तब उन्होंने आचार्य कुन्दकुन्द देव

के प्रति भक्ति से ओतप्रोत होकर कहा था – **''आचार्य कुन्दकुन्द देव ने इस कलिकाल में जगद्गुरु तीर्थंकर जैसा महान् कार्य किया है। तथा आचार्य अमृतचन्द्र सूरि ने उनके ग्रंथों का भाष्य करके उनके हृदय को खोलकर रख दिया है। उनके गंभीर अभिप्राय को स्पष्ट करने में वे साक्षात् गणधरदेव के समान प्रतीत होते हैं। आचार्य कुन्दकुन्द द्वारा रचित परमागम 'समयसार' शास्त्र तो 'आगमों का भी आगम' है। लाखों शास्त्रों का निचोड़ निहित है। यह जैनशासन का स्तम्भ है तथा साधन जीवों के लिए यह कामधेनु व कल्पवृक्ष के समान है। इसकी प्रत्येक गाथा से आत्मानुभाव का रस टपकता है।''** पोन्नूर तीर्थ के बारे में भावविभोर होकर उन्होंने अपने उद्गार व्यक्त करते हुए कहा कि – **''इस पावन तीर्थ का एक-एक कण भी पारस के समान भव्यजीवों के जीवन को मांगलिक दिशा प्रदान करता है। अहो ! इसी जगह पर बैठकर परमपूज्य आचार्य कुन्दकुन्द ने आत्मानुभव के रस में गोते लगाते हुए 'समयसार' आदि महान् ग्रंथों की रचना की थी। अतः उनका साक्षात् स्पर्श पाकर यहाँ की मिट्टी भी पवित्र हो गयी है। यह तो उनकी साधनाभूमि है। 'समयसार' की सृजनस्थली को मेरा बारम्बार नमन है।''**

डॉ. सुदीप जैन

जैनदर्शन विभाग

श्री लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ

नई दिल्ली - 16

अष्टपाहुड़ प्रवचन अनुक्रमणिका

:: दर्शनपाहुड़ ::

गाथा न.		पृष्ठ
मंगलाचरण		1
गाथा	1	8
गाथा,	2	12
गाथा	3	82
गाथा	4	87
गाथा	5	91
गाथा	6	94
गाथा	7	96
गाथा	8	102
गाथा	9	106
गाथा	10	110
गाथा	11	115
गाथा	12	125
गाथा	13	131
गाथा	14	137
गाथा	15	143
गाथा	16	147
गाथा	17	152
गाथा	18	157
गाथा	19	163
गाथा	20	168
गाथा	21	171
गाथा	22	174
गाथा 23 व 24		183
गाथा	25	186
गाथा	26	187
गाथा	27	190
गाथा	28	192
गाथा	29	196
गाथा	30	200
गाथा	31	201
गाथा	32	205
गाथा	33	206
गाथा	34	209
गाथा	35	211
गाथा	36	216

:: सूत्रपाहुड़ ::

गाथा न.		पृष्ठ
मंगलाचरण		219
गाथा	1	221
गाथा	2	224
गाथा	3	230
गाथा	4	233
गाथा	5	240
गाथा	6	248
गाथा	7	282
गाथा	8	286
गाथा	9	290
गाथा	10	293
गाथा	11	296
गाथा	12	298
गाथा	13	303
गाथा	14	308
गाथा	15	310
गाथा	16	312
गाथा	17	316
गाथा	18	318
गाथा	19	327
गाथा	20	329
गाथा	21	331
गाथा	22	333
गाथा	23	335
गाथा	24	338
गाथा	25	340
गाथा	26	342
गाथा	27	344
परिशिष्ट		348

www.vitragvani.com

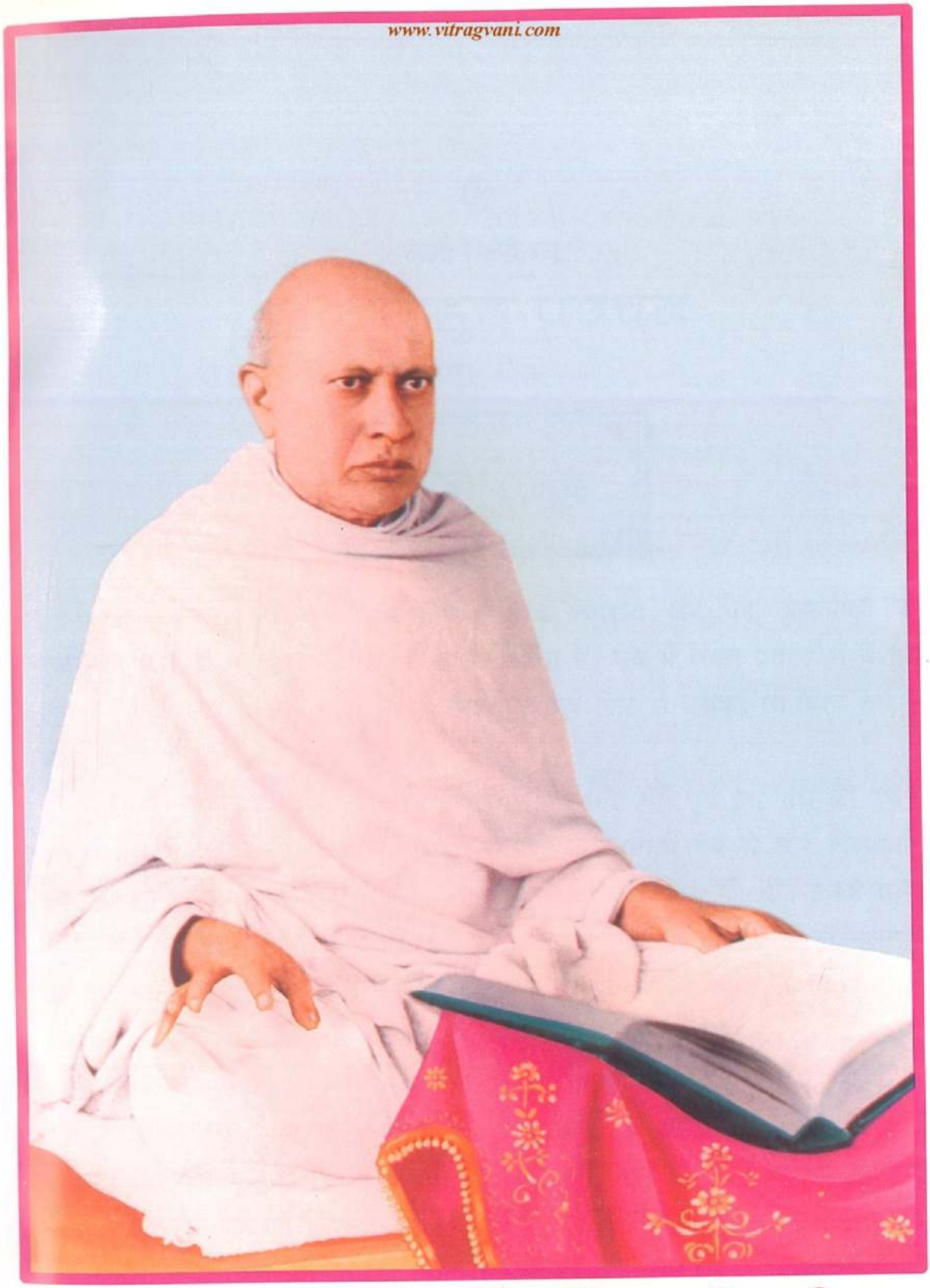

परमोपकारी पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी

Shree kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

ॐ

नमः सिद्धेभ्य

अष्टपाहुड़ प्रवचन

भाग - 1

दर्शनपाहुड़

श्री नियमसार का स्वाध्याय पूर्ण होने के उपरांत अब यह अष्टपाहुड़ का स्वाध्याय लगभग नौ वर्षों के पश्चात् प्रारम्भ होता है। पूर्व में संवत् 2002 में बैशाख शुक्ला षष्टमी को प्रारम्भ हुआ था। तत्पश्चात् अब फिर से उसका स्वाध्याय प्रारम्भ होता है।

भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने आज से लगभग 2000 वर्ष पूर्व इस ग्रंथ की रचना की थी। वे महाविदेहक्षेत्र में श्री सीमंधर परमात्मा के दर्शनार्थ गये थे और दिव्यध्वनि का श्रवण किया था। दिव्यध्वनि का श्रवण कर शास्त्रों की रचना की थी। उनके समय में ही जैन सम्प्रदाय में दूसरा पक्ष (श्वेताम्बर) निकल चुका था। भगवान का मूलमार्ग तो एकमात्र दिगम्बर जैनदर्शन ही है। वीतराग परमात्मा के श्रीमुख से प्रवाहित जो सनातन मार्ग है उसका प्रतिपादन यहाँ आचार्यदेव ने किया है।

आचार्यदेव ने सनातन निर्ग्रन्थ मार्ग में इस अष्टपाहुड़ की रचना की है ।

सर्वप्रथम मांगलिक में भगवान की दिव्यध्वनि ॐ का स्मरण किया है। ॐ तीर्थंकर भगवान की वाणी है । ज्ञानमूर्ति आत्मा में लीन होकर केवलज्ञान होने के पश्चात् भगवान की जो दिव्यवाणी निकलती है उसे ॐ कहते हैं। उसमें एकसाथ ही अनंत रहस्य समाहित होते हैं।

www.vitragvani.com

यह अष्टपाहुड़ मूल तो प्राकृतभाषा में है, जिसका देशभाषा (हिन्दी) में अर्थ पण्डित जयचन्दजी छावड़ा ने किया है। वे आज से लगभग 150 वर्ष पूर्व जयपुर में हुए थे। उससमय जयपुर में जैनियों का ज़ोर विशेष था और वहाँ कई विशिष्ट विद्वान हुए थे। अभी भी वहाँ सैकड़ों जिनमन्दिर विद्यमान है। पण्डित जयचन्दजी ने ही समयसारादि का भी अर्थ किया है । वे दिगम्बर तेरापंथी विद्वान थे।

अब यहाँ टीकाकार पण्डित जयचन्दजी मंगलाचरण करते हैं।

श्रीमत् वीर जिनेश रवि, मिथ्यातम हरतार।
विघन हरन मंगलकरन बंदू वृष करतार ।। 1 ।।

भगवान महावीर जिनेन्द्र केवलज्ञानरूपी 'श्री' अर्थात् स्वरूप लक्ष्मी वाले थे। पैसा इत्यादि लक्ष्मी तो जड़ है। लोग लक्ष्मीवान को श्रीमंत कहते है न, किन्तु वस्तुतः तो ज्ञानानन्द स्वरूप आत्मा की भावना से जो केवलज्ञान लक्ष्मी प्रगटी वही वास्तविक लक्ष्मी और उसी स्वरुप लक्ष्मी से सम्पन्न श्रीमंत भगवान है। तथा भगवान मिथ्यात्व अंधकार के नष्ट करने के लिये सूर्य के समान हैं। वे विघ्न के हरने वाले एवं मंगल के करने वाले हैं। मंग+ल= पवित्रता को प्राप्त कराने वाला और मं+गल=पाप को गलाने वाला। ऐसे मंगलस्वरूप और धर्मतीर्थ के कर्त्ता श्री वीर भगवान को मैं नमस्कार करता हूँ।

अब वाणी को नमस्कार करते हैं।

वाणी बंदू हितकरी जिनमुख नभतैं गाजि।
गणधरगण श्रृतभू-झरी-बूंद वर्णपद साजि।। 2 ।।

भगवान की वाणी को, शास्त्र को मैं नमस्कार करता हूँ। कैसी है वह वाणी? भगवान के मुखरूपी आकाश से जो गरजी है और गणधर भगवंतों की श्रुतज्ञानरूपी भूमि पर वह वाणी खिरी है। भगवान के मुखरूपी गगन में से निकली और गगधरों की ज्ञानरूपी भूमि पर पड़ी तथा बूंद, वर्ण और पद सहित है-इसकारण जिनवाणी को नमस्कार करता हूँ।

www.vitragvani.com

अब श्रीगुरु को नमस्कार करते हैं।

गुरु गौत्तम बंदू सुविधि संयम तप धर और ।
जिनितैं पंचमकाल मैं बरत्यो जिनमत दौर ।। 3 ।।

गौत्तम गणधर गुरु को नमस्कार करता हूँ। कैसे है वे? जो सम्यग्दर्शन, ज्ञानपूर्वक संयम और तप के धारक हैं, और जिनकी मूल परंपरा से इस पंचमकाल में जैनमत की परंपरा प्रवर्तित है। अर्थात् यहाँ यह भी कहा है कि अभी जो सनातन दिगम्बर जैनधर्म प्रवर्तित है वह परंपरा से ठेठ गौत्तम गणधर तक सम्बन्धित है। इस प्रकार गणधर भगवान से मूल परंपरा चली आ रही है-इसकारण उन्हें नमस्कार किया है।

अब कुन्दकुन्दाचार्यदेव को नमस्कार करते हैं।

कुंदकुंद मुनि कुं नमू कुमत ध्वातंहर भान।
पाहुड़ ग्रन्थ रचे जिनहिं प्राकृत वचन महान्।। 4 ।।

गौत्तम गणधर के पश्चात् तुरंत ही कुन्दकुन्दाचार्यदेव को नमस्कार किया है। कैसे हैं कुन्दकुन्दाचार्यदेव? कुमत के हरणकर्त्ता हैं। उन्होंने पाहुड़ ग्रन्थों की रचना की है जो प्राकृत भाषा में है। उनकी रचना महान है।

तिनिमें कई प्रसिद्ध लखि करूँ सुगम सुविचार
देशवचनिकामय लिखूँ भव्य-जीव हितधार।।5

आचार्यदेव ने चौरासी पाहुड़ ग्रन्थों की रचना की थी। उनमें से वर्तमान में आठ ही प्रसिद्धि में है। उनकी हिन्दी वचनिका पण्डित जयचन्दजी ने लिखी है। किसलिये? कि भव्य जीवों के हित के लिये। इसप्रकार देव-शास्त्र और गुरु को नमस्कार करके मंगलाचरण किया।

अब आचार्य कुन्दकुन्द द्वारा रचित प्राकृत शास्त्रों में से कुछ की देशभाषा में वचनिका करते हैं।

यहाँ वचनिका का प्रयोजन क्या है यह दर्शाते हैं।

www.vitragvani.com

.....वहाँ प्रयोजन ऐसा है कि- इस हुण्डावसर्पिणी काल में मोक्षमार्ग की अन्यथा प्ररूपणा करनेवाले अनेके मत प्रवर्तमान हैं। उसमें भी इस पंचमकाल में केवली- श्रुतकेवलीका व्युच्छेद होने से जिनमत में भी जड़ वक्र जीवों के निमित्त से परम्परा मार्ग का उल्लंघन करके श्वेताम्बर आदि बुद्धिकल्पित मत हुए हैं। उनका निराकरण करके यथार्थ स्वरूप की स्थापना के हेतु दिगम्बर आम्नाय मूलसंघ में आचार्य हुए और उन्होंने सर्वज्ञ की परम्परा के अच्युच्छेदरूप प्ररूपणा के अनेक ग्रन्थों की रचना की है; उनमें दिगम्बर सम्प्रदाय मूलसंघ नन्दिआम्नाय सरस्वतीगच्छ में श्री कुन्दकुन्द मुनि हुए और उन्होने पाहुड़ग्रन्थों की रचना की। उन्हें संस्कृत भाषा में प्राभृत कहते हैं और वे प्राकृत गाथाबद्ध हैं। काल दोष से जीवों की बुद्धि मन्द होती है जिससे वे अर्थ नहीं समझ सकते; इसलिये देशभाषामय वचनिका होगी तो सब पढेंगे और अर्थ समझेंगे तथा श्रद्धान दृढ़ होगा- ऐसा प्रयोजन विचार कर वचनिका लिख रहे हैं, अन्य कोई ख्याति, बड़ाई या लाभ का प्रयोजन नहीं है। इसलिये हे भव्य जीवो! इसे पढ़कर, अर्थ समझकर, चित्त में धारण करके यथार्थ मतके बाह्यलिंग एवं तत्त्वार्थका श्रद्धान दृढ़ करना। इसमें कुछ बुद्धि की मंदता से तथा प्रमाद के वश अन्यथा अर्थ लिख दूँ तो अधिक बुद्धिमान मूलग्रन्थ को देखकर, शुद्ध करके पढ़े और मुझे अल्पबुद्धि जानकर क्षमा करें!.....

इस हुण्डावसर्पिणी काल में मुक्तिमार्ग का विपरीत प्रतिपादन करने वाले अनेक मत प्रवर्त्तमान हैं। उसमें भी पंचमकाल में केवली-श्रुतकेवलियों का वियोग होने से जिनमत में भी जड़ और वक्रबुद्धियुक्त जीवों के निमित्त से परंपरामार्ग का उलंघन करके श्वेताम्बरादि बुद्धि कल्पित मत हुए हैं; उनका निराकरण करके यथार्थ स्वरूप की स्थापना करने के लिये दिगम्बर आम्नाय मूलसंघ में हुए आचार्यों ने सर्वज्ञ की परम्परा से अविच्छिन्नरूप प्ररूपणा करके अनेक ग्रंथों की रचना की है।

देखो! यह कथन अभी का नही वरन् एक सौ पचास वर्ष पूर्व का है। अहो! पूर्व में तो यहाँ केवलज्ञानी भगवंतो का एक ही मार्ग था, किन्तु अभी इस पंचमकाल में केवली और श्रुतकेवलियों का विरह पड़ा; और अनेक बुद्धि कल्पित मिथ्यामत उत्पन्न

www.vitragvani.com

हुए। श्वेताम्बरादि सभी मत बुद्धि कल्पित हैं। उनमें भगवान की यथार्थ परम्परा नहीं है। देखो! यह बात धैर्यपूर्वक शान्ति से समझने योग्य है। भव्यजीवों के हित के लिये यह बात है।

भावलिंगी दिगम्बर संतों का जो मार्ग सर्वज्ञ भगवान की परम्परा से चला आया है उसमें से भ्रष्ट होकर श्वेताम्बर मार्ग निकला और उन्होने नये कल्पित शास्त्रों की रचना की है।

श्वेताम्बरों के पैंतालीस शास्त्र अथवा स्थानकवासियों के बत्तीस शास्त्र ये सब कल्पित हैं। न तो ये भगवान कथित हैं और न गणधर कथित ही हैं, मुनियों द्वारा कथित भी नहीं हैं। अरे! सम्यग्दृष्टि द्वारा कहे हुए भी नहीं हैं। अगृहीत मिथ्यादृष्टि द्वारा भी कहे गये नहीं हैं; अपितु गृहीत मिथ्यादृष्टि द्वारा रचित हैं।

भगवान के मार्ग से भ्रष्ट हुए अर्थात् स्वच्छन्दता का पोषण किया। वस्त्र-पात्र, दंड इत्यादि परिग्रह रखकर भी मुनिपना मनवाकर और ऐसे ही शास्त्रों की रचना की है। इसमें देव शास्त्र गुरु सभी का विपरीत कथन है और कुदेवादि का पोषण है।

वर्तमान में कितने ही स्वच्छन्दी जीव यहाँ से जैन परम्परा की बात लेकर उसे अपने नाम से चलाते हैं; वस्तुतः वे ज्ञान के चोर हैं। अहो! वीतरागीमोक्षमार्ग के आराधक ऐसे कुन्दकुन्दादि संतों का विरोध करके जिन्होने शास्त्र रचे हैं वे तो गृहीत मिथ्यात्व के पोषक अनंत संसारी हैं। ऐसे विपरीत कल्पित मतों का निषेध करके वीतराग का मूलमार्ग क्या है? वह भव्यजीवों के हितार्थ यहाँ बतलाया जाता है।

केवली भगवान के आहारादि ग्रहण करना मनवावे, मुनिवरों के वस्त्रादि का ग्रहण होना बतलावें-ये सब कथन विपरीत हैं। जो जीव कुगुरु, कुदेव, कुशास्त्रों को मानते हैं, उनका मिथ्यात्व नहीं टलता। उनका अगृहीत मिथ्यात्व तो टलता ही नहीं, गृहीत मिथ्यात्व भी नहीं टलता।

सर्वज्ञ की परंपरा का परित्याग करके श्वेताम्बरादिक ने जो बुद्धि कल्पित रचना की है उसमें देव-गुरु-धर्म की विपरीत प्ररूपणा है।

Shree kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

पहले तो दिगम्बरमत में से भ्रष्ट होकर श्वेताम्बर निकले, जो मूर्ति आदि को तो मानते हैं; किन्तु लगभग पाँच सौ वर्ष पूर्व उनमें से स्थानकवासी मत निकला और उन्होने तो मूर्ति का भी उत्थापन किया। फिर स्थानकवासी में से भ्रष्ट होकर लगभग एक सौ पचास वर्ष पूर्व तेरापंथी (स्थानकवासी) मत निकला। दिगम्बर तेरापंथ तो भगवान की परम्परा का मूलमार्ग है; किन्तु स्थानकवासी तेरापंथ तो दया, दान में भी पाप मानने वाला और भगवान के मार्ग से अत्यन्त विपरीत है। इन समस्त कल्पित मतों में कथित विपरीतता का निराकरण करने के लिये और वीतरागमार्ग में कथित यथार्थ तत्त्व की प्ररूपणा करने के लिये मूलसंघ में भगवान की मूल दिगम्बर आम्नाय में भगवान कुन्दकुन्दाचार्य हुए तथा घरसेनाचार्य, पुष्पदंत-भूतबली आचार्य, समन्तभद्राचार्य, वीरसेनाचार्य इत्यादि अनेक आचार्य हुए और उन्होंने भगवान की परम्परा अनुसार अनेक महान शास्त्रों की रचना की है।

भगवान की परम्परा में प्रवर्त्तमान दिगम्बर सम्प्रदाय के मूलसंघ में 'नंदि' आम्नाय, सरस्वती गच्छ में कुन्दकुन्दाचार्य हुए और उन्होने प्राभृत शास्त्रों की रचना की ।

उनके द्वारा रचित अष्ट प्राभृत निम्न अनुसार है:-

1. दर्शन प्राभृत 2. सूत्र प्राभृत
3. चारित्र प्राभृत 4. बोध प्राभृत
5. भाव प्राभृत 6. मोक्ष प्राभृत
7. लिंग प्राभृत 8. शील प्राभृत।

(कहा जाता है कि आचार्यदेव ने चौरासी प्राभृत रचे थे उनमें से उक्त आठ प्राभृत ही प्राप्त हैं।)

भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्य द्वारा रचित ये मूल शास्त्र प्राकृत भाषा में है। वर्तमान में जीवों की बुद्धि की मंदता के कारण उनका समझना कठिन है; यदि उनको देशभाषा मे लिख दिया जावे तो सभी जीव पढ़ें और अर्थ समझें, जिससे श्रद्धान दृढ़ हो-यह प्रयोजन विचारकर पंण्डित जयचन्दजी ने इस शास्त्र की देशभाषामय वचनिका की है।

Shree kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

इसके अतिरिक्त अन्य कोई ख्याति, पूजा, लाभ इत्यादि का प्रयोजन नहीं है। अतः भव्यजीवों! इस शास्त्र को पढ़ना, इसका अर्थ समझकर उसे चित्त में धारण करना। तथा यथार्थ वीतरागमार्ग जो दिगम्बरमत, उसमे अन्तर भावसहित जो बाह्यलिंग-वस्त्र रहित दिगम्बर मुनिपना-उसका श्रद्धान करना तथा यथार्थ तत्त्वों का दृढ़ श्रद्धान करना। कहीं बुद्धि की मंदता अथवा प्रमाद से साधारण भूल हो जाय तो विशेष बुद्धिमान मूल ग्रंथ देखकर अर्थ सुधारकर पढ़ना और मुझे अल्प बुद्धि समझकर क्षमा करना।

अब प्रथम 'दर्शनपाहुड़' की वचनिका प्रारंभ करते हैं, उसका मंगलाचरण करते है।

बंदू श्री अरहंत कूँ, मन वच तन इकतान।
मिथ्याभाव निवारिकैं करैं सु दर्शन ज्ञान।।

मन, वचन, तन को एकतार करके भावपूर्वक भगवान अरहंत देव को नमस्कार करता हूँ। मिथ्याभाव के निवारण और सम्यग्दर्शन के करनेरूप प्रयोजन के लिये भगवान को वंदन किया है।

Shree kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

दर्शनपाहुड़ गाथा - 1

अब ग्रन्थकर्ता श्री कुन्दकुन्दाचार्य ग्रन्थ के आदि में ग्रन्थ की उत्पत्ति और उसके ज्ञानका कारण जो परम्परा गुरुका प्रवाह उसे मंगल हेतु नमस्कार करते हैं:-

काऊण णमुक्कारं जिणवरवसहस्स वड्ढमाणस्य ।
दंसणमग्गं वोच्छामि जहाकम्मं समासेण ।। 1 ।।

कृत्वा नमस्कारं जिनवरवृषभस्य वर्द्धमानस्य ।
दर्शनमार्ग वक्ष्यामि यथाक्रमं समासेन ।। 1 ।।

हिन्दी पद्यानुवादः

कर नमन जिनवर वृषभ एवं वीर श्री वर्द्धमान को।
संक्षिप्त दिग्दर्शन यथाक्रम करूँ दर्शनमार्ग को ।।1।।

इसका देशभाषामय अर्थ :- आचार्य कहते हैं कि मैं जिनवर वृषभ ऐसे जो आदि तीर्थंकर श्री ऋषभदेव तथा अन्तिम तीर्थंकर वर्द्धमान, उन्हें नमस्कार करके दर्शन अर्थात् मतका जो मार्ग है उसे यथानुक्रम संक्षेप में कहूंगा ।

भावार्थ :- यहाँ 'जिनवर वृषभ' विशेषण है; उसमें जो जिन शब्द है उसका अर्थ ऐसा है कि- जो कर्मशत्रु जो जीते सो जिन । वहाँ सम्यग्दृष्टि अव्रतीसे लेकर कर्म की गुणश्रेणीरूप निर्जरा करनेवाले सभी जिन हैं उनमें वर अर्थात् श्रेष्ठ। इसप्रकार गणधर आदि मुनियों को जिनवर कहा जाता है; उनमें वृषभ अर्थात् प्रधान ऐसे भगवान तीर्थंकर परमदेव हैं । उनमें प्रथम तो श्री ऋषभदेव हुए और इस पंचमकाल के प्रारंभ तथा चतुर्थकाल के अन्त में अन्तिम तीर्थंकर श्री वर्द्धमानस्वामी हुए हैं । वे समस्त तीर्थंकर जिनवर वृषभ हुए हैं उन्हें नमस्कार हुआ । वहाँ 'वर्द्धमान' ऐसा विशेषण सभी के लिये जानना; क्योंकि सभी अन्तरंग एवं बाह्य लक्ष्मी से वर्द्धमान हैं। अथवा जिनवर वृषभ शब्द से तो आदि तीर्थंकर श्री ऋषभदेव को और वर्द्धमान शब्द से अन्तिम तीर्थंकर को जानना । इसप्रकार आदि और अन्त के तीर्थंकरों को नमस्कार करने से मध्य के तीर्थंकरों को भी सामर्थ्य से नमस्कार जानना । तीर्थंकर सर्वज्ञ वीतराग को तो परमगुरु कहते हैं और उनकी परिपाटी में चले आ रहे गौतमादि

www.vitragvani.com

मुनियों को जिनवर विशेषण दिया, उन्हें अपर गुरु कहते हैं; - इसप्रकार परापर गुरुओं का प्रवाह जानना । वे शास्त्रकी उत्पत्ति तथा ज्ञान के कारण हैं । उन्हें ग्रन्थ के आदि में नमस्कार किया ।। 1 ।।

गाथा -1 पर प्रवचन

अब शास्त्र के प्रारंभ में भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्य देव स्वयं मंगल पूर्वक प्रतिज्ञा करते हैं। शास्त्र की उत्पत्ति का मूल और ज्ञान प्राप्ति का कारण जो सर्वज्ञ भगवान और परंपरा गुरुओं का प्रवाह, उन्हे मंगल के लिये नमस्कार करते हैं।

भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्य स्वयं परमेष्ठी पद में वर्तते महामांगलिक पुरुष हैं वे मंगल करते हैं ।

इस गाथा में मंगलाचरण करते हुए आचार्य भगवान कहते हैं कि जिनवर वृषभ वर्द्धमान भगवान को नमस्कार करके दर्शन का मार्ग यथाक्रम से संक्षिप्त में कहूँगा।

जिनवर वृषभ और वर्द्धमान-ऐसा कहने से प्रथम एवं अन्तिम दोनो तीर्थंकर आजाते हैं, उन्हे वंदन किया, इसके अतिरिक्त अन्य अर्थ भी इसमें से निकलते है।

जिनवर वृषभः-

जिन-अर्थात् जो कर्म शत्रु को जीते; आत्मा के शत्रु ऐसे जो मिथ्यात्वादि भावकर्म तथा निमित्तरूप द्रव्यकर्म इन्हें जो सम्यग्दर्शनादि द्वारा जीतते हैं वे जिन हैं। ऐसे जिन कौन हैं ?- यह कहते हैं।

प्रथम तो अविरत सम्यग्दृष्टि जीव जिन्होने ज्ञानानन्द स्वभाव आत्मा के भान द्वारा मिथ्यात्वादि भावकर्मों को जीत लिया है, वे भी जिन हैं। अव्रती सम्यक्त्वी को भी गुणश्रेणी निर्जरा होती है। अव्रती सम्यक्त्वी से लेकर गुणश्रेणी निर्जरा करने वाले समस्त जीव 'जिन' हैं।

उन जिनों में जो श्रेष्ठ हैं वह जिनवर है ऐसे गणधरदेव इत्यादि मुनिवर 'जिनवर' हैं। तथा उनमें भी प्रधान-उत्तम ऐसे श्री तीर्थंकर भगवान 'जिनवर वृषभ' है।

द्रव्यसंग्रह के मंगलाचरण मे भी इसी प्रकार जिनवर वृषभ कहकर भगवान को नमस्कार किया हैं।

www.vitragvani.com

चतुर्थ गुणस्थान वाले सम्यग्दृश्टि भी जिन है; किन्तु 'जिनवर वृषभ' तो केवली तीर्थंकर भगवान ही है, उन्हें नमस्कार करके मांगलिक किया।

यहाँ अष्टपाहुड़ में दर्शनपाहुड़ का वाँचन चल रहा हैं, उसमे यह पहली गाथा है। दर्शनप्राभृत अर्थात् दर्शन का सार। सर्वज्ञ भगवान द्वारा कथित वीतराग मार्गरूप दर्शन का सार क्या है-यह यहाँ बतलाया जा रहा है। उसमें मंगलाचरण में जिनवर वृषभ, वर्द्धमान को नमस्कार किया है, उसका अर्थ चलता है ।

आचार्यदेव कहते हैं कि मैं दर्शन का मार्ग कहूँगा। 'दर्शनमार्ग वक्ष्यामि।' अर्थात् जैनदर्शन को धारण करने वाले का यथार्थ मार्ग कैसा होता है यह मैं कहूँगा ऐसा कहकर दर्शनमार्ग अर्थात् जैनमार्ग का स्वरूप कहना प्रारम्भ करते हैं। यहाँ दर्शन अर्थात् क्या ? मात्र सम्यग्दर्शन नहीं किन्तु अन्तर में भावलिंगी मुनिदशा और बाह्य में दिगम्बर दशा-ऐसी जो धर्म की मूर्ति देखने में आती है वह 'दर्शन' है। ऐसे दर्शन का मार्ग क्या है ? उसका स्वरूप क्या है अर्थात् जैनमार्ग क्या है ? वह कहते हैं। जिनकी मुद्रा देखते ही वीतरागता दिखे। अंतर के भानपूर्वक जिनकी बाह्य मुद्रा भी वीतराग हो गई है-ऐसी अन्तर-बाह्य मुद्रा के धारक मुनिराज का दर्शन उसे 'दर्शन' कहा है, वह जैनमार्ग है।

जिनकी मुद्रा वीतरागी उपशमरस दर्शाने वाली होती है। जिनके अंदर में रोम-रोम में उपशमरस बरसता है और जो काया से भी दिगम्बर हों- ऐसी जिनकी दशा हो, जिनको अन्तर में तीन कषाय चौकड़ी का अभाव हुआ हो। विकल्प उठें तो अट्ठाईस मूलगुण के ही विकल्प हो, इससे विरूद्ध विकल्प न हो- ऐसा मुनिधर्म का स्वरूप है। आगे चलकर कहेंगे कि हे भाई! ऐसे स्वरूप का पालन हो सके तो पालना; अन्यथा उसकी श्रद्धा तो अवश्य ही रखना, विपरीतमार्ग की श्रद्धा मत करना ।

जैनमार्ग मूलतः एक वीतराग ही है। किन्तु भगवान महावीर के कुछ वर्षो पश्चात् बारह वर्ष का दुष्काल पड़ा।तब सनातन मार्ग से भ्रष्ट होकर दूसरा श्वेताम्बर पंथ निकल गया जो वस्तुतः जैनदर्शन का स्वरूप नहीं है। यहाँ तो स्पष्ट कहते हैं कि अन्तर-बाह्य वीतराग दिगम्बर लिंग हो वही दर्शन का स्वरूप है। मैं ऐसे दर्शनमार्ग के स्वरूप को कहूँगा।

www.vitragvani.com

चतुर्थकाल के प्रारम्भ में प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव हुए और अन्त में भगवान महावीर हुए हैं। इसप्रकार प्रथम जिनवर वृषभ और अन्तिम वर्द्धमान तीर्थंकर को नमस्कार किया है इसमें बीच के तीर्थंकरों को भी नमस्कार आ जाता है।

तथा 'वर्द्धमान' यह विशेषण सभी तीर्थंकरो के लिये लागू होता है। सभी तीर्थंकर जिनवर वृषभ हैं और स्वरूप लक्ष्मी से वर्द्धमान हैं- इसकारण सभी तीर्थंकर भगवंतों को नमस्कार हो जाता है। सभी तीर्थंकर भगवान अन्तरंग और बाह्य लक्ष्मी से वर्द्धमान है-इसकारण सभी तीर्थंकर भगवंतो को नमस्कार हुआ।

इसप्रकार नमस्कार करके मैं क्रम-क्रम से दर्शन मार्ग का स्वरूप कहूँगा-यह प्रतिज्ञा आचार्यदेव करते हैं। यहाँ प्रतिपादित वीतराग मोक्षमार्ग-जैनमार्ग ही वास्तविक दर्शन है। इससे विपरीत मानना वह जैनमार्ग का स्वरूप नहीं है।

जिन तो चतुर्थ गुणस्थानवर्ती सम्यक्त्वी भी है; किन्तु यहाँ तो आचार्यदेव ने जिनवर वृषभ-तीर्थंकरदेव को नमस्कार किया है। वे शास्त्र की उत्पत्ति के मूलकारण हैं। अपने ज्ञान के कारण होने से उन्हें नमस्कार किया है ।

सर्वज्ञ वीतराग भगवान सर्वज्ञदेव परमगुरु है और जो उनकी परम्परा में गणधरादिक हुए वे अपरगुरु है; उन्हें भी जिनवर वृषभ कहा जाता है। ऐसे पर-अपर गुरुओं के प्रवाह से जो मार्ग चला आया है और जो शास्त्र चले आये हैं वे ही यथार्थ हैं। उससे विपरीत प्रतिपादन करने वाला मार्ग यथार्थ नहीं है। भगवान सर्वज्ञदेव और गौतम गणधरादि मुनिवरों की परंपरा का जो प्रवाह चला आ रहा है वही शास्त्र की उत्पत्ति और ज्ञान का कारण है, इसकारण उन्हें शास्त्र के प्रारंभ में नमस्कार करके मांगलिक किया है । 1।

Shree kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

दर्शनपाहुड़ गाथा-2

अब, धर्मका मूल दर्शन है, इसलिये जो दर्शन से रहित हो उसकी वंदना नहीं करना चाहिये - ऐसा कहते है :-

दंसणमूलो धम्मो उवइट्ठो जिणवरेहिं सिस्साणं ।
तं सोऊण सकण्णे दंसणहीणों ण वंदिव्वो ।। 2 ।।

दर्शनमूलो धर्मः उपदिष्टः जिनवरैः शिष्याणाम् ।
तं श्रुत्वा स्वकर्णे दर्शनहीनो न वन्दितव्यः ।। 2 ।।

हिन्दी पद्यानुवादः

सद्धर्म का है मूल दर्शन जिनवरेन्द्रो ने कहा।
हे कानवालो सुनो! दर्शनहीन वंदन योग्य ना।।2।।

अर्थ :- जिनवर जो सर्वज्ञदेव हैं उन्होंने शिष्य जो गणधर आदिकको धर्मका उपदेश दिया है; कैसा उपदेश दिया है ? - कि दर्शन जिसका मूल है । मूल कहाँ होता है कि - जैसे मन्दिर के नींव और वृक्ष के जड़ होती है उसी प्रकार धर्म का मूल दर्शन है । इसलिये आचार्य उपदेश देते हैं कि - हे सकर्ण अर्थात् सत्पुरुषो ! सर्वज्ञ के कहे हुए उस **दर्शनमूलरूप धर्म** को अपने कानों से सुनकर जो दर्शन रहित हैं वे वंदन योग्य नहीं है; इसलिये दर्शनहीन की वंदना मत करो । जिसके दर्शन नहीं है उसके धर्म भी नहीं है, क्योंकि मूल रहित वृक्ष के स्कंध, शाखा, पुष्प फलादिक कहाँ से होंगे ? इसलिये यह उपदेश है कि - जिसके धर्म नहीं है उससे धर्म की प्राप्ति नहीं हो सकती, फिर धर्मके निमित्त उसकी वंदना किसलिये करें ? ऐसा जानना ।

अब, यहाँ धर्म का तथा दर्शनका स्वरूप जानना चाहिये । वह स्वरूप तो संक्षेप में ग्रन्थकार ही आगे कहेंगे, तथापि कुछ अन्य ग्रन्थों के अनुसार यहाँ भी दे रहे हैः- 'धर्म' शब्द का अर्थ यह है कि - जो आत्मा को संसार से उबारकर सुखस्थान में स्थापित करे सो धर्म है । और दर्शन अर्थात् देखना । इस प्रकार धर्म की मूर्ति दिखायी दे वह दर्शन है तथा प्रसिद्धि में जिसमें धर्म का ग्रहण हो ऐसे मत को 'दर्शन' कहा है । लोक में धर्म की तथा दर्शनकी मान्यता सामान्यरूप से तो सबके है, परन्तु

www.vitragvani.com

सर्वज्ञ के बिना यथार्थ स्वरूप का जानना नहीं हो सकता; परन्तु छद्मस्थ प्राणी अपनी बुद्धि से अनेक स्वरूपों की कल्पना करके अन्यथा स्वरूप स्थापित करके उनकी प्रवृति करते हैं । और जिनमत सर्वज्ञकी परम्परा से प्रवर्तमान है इसलिये इसमें यथार्थ स्वरूपका प्ररूपण है ।

वहाँ धर्म को निश्चय और व्यवहार - ऐसे दो प्रकार से साधा है । उसकी प्ररूपणा चार प्रकार से है - प्रथम वस्तुस्वभाव, दूसरे उत्तम क्षमादिक दस प्रकार, तीसरे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप और चौथे जीवों की रक्षारूप ऐसे चार प्रकार हैं । वहाँ निश्चय से सिद्ध किया जाए तब तो सबमें एक ही प्रकार है, इसलिये वस्तुस्वभाव का तात्पर्य तो जीव नामक वस्तु की परमार्थरूप दर्शन-ज्ञान-परिणाममयी चेतना है, और वह चेतना सर्व विकारों से रहित शुद्ध-स्वभावरूप परिणमित हो वही जीवका धर्म है । तथा उत्तमक्षमादिक दसप्रकार कहने का तात्पर्य यह है कि आत्मा क्रोधादि कषायरूप न होकर अपने स्वभाव में स्थिर हो वही धर्म है, यह भी शुद्ध चेतनारूप ही हुआ ।

दर्शन-ज्ञान-चारित्र कहने का तात्पर्य यह है कि तीनों एक ज्ञानचेतना के ही परिणाम हैं, वही ज्ञानस्वभावरूप धर्म है । और जीवों की रक्षा का तात्पर्य यह है कि-जीव क्रोधादि कषायों के वश होकर अपनी या परकी पर्याय के विनाशरूप मरण तथा दुःख संक्लेश परिणाम न करे - ऐसा अपना स्वभाव ही धर्म है । इस प्रकार शुद्ध द्रव्यार्थिकरूप निश्चयनय से साधा हुआ धर्म एक ही प्रकार है ।

व्यवहारनय पर्यायाश्रित है इसलिये भेदरूप है, व्यवहारनय से विचार करें तो जीव के पर्यायरूप परिणाम अनेक प्रकार हैं इसलिये धर्म का भी अनेक प्रकार से वर्णन किया है। वहाँ (1)-प्रयोजनवश एकदेशका सर्वदेशसे कथन किया जाये सो व्यवहार है, (2)-अन्य वस्तु में अन्य का आरोपण अन्य के निमित्त से और प्रयोजनवश किया जाये वह भी व्यवहार है, वहाँ वस्तुस्वभाव कहने का तात्पर्य तो निर्विकार चेतना के शुद्धपरिणाम के साधकरूप (3)-मंदकषायरूप शुभ-परिणाम हैं तथा जो बाह्यक्रियाएँ हैं उन सभी को व्यवहार धर्म कहा जाता है । उसी प्रकार रत्नत्रय का तात्पर्य स्वरूप

www.vitragvani.com

के भेद दर्शन-ज्ञान-चारित्र तथा उनके कारण बाह्य क्रियादिक हैं, उन सभी को व्यवहार धर्म कहा जाता है । उसी प्रकार- (4) जीवोंकी दया कहने का तात्पर्य यह है कि- क्रोधादि मंदकषाय होने से अपने या पर के मरण, दुःख क्लेश आदि न करना; - उसके साधक समस्त बाह्यक्रियादिक को धर्म कहा जाता है । इस प्रकार जिनमत में निश्चय-व्यवहारनय से साधा हुआ धर्म कहा है ।

वहाँ एकस्वरूप अनेकस्वरूप कहने में स्याद्वादसे विरोध नहीं आता, कथञ्चित् विवक्षासे सर्व प्रमाणसिद्ध है । ऐसे धर्म का मूल दर्शन कहा है, इसलिये ऐसे धर्म की श्रद्धा, प्रतीति, रुचिसहित आचरण करना ही दर्शन है, यह धर्म की मूर्ति है, इसी को मत (दर्शन) कहते हैं और यही धर्म का मूल है । तथा ऐसे धर्म की प्रथम श्रद्धा, प्रतीति, रुचि न हो तो धर्म का आचरण भी नहीं होता, - जैसे वृक्ष के मूल बिना स्कंधादिक नहीं होते । इस प्रकार दर्शन को धर्म का मूल कहना युक्त है । ऐसे दर्शन का सिद्धान्तों में जैसा वर्णन है तदनुसार कुछ लिखते हैं ।

वहाँ अंतरंग सम्यग्दर्शन तो जीवका भाव है वह निश्चय द्वारा उपाधिरहित शुद्ध जीवका साक्षात् अनुभव होना ऐसा एक प्रकार है । वह ऐसा अनुभव अनादिकाल से मिथ्यादर्शन नामक कर्मके उदय से अन्यथा हो रहा है । सादि मिथ्यादृष्टि के उस मिथ्यात्व की तीन प्रवृतियाँ सत्ता मे होती है- मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्प्रकृति। तथा उनकी सहकारिणी अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ के भेद से चार कषाय नामक प्रकृतियाँ हैं । इस प्रकार यह सात प्रकृतियाँ ही सम्यग्दर्शन का घात करनेवाली हैः इसलिये इन सातों का उपशम होने से पहले तो इस जीव के उपशमसम्यक्त्व होता है । इन प्रकृतियों का उपशम होने का बाह्य कारण सामान्यतः द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव हैं, उनमें द्रव्यमें तो साक्षात् तीर्थंकरके देखनादि प्रधान हैं, क्षेत्रमें समवसरणादिक प्रधान हैं, कालमें अर्द्धपुद्गलपरावर्तन संसार भ्रमण शेष रहे वह तथा भाव में अधःप्रवृत करण आदिक हैं ।

(सम्यक्त्व के बाह्य कारण) विशेषरूप से तो अनेक हैं । उनमें से कुछ के तो अरिहंत विम्बका देखना, कुछ के जिनेन्द्र के कल्याणक आदि की महिमा देखना, कुछ

www.vitragvani.com

के जातिस्मरण, कुछ के वेदना का अनुभव, कुछ के धर्म श्रवण तथा कुछके देवों की ऋद्धि का देखना- इत्यादि बाह्य कारणों द्वारा मिथ्यात्वकर्म का उपशम होने से उपशमसम्यक्त्व होता है । तथा इन सात प्रकृतियों में से छहका तो उपशम या क्षय हो और एक सम्यक्त्व प्रकृति का उदय हो तब क्षयोपशम सम्यक्त्व होता है। इस प्रकृति के उदय से किंचित् अतिचारमल लगता है। तथा इन सात प्रकृतियों का सत्तामेंसे नाश हो तब क्षायिक सम्यक्त्व होता है।

इस प्रकार उपशमादिक होनेपर जीवके परिणाम भेदसे तीन प्रकार होते हैं; वे परिणाम अति सूक्ष्म हैं, केवलज्ञानगम्य हैं, इसलिये इन प्रकृतियों के द्रव्य पुद्गलपरमाणुओं के स्कंध हैं, वे अतिसूक्ष्म हैं और उनमें फल देनेकी शक्तिरूप अनुभाग है वह अतिसूक्ष्म है वह छद्मस्थ के ज्ञानगम्य नहीं है । तथा उनका उपशमादिक होने से जीवके परिणाम भी सम्यक्त्वरूप होते हैं वे भी अतिसूक्ष्म हैं, वे भी केवलज्ञानगम्य हैं। तथापि जीव के कुछ परिणाम छद्मस्थ के ज्ञान में आने योग्य होतें हैं, वे उसे पहिचानने के बाह्य-चिह्न हैं, उनकी परीक्षा करके निश्चय करने का व्यवहार है; ऐसा न हो तो छद्मस्थ व्यवहारी जीव के सम्यक्त्व का निश्चय नहीं होगा और आस्तिक्यका अभाव सिद्ध होगा, व्यवहार का लोप होगा - यह महान दोष आयेगा । इसलिये बाह्य चिह्नों को आगम, अनुमान तथा स्वानुभव से परीक्षा करके निश्चय करना चाहिये ।

वे चिह्न कौनसे हैं सो लिखते हैं: - मुख्य चिह्न तो उपाधिरहित शुद्ध ज्ञान-चेतनास्वरूप आत्मा की अनुभूति है । यद्यपि यह अनुभूति ज्ञानका विशेष है, तथापि वह सम्यक्त्व होने पर होती है, इसलिये उसे बाह्य चिह्न कहते हैं । ज्ञान तो अपना अपने को स्वसंवेदनरूप है; उसका - रागादि विकारहित शुद्ध ज्ञानमात्र का अपने को आस्वाद होता है कि- "जो ये शुद्ध ज्ञान है सो मैं हूँ और ज्ञान में जो रागादि विकार है वह कर्म के निमित्त से उत्पन्न होते हैं, वह मेरा स्वरूप नहीं है" - इस प्रकार भेदज्ञान से ज्ञानमात्र के आस्वादन को ज्ञान की अनुभूति कहते हैं, वही आत्मा की अनुभूति है, तथा वही शुद्धनय का विषय है । ऐसी अनुभूति से शुद्धनय के द्वारा ऐसा भी श्रद्धान होता है कि सर्व कर्मजनित रागादिक भाव से रहित अनंत चतुष्टय मेरा स्वरूप है,

www.vitragvani.com

अन्य सब भाव संयोगजनित है : ऐसी आत्मा की अनुभूति सो सम्यक्त्व का मुख्य चिह्न है । यह मिथ्यात्व अनन्तानुबन्धी के अभाव से सम्यक्त्व होता है उसका चिह्न है; उस चिह्न को ही सम्यक्त्व कहना सो व्यवहार है ।

उसकी परीक्षा सर्वज्ञ के आगम, अनुमान तथा स्वानुभाव प्रत्यक्ष प्रमाण इन प्रमाणों से की जाती है । इसी को निश्चय तत्त्वार्थश्रद्धान भी कहते हैं । वहाँ अपनी परीक्षा तो अपने स्वसंवेदन की प्रधानता से होती है और परकी परीक्षा तो परके अंतरंग में होने की परीक्षा परके वचन, कायकी क्रियाकी परीक्षा से होती है यह व्यवहार है, परमार्थ सर्वज्ञ जानते हैं। व्यवहारी जीवको सर्वज्ञने भी व्यवहार के ही शरण का उपदेश दिया है ।

[नोंध - अनुभूति ज्ञान गुण की पर्याय है वह श्रद्धा गुण से भिन्न है इसलिये ज्ञान के द्वारा श्रद्धान का निर्णय करना व्यवहार है उसका नाम व्यवहारी जीव को व्यवहार का ही शरण अर्थात् आलम्बन समझना]

अनेक लोग कहते हैं कि - सम्यक्त्व तो केवलीगम्य है, इसलिये अपने को सम्यक्त्व होने का निश्चय नहीं होता, इसलिये अपने को सम्यग्दृष्टि नहीं मान सकते ? परन्तु इस प्रकार सर्वथा एकान्त से कहना तो मिथ्यादृष्टि है; सर्वथा ऐसा कहने से व्यवहार का लोप होगा, सर्व मुनि-श्रावकों की प्रवृत्ति मिथ्यात्वरूप सिद्ध होगी, और सब अपने को मिथ्यादृष्टि मानेंगे तो व्यवहार कहाँ रहेगा ? इसलिये परीक्षा होने पश्चात् ऐसा श्रद्धान नहीं रखना चाहिये कि मैं मिथ्यादृष्टि ही हूँ । मिथ्यादृष्टि तो अन्यमती को कहते हैं और उसी के समान स्वयं भी होगा इसलिये सर्वथा एकान्तपक्ष ग्रहण नहीं करना चाहिये। तथा तत्त्वार्थश्रद्धान तो बाह्य चिह्न है । जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष ऐसे सात तत्त्वार्थ हैं; उनमें पुण्य और पापको जोड़ देने से नव पदार्थ होते हैं । उनकी श्रद्धा अर्थात् सन्मुखता, रुचि अर्थात् तद्रुप भाव करना तथा प्रतीति अर्थात् जैसे सर्वज्ञने कहे हैं तदनुसार ही अङ्गीकार करना और उनके आचरणरूप क्रिया,-इस प्रकार श्रद्धानादिक होना सो सम्यक्त्व का बाह्य चिह्न है।

तथा प्रशम, संवेग, अनुकम्पा, आस्तिक्य भी सम्यक्त्व के बाह्य चिह्न हैं। वहाँ

www.vitragvani.com

(1) **प्रशमः** - अनंतानुबन्धी क्रोधादिक कषाय के उदय का अभाव सो प्रशम है। उसके बाह्य चिह्न जैसे कि-सर्वथा एकान्त तत्त्वार्थका कथन करनेवाले अन्य मतों का श्रद्धान, बाह्यवेश में सत्यार्थपने का अभिमान करना, पर्यायों में एकान्त के कारण आत्मबुद्धि से अभिमान तथा प्रीति करना वह अनंतानुबन्धी का कार्य है - वह जिसके न हो, तथा किसीने अपना बुरा किया तो उसका घात करना आदि मिथ्यादृष्टि की भाँति विकारबुद्धि अपने को उत्पन्न न हो, तथा वह ऐसा विचार करे कि मैंने अपने परिणामोंसे जो कर्म बाँधे थे वे ही बुरा करनेवाले हैं, अन्य तो निमित्तमात्र हैं,- ऐसी बुद्धि अपने को उत्पन्न हो - ऐसे मंदकषाय है । तथा अनंतानुबन्धीके बिना अन्य चारित्रमोह की प्रकृतियों के उदयसे आरम्भादिक क्रिया में हिंसादिक होते हैं उनको भी भला नहीं जानता इसलिये उससे प्रशमका अभाव नहीं कहते । (2) **संवेग** :-धर्म में और धर्म के फल में परम उत्साह हो वह संवेग है । तथा साधर्मियों से अनुराग और परमेष्ठियों में प्रीति वह भी संवेग ही है । इस धर्म मे तथा धर्म के फल में अनुराग को अभिलाष नहीं कहना चाहिये, क्योंकि अभिलाष तो उसके कहते हैं जिसे इन्द्रियविषयों की चाह हो । अपने स्वरूप की प्राप्ति में अनुराग को अभिलाष नहीं कहते । तथा (3) **निर्वेद** :- इस संवेग ही में निर्वेद भी हुआ समझना, क्योंकि अपने स्वरूपरूप धर्म की प्राप्ति में अनुराग हुआ तब अन्यत्र सभी अभिलाष का त्याग हुआ, सर्व परद्रव्यों से वैराग्य हुआ, वही निर्वेद है । तथा (4)**अनुकम्पाः** -सर्वप्राणियों में उपकार की बुद्धि और मैत्रीभाव सो अनुकम्पा है । तथा मध्यस्थभाव होने से सम्यग्दृष्टि के शल्य नहीं है, किसी से बैरभाव नहीं होता, सुख-दुख, जीवन-मरण अपना परके द्वारा और पर का अपने द्वारा नहीं मानता है । तथा पर में जो अनुकम्पा है सो अपने में ही है, इसलिये पर का बुरा करनेका विचार करेगा तो अपने कषायभाव से स्वयं अपना ही बुरा हुआ; परका बुरा नहीं सोचेगा तब अपने कषायभाव नहीं होंगे इसलिये अपनी अनुकम्पा ही हुई । (5) **आस्तिक्य** :- जीवादि पदार्थों में अस्तित्वभाव सो आस्तिक्यभाव है । जीवादि पदार्थो का स्वरूप सर्वज्ञ के आगम से जानकर उनमे ऐसी बुद्धि हो कि-जैसे सर्वज्ञने कहे वैसे ही यह हैं - अन्यथा नहीं हैं वह आस्तिक्यभाव है । इस प्रकार यह सम्यक्त्व के बाह्य चिह्न है ।

www.vitragvani.com

सम्यक्त्व के आठ गुण हैं:- संवेग, निर्वेद, गर्हा, उपशम, भक्ति, वात्सल्य और अनुकम्पा । यह सब प्रशमादि चार में ही आ जाते हैं । संवेग में निर्वेद, वात्सल्य और भक्ति ये आ गये तथा प्रशममें निन्दा, गर्हा आ गई ।

सम्यग्दर्शन के आठ अङ्ग कहे हैं । उन्हे लक्षण भी कहते हैं और गुण भी । उनके नाम हैं - निःशंकित, निःकांक्षित, निर्विचिकित्सा, अमूढ़दृष्टि, उपगूहन, स्थितिकरण, वात्सल्य और प्रभावना ।

वहाँ शङ्का नाम संशयका भी है और भयका भी । वहाँ धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, कालाणुद्रव्य, परमाणु इत्यादि तो सूक्ष्मवस्तु हैं, तथा द्वीप समुद्र, मेरूपर्वत आदि दूरवर्ती पदार्थ हैं, तथा तीर्थंकर, चक्रवर्ती आदि अंतरित पदार्थ हैं; वे सर्वज्ञ के आगम में जैसे कहे हैं वैसे हैं या नहीं हैं ? अथवा सर्वज्ञदेवने वस्तु का स्वरूप अनेकान्तात्मक कहा है सो सत्य है या असत्य ? - ऐसे सन्देहको शङ्का कहते हैं । जिसके यह न हो उसे निःशंकित अङ्ग कहते हैं । तथा यह जो शङ्का होती है सो मिथ्यात्वकर्म के उदय से [उदयमें युक्त हाने से] होती है; परमें आत्मबुद्धि होना उसका कार्य है । जो परमें आत्मबुद्धि है सो पर्यायबुद्धि है और पर्यायबुद्धि भय भी उत्पन्न करती है । शंका भय को भी कहते हैं, उसके सात भेद हैं; - इस लोक का भय, परलोक का भय, मृत्यु का भय, अरक्षा का भय, अगुप्ति का भय, वेदना का भय, अकस्मात् का भय । जिसके यह भय हों उसे मिथ्यात्वकर्म का उदय समझना चाहिये; सम्यग्दृष्टि होने पर यह नहीं होते ।

प्रश्न- भयप्रकृतिका उदय तो आठवें गुणस्थान तक है; उसके निमित्त से सम्यग्दृष्टि को भय होता ही है, फिर भय का अभाव कैसा ? **समाधान**- कि यद्यपि सम्यग्दृष्टि के चारित्रमोह के भेदरूप भयप्रकृति के उदय से भय होता है तथापि उसे निर्भय ही कहते है, क्योंकि उसके कर्म के उदयका स्वामित्व नहीं है और परद्रव्य के कारण अपने द्रव्यस्वभाव का नाश नहीं मानता। पर्याय का स्वभाव विनाशीक मानता है इसलिये भय होने पर भी उसे निर्भय ही कहते हैं। भय होने पर उसका उपचार भागना इत्यादि करता है; वहाँ वर्तमान पीड़ा सहन न होने से वह इलाज (-उपचार)

www.vitragvani.com

करता है वह निर्बलता का दोष है । इस प्रकार सम्यग्दृष्टि सन्देह तथा भयरहित होने से उसके निःशङ्कित अङ्ग होता है ।। 1 ।।

कांक्षा अर्थात् भोगों की इच्छा-अभिलाषा । वहाँ पूर्वकाल में किये भोगों की वांछा तथा उन भोगों की मुख्य क्रिया में वांछा तथा कर्म और कर्म के फल की वांछा तथा मिथ्यादृष्टियों के भोगों की प्राप्ति देखकर उन्हें अपने मन में भला जानना अथवा जो इन्द्रियों को न रूचें ऐसे विषयों में उद्वेग होना-यह भोगाभिलाष के चिह्न हैं । यह भोगाभिलाष मिथ्यात्वकर्म के उदय से होता है, और जिसके यह न हो वह निःकांक्षित अंङ्ग युक्त सम्यग्दृष्टि होता है। वह सम्यग्दृष्टि यद्यपि शुभक्रिया व्रतादिक आचरण करता है उसका फल शुभकर्मबन्ध है, किन्तु उसकी वह वांछा नहीं करता । व्रतादिक को स्वरूप का साधक जानकर उनका आचरण करता है, कर्मके फल की वांछा नहीं करता। - ऐसा निःकांक्षित अङ्ग है ।। 2 ।।

अपने में अपने गुण की महत्ता की बुद्धि से अपने को श्रेष्ठ मानकर पर में हीनता की बुद्धि हो उसे विचिकित्सा कहते हैं; वह जिसके न हो सो निर्विचिकित्सा अंगयुक्त सम्यग्दृष्टि होता है। उसके चिह्न ऐसे हैं कि- यदि कोई पुरुष पाप के उदय से दुःखी हो, असाताके उदय से ग्यालियुक्त शरीर हो तो उसमें ग्लानिबुद्धि नहीं करता। ऐसी बुद्धि नहीं करता कि- मैं सम्पदावान हूँ, सुन्दरशरीरवान हूँ, यह दीन, रङ्क मेरी बराबरी नहीं कर सकता। उलटा ऐसा विचार करता है कि- प्राणियों के कर्मोदय से अनेक विचित्र अवस्थाएँ होती है; जब मेरे ऐसे कर्मका उदय आवे तब मैं भी ऐसा ही हो जाऊँ।- ऐसे विचार से **निर्विचिकित्सा अङ्ग** होता है ।।3।।

अतत्त्व में तत्त्वपने का श्रद्धान सो मूढदृष्टि है । ऐसी मूढदृष्टि जिसके न हो सो अमूढदृष्टि है । मिथ्यादृष्टियों द्वारा मिथ्या हेतु एवं मिथ्या दृष्टान्त से साधित पदार्थ है वह सम्यग्दृष्टि को प्रीति उत्पन्न नहीं कराते हैं तथा लौकिक रूढि अनेक प्रकार की है, वह निःसार है, निःसार पुरुषों द्वारा ही उसका आचरण होता है, जो अनिष्ट फल देनेवाली है तथा जो निष्फल है; जिसका बुरा फल है तथा उसका कुछ हेतु नहीं है, कुछ अर्थ नहीं है; जो कुछ लोकरूढ़ि चल पड़ती है उसे लोग अपना लेते हैं और

www.vitragvani.com

फिर उसे छोड़ना कठिन हो जाता है - इत्यादि लोकरूढ़ि है ।

अदेव में देवबुद्धि, अधर्म में धर्मबुद्धि, अगुरु में गुरुबुद्धि इत्यादि देवादिक मूढ़ता है, वह कल्याणकारी नहीं है । सदोष देवको देव मानना, तथा उनके निमित्त हिंसादि द्वारा अधर्म को धर्म मानना, तथा मिथ्या आचारवान, शल्यवान, परिग्रहवान सम्यक्त्वव्रतरहित को गुरु मानना इत्यादि मूढदृष्टि के चिह्न हैं । अब, देव-धर्म-गुरु कैसे होते हैं उनका स्वरूप जानना चाहिये, सो कहते :-

रागादिक दोष और ज्ञानावरणादिक कर्म ही आवरण है; यह दोनों जिसके नहीं है वह देव है । उसके केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्तसुख, अनन्तवीर्य-ऐसे अनंतचतुष्टय होते हैं। सामान्यरूप से तो देव एक ही है और विशेषरूप से अरहंत, सिद्ध ऐसे दो भेद हैं; तथा इनके नामभेद के भेद से भेद करें तो हजारों नाम हैं । तथा गुणभेद किए जायें तो अनन्त गुण हैं । परमौदारिक देह में विद्यमान घातियाकर्म रहित अनन्त चतुष्टयसहित धर्मका उपदेश करनेवाले ऐसे तो अरिहंतदेव हैं तथा पुद्गलमयी देहसे रहित लोक के शिखर पर विराजमान सम्यक्त्वादि अष्टगुणमंडित अष्टकर्मरहित ऐसे सिद्ध देव हैं । इनके अनेकों नाम हैं: - अरहंत, जिन, सिद्ध, परमात्मा, महादेव, शंकर, विष्णु, ब्रह्मा, हरि, बुद्ध, सर्वज्ञ, वीतराग परमात्मा इत्यादि अर्थ सहित अनेक नाम हैं; - ऐसा देवका स्वरूप जानना ।

गुरुका भी अर्थ से विचार करें तो अरिहंतदेव ही हैं, क्योंकि मोक्षमार्ग का उपदेश करनेवाले अरिहंत ही हैं, वे ही साक्षात् मोक्षमार्ग का प्रवर्तन कराते हैं; तथा अरिहंत के पश्चात् छद्मस्थ ज्ञान के धारक उन्हींका निर्ग्रन्थ दिगम्बर रूप धारण करने वाले मुनि हैं सो गुरु हैं, क्योंकि अरिहंत की सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की एकदेश शुद्धता उनके पायी जाती है और वही संवर-निर्जरा-मोक्षका कारण हैं, इसलिये अरिहंत की भाँति एक देशरूप से निर्दोष हैं वह मुनि भी गुरु हैं, मोक्षमार्ग का उपदेश करनेवाले हैं ।

ऐसा मुनिपना सामान्यरूप से एक प्रकार का है और विशेषरूप से वही तीन प्रकार का है - आचार्य, उपाध्याय, साधु । इसप्रकार यह पदवीकी विशेषता होनेपर भी उनके मुनिपने की क्रिया समान ही है; बाह्य लिंग भी समान है, पञ्च महाव्रत,

Shree kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

पञ्च समिति, तीन गुप्ति - ऐसे तेरह प्रकार का चारित्र भी समान ही है, तप भी शक्ति अनुसार समान ही है, साम्यभाव भी समान है, मूलगुण उत्तरगुण भी समान हैं, परिषह उपसर्गों का सहना भी समान है, आहारादि की विधि भी समान है, चर्या, स्थान, आसनादि भी समान हैं, मोक्षमार्ग की साधना, सम्यक्त्व, ज्ञान, चारित्र भी समान हैं । ध्याता, ध्यान, ध्येयपना भी समान है, ज्ञता, ज्ञान, ज्ञेयपना भी समान हैं, चार आराधना की आराधना, क्रोधादिक कषायों का जीतना इत्यादि मुनियों की प्रवृत्ति है वह सब समान है ।

विशेष यह है कि - जो आयार्य हैं वे पञ्चाचार अन्य को ग्रहण कराते हैं, तथा अन्य को दोष लगे तो उसके प्रायश्चित्त की विधि बतलाते हैं, धर्मोपदेश, दीक्षा, शिक्षा देते हैं; ऐसे आचार्य गुरु वन्दना करने योग्य हैं ।

जो उपाध्याय हैं वे वादित्व, वाग्मित्व, कवित्व, गमकत्व - इन चार विद्याओं में प्रवीण होते हैं; उसमें शास्त्र का अभ्यास प्रधान कारण है । जो स्वयं शास्त्र पढ़ते हैं और अन्यको पढ़ाते हैं ऐसे उपाध्याय गुरु वन्दन योग्य हैं; उनके अन्य मुनिव्रत, मूलगुण, उत्तरगुण क्रिया आचार्यसमान ही होती है । तथा साधु रत्नत्रयात्मक मोक्षमार्ग की साधना करते हैं सो साधु हैं; उनके दीक्षा, शिक्षा, उपदेशादि देने की प्रधानता नहीं है, वे तो अपने स्वरूप की साधना में ही तत्पर होते हैं; जिनागम में जैसी निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनिकी प्रवृत्ति कही है वैसी सभी प्रवृत्ति उनके होती है - ऐसे साधु वंदना योग्य हैं । अन्यलिंगी-वेषी व्रतादिक से रहित परिग्रहवान, विषयों में आसक्त गुरु नाम धारण करते हैं वे वन्दन योग्य नहीं हैं ।

इस पञ्चमकाल में जिनमत में भी भेषी हुए हैं। वे श्वेताम्बर, यापनीयसंघ गोपुच्छपिच्छसंघ, द्राविड़संघ आदि अनेक हुये हैं; यह सब वन्दन योग्य नहीं हैं। मूलसंघ, नग्नदिगम्बर, अट्ठाईस मूलगुणों के धारक, दयाके और शौचके उपकरण मयूरपिच्छक, कमण्डल धारण करने वाले, यथोक्त विधि से आहार करने वाले गुरु वन्दन योग्य हैं, क्योंकि जब तीर्थंकर देव दीक्षा लेते हैं तब ऐसा ही रूप धारण करते हैं अन्य भेष धारण नहीं करते; इसी को जिनदर्शन कहते हैं।

www.vitragvani.com

धर्म उसे कहते हैं जो जीव को संसार के दुःखरूप नीच पद से मोक्ष के सुख रूप उच्च पदमें धारण करे; -ऐसा धर्म मुनि-श्रावक के भेदसे, दर्शन-ज्ञान-चारित्रात्मक एकदेश सर्वदेशरूप निश्चय-व्यवहार द्वारा दो प्रकार कहा है; उसका मूल सम्यग्दर्शन है; उसके बिना धर्म की उत्पत्ति नहीं होती। इस प्रकार देव-गुरु-धर्म में तथा लोक में यथार्थ दृष्टि हो और मूढ़ता न हो सो अमूढ़दृष्टि अङ्ग है। ।। 4 ।।

अपने आत्मा की शक्ति को बढ़ाना सो उपबृंहण अङ्ग है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को अपने पुरुषार्थ द्वारा बढ़ाना ही उपबृंहण है। इसे उपगूहन भी कहते हैं। उसका ऐसा अर्थ जानना चाहिये कि जिनमार्ग स्वयंसिद्ध है; उसमें बालक के तथा असमर्थ जनके आश्रय से जो न्यूनता हो उसे अपनी बुद्धि गुप्त कर दूर ही करे वह उपगूहन अंग है। ।। 5 ।।

जो धर्म से च्युत होता हो उसे दृढ़ करना सो स्थिरितकरण अङ्ग है। स्वयं कर्मउदय के वश होकर कदाचित् श्रद्धान से तथा क्रिया-आचार से च्युत होता हो तो अपने को पुरुषार्थपूर्वक पुनः श्रद्धान में दृढ़ करे, उसी प्रकार अन्य कोई धर्मात्मा धर्म से च्युत होता हो तो उसे उपदेशादिक द्वारा धर्म में स्थापित करे- वह स्थितिकरण अंग है। ।। 6 ।।

अरिहंत, सिद्ध, उनके विम्ब, चैत्यालय, चतुर्विध संघ और शास्त्र में दासत्व हो जैसे स्वामी का भृत्य दास होता है तदनुसार-वह वात्सल्य अंग है। धर्म के स्थानकों पर उपसर्गादिक आयें उन्हे अपनी शक्ति अनुसा दूर करे, अपनी शक्तिको न छिपाये; यह सब धर्म अति प्रीति हो तब होता है। ।। 7 ।।

धर्मका उद्योत करना सो प्रभावना अंग है। रत्नत्रय द्वारा अपने आत्मा का उद्योत करना तथा दान, तप, पूजा-विधान द्वारा एवं विद्या, अतिशय-चमत्कारादि द्वारा जिनधर्म का उद्योत करना वह प्रभावना अंग है। ।। 8 ।।

-इस प्रकार यह सम्यक्त्व के आठ अंग है; जिसके यह प्रगट हों उसके सम्यक्त्व है ऐसा जानना चाहिये। प्रश्न-यदि यह सम्यक्त्व के चिह्न मिथ्यादृष्टि के भी दिखाई दें तो सम्यक्-मिथ्या का विभाग कैसे होगा? **समाधान**- जैसे सम्यक्त्वीके होते हैं वैसे

www.vitragvani.com

मिथ्यात्वीके तो कदापि नहीं होते, तथापि अपरीक्षक को समान दिखाई दें तो परीक्षा करके भेद जाना जा सकता है। परीक्षा में अपना स्वानुभव प्रधान है। सर्वज्ञ के आगम में जैसा आत्मा का अनुभव होना कहा है वैसा स्वयं को हो तो उसके होने से अपनी वचन कायकी प्रवृत्ति भी तदनुसार होती है, उस प्रवृत्ति के अनुसार अन्य की भी वचन कायकी प्रवृति पहचानी जाती है;- इसप्रकार परीक्षा करने से विभाग होते हैं। तथा यह व्यवहार मार्ग है, इसलिये व्यवहारी छद्मस्थ जीवों के अपने ज्ञान के अनुसार प्रवृत्ति है; यथार्थ सर्वज्ञदेव जानते हैं। व्यवहारी को सर्वज्ञदेवने व्यवहारका ही आश्रय बतलाया है*। यह अन्तरंग सम्यक्त्वभावरूप सम्यक्त्व है वही सम्यग्दर्शन है, बाह्यदर्शन, व्रत, समिति, गुप्तिरूप चारित्र और तपसहित अट्ठाईस मूलगुण सहित नग्न दिगम्बर मुद्रा उसकी मूर्ति है, उसे जिनदर्शन कते हैं। इस प्रकार धर्मका मूल सम्यग्दर्शन जानकर जो सम्यग्दर्शनरहित हैं उनके वंदन-पूजन का निषेध किया है। - ऐसा यह उपदेश भव्य जीवों को अंगीकार करने योग्य है।

* स्वात्मानुभूति ज्ञान गुण की पर्याय है, ज्ञानके द्वारा सम्यक्त्व का निर्णय करना उसका नाम व्यवहारी को व्यवहार का आश्रय समझना, किन्तु भेदरूप व्यवहार के आश्रय से वीतराग अंशरूप धर्म होगा ऐसा अर्थ कहीं पर नहीं समझना।

गाथा-2 पर प्रवचन

अब दूसरी गाथा में यह कहते हैं कि धर्म का मूल क्या है?

धर्म का मूल 'दर्शन' है अतः दर्शनहीन को वंदन नहीं करना-यह इस गाथा में कहते हैं।

भगवान ने गणधर आदि शिष्यों को जिस धर्म का उपदेश किया है उसका मूल 'दर्शन' है; यह सुनकर जो दर्शनहीन जीव हैं वे भव्यजीवों द्वारा वंदन योग्य नहीं है। आगे कहेंगे कि वीतराग दिगम्बर मुनि की जो मुद्रा है उसे ही दर्शन कहते हैं।

जिनके अंतर में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हो तथा अट्ठाईस मूलगुणों सहित नग्न दिगम्बर मुद्रा हो इसे ही जिन 'दर्शन' कहते हैं। ऐसा जो जिनधर्म उसका मूल सम्यग्दर्शन है-ऐसा जानकर जो सम्यग्दर्शन से रहित हैं वे भव्यजीवों द्वारा वंदन-पूजन योग्य नहीं है।

www.vitragvani.com

यहाँ दर्शन कहने से मुनिवरों की अंतर-बाह्य निर्ग्रन्थ मुद्रा का वर्णन लिया है। बाहर का व्यवहार भी निर्ग्रन्थ मुनिदशारूप ही होता है।

निश्चय के साथ व्यवहार की संधि भी योग्य ही होती है। भगवान श्री सीमंधर परमात्मा के समीप जाकर कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने आठ दिन तक दिव्यध्वनि सुनी, उसमें भगवान ने जिस मार्ग का प्रतिपादन किया वही मार्ग कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने यहाँ दर्शाया है।

अहो! मुनिदशा तो अलौकिक है। एक दिन में दो बार आहार ले या वस्त्रादि रखे-ऐसा व्यवहार मुनिदशा में होता ही नहीं। मुनिदशा दिगम्बर ही होती है। तथा मुनिराज दिन में एक ही बार खड़े-खड़े करपात्र में आहार ग्रहण करते हैं।

ज्ञान में क्रमबद्ध का निर्णय किया कि इस भूमिका में, इसकाल में ऐसा ही ज्ञान और ऐसा ही राग होता है-वहाँ तो ज्ञान राग से भिन्न पड़कर स्वसन्मुख झुक जाता है। किस भूमिका में कैसा व्यवहार होता है- कैसे निमित्त होते हैं-यह विवेक ज्ञान में होता है। जैनमत में अनादि से एक ही मुनि मार्ग है अभी भी महाविदेहक्षेत्र में यही मार्ग व्यापकरूप से प्रवर्त रहा है। मुनिवर तो मुक्ति के राजमार्ग में चलने वाले है। मुनिदशा की मुद्रा तो मानो उपशरस में ढल गई है। बाहर की दशा भी निर्ग्रन्थ हो गयी है-ऐसा जैनदर्शन का मार्ग है। ऐसी अन्तर-बाह्य निर्ग्रन्थदशारूप जो दर्शनमार्ग है वही जैनधर्म का मूल है। यह बात कानों से सुनने के पश्चात् इससे विपरीत-दर्शन रहित-ऐसे जीव वंदन योग्य नहीं हैं । जिसके कान है वह तो यह मार्ग सुनकर मिथ्यादृष्टि कुगुरुओं को कभी वंदन नहीं करता । जो कुगुरु-कुदेव का पोषण करते हैं, वंदन करते हैं वस्तुतः उन्होने तो भगवान की बात सुनी ही नहीं। वास्तव में उनके कानों में जैनदर्शन का मार्ग पड़ा ही नहीं।

तीर्थंकर सर्वज्ञ भगवान ने समवसरण में गणधरादिक शिष्यों के लिये धर्म का उपदेश किया है। कैसे धर्म का उपदेश किया है? कि दर्शन जिसका मूल है ऐसे धर्म का। अंतर में तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप भाव और बाह्य में दिगम्बर मुद्रा-ऐसी मुनियों की दशा है वह दर्शन है और धर्म का मूल है।

Shree kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

जैसे नींव के बिना मन्दिर नहीं होता, तथा जैसे मूल के बिना वृक्ष नहीं होता; वैसे ही दर्शन के बिना धर्म नहीं होता। अतः धर्म का मूल दर्शन है। देखो, यह जैनमार्ग !!

दस प्रकार के सम्यग्दर्शन में भी एक 'मार्ग सम्यक्त्व' आता है। अर्थात् जो निर्ग्रन्थ मुनिमार्ग है उसकी प्रतीति रखे। मुनियों को अंतर में तीन कषाय चौकड़ी का अभाव हो गया होता है, आत्मा की आनंददशा वृद्धिगत हुई है और देह सम्बन्धी राग का भी नाश हो गया है। अतः वस्त्रादि परिग्रह की वृत्ति भी नहीं होती-ऐसा मुनिमार्ग है-यही दर्शनमार्ग है।

यहाँ मात्र अकेली बाह्य दिगम्बर दशा की बात नहीं है; किन्तु अन्तर आत्मा की छठवें-सातवें गुणस्थान में झूलती वीतराग दशा पूर्वक सहज दिगम्बर दशा हुई है; उसे ही वीतराग मार्ग में 'दर्शन' कहा जाता है। ऐसा ही मार्ग है, इससे विपरीत हो तो वह मार्ग नहीं है अर्थात् वे मुनियोग्य वंदनीय नहीं है।

वीतराग मार्ग के ऐसे मुनियों को ही सच्चा मानकर वंदन करे और इससे विपरीत मिथ्यादृष्टि को वंदन न करे तो यह कोई क्लेश का कारण नहीं है। जैसे पुत्र अपने पिता को वंदन करता है और गाँव के अन्य पुरूषों को वंदन नहीं करता-इससे वह कहीं अविनयी नहीं हो जाता। वैसे ही धर्मात्मा अपने धर्म पिता ऐसे गुरुओं को ही वंदन करते हैं अन्य कुगुरुओं को वंदन नहीं करते तो यह कोई क्लेश का कारण नहीं है।

यह तो सत्यमार्ग क्या है उसकी बात है। कुमार्ग को मार्ग मानने वाला तो वीतराग मार्ग का शत्रु-मिथ्यादृष्टि है। जो वस्त्र सहित मुनिपना मनवाते हैं वे कुगुरु हैं और जो ऐसे कुगुरुओं का आदर करता है-वंदन करता है वह भी मिथ्यादृष्टि है। उसे जैनमार्ग की श्रद्धा नहीं है।

हे सकर्ण पुरूषों ! सनातन जैनमार्ग में दर्शन का स्वरूप सुनकर दर्शन से जो विपरीत हो वह वंदन योग्य नहीं है। भगवान ने शिष्यों को जो मार्ग बतलाया था वही मार्ग यहाँ कुन्दकुन्दाचार्य ने संक्षिप्त में बतलाया है । जो इस मार्ग से विपरीत मार्ग

www.vitragvani.com

को मुनिदशा मनवाते हैं, कुमार्ग को जैनमार्ग मनवाते हैं वे पुरूष मार्ग से भ्रष्ट होकर कान रहित हो जायेंगे। जिसको अन्तर में तीन कषाय चौकड़ी का अभाव होता है उसकी बाह्य मुद्रा भी नग्न दिगम्बर ही होती है। अहो! मुनिवरों ने तो अन्तर में केवलज्ञान की प्राप्ति का पुरूषार्थ किया है, उन्हें तो ऐसा आनंद उछलता है कि "मैं मुनिदशा में हूँ और अभी केवलज्ञान प्राप्त करूँगा'-ऐसा राग भी नहीं उठता। बारंबार ऐसी निर्विकल्प दशा में झूलते हैं। उनको बाह्य में दिगम्बर दशा सहज हो जाती है-ऐसी मुनिदशा है। ऐसी मुनिदशा ही 'दर्शन का मार्ग' है-यही जैनमार्ग है। जैनधर्म का मूल तो यह 'दर्शन' है; इससे विपरीत मार्ग वह जैनमार्ग नहीं है-इसकारण वह वंदनीय नहीं है।

प्रश्नः- वंदन नहीं करने से दूसरों को बुरा लगे तो?

उत्तरः- ब्रह्मचर्य का पालन करने से वैश्या को बुरा लगे तो इसमे इसका क्या दोष है? शराब का निषेध करने से कलाल (शराब बेचने वाला) को बुरा लगे तो इसमे इसका क्या दोष है? वैसे ही कुमार्ग का निषेध करके सच्चे जैनमार्ग को प्रतिपादित करें वहाँ कुगुरुओं को बुरा लगे तो इसमें इसका (प्रतिपादन करने वाले का) क्या दोष है? सत्यमार्ग तो ऐसा ही है।

जिसे यह भी विवेक नहीं कि सच्चे देव-शास्त्र-गुरु क्या है और उनसे विपरीत क्या है वह तो मूढ़ है। जो आत्मार्थी है वह सच्चे देव-शास्त्र-गुरु को पहिचानकर उनका दासानुदास होकर वर्तता है। उसे उनके प्रति ही भक्ति का आह्लाद आता है और वह स्वप्न में भी कुदेव-कुशास्त्र-कुगुरु का आदर नहीं करता। इसीप्रकार मुनिदशा में अन्तरंग की तीन कषाय चौकड़ी के अभाव की दशा में दिगम्बरपना, अट्ठाईस मूलगुण इत्यादि के ही विकल्प होते हैं किन्तु वस्त्रादि ग्रहण करने के विकल्प होते ही नहीं। जो सर्वज्ञ की आज्ञा से विरूद्ध जाकर वस्त्रादि सहित मुनिपना मानते हैं, मनवाते हैं वे भगवान की आज्ञा के चोर है। जैसे कोई भूपत जैसे डाकू की सहायता करे तो वह भी अपराधी है। वैसे ही जैनदर्शन से विपरीत वस्त्रादि सहित मुनिपना मनवाने वाले कुगुरु भी धर्म के लुटेरे हैं और जो उन्हें गुरु मानकर वंदनादि

www.vitragvani.com

करते हैं वे भी वीतरागमार्ग के अपराधी हैं। वे भी अनंत संसार की जेल का परिग्रहण करते हैं।

देखो! यथार्थ जैनमार्ग क्या है उसकी पहिचान करने की यह बात है। यहाँ वीतरागमार्ग की मुनिदशा कैसी है? उसकी ही जहाँ खबर न हो उसे तो 'दर्शन' की ही खबर नहीं .....चारित्र पद की ही खबर नहीं, सर्वज्ञपद की ही खबर नहीं, उसको धर्म कैसा? यहाँ दर्शन का स्वरूप दिखाते हुए आचार्यदेव क्रम-क्रम से बहुत स्पष्टता करेंगे। अहो! परमेश्वर पद की प्राप्ति का साक्षात् मार्ग! मुनिदशा का मार्ग!! यह तो अपूर्व है। यह तो अनंत तीर्थंकरों का मार्ग है, यह कोई साधारण मार्ग नहीं है। जिसको धर्म के मूल की खबर नहीं उसको धर्म नहीं और जिसके पास धर्म नहीं उसके पास से धर्म की प्राप्ति नहीं होती ।

देखो! इसमें देशनालब्धि की बात भी आ गई । जिसके पास धर्म नहीं उसके पास से धर्म की प्राप्ति नहीं होती। जिसकी श्रद्धा विपरीत है उसके पास से सत्य धर्म का श्रवण नहीं मिलता। धर्मात्मा से ही सत्यधर्म की देशना मिलती है।

देखो! यह वीतराग का यथार्थ मार्ग स्पष्ट किया है।

रण चढ्या रजपूत छिपे नहीं; वैसे ही मोक्षमार्ग पर आरूढ़ मुनि कैसे होते हैं उसकी बात है। इससे विपरीत मानने वाले को धर्म की प्राप्ति नहीं होती और ऐसे धर्म रहित जीव के निमित्त से धर्म की प्राप्ति नहीं होती।

आगे कहेंगे कि जो सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट हैं वे भ्रष्ट हैं। चारित्र से भ्रष्ट होने पर भी जो सम्यग्दर्शन सहित है तो वह भी आराधक है। वह तो अल्पकाल में चारित्र प्रगट करके मुक्ति प्राप्त कर लेगा, किन्तु जिसकी श्रद्धा ही विपरीत है, मति ही विपरीत है, लिंग ही विपरीत है-ऐसा जीव तो दर्शन से भी भ्रष्ट है, वह तो अनंत संसार में भ्रमता है। और जो ऐसे जीव का पोषण-वंदनादि करता है वह भी भ्रष्ट है और अनंत ससार में परिभ्रमता है। अतः ऐसे धर्म रहित जीवों को धर्म के निमित्त से कैसे वंदे? अर्थात ऐसे धर्मरहित जीवों की वंदना योग्य नहीं है।

www.vitragvani.com

यह अष्टपाहुड़ की दूसरी गाथा चलती है। धर्म का मूल 'दर्शन' है-यह बात चलती है। साक्षात् धर्म तो चारित्र है और उसका मूल सम्यग्दर्शन है; उसकी प्रधानता का यह वर्णन है। तदुपरांत यहाँ 'दर्शन' कहते निर्ग्रन्थ भावलिंगी संत को देखना-ऐसा अर्थ भी लिया है।

अब यहाँ धर्म का स्वरूप क्या है? और दर्शन का स्वरूप क्या है? वह जानना चाहिये; अतः यहाँ उसका शास्त्रानुसार कुछ वर्णन लिखते हैं।

धर्म अर्थात् क्या? कि आत्मा का संसार दुःख से उद्धार करके सुख अवस्था में स्थापित करे वह धर्म है। संसार से उद्धार करके सुख में धारण करे वह धर्म है। इसके अतिरिक्त देहादिक की क्रिया, पुण्य-पाप अथवा बाहर के संयोग में धर्म नहीं है। धर्म तो आत्मा का वह भाव है कि जिस भाव से आत्मा संसार से पार हो और मोक्षसुख प्राप्त करे- ऐसे धर्म का मूल सम्यग्दर्शन है। 'दंसण मूलो धम्मो' अर्थात सम्यग्दर्शन धर्म का मूल है। किन्तु यहाँ 'दर्शन' अर्थात् देखना कहा है; किसे देखना? धर्म की मूर्ति ऐसे भावलिंगी संत-मुनि उनको देखना वह दर्शन है। मैं सर्वज्ञ भगवान के समान सम्पन्न आत्मा हूँ-ऐसे भान पूर्वक उसी में लीनता होने पर मुनिदशा का चारित्र प्रगट हुआ; वहाँ बाह्य दशा भी वस्त्र रहित दिगम्बर हो जाती है और विकल्प भी अट्ठाईस मूलगुणों का होता है- ऐसे मुनि धर्म की मूर्ति हैं और उनका दर्शन देखना वह दर्शन है ।

प्रसिद्धपने जिसमें-जिसमत में- जिस मार्ग में- जिस अभिप्राय में - धर्म का ग्रहण होता है उसे 'दर्शन' कहते हैं। वीतराग जैनमार्ग -जैनमत में ही यथार्थ धर्म का ग्रहण होता है अतः जैनमत-जैनदर्शन ही यथार्थ धर्म हे कि जिससे संसार का अभाव होकर मुक्ति होती है। अतः ऐसे जैनदर्शन के अतिरिक्त अन्य दर्शन यथार्थ नहीं है।

आत्मा चिदानन्द स्वभावी है, उसमें एकाग्र होकर पुण्य-पाप का अभाव करके मुक्ति प्राप्त करने का नाम धर्म है। वह धर्म जहाँ प्रसिद्धपने दिखलाई दे वही यथार्थ दर्शन है।

ऐसा धर्म प्रसिद्धपने कहाँ दिखता है? कि वीतराग दिगम्बर जैनदर्शन में ही यथार्थ धर्म है, इसके अतिरिक्त जगत में अन्य कहीं यथार्थ धर्म का 'दर्शन' नहीं है।

Shree kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

देखो! कितने ही जीवों को यह बात सुनते ही कंपकंपी छूटती है, वे सत्य बात सुनते ही धूज उठते हैं। जैसे नेमिनाथ भगवान की शंख ध्वनि से पृथ्वी के कंपकंपी हो गयी, वैसे ही अभी यह सत्य बात बेधड़कपने प्रसिद्धि में आने से कितने ही लोग धूज उठते है। किन्तु भाई! सत्य तो धैर्यपूर्वक समझने योग्य है।

वीतराग दिगम्बर जैनमत में जो यथार्थ धर्म है उसका स्वरूप क्या? कि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप धर्म को धारण करने वाले दिगम्बर मुनि वे धर्म की मूर्ति हैं। जिनको तीन कषाय के अभाव से अन्तर में ऐसी लीनता हुई है कि उपशमरस का प्रवाह (परिणति में) छलकता है- ऐसी मुनिदशा है। ऐसी मुनिदशा वाले को द्रव्यदेव पुरूष का ही होता है। स्त्री का शरीर हो और ऐसी मुनि दशा हो जाय-ऐसा नहीं बनता तथा शरीर की वस्त्र सहित दशा हो और अंदर मुनिपना हो जाय-ऐसा भी नहीं बनता। तथापि मात्र शरीर की दिगम्बर दशा वह कोई मुनिपना नहीं; किन्तु अन्दर में ज्ञानानंद स्वभाव के भानपूर्वक- उसमें लीनतापूर्वक मुनिदशा होती है। वहाँ अट्ठाईस मूलगुण होते हैं वह मुनिदशा का व्यवहार है। वहाँ बाहर में भी दिगम्बर दशा ही होती है- ऐसी जो मुनिदशा है वह धर्म की मूर्ति है। वही वंदनीय है।

जिसमें ऐसी धर्म की मूर्ति प्रसिद्ध है वह 'दर्शन' है। अर्थात् वीतरागी दिगम्बर जैनमत ही 'दर्शन' है। अभी महाविदेहक्षेत्र में ऐसा एक ही जैनदर्शन प्रवर्त्त रहा है। वहाँ बाह्य में श्वेताम्बरादि भेद नहीं है। वहाँ बाह्य में प्रगटपने जैनदर्शन के अतिरिक्त अन्य दर्शन नहीं होते। ऐसे दिगम्बर जैनमत के अतिरिक्त अन्य सभी मत पाखण्ड है। जो जीव वस्त्र का एक धागा भी रखकर मुनिपना मानते हैं अथवा मनवाते हैं वे मिथ्यादृष्टि हैं और उस मिथ्यात्व का फल निगोद है। वस्त्र सहित सम्यग्दर्शन होता है, पंचम गुणस्थान होता; किन्तु मुनिपना तीनकाल में भी नहीं होता। देखो! यह कथन आज का नया नहीं है; किन्तु दो हजार वर्ष पूर्व का कुन्दकुन्दाचार्यदेव का यह कथन है। वे पंचपरमेष्ठी पद में शामिल थे और महाविदेहक्षेत्र में साक्षात् सीमंधर परमात्मा के पास गये थे; उनकी यह वाणी है। अनादि से तीर्थंकर यही मार्ग प्रतिपादित करते आये हैं।

www.vitragvani.com

1. वस्त्र सहित मुनिपना मनवावे,

2. राग से धर्म मनवावे, और

3. स्त्री को मुनिदशा मनवावे-ये सब लौकिकमत हैं अर्थात् भगवान के लोकोत्तर मार्ग से विपरीत मत हैं ।

"धरम-धरम" तो जगत में सभी लोग करते हैं। अपनी-अपनी कल्पनानुसार तो धर्म को सभी मानते हैं; किन्तु भगवान सर्वज्ञदेव और उनकी परंपरा के अतिरिक्त धर्म का यथार्थ ज्ञान दूसरों को नहीं होता। अभी तो सर्वज्ञ के नाम से भी कल्पित शास्त्रों की रचना करके विपरीत मत चल रहे हैं। किन्तु शास्त्र का एक अक्षर भी उत्थाये वह अनंत संसारी होता है। अहो! भगवान सर्वज्ञदेव की जो परम्परा है वही एक यथार्थ मार्ग है। श्वेताम्बरादि में जो शास्त्र है वह भगवान की वाणी तो है ही नहीं, मुनियों की अथवा समकिती की वाणी भी नहीं है, किन्तु कल्पित रचना है। उसमें धर्म का यथार्थ स्वरूप नहीं है।

त्रिलोकनाथ तीर्थंकर भगवान महावीर पहले तो देवनंदा ब्राह्मणी के गर्भ में आये और फिर वहाँ से बदलकर त्रिशला माता के गर्भ में अवतरित हुए-इसप्रकार श्वेताम्बरमत भगवान के दो माता और दो पिता होना कहता है- यह महा विपरीत है; यह तो तीर्थंकर का अवर्णवाद है अर्थात् दर्शनमोह के आस्रव का कारण है। अरे! भगवान के सम्बन्ध में ऐसी बात सुनने योग्य भी नहीं है। सर्वज्ञ भगवान की परम्परा से जो मार्ग चलता है वस्तुतः उसमे ही धर्म की यथार्थ प्ररूपणा है।

अज्ञानी जीव अपनी बुद्धि द्वारा अनेक प्रकार की कल्पनाओं से जड़ की क्रिया में अथवा रागादि में धर्म मानकर, धर्म की विपरीत प्ररूपणा करते हैं। जिनमत और उसमें भी यथार्थ दिगम्बर मत, वही सर्वज्ञ की परंपरा से चलता है और इसकारण उसमें ही धर्म के स्वरूप का यथार्थ निरूपण है।

सर्वज्ञ की परंपरा से चलते धर्म में निश्चय और व्यवहार-ऐसे दो प्रकार का धर्म कहा है; और उसकी प्ररूपणा चार प्रकार से की गई है। मूलधर्म तो एक ही प्रकार का है, किन्तु उसकी प्ररूपणा चार प्रकार से है, जो इसप्रकार है :-

Shree kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

1. वस्तु स्वभाव धर्म;
2. उत्तम क्षमादिक दस प्रकार का धर्म;
3. सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप धर्म और
4. जीवदयारूप धर्म ।

देखो! यह चार प्रकार की शैली से धर्म की प्ररूपणा है; किन्तु इन चारों में निश्चय से धर्म तो एक ही प्रकार का है। 'यहाँ जीवदया' की व्याख्या भी कोई अलग ही प्रकार की आयेगी। परजीवों को बचाने का भाव तो राग है; वह वास्तव में धर्म नहीं है। जैसे ईश्वर को जगत का कर्त्ता मानने वाले मिथ्यादृष्टि हैं वैसे ही इस जीव को परजीव का कर्त्ता मानने वाले भी मिथ्यादृष्टि हैं। इसका विशेष स्पष्टीकरण आगे आयेगा।

अब ये जो धर्म के चार प्रकार कहे उनमें भी निश्चय से साधें तो धर्म का एक ही प्रकार है- उसका विवेचन करते है।

जीव नामक वस्तु है, और ज्ञान-दर्शन-परिणमनमय चेतना उसका परमार्थ स्वभाव है; ऐसी चेतना सर्व विकार से छूटकर शुद्धस्वभावरूप परिणमे वह उसका स्वभाव है और उसका नाम धर्म है।

राग-द्वेषरूप भाव होते हैं वे वस्तुतः चेतना का स्वभाव नहीं है। हर्ष-शोक के भाव भी चेतना का स्वभाव नहीं हैं; किन्तु अंतर के ज्ञानानन्द स्वभाव में एकाग्र होकर जो ज्ञान-दर्शन को निर्मल क्रिया होती है वह चेतना का स्वभाव है, और वही वस्तु स्वभाव होने से धर्म है। राग-द्वेषरूप कर्मचेतना और हर्ष-शोकरूप कर्मफलचेतना भी धर्म नहीं है; किन्तु रागादि रहित जो ज्ञान-दर्शन की क्रिया होती है वही (ज्ञान चेतना ही) धर्म है ।

मूढ़ लोग कहते हैं कि यह नया धर्म निकला! किन्तु भाई!! यह तो अनादि का धर्म है। अनादि से तीर्थंकर कहते आये हैं और उसे जीव साधते आये हैं। किन्तु तूने सत्य कभी सुना नहीं अतः नया लगता है। स्वयं ने पूर्व में ऐसा धर्म समझा नहीं था और अब समझा- तो स्वयं के लिये नया कहा जाता है; किन्तु जगत में तो अनादि

www.vitragvani.com

से यही मार्ग चल रहा है। जितने भी जीव मुक्ति प्राप्त हुए वे इसी मार्ग से प्राप्त हुए हैं। इसके अतिरिक्त मुक्ति का अन्य कोई मार्ग जगत में है ही नहीं ।

आत्मा की चेतना पुण्य-पाप रहित होकर, शुद्ध ज्ञाता-दृष्टा स्वभावरूप परिणमे यह जीव का धर्म है । ज्ञानदर्शन-यह जीव वस्तु का त्रिकाली स्वभाव है; परन्तु उस ज्ञान-दर्शन चेतना का राग में एकाग्र होकर विकाररूप परिणमना अधर्म है और उस ज्ञानदर्शन चेतना का स्वभाव में एकाग्र होकर शुद्धरूप से परिणमना धर्म है।- देखो! यह जैनदर्शन!

जगत में प्रत्येक आत्मा स्वतंत्र परमेश्वर शक्ति से भरा हुआ है। ज्ञान-दर्शन स्वभाव में एकाग्र होकर पुण्य-पाप का परिहार करे-ऐसा धर्म का स्वरूप है। यही जैनदर्शन है। इससे विपरीत धर्म का स्वरूप दर्शाने वाले सभी मत विपरीत हैं।

आत्मा अपने ज्ञान-दर्शन चेतना परिणाम के सिवाय जगत के पदार्थो में कुछ करे-यह बात हराम है। आत्मा एक तिनके के दो टुकड़े भी नहीं कर सकता। उसमे एक समय में तीनकाल-तीनलोक को जानने की सामर्थ्य है; किन्तु तिनके को दो टुकड़े कर सके-ऐसी आत्मा की सामर्थ्य नहीं; यह तो जड़ की- अजीव की स्वतंत्र क्रिया है, वह तो जड़ का स्वभाव है परिणमन है।

साधक धर्मात्मा को देव-गुरु-धर्म के प्रति भक्ति-बहुमान का भाव आता है, उस भूमिका में वैसा भाव आये बिना रहता नहीं। सर्वज्ञ भगवान की प्रतिमा के प्रति भी पूजा का, भक्ति का भाव आता है; उसे न माने तो स्वच्छन्दी है; किन्तु वह राग है, वह शुभराग भी धर्म नहीं। धर्म तो आत्मा की चेतना शुद्ध वीतराग परिणामपने परिणमे वही है ।

देखो! यहाँ मानस्थम्भ तैयार हो रहा था तब बेंगन (गाड़ी, जिससे पत्थर आना था) को आने में विलम्ब हुआ। बेंगन शीध्र आवे-ऐसा भाव तो सबको था, किन्तु वह बेंगन की क्रिया कोई आत्मा के हाथ की बात नहीं। बेंगन तो दूसरे रास्ते पर लग गया और अपने काल में अपने कारण से आया। तथापि धर्मी को शुभभाव आता है। देव-गुरु शास्त्र की भक्ति-प्रभावना का भाव आये बिना रहता नहीं। उस शुभभाव के काल में ही धर्मात्मा को अन्तर स्वभाव में एकाग्रता होकर ज्ञान-दर्शन चेतना जितनी

www.vitragvani.com

निर्मलरूप परिणमती है उतना धर्म है। इसप्रकार जो आत्मा का चेतना स्वभाव है उसका रागरहित निर्मल स्वभावरूप परिणमना वह धर्म है। इसप्रकार वस्तु स्वभाव धर्म-इसकी व्याख्या की । ऐसे धर्म की प्राप्ति एकमात्र दिगम्बर जैनदर्शन में ही है।

अब धर्म का दूसरा प्रकार बतलाते हैं। यहाँ चारों ही प्रकारों में परमार्थ धर्म तो एक ही प्रकार का है यह बताना है ।

उत्तम क्षमादि धर्म अर्थात् आत्मा अपने चेतना स्वभाव में स्थिर होने पर क्रोधादि कषाय भावोंरूप नहीं परिणता वह उत्तम क्षमादिक धर्म है। इसमे भी शुद्ध चेतनारूप धर्म ही आया। शुद्ध चेतनारूप परिणमन हुआ उस धर्म में उत्तम क्षमादि धर्म भी आ जाते हैं।

इन चार प्रकार के धर्मों में प्ररूपणा की शैली का भेद है, बाकी परमार्थ धर्म कोई चार प्रकार का भिन्न-भिन्न नहीं है। वह शुद्ध आत्मद्रव्य के आश्रय से एक ही प्रकार का है।

आत्मा क्रोधादि कषायभावरूप न परिणमे और अपने चेतना स्वभाव में स्थिर होकर वीतरागी क्षमादि भावरूप रहे- उसका नाम धर्म है। इसमें भी शुद्धचेतनारूप धर्म ही आया है ।

वस्तुस्वभावरूप धर्म कहो अथवा उत्तमक्षमादिकरूप धर्म कहो-इन दोनो में शुद्धचेतनारूप धर्म एक ही प्रकार का है।

आत्मा का ज्ञानानंद स्वभाव है और रागादि भाव उससे विरूद्ध हैं। उन रागादि से लाभ मानने वाले को आत्मा के प्रति अनंत क्रोध है, वह अनंतानुबंधी क्रोध है और आत्मा के ज्ञानानन्द स्वभाव का आश्रय करके क्रोधादि का नाश करना वह वीतरागी क्षमा है और वह धर्म है ।

✦ आत्मा के ज्ञानानन्द स्वभाव का अनादर करके राग का आदर करना-उससे लाभ मानना-यह अनंतानुबंधी क्रोध है।

✦ आत्मा के स्वभाव के अतिरिक्त पुण्य-पाप की वृत्ति को बड़ा मानना-उससे लाभ मानना-यह अनंतानुबंधी मान है।

www.vitragvani.com

✦ आत्मा के सरल चैतन्य स्वभाव में वक्रता करके उसे रागरूप मानना-राग से लाभ मानना-यह अनंतानुबंधी माया है।

✦ आत्मा का ज्ञानानन्द स्वभाव पुण्य-पाप के परिग्रह रहित है उसके बदले उसे पुण्य-पाप के परिग्रह वाला मानना उससें लाभ मानना-यह अनंतानुबंधी लोभ है।

आत्मा के ज्ञानानन्द स्वभाव को पहिचानकर उसमे एकाग्र होने पर क्रोधादि का नाश हो जाता है और वीतरागी क्षमादि प्रगट होते हैं; इसमें भी शुद्धचेतनापना ही आया। अब सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप धर्म कहते हैं ये तीनों भी एक ज्ञानचेतना के परिणाम में ही समाहित है।

✦ आत्मा के चेतनास्वभाव की निर्विकल्प प्रतीति सम्यग्दर्शन है ।

✦ आत्मा के स्वभाव का स्वसंवेदन ज्ञान सम्यग्ज्ञान है।

✦ आत्मा के चेतना स्वभाव में रागरहित स्थिरता सम्यक्चारित्र है ।

इसप्रकार सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप धर्म में भी शुद्धचेतना परिणाम ही आया है।

शुद्ध चेतना वस्तु स्वभाव धर्म-ऐसा कहो, अथवा उत्तम क्षमादिरूप दशलक्षण धर्म कहो, अथवा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप धर्म कहो- निश्चय से इन तीनो ही कथनों में धर्म एक ही प्रकार का है ।

अब जीवदयारूप धर्म कहने पर उसमें भी शुद्धचेतना परिणामस्वरूप धर्म ही आता है यह बात बतलाते हैं।

जीव की रक्षा कहने से क्रोधादि कषाय के वश से अपनी तथा परजीव की पर्याय के विनाशरूप मरण तथा दुःख के संक्लेशरूप परिणाम न होना-ऐसा जो अपना स्वभाव है वह धर्म है। वस्तुतः तो अपने जीव के शुद्धचेतना स्वभाव को क्रोधादि कषायों द्वारा न हनना- ही वास्तविक जीवदया है; और जहाँ ऐसी जीवदया होती है वहाँ परजीव को मारने का भाव भी होता ही नही। लोक मे जीवदया के नाम से बहुत विपरीत मान्यता चलती है; किन्तु जैनमार्ग में जीवदया का स्वरूप क्या है? वह यहाँ बतलाया है ।

इसप्रकार धर्म के चारों प्रकार कहे। इन चारों ही प्रकार की प्ररूपणा में शुद्ध द्रव्यार्थिकरूप निश्चय से साधा हुआ धर्म एक ही प्रकार का है। धर्म कोई भिन्न-भिन्न

www.vitragvani.com

चार प्रकार का नहीं, किन्तु उसकी प्ररूपणा चार प्रकार से है।

इसतरह चारों प्रकारों में शुद्धचेतनारूप एक ही प्रकार का परमार्थ धर्म है और ऐसे धर्म की प्राप्ति वीतरागी जैनदर्शन में ही है।

जैनमार्ग में ही धर्म का यथार्थ प्ररूपण है । उस धर्म का स्वरूप क्या है ? उसकी यह बात चलती है । चार प्रकार से धर्म का कथन किया उन चारों प्रकारों में निश्चय धर्म एक ही प्रकार का है।

1. वस्तु स्वभाव धर्मः- यहाँ वस्तु अर्थात् आत्मा, चेतना उसका स्वभाव है वह चेतना राग-द्वेष रहित शुद्ध परिणामपने परिणमे-वह धर्म है।

2. उत्तमक्षमादिक दशधर्मः- आत्मा में क्रोधादिक विकार हो वह अधर्म है और शुद्धचेतना भावरूप होने से क्रोधादिकरूप न होना वह उत्तम क्षमादिक धर्म है।

3. सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप धर्मः- ये भी चेतना के ही शुद्ध परिणाम हैं; इसकारण ये भी वस्तु स्वभावरूप धर्म हैं ।

4. जीवदयारूप धर्मः- संक्लेश परिणाम, शुभाशुभ परिणाम न होना और वीतरागभाव होना- यह आत्मा की दया है। क्रोधादिक परिणामों द्वारा जीव की-निज आत्मा की- हिंसा होती है और संक्लेश परिणाम न होने से स्वभावरूप रहना-वह जीव की दया है और वहाँ परजीवों को मारने का भाव नहीं होता वह धर्म है। किन्तु वस्तुतः परजीव की दया का शुभभाव भी धर्म नहीं है। चेतना का उस राग से रहित परिणमना वह धर्म है।

इसप्रकार चार प्रकार से कथन किया उसमें शुद्ध द्रव्यार्थिकरूप निश्चयनय से साधा हुआ धर्म एक ही प्रकार का है।

शुद्धद्रव्य में एकाग्रतारूप निश्चयनय है उस शुद्ध चेतनद्रव्य में एकाग्रतारूप निश्चय धर्म में उपरोक्त चारों प्रकार समाहित हो जाते हैं।

आत्मा का जो शुद्धस्वभाव है उसकी दृष्टिरूप शुद्धद्रव्यार्थिकनय है। उस शुद्धद्रव्यार्थिकरूप निश्चयनय से धर्म का स्वरूप एक ही प्रकार का है।

इसप्रकार निश्चयनय से धर्म की बात की, अब व्यवहार की बात करते हैं।

www.vitragvani.com

व्यवहारनय है वह पर्यायाश्रित है इसकारण भेदरूप है। शुद्धद्रव्यार्थिकनय में भेद नहीं है। उसमे तो एक ही प्रकार का धर्म है। शुद्ध द्रव्य का ही आश्रय है। उसमे पर्याय भी अभेद हो गयी है। किन्तु व्यवहारनय पर्यायाश्रित है और भेदरूप है। शुद्धद्रव्यार्थिकनय में तो जो निर्मल पर्याय प्रगटी उसका भी भेद नहीं है, वह निर्मल पर्याय भी अभेद द्रव्य में मिल गयी है। किन्तु व्यवहारनय पर्यायाश्रित है इसकारण उसमें अनेक भेद है। जीव के पर्यायरूप परिणाम अनेक प्रकार के हैं; अतः व्यवहारनय से धर्म भी अनेक प्रकार का वर्णित किया जाता है।

देखो! निश्चय-व्यवहार में कितना अंतर पड़ा।

(1) निश्चयनय शुद्धद्रव्य के आश्रय से है, व्यवहारनय पर्याय के आश्रय से है।

(2) निश्चयनय में निर्मल पर्याय भी द्रव्य के साथ अभेदरूप है, व्यवहारनय में पर्यायें अनेक भेदरूप है।

(3) निश्चयनय से धर्म एक ही प्रकार है, व्यवहारनय से धर्म की प्ररूपणा अनेक प्रकार से है।

व्यवहारनय भी सम्यग्ज्ञान का एक अंश है। सम्यग्दृष्टि के ही वह व्यवहारनय यथार्थ होता है और सम्यग्दर्शन अभेद द्रव्य के आश्रय से ही होता है। इसप्रकार जिसको अभेद शुद्धद्रव्य की दृष्टि नहीं है उसको तो व्यवहारनय भी नहीं होता। ज्ञानी के ही व्यवहारनय यथार्थ होता है।

यद्यपि समकिती को शुद्धद्रव्य की दृष्टि हुई है; तथापि अभी रागादिभाव भी होते हैं। वहाँ उपचार से उसके व्रतादि परिणाम को भी धर्म कहते हैं-यह व्यवहार है । व्यवहार किसप्रकार है उसका स्पष्टीकरण करते हैं।

सम्यग्दृष्टि को स्वभाव का आश्रय वर्तता है वह तो वास्तविक धर्म है और अभी स्वभाव में पूर्ण लीनता हुई नहीं वहाँ राग वर्तता है, व्रतादि के विकल्प होते है, वहाँ अशुभराग टला उसकी अपेक्षा से उस शुभराग को व्यवहार से धर्म कहा है, किन्तु उसीसमय साथ में निश्चय धर्म वर्तता है। निश्चय न हो तो अज्ञानी के अकेले राग को व्यवहार से भी धर्म नहीं कहा जाता। यह तो साधक की बात है । साधक को

www.vitragvani.com

धर्म होता है। वह धर्म तो शुद्धद्रव्य के आश्रय से वीतरागभावरूप ही है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप वीतरागभाव को धर्म कहना तो यथार्थ ही है। किन्तु वहाँ साधक को वीतरागभाव के साथ वर्तते राग को भी (व्रतादि को भी) धर्म कहना व्यवहार है । क्यों? क्योंकि उसमें एकदेश राग (अशुभराग) टलनेरूप प्रयोजन है। राग रहित शुद्धचिदानंद स्वभाव की दृष्टिपूर्वक अशुभराग टला है, वहाँ शुभराग है उसे व्यवहार से धर्म कहा है।

व्यवहार से राग को धर्म कहा वह वस्तुतः तो धर्म नहीं है; वास्तविक धर्म तो आत्मा में अतीन्द्रिय आनंद का निर्विकल्प अनुभव हो वही है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप वीतरागभाव ही परमार्थ से धर्म है । ऐसा धर्म जहाँ प्रगट होता है किन्तु अभी पूर्ण वीतरागता प्रगट न हुई हो वहाँ साधकदशा में शुभराग साथ ही है; उस शुभराग में अशुभराग के टलने मात्र प्रयोजन गिनकर उसे उपचार से धर्म कहा जाता है। मुनिदशा में तीन कषाय चौकड़ी के अभाव से आत्मा का आनंद तो प्रगट हुआ है, वह तो सर्वदेशरूप अर्थात् यथार्थरूप धर्म है और वहाँ अट्ठाईस मूलगुणादि का जो शुभराग होता है उसे एकदेश अर्थात् उपचार से धर्म कहा है। शुभराग को 'एकदेश' धर्म कहा वहाँ 'एकदेश' अर्थात् "उपचार से"-ऐसा समझना। राग में अंशमात्र भी धर्म है -ऐसा तात्पर्य एकदेश का नहीं है। किन्तु साधकदशा में मुनि को अट्ठाईस मूलगुण आदि का विकल्प ही निमित्तरूप होता है। अतः उपचार से मानो कि वही धर्म हो-ऐसा व्यवहार किया जाता है।

मैं आत्मा एकसमय में पूर्णानंद परमात्मा हूँ-ऐसा भान हुआ, सम्यग्दर्शन हुआ, तब धर्म का प्रारंभ हुआ। जीव को अनादिकाल से कभी ऐसा स्वरूप ख्याल में नहीं आया। जहाँ सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप यथार्थ धर्म प्रगटा वहाँ उस भूमिका के योग्य साथ वर्तते राग को उपचार से-व्यवहार से धर्म कहते हैं।

ज्ञानी को धर्म की जो भूमिका हो उससे विरूद्ध राग नहीं होता। वहाँ शुभराग के समय अशुभ से बचनेरूप प्रयोजन गिनकर उसे धर्म कहते हैं। इस प्रकार प्रयोजनवश एकदेश में सर्वदेश का कथन करना वह व्यवहार है।

www.vitragvani.com

तथा प्रयोजनवश अन्य के निमित्त से अन्य वस्तु में अन्य का आरोपण करना भी व्यवहार है। जैसेकि विकार में कर्म निमित्त है। वहाँ कर्म ने विकार कराया-ऐसा कहना वह अन्य वस्तु में अन्य वस्तु का आरोपणरूप व्यवहार है। शरीर चले, और जीव की इच्छा निमित्तरूप हो, वहाँ जीव ने इच्छा करके शरीर को चलाया-ऐसा कहना वह अन्य वस्तु में अन्य वस्तु के आरोपरूप व्यवहार है। इसीप्रकार जीव से भाषा निकली या भाषा से ज्ञान हुआ-ये सब कथन भी अन्य वस्तु में अन्य वस्तु का आरोप करने रूप व्यवहार के कथन हैं। एक वस्तु के कारण से दूसरे का कार्य होता है- यह कथन व्यवहार का है ।

निमित्त के कारण उपादान में कार्य होता है-ऐसा कहना एक वस्तु में अन्य वस्तु के आरोप का कथन है । ऐसे आरोपित कथनों को ही वस्तु का स्वरूप मानले तो उस जीव को निश्चय-व्यवहार का यथार्थ ज्ञान नहीं है।

इसप्रकार दो प्रकार का व्यवहार कहाः-

1. *प्रयोजनवश एकदेश को सर्वदेशरूप कहना;*

2. *प्रयोजनवश एक वस्तु का दूसरी वस्तु में आरोप करके कथन करना।*

उपर जो 'वस्तु स्वभावरूप धर्म ' इत्यादि चार प्रकार कहे थे उनमे अब व्यवहार की प्ररूपणा से उन चार धर्मों का स्वरूप कहते हैं।

1. वस्तु स्वभाव धर्म कहने में आवे तब, निर्विकार चेतना के शुद्ध परिणाम के साधकरूप अर्थात् निमित्तरूप ऐसे मंदकषायरूप 'शुभ परिणाम' को व्यवहार धर्म कहा जाता है। शुद्ध परिणाम तो निश्चय धर्म है और उसके साथ के शुभ परिणाम को धर्म कहना वह व्यवहार है। तथा वहाँ देह की क्रिया को भी निमित्तरूप से उपचार से धर्म कहते हैं वह अन्य द्रव्य का अन्य द्रव्य में उपचार करनेरूप व्यवहार है।

2. शुद्धरत्नत्रय जो स्वभाव के आश्रय से प्रगटा है वह तो निश्चय धर्म है, किन्तु भेदरूप व्यवहार दर्शन-ज्ञान-चारित्र को तथा उनमे बाह्य निमित्तों को व्यवहार से धर्म कहा जाता है।

Shree kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

3. इसीप्रकार उत्तम क्षमादिक दशधर्मो में भी समझना। स्वभाव के आश्रय से शुद्धभावरूप उत्तम क्षमादिक वीतराग धर्म है वह तो निश्चय से धर्म है और वहाँ क्षमादि का शुभ विकल्प आवे उसे धर्म कहना व्यवहार है।

4. जीव की दयारूप धर्म में भी इसीप्रकार समझना कि वीतरागी शुद्धभाव द्वारा आत्मा के स्वभाव की दया तो वास्तविक धर्म है। आत्मा के चिदानंद स्वभाव का शुभाशुभ वृत्ति द्वारा घात न होने देना ही वास्तविक जीव रक्षा है, वह तो वास्तविक धर्म है और वहाँ क्रोधादि कषायों की मंदता के कारण स्वयं को अथवा पर को मरण-क्लेशादि न करना-हिंसा का पाप भाव न होना उस जीवदया को व्यवहार धर्म कहा जाता है और उसकी निमित्तरूप बाह्य क्रियाओं को भी व्यवहार धर्म कहा जाता है; किन्तु यह एक द्रव्य का अन्य द्रव्य में आरोप है-ऐसा समझना। वस्तुतः जीव पर की रक्षा नहीं कर सकता; क्योकि परजीव की क्रिया इस जीव के आधीन नहीं है।

इसप्रकार जिनमत में निश्चय-व्यवहार से धर्म की प्ररूपणा की है। उन चारों प्रकारों में निश्चय धर्म तो एक ही प्रकार का है और वही यथार्थ धर्म है; तथा जो व्यवहार धर्म कहा वह तो प्रयोजनवश रागादि को उपचार से धर्म कहा है, वह वस्तुतः राग धर्म नहीं है-ऐसा समझना।

इस प्रकार धर्म का कथन दो प्रकार से है । (1) निश्चय (2) व्यवहार । निश्चय सहित ही व्यवहार होता है। निश्चय रहित व्यवहार तो सच्चा व्यवहार भी नहीं है। वास्तविक धर्म के जितने प्रकार कहे उनमें आत्मा का शुद्धचेतना स्वभाव राग-द्वेष रहित शुद्धचेतनारूप परिणमें वह एक ही प्रकार का धर्म है; किन्तु साधकदशा में शुभराग के अनेक प्रकार आते हैं, उन्हें भी आरोप से व्यवहार धर्म कहते हैं। आत्मा के स्वभाव में एकाग्र होने पर जो शुद्धचेतना स्वभाव प्रगटा वह 'वस्तु स्वभावरूप' धर्म है, वही रत्नत्रय है, उत्तम क्षमादिक धर्म भी उसी में गर्भित हो जाते हैं और उसी में पारमार्थिक जीव रक्षा भी आ जाती है। इसप्रकार निश्चय में धर्म का एक ही प्रकार है और साधकदशा में वीतरागता न हो वहाँ राग होता है, वहाँ आरोप से शुभराग को भी धर्म कहा जाता है।

www.vitragvani.com

जिसको आत्मा के शुद्धस्वभाव की खबर नहीं है उसको तो एक भी प्रकार का धर्म नहीं होता। जो राग को ही धर्म मानता है उसे तो राग की ही अखण्डता है। राग से आत्मा का भेद किया नहीं-भिन्नता जानी नहीं, राग के साथ ही एकता है अर्थात उसको अनंत संसार के कारणरूप (अनंतानुबंधी) राग है। आत्मा स्वभाव से एकसमय में अखण्ड, पूर्ण है उसकी प्रतीति न करके जिसने राग से लाभ माना उसको राग की ही अखण्डता है। उसने तो राग को ही सर्वदेश धर्म (निश्चय धर्म, वास्तविक धर्म) मान लिया है। अर्थात् उसको राग रहित आत्मा के चैतन्य स्वभाव की भी श्रद्धा नहीं है। उसको तो अकेला रागरूप-अखण्डपने रागरूप परिणमन है । उस पर्यायमूढ़ जीव को तो राग ही सर्वदेश है; एकदेश भी धर्म उसको नहीं है; धर्म का भान भी उसको नहीं है। अर्थात् उसके राग पर तो एकदेश धर्मपने का आरोप भी संभव नहीं है। उसको राग के साथ एकत्वबुद्धि होने से राग की ही अखण्डता है और वही अधर्म है। (मिथ्यात्व है।)

ज्ञानी को अखण्ड चिदानंद स्वभाव का भान है और राग का खण्ड (भेद) पड़ गया है । उसको राग के साथ एकत्वबुद्धि टूट गयी है। अर्थात् वह राग को धर्म नहीं मानता। अखण्ड स्वभाव की अखण्ड दृष्टि होने से अनंत संसार के कारणरूप राग खंडित हो गया है, अल्पराग रहा है। ज्ञानी को शुद्धचेतनारूप धर्म वर्तता है और साथ ही राग भी वर्तता है, उस राग को उपचार से एकदेश धर्म कहा जाता है। आत्मा की शुद्धचेतनारूप परिणति तो सर्वदेश धर्म है अर्थात् साक्षात धर्म है; वह तो निश्चय से धर्म है और वहाँ साधक को व्रतादिक का जो राग साथ ही वर्तता है उस शुभराग में अशुभराग के अभाव की अपेक्षा से एकदेश धर्म का आरोप करके उसको धर्म कहा है- वह व्यवहार है। व्यवहार में (धर्म के) अनेक प्रकार हैं।

जहाँ स्वभाव में अखण्डता होकर राग का खण्ड हो गया वहाँ निश्चय और व्यवहार दोनो यथार्थ हुए। किन्तु जहाँ अखण्ड स्वभाव की दृष्टि हुई नहीं और राग का खण्ड पड़ा नहीं वहाँ तो निश्चय या व्यवहार दोनो में से एक भी यथार्थ नहीं है। इसप्रकार निश्चय और व्यवहार से धर्म का स्वरूप कहा।

www.vitragvani.com

वहाँ धर्म का एक स्वरूप और अनेक स्वरूप कहने से स्याद्वाद के साथ विरोध नहीं आता, क्योंकि साधक को निर्मल पर्यायों के अनेक प्रकार होने पर भी वे सभी पर्यायें निर्मल स्वभाव के साथ ही अभेदता को पाती है; अतः उसमें तो एक ही प्रकार कहा। और साधक को राग भिन्न-भिन्न अनेक प्रकार का होता है, अतः व्यवहार धर्मों के अनेक प्रकार कहे। स्वभाव में एकतारूप निश्चय धर्म एक ही प्रकार का है। बीच में (साधक दशा में) शुभरागरूप व्यवहार धर्म अनेक प्रकार का है।

इसप्रकार धर्म को एक स्वरूप तथा अनेक स्वरूप कहने से स्याद्वाद के साथ विरोध नहीं, किन्तु विवक्षा से सब प्रमाण सिद्ध है।

देखो! यह अष्टपाहुड़ भी महान शास्त्र है। देखने में यह पुस्तक छोटी लगती है; किन्तु आचार्य भगवान ने इसमें महान भाव भर दिये हैं। सर्वज्ञ भगवान का यथार्थ मार्ग क्या है वह आचार्यदेव ने इसमें स्पष्ट किया है।

जैनमत में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप धर्म की मूर्ति वह 'दर्शन' है। अन्तर में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हो और बाहर में भी एकदम दिगम्बर शांत मुद्रा हो-ऐसी मुनिदशा है। इसके अतिरिक्त 'सिर पर पोट और साथ में मजदूर' लेकर फिरते हों-ऐसी मुनिदशा जैनमत में नहीं होती। जैनमत में तो अन्तर-बाह्य में उपशांत दिगम्बर दशा हो -ऐसी ही मुनिदशा है। जिसे देखते ही ऐसा लगे कि अहो! यह जैनधर्म की मूर्ति!! ऐसे मुनिवरों को जैनमत में दर्शन कहा है।

ऊपर जो निश्चय-व्यवहाररूप जैनधर्म कहा-ऐसे धर्म की जो श्रद्धा-प्रतीति और आचरण करता है वह 'दर्शन' है अर्थात् मुनिराज ही दर्शन है। जैसे हाथी पर चक्रवर्ती चले जा रहे हों वैसे ही जो अंतर के स्वभाव के ऊपर चढ़कर मोक्षमार्ग में चल रहे हैं।-ऐसे मुनिवर तो मानो हिलता-चलता जैनधर्म है। साक्षात जैनधर्म हों तो वे ही हैं।

जिनका झुकाव आत्मस्वभाव में हो गया है और पर तरफ का उत्साह ही टूट गया है-ऐसे दिगम्बर मुनि जैनधर्म का 'दर्शन' है, वे ही जैनमत हैं। वे जैनधर्म की मूर्ति हैं, और वे ही धर्म का मूल है । जिसको ऐसें मार्ग की प्रतीति नहीं, ऐसे धर्म की श्रद्धा, ज्ञान नहीं उसको धर्म का आचरण भी नहीं होता।

सर्वप्रथम 'ऐसा ही जैनमार्ग है; ऐसा ही जैनदर्शन है'-ऐसे धर्म की यथार्थ श्रद्धा होना

www.vitragvani.com

ही सम्यग्दर्शन है। जिसकी श्रद्धा ही सच्ची नहीं है उसको धर्म नहीं होता। जैसे वृक्ष की जड़ के बिना तना इत्यादिक नहीं होते। वैसे ही धर्म की यथार्थ श्रद्धा के बिना धर्मरूपी वृक्ष नहीं होता।

इसप्रकार दर्शन अर्थात् क्या? यह व्याख्या की। अब ऐसे दर्शन का वर्णन सिद्धांत में जिसप्रकार है उसीप्रकार यहाँ कुछ कहते हैं।

वहाँ अंतरंग सम्यग्दर्शन वह तो जीव का भाव है। भाव अर्थात् पर्याय।

प्रश्नः- द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव-ऐसे चार बोल में से यह भाव किसमें आया?

उत्तरः- जीव का स्वकाल अर्थात् स्व पर्याय उसमे यह 'भाव' आता है, अर्थात् सम्यग्दर्शनरूप जो भाव है वह जीव की निर्मल पर्यायरूप स्वकाल है। यह निश्चय सम्यग्दर्शनरूप भाव एक ही प्रकार का है। उपाधि रहित शुद्धात्मा के साक्षात अनुभवरूप एक ही प्रकार का निश्चय सम्यग्दर्शन है; उसमें कर्म की उपाधि नहीं, निमित्त की उपाधि भी नहीं है।-ऐसा सम्यग्दर्शन भाव भी धर्म है। किन्तु ऐसा सम्यग्दर्शन अनादि से जीव को नहीं हैं, मिथ्यादर्शन है- यह बात यहाँ बताते है।

मिथ्यादर्शन नामक कर्म के उदय से, अर्थात् विपरीत रुचि के कारण उस उदय में जुड़ने से अनादिकाल से जीव को विपरीत अनुभव हो रहा है। जीव शुद्धस्वभाव का अनुभव न करके व्यवहार-रागादि की रुचि करके उनके ही अनुभव से मिथ्यादृष्टि हो रहा है। प्रथम तो ऐसा मिथ्यात्व अनादिकाल से है। किन्तु कोई जीव सम्यग्दर्शन प्राप्त करके पुनः विपरीत रुचि से मिथ्यादृष्टि बन जाए तो उसे सादि मिथ्यादृष्टि कहते हैं। इस प्रकार अनादि मिथ्यादृष्टि और सादि मिथ्यादृष्टि-ऐसे दो प्रकार हैं। उनमें सादि मिथ्यादृष्टि जीव के मिथ्यात्व की तीन प्रकृतियाँ मिथ्यात्व, सम्यक् मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृति सत्ता में होती है; और उनके साथ अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया और लोभरूप चार कषाय प्रकृतियाँ होती है-ये भी मिथ्यात्व की सहचारिणी हैं।

इसप्रकार सम्यग्दर्शन के घात में ये सातों प्रकृतियाँ निमित्तकारणे है। सम्यक् स्वभाव की रुचि होने पर इन सातों प्रकृतियों का उपशम होकर जीव को उपशम

www.vitragvani.com

सम्यग्दर्शन होता है । अनादि मिथ्यादृष्टि के पाँच प्रकृतियों-मिथ्यात्व व अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया और लोभ-सत्ता में होने से पाँच का ही उपशम होता है। सम्यग्दर्शन होने में तथा इन मिथ्यात्वादि प्रकृतियों के उपशम होने में बाह्य कारण क्या है? वह कहते हैं-

बाह्य कारणों अर्थात् निमित्तों में सामान्यपने जो द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव है उनमें मुख्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव कौनसे हैं-यह बतलाते हैं-

द्रव्यः- द्रव्य में प्रधानकारण साक्षात तीर्थंकर भगवान के दर्शनादि हैं। तीर्थंकर भगवान, गणधर, मुनि या धर्मात्मा -इन सभी का दर्शन यहाँ पर लेना- ये बाह्य कारण हैं। जो जीव अंतर में आत्मा के स्वभाव की रुचिरूप अंतरंग कारण से सम्यग्दर्शन प्रगट करे उसको ही उक्त बाह्य पदार्थ बाह्य कारण के रूप में कहे जाते हैं ।

क्षेत्रः- क्षेत्र अपेक्षा से प्रधान कारण समवसरणादिक हैं । तथा देवों को नंदीश्वर आदिक क्षेत्र-जहाँ शाश्वत जिनप्रतिमा बिराजमान है वह बाह्य कारण है। यहाँ यह नहीं समझना चाहिये कि समवसरण के क्षेत्र में जाये उसे निश्चय सम्यग्दर्शन होता ही है; किन्तु जो जीव वहाँ अपने स्वभाव के अंतरंग उपादान कारण से सम्यग्दर्शन प्रगट करे उसके लिये समवसरणादिक बाह्य कारण कहे जाते हैं।

कालः- काल अपेक्षा से अर्धपुद्गल परावर्तन संसार (उत्कृष्ट में उत्कृष्ट) बाकी रहे वह प्रधानकारण है । यह भी निमित्त कारण की बात है। जो अंतर में स्वभाव की दृष्टि से भव का अंत करे उसके ऐसा निमित्त कहा जाता है। किसी को मात्र अन्तर्मुहूर्त ही संसार बाकी बचा हो वह भी सम्यग्दर्शन प्रगट करता है।

भावः- भाव अपेक्षा से अधःप्रवृत्तकरण परिणाम है। सम्यग्दर्शन पाने वाले जीव को पहले अमुक प्रकार के परिणाम होते हैं उन्हें अधःप्रवृत्तकरण कहते हैं, वे भी निमित्त हैं। अपनी पूर्व पर्याय के भाव को भी यहाँ निमित्तरूप से लिया गया है।

इसप्रकार मुख्यपने द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव सम्यक्त्व के निमित्त बताये। अब इनके अतिरिक्त अन्य भी विशेष निमित्त हैं वह कहते हैं। विशेषपने बाह्य कारण अनेक प्रकार के हैं।

www.vitragvani.com

कितने ही जीवों को तो अरिहंत भगवान की प्रतिमा का दर्शन होना निमित्त कारण है। जो हार-मुकुट आभूषणादि सहित हो वह अरिहंत की प्रतिमा नहीं है और न वह सम्यक्त्व का निमित्त है। भगवान की वीतराग प्रतिमा सम्यक्त्व का निमित्त है; किन्तु किसको? जो जीव सम्यग्दर्शन प्रगट करे उसको। इसके अतिरिक्त जिनेन्द्र भगवान के पंचकल्याणक (जन्म-दीक्षा इत्यादि) का दर्शन होना भी बहुत से जीवों के सम्यक्त्व होने का निमित्त है। जब तीर्थंकर भगवान दीक्षा लेते है तब दूसरे जीवों को ऐसा लगता है कि अहो! यह मार्ग कैसा? कि ऐसे महापुरूष जैसे भी दीक्षा लेते हैं।-इसप्रकार जैन धर्म की महिमा आने से अंतर स्वभाव के आश्रय से सम्यक्त्व प्राप्त कर लेते हैं- ऐसे जीवो को भगवान के पंचकल्याणकों का दर्शन सम्यक्त्व का निमित्त कहा जाता है; किन्तु जो जीव सम्यक्त्व प्राप्त करे निमित्त उसी के लिये कहा जाता है।

किसी जीव को जातिस्मरण ज्ञान भी सम्यक्त्व का निमित्त होता है। अकेले पूर्व भव का साधारण ज्ञान तो अनेक जीवों को होता है; किन्तु जिसने अन्तर में आत्मा के स्वभाव के साथ संधि करके सम्यग्दर्शन प्रगट किया ऐसे जीवों को वह जातिस्मरण ज्ञान सम्यक्त्व का निमित्त कहा जाता है।

वेदना भी निमित्त है । शरीर में तीव्र वेदना का प्रसंग हो वहाँ जहाँ अन्य कोई उपाय नहीं हो वहाँ भी सहनशीलता (ज्ञाता-दृष्टापना) यही एक उपाय है-ऐसा विचारकर अंतर ज्ञायक स्वभाव में उतर जाए और सम्यग्दर्शन प्राप्त करले-उसके वेदना आदि को बाह्य कारण कहते हैं। अकेली वेदना से कोई सम्यग्दर्शन नहीं होता। यदि वेदना से ही हो तो सभी नारकियों को हो जाना चाहिये, किन्तु ऐसा होता नहीं। जो जीव स्वभाव के अन्तर प्रयत्न से सम्यग्दर्शन प्राप्त करते हैं उनमें से किसी को वेदना भी निमित्त होती है।

आत्मा में सम्यग्दर्शन होने पर ही धर्म की शुरूआत होती है। आत्मा का स्वभाव शुद्धचिदानंद है। उसकी वर्तमान दशा स्वभाव सन्मुख होकर उसे पकड़ने के बदले रागादि में ही एकत्वबुद्धि करती है जो मिथ्यात्व है। आत्मा के ज्ञानानंद स्वभाव की प्रतीति करने से सम्यग्दर्शन होता है, तभी आत्मा में धर्म की शुरूआत होती है।

www.vitragvani.com

आत्मा में सम्यग्दर्शन हुआ उसमें मूल कारण तो आत्मा के स्वभाव का आश्रय किया वही है; और उससमय अन्य दूसरे बाह्य कारण निमित्तरूप कैसे-कैसे होते हैं उसका यहाँ वर्णन चल रहा है।

जिनेन्द्र भगवान के दर्शन, भगवान के पंचकल्याणकों इत्यादि की महिमा का देखना तथा जातिस्मरण ज्ञान आदि बाह्य कारणों का वर्णन हो चुका है। वेदना का वर्णन यहाँ चल रहा है ।

वेदना अर्थात बाहर में तीव्र प्रतिकूलता का संयोग हो और आकुलता का वेदन हो-उस दुःख में किसी जीव को ऐसा विचार जगता हे कि अरे! क्या ऐसे दुःख का वेदना यही जीव का स्वभाव होगा? ऐसा विचारते हुए वह अन्तर में स्वभाव को पकड़कर सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लेता है तो उसके वेदना निमित्त कही जाती है। नरक में तो महातीव्र वेदना होती है किन्तु दुःख वहाँ भी किसी संयोग के कारण नहीं है। तीव्र वेदना में किसी को ऐसा विचार आता है कि अरे! क्या ऐसी वेदना भोगना-यही मेरा अस्तित्त्व है! नहीं, नहीं। तथा यह वेदना किसी ईश्वर प्रदत्त भी नहीं है । क्योंकि यदि ईश्वर वेदना का दाता हो तो अन्य को न देकर मुझे ही क्यों दी? अतः मेरे परिणाम का ही यह फल है। किन्तु ऐसी वेदना ही भोगना मेरा त्रिकाली स्वभाव नहीं है; स्वभाव तो वेदना रहित है-इसप्रकार अंतर में स्वभाव का लक्ष होने पर सम्यग्दर्शन हो जाता है। वहाँ वेदना को सम्यक्त्व का निमित्त कहा जाता है।

अहो! आत्मा पूर्णानंद स्वरूप है उसकी प्रतीति करो!- इसप्रकार धर्म श्रवण के निमित्त से भी किसी को सम्यग्दर्शन हो जाता है। जो सुनकर अंतर में ज्ञान-ध्यान करके सम्यग्दर्शन प्रगट करता है उसको ही धर्मश्रवण निमित्त कहा जाता है। सुनने वालों को सभी को सम्यग्दर्शन होता ही है-ऐसा नहीं है; किन्तु सम्यग्दर्शन प्रगट करने वाले को ही श्रवण निमित्त है-ऐसा है ।

पुण्य के फल में बाहर में स्वर्गादि के वैभव का ठाठ मिले, उसे देखकर किसी जीव के ऐसा विचार जागृत हो कि अहो! पुण्य के फल में भी ऐसी ऋद्धि मिली; तो मेरे चैतन्य की ऋद्धि की महिमा कैसी? जिसके एक विकल्प के फल में ऐसे वैभव का

www.vitragvani.com

ठाठ मिले तो उस वस्तु के स्वभाव की महिमा कैसी? इसप्रकार स्वभाव की महिमा से कोई जीव सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लेता है, वहाँ उसके देवऋद्धिदर्शन निमित्त कहा जाता है।

उपरोक्त सभी सम्यग्दर्शन के बाह्य कारण हैं। जब जीव अन्तर स्वभाव की रुचि करके उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन प्रगट करे तब ऐसे बाह्य कारणों में भी उपचार से कारणपने का उपचार किया जाता है। अन्तर में अपने स्वभाव की रुचि करते ही मिथ्यात्व कर्म का उपशम होकर जीव को सम्यग्दर्शन होता है। अनादि मिथ्यादृष्टि जीव को प्रथम तो उपशम सम्यग्दर्शन होता है और उसके मिथ्यात्वादि कर्म का उपशम होता है। क्षायोपशमिक सम्यक्त्वी के दर्शनमोह संबंधी सात प्रकृतियों में से छह का तो उपशम या क्षय होता है और एक सम्यक्त्व (मोहनीय) प्रकृति का उदय होता है। उसके उदय से सम्यक्त्व में किंचित अतिचार लगते हैं; किन्तु वह बंध का कारण नहीं होता। क्षायिक सम्यक्त्वी को सातों प्रकृतियों का सर्वथा क्षय होता है। इसप्रकार जीव के सम्यग्दर्शनरूप परिणाम उपशम, क्षयोपशम तथा क्षायिक-ऐसे तीन भेदरूप होते हैं।

यह सम्यक्त्व परिणाम अतिसूक्ष्म है। यह सीधा तो केवलज्ञानगम्य है। कर्म प्रकृतियों के पुद्गल स्कंध भी सूक्ष्म हैं, तथा उनमें फल देने की सामर्थ्यरूप अनुभाग है वह भी अतिसूक्ष्म है। और यहाँ जीव में होने वाले उपशमादि सम्यक्त्व भी अतिसूक्ष्म है। इन सम्यग्दर्शन के सूक्ष्म परिणामों को प्रत्यक्ष तो केवली भगवान जानते हैं और छद्मस्थ जीव अपने स्वसंवेदनादि द्वारा उनका निर्णय कर सकते हैं। सम्यग्दृष्टि जीव के कितने ही परिणाम छद्मस्थ के ज्ञान में ज्ञात होने योग्य होते हैं और उनके द्वारा सम्यक्त्व का निर्णय हो जाता है। इसकारण वे परिणाम सम्यग्दर्शन बाह्य चिह्न हैं।

समकिती जीव के सम्यग्दर्शन के परिणाम ऐसे सूक्ष्म हैं कि छद्मस्थ उन्हें सीधे नहीं जान सकता, वे तो केवलज्ञानगम्य है। किन्तु उस सम्यग्दर्शन के साथ समकिती जीव को ज्ञान की अनुभूति आदि परिणाम होते हैं वे सम्यक्त्व को पहिचाननें के बाह्य चिह्न हैं, उनके द्वारा सम्यग्दर्शन का निर्णय होता है।

Shree kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

ज्ञान का परिणाम सम्यग्दर्शन से जुदा हैं; अतः सम्यग्दर्शन से वह बाह्य है; किन्तु वैसे ज्ञान परिणाम सम्यग्दृष्टि को ही होते हैं- इसकारण वे ज्ञानादि परिणाम सम्यग्दर्शन के बाह्य चिह्न हैं। समकिती जीव के कितने ही खास परिणाम छद्मस्थ के ज्ञान में आने योग्य है और उन पर से सम्यक्त्व का निर्णय हो सकता है।

देखो! अभी तो यह सम्यग्दर्शन के स्वरूप का वर्णन है। ऐसे सम्यग्दर्शन बिना धर्म हो नहीं सकता। सम्यग्दर्शन ज्ञान पूर्वक चारित्रदशा होती है और बाह्य-अंतर अपरिग्रहपना होता है-ऐसी मुनिदशा में साक्षात धर्म है; ऐसी अपरिग्रहवंत मुनिदशा है। उसके बदले परिग्रह सहित मुनिदशा मनवावे ऐसे जीव को तो अपरिग्रहपने की दृष्टि भी नहीं रहती अर्थात् उसकी तो श्रद्धा भी सच्ची नहीं है।

जीव को सम्यग्दर्शन हो वहाँ उसे स्वानुभूति होती है। उसके सम्यग्दर्शन का निर्णय परीक्षा द्वारा हो सकता है। ज्ञानादि के परिणाम द्वारा सम्यग्दर्शन के निर्णय करने का व्यवहार है। यदि इसप्रकार परिणाम द्वारा सम्यग्दर्शन का निर्णय न हो सके तो छद्मस्थ जीव को सम्यग्दर्शन का निर्णय होना ही संभव नहीं है। यह जीव समकिती है या मिथ्यादृष्टि-इसका निर्णय न हो सके तो किसको वंदन करना और किसको नहीं-यह भी निश्चित नहीं हो सकता। तथा आस्तिक्य का भी अभाव होता है। अपने अथवा पर के सम्यक्त्व का निर्णय न हो तो आस्तिक्य अथवा निशंकता नहीं रह सकती और व्यवहार का भी लोप हो जाता है। अतः आगम से, अनुमान से और स्वानुभव से परीक्षा करके सम्यग्दर्शन का निर्णय करना।

अब सम्यक्त्व का निर्णय किस चिह्न से होता है यह कहते हैं।

सम्यग्दर्शन का मुख्य चिह्न तो उपाधि रहित शुद्ध ज्ञानचेतना स्वरूप आत्मा की जो अनुभूति है वही है; यह अनुभूति ज्ञान का विशेष है- ज्ञान का परिणाम है; सम्यग्दर्शन का परिणाम तो उससे भिन्न है; किन्तु सम्यग्दर्शन के साथ ही ऐसी अनुभूति होती है-अतः वह अनुभूति सम्यग्दर्शन का बाह्य चिह्न है। उस अनुभूति को बाह्य चिह्न क्यों कहा ? वह है तो जीव का अंतरंग परिणाम; किन्तु सम्यग्दर्शन परिणाम से वह अन्य है, एक गुण की अपेक्षा से दूसरे गुण के परिणाम को बाह्य कहा है। सम्यग्दर्शन होते ही ऐसी शुद्ध ज्ञान की अनुभूति होती है, सम्यग्दर्शन बिना ऐसी

www.vitragvani.com

अनुभूति होती ही नहीं; अतः उस अनुभूति को सम्यक्त्व का चिह्न कहा है। स्वयं को स्वानुभूति से स्वयं के सम्यग्दर्शन का निशंक निर्णय होता है। राग से रहित और शुद्ध चेतना के अनुभव सहित-ऐसी जो ज्ञान दशा हुई वह सम्यग्दर्शन का चिह्न है;-ऐसी अनुभूति से जीव के सम्यक्त्व का निर्णय होता है।

सम्यग्दर्शन होने पर आत्मा के आश्रय वाली और राग रहित स्वानुभूति प्रगटती है। सम्यग्दर्शन- ज्ञानपूर्वक अंतर में लीन होकर तीन कषाय का नाश करके बाह्य-अभ्यंतर निष्परिग्रह दशा हुई वहाँ ऐसी दशा होती है कि मानो चलते-फिरते भगवान!-ऐसी तो मुनिदशा है। ऐसी मुनिदशा होने के पूर्व सम्यग्दर्शन होता है उसका यह वर्णन चलता है। उस सम्यग्दर्शन के होने पर ज्ञान के स्वसंवेदनरूप परिणाम अनुभव में आते हैं। स्वसंवेदन में जो अतीन्द्रिय आनंद आता है वह जुदी पर्याय है और उस आनंद को जानने वाली पर्याय जुदी है। समकिती जीव को ज्ञान में ऐसा स्वसंवेदन होता है कि जो यह शुद्ध ज्ञान है वह मैं हूँ और ज्ञान में जो रागादि विकार है वह कर्म के निमित्त से उपजता है अर्थात् वह स्वभावरूप नहीं है। इसप्रकार रागादि रहित शुद्ध ज्ञानमात्र भाव का स्वयं को अनुभव होता है,- यह सम्यग्दर्शन का चिह्न है। देखो! यह ज्ञानी की अनुभूति! शुद्धज्ञान चेतना ही मेरा स्वरूप है। रागादि की वृत्तियाँ वह मैं नहीं, वे मेरा स्वरूप नहीं-इसप्रकार ज्ञान और राग के भेदज्ञान द्वारा जो ज्ञानभाव का आस्वादन होता है वह ज्ञान की अनुभूति है । अन्तर में अतीन्द्रिय आनंद का स्वाद आता है-ऐसी ज्ञान की अनुभूति वह आत्मा की अनुभूति है और वही शुद्धनय का विषय है।

अनुभूति स्वयं तो पर्याय है; किन्तु वह पर्याय द्रव्य के साथ अभेद हो गयी है-इसकारण शुद्धनय के अभेद विषय में वह समा गयी है। अनुभूतिरूप जो निर्मल पर्याय हुई वह द्रव्य के साथ अभेद है।

सम्यग्दर्शन होने पर आत्मा की ऐसी अनुभूति होती है। उस अनुभूति से शुद्धनय द्वारा ऐसा भी श्रद्धान होता है कि सर्व विकारी भावों से रहित केवलज्ञानादि अनंत चतुष्टयमय मेरा स्वरूप है, अन्य सभी संयोगजनित भाव मेरा स्वरूप नहीं हैं। वर्तमान

www.vitragvani.com

स्वानुभूति मे राग से आंशिक भिन्न हुआ तो राग से सर्वथा भिन्न पड़ने पर ज्ञान का पूर्ण विकास होकर केवलज्ञानादि चतुष्टय प्रगट हों-ऐसा मेरा स्वभाव है। इसप्रकार साथ ही साथ सर्वज्ञपद की प्रतीति भी समकिती जीव को हो जाती है। समकिती को शुद्धनय से जो ऐसी आत्मा की अनुभूति होती है वह सम्यग्दर्शन का मुख्य चिह्न है।

सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान या व्रत, तप आदि कुछ भी सम्यक् नहीं होते। इस सम्यग्दर्शन से ही धर्म का प्रारम्भ होता है। सम्यग्दर्शन के बिना धर्म का अंश भी नहीं होता।

समकिती को अखण्ड स्वभाव प्रतीति में आ गया है और वर्तमान में राग से भिन्न पड़कर निज के ज्ञान, दर्शन, आनंदादि आंशिकरूप से प्रगट हुए हैं, तो राग का सर्वथा अभाव होकर पूर्ण केवलज्ञान, दर्शन, पूर्ण आनंदादि अनंत चतुष्टय प्रगटने की सामर्थ्य है -ऐसा भी प्रतीति में आ जाता है। समकिती को ऐसे स्वसंवेदनरूप जो अनुभूति है वह सम्यग्दर्शन का चिह्न है, और उस चिन्ह को ही सम्यग्दर्शन कहना व्यवहार है ।

सम्यग्दर्शन के साथ की स्वानुभूति सम्यग्दर्शन का चिह्न है, और उस चिह्न को ही सम्यग्दर्शन कहना वह व्यवहार है । देखो, यह सम्यग्दर्शन का व्यवहार! ऐसे चिह्न से सम्यग्दर्शन का निर्णय करके उसका व्यवहार होता है। तथा सम्यक्त्व के ऐसे चिह्न की परीक्षा आगम प्रमाण से, अनुमान प्रमाण से तथा स्वानुभवरूप प्रत्यक्ष प्रमाण से होती है।

तथा सम्यग्दर्शन को ही निश्चय तत्त्वार्थ श्रद्धान भी कहा जाता है। तत्त्वार्थसूत्र में 'तत्त्वार्थ श्रद्धान' को ही सम्यग्दर्शन कहा है-वह निश्चय सम्यग्दर्शन की बात है -ऐसे सम्यग्दर्शन का निर्णय उसके चिह्न द्वारा करना चाहिये।

यथार्थ जैनदर्शन क्या है उसकी बात चलती है। अन्तर-बाह्य में परिग्रह रहित दशा हुई- ऐसी मुनिदशा है, यही जैनदर्शन है; इससे विपरीत हो वह दर्शन मार्ग नहीं है, जैनमार्ग नहीं है। मुनिराज को अंतर में राग-द्वेष-मोह नहीं है, तीन कषाय चौकड़ी का नाश हुआ है और वे उग्रपने अतीन्द्रिय आनंद का अनुभव करते हैं। ऐसी अंतरंग दशा पूर्वक बाह्य में भी सहज यथाजातरूप दशा (नग्न दिगम्बरदशा) हो गई है- ऐसा दर्शन का मार्ग है। अभी उनको पूर्ण अतीन्द्रिय आनंद नहीं प्रगटा है। बहुत आनन्द

www.vitragvani.com

प्रगटा है और पूर्णानंद के लिये प्रयत्नशील है; यह जैनदर्शन है। वे सर्वज्ञपद के तात्कालिक साधक हैं। उनके ऊपर वीतरागी जैनदर्शन की छाप है। ऐसे मुनिवरों को अन्तर में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र होता है, उसमें से अभी सम्यग्दर्शन के स्वरूप का वर्णन चलता है।

जिसे ऊपर कहे गये मार्ग की प्रतीति हो और विपरीत मार्ग को न माने उसे सम्यग्दर्शन होता है। केवली की पूर्णदशा और मुनियों की साधकदशा-ये दोनो दशायें आत्मा के स्वभाव में से ही उत्पन्न हुई है; अतः सर्वज्ञपद और उसकी साधक मुनिदशा की पहिचान करते ही आत्मा के स्वभाव की प्रतीति होती है। आत्मा के आनंद के स्वसंवेदन पूर्वक ऐसे मार्ग की प्रतीति होती है वह सम्यग्दर्शन है। उस सम्यग्दर्शन के परिणाम अतिसूक्ष्म हैं। वे छद्मस्थ को सीधे ज्ञात नहीं होते, किन्तु उस सम्यग्दर्शन के साथ स्वानुभूति आदि परिणामों से सम्यग्दर्शन का निर्णय होता है । इसकारण वे सम्यग्दर्शन के बाह्य चिह्न हैं। देखो, यह सम्यग्दर्शन ही आत्मा के धर्म का सच्चा आधार है, इसके अतिरिक्त बाहर में पैसा या शरीरादि कोई आधार नहीं है। यहाँ तो यह बताना है कि सम्यग्दर्शन होने पर जीव की दशा बदल जाती है और अपने अंतर में आनंद के स्वसंवेदन से उसका निर्णय होता है ।

जैसे निर्धन मनुष्य को लाख रूपयों की प्राप्ति हो तो उसके दिन फिर जाते हैं, लकड़ी का सहारा भी छूट जाता है। वैसे ही आत्मा अनादि से अज्ञानदशा के कारण पर्याय में निर्धन था। जहाँ आत्मा के स्वभाव का अपूर्व लाभ मिला वहाँ अंतर में ज्ञान-आनंद की दशा प्रगटती है। अपूर्व स्वसंवेदन होने पर ज्ञात होता है कि अहो! सम्यग्दर्शन के बिना ऐसे अपूर्व आनंद का अनुभव नहीं होता। ऐसे अपूर्व आनंद के प्रगट होने से दृष्टि में से पुण्य-पाप का सहारा छूट जाता है। अर्थात् पुण्य-पाप की रुचि छूट जाती है और आत्मा की दशा के दिन फिर जाते हैं। देखो, ऐसे सम्यग्दर्शन से धर्म की शुरूआत होती है। ऐसे सम्यग्दर्शन के बिना व्रत, तप, त्याग आदि जो भी करे वे सब 'रण में पीठ दिखाने' के समान व्यर्थ हैं। उनमें कहीं आत्मा को शरण नहीं है।

स्वसंवेदन ज्ञान हो-आत्मा का अनुभव हो-ऐसे चिह्न से सम्यग्दर्शन का पता चलता है।

Shree kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

अब यहाँ तो कहते हैं कि ऐसे सम्यग्दर्शन को ही निश्चय तत्त्वार्थ श्रद्धान कहते हैं। जिसको स्वभाव के स्वामीपने का भान नहीं और विकार का ही स्वामी होकर वर्तता है वह धर्म से भ्रष्ट है।

सम्यग्दर्शन के परिणाम सूक्ष्म होने पर भी स्वसंवेदनादि से उनका निर्णय होता है। वहाँ स्वयं को स्वयं के सम्यग्दर्शन का निर्णय तो स्वयं के ही स्वसंवेदन प्रत्यक्ष की मुख्यता से होता है । देखो, यहाँ कहा कि स्वयं को स्वयं के स्वसंवेदन से सम्यग्दर्शन की खबर पड़ती है। अज्ञानी जीव कहते हैं कि स्वयं को अपनी खबर नहीं पड़ती है; किन्तु ऐसा अंधामार्ग नहीं है। अपने स्वसंवेदन से अपने सम्यग्दर्शन का निःसंदेह निर्णय होता है। तथा दूसरों के सम्यग्दर्शन का निर्णय भी उसकी परीक्षा से, उसके वचनों से, तथा कायादिक की चेष्टा से हो सकता है । देखो, उपदेश से निर्णय हो जाता है। जिसकी प्ररूपणा ही विपरीत हो, ढिलमिल कथन आता हो, आत्मा की रुचि की महिमा न आती हो और व्यवहार की रुचि आती हो- वहाँ तो वचनों से ही निश्चित हो जाता है कि यह जीव मिथ्यादृष्टि है। तथा समकिती जीव के वचन से भी उसके अंतर के सम्यग्दर्शन का निर्णय हो जाता है, किन्तु वह निर्णय करना तो स्वयं को आना चाहिये न! 'बौल पर से तौल' हो जाता है।

ऊपर कहे अनुसार ज्ञान के स्वसंवेदन से अपने सम्यक्त्व का तथा वचनादि से दूसरो के सम्यक्त्व का निर्णय होता है, यह व्यवहार है। इसे व्यवहार क्यों कहा? कारण कि सम्यक्त्व के चिह्न द्वारा उसका निर्णय किया है अतः वह व्यवहार है; और परमार्थ सर्वज्ञ जानते है।

अपने सम्यग्दर्शन का निर्णय तो स्वयं को स्वसंवेदन प्रत्यक्ष से होता है। अंतर में आनंद के वेदन से ज्ञान द्वारा सम्यक्त्व का निर्णय होता है। तथापि अन्य गुण द्वारा सम्यक्त्व की पर्याय का (अविनाभावरूप साधन से) निर्णय करना वह व्यवहार है और ज्ञान में सीधे ही सम्यक्त्व परिणाम को जानना वह परमार्थ है। स्वयं को परमार्थ समकिती है- ऐसी तो समकिती को स्वसंवेदन प्रत्यक्ष से खबर पड़ती है, किन्तु सम्यक्त्व के साथ अविनाभावी-ऐसे आनंद और ज्ञान द्वारा उसका निर्णय किया

www.vitragvani.com

इसलिये उसे व्यवहार कहा है और व्यवहारी-छद्मस्थ जीवों को ऐसे व्यवहार का शरण कहा है। यहाँ व्यवहार का शरण कहने से रागादि का शरण नहीं समझना, किन्तु अविनाभावी संबंध से ज्ञान द्वारा सम्यग्दर्शन का निर्णय करना उसको यहाँ व्यवहार कहा है। यदि ऐसा व्यवहार न हो तो व्यवहार का लोप हो जाता है। यह जीव समकिती है या मिथ्यादृष्टि-यह निश्चित करने को कुछ नहीं रहता, किन्तु भगवान का मार्ग ऐसा नहीं है।

कोई ऐसा कहे कि अपने को भव्य-अभव्य की खबर नहीं पड़ती। अर्थात् अनंतकाल में भी मोक्ष नहीं होगा-ऐसी शंका उसे रहती है- ऐसा जीव भवरहित भगवान की वाणी का निर्णय नहीं कर सकता। अभी तो जिसे अनंतभव में परिभ्रमण की शंका घेरे रहती हो उसको धर्म या मुनिपना हो जाय-ऐसा कदापि संभव नहीं है।

यहाँ कोई शंका करता है कि सम्यग्दर्शन तो केवलीगम्य है, इस कारण अपने सम्यग्दर्शन होने का निर्णय नहीं हो सकता- अतः अपने को सम्यग्दर्शन नहीं मानना ?

देखो, यह शंका विपरीत है। अरे भाई अपने सम्यग्दर्शन का निर्णय स्वयं को नहीं हो सकता-ऐसा सर्वथा एकांत मानना तो मिथ्यात्व है। हाँ, केवली जैसा प्रत्यक्ष अपने को नहीं दिखता-यह सत्य है; किन्तु स्वसंवेदन प्रत्यक्ष से सम्यक्त्व का निर्णय नहीं होता -ऐसा मानना तो महाविपरीतता है। अपने सम्यक्त्व का निःसंदेह निर्णय समकिती को हो जाता है। समकित का निर्णय न हो सके तो व्यवहार का ही लोप हो जावे। किसकी वंदना करनी, किसकी वंदना नहीं करनी-यह कुछ भी निर्णय नहीं हो सकेगा अर्थात् व्यवहार का लौप हो जायेगा। सम्यक्त्व का निर्णय न होने से तो समस्त मुनि-श्रावक की प्रवृत्ति भी मिथ्यात्वरूप ठहरेगी। तथा वे अपने को समकिती न माने और सभी जीव अपने को मिथ्यादृष्टि ही मानें तो फिर 'ये गुरू हैं, ये धर्मात्मा वंदनीय है'-ऐसा कुछ भी नहीं रहता। सामने वाला जीव सम्यग्दर्शन सहित है या सम्यग्दर्शन रहित है ?-इसका निर्णय किये बिना वंदनादि व्यवहार का विवेक कहाँ बनेगा ?

Shree kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

अहो! मुनिदशा तो अलौकिक है। ऐसी मुनिदशा होने के पूर्व ही सम्यग्दर्शन होता है। सम्यग्दर्शन होते ही तुरंत मुनि हो जाय-ऐसा नहीं, परन्तु उसको यथार्थ मुनिदशा का निर्णय तो हो ही जाता है और स्वयं को निजात्मा के सम्यग्दर्शन की निशंकता भी हो जाती है। जो यह कहते हैं कि ऐसा निर्णय नहीं हो सकता उनको तो भगवान के मार्ग की श्रद्धा ही नहीं है । जिसको, 'मैं अब भवरहित होऊँगा'- ऐसी भी निशंकता नहीं है उसको धर्म कैसा? समकिती को तो अपनी निशंकता होती ही है ।

सम्यग्दर्शन के निर्णय बिना, यह समकिती है, यह श्रावक है, यह मुनि है-ऐसा निर्णय भी कैसे होगा? अतः परीक्षापूर्वक सम्यग्दर्शन का निर्णय करने के पश्चात् शंका न रखना। अपने को स्वसंवेदन से निर्णय हुआ, वहाँ 'मुझे मिथ्यात्व होगा' -ऐसा संदेह धर्मी को रहता ही नहीं। देखो, अंतर की दशा हुई हो और स्वसंवेदनादि हुआ हो उसकी यह बात है। मूढ़ जीव अपने को स्वच्छन्दता से समकिती मान लें-ऐसे जीवों की यहाँ बात नहीं है। यह तो जैनमार्ग है। वस्तु के स्वभाव का मार्ग है । अभी अंतर में स्वभावका भान भी न हुआ हो और मानलें कि 'हम समकिती है, हम निःशंक है' तो वह तो महा स्वच्छन्दी है; उसको जैनमार्ग की खबर नही।

जैसे कड़वे चिरायते की थैली पर 'शक्कर' नाम लिख देने से कोई चिरायता मीठा नहीं हो जाता। वैसे ही अभी तो राग से धर्म माने, स्वच्छन्दता का पोषण करे और जैन नाम धराकर अपने को समकिती माने; किन्तु इससे कोई अंतर में सम्यग्दर्शन नहीं हो जाता। उल्टे वह तो स्वच्छन्दी होकर मिथ्यात्व का पोषण करता है। समकिती का जहाँ निर्णय हो वहाँ शंका नहीं रखना। मिथ्यादृष्टि तो अन्यमती है । जो चिदानंद स्वभाव की दृष्टि से मिथ्यात्व को जीतता है वह जैन है। जिसको ऐसे स्वभाव का भान नहीं है ओर राग से धर्म मानता है वह जीव अन्यमती है। स्वयं अपने को मिथ्यादृष्टि माने वह तो अन्यमती हुआ; इसका यह अर्थ नहीं समझना कि अंतर में स्वभाव के स्वसंवेदन बिना भी अपने को समकिती मान लेना। सम्यग्दर्शन का निर्णय स्वयं को अपने स्वसंवेदन से होने पर समकिती स्वयं निःशंक हो जाता है और इसप्रकार सम्यग्दर्शन का निर्णय होता है। अतः सम्यग्दर्शन का निर्णय नहीं हो सकता ऐसा एकांत पक्ष ग्रहण नहीं करना चाहिये।

www.vitragvani.com

इसप्रकार स्वसंवेदनज्ञान सम्यग्दर्शन का चिह्न है और उसके द्वारा सम्यग्दर्शन का निर्णय हो सकता है-यह बात करके अब तत्त्वार्थ श्रद्धान की बात करते हैं।

तत्त्वार्थ श्रद्धान भी सम्यग्दर्शन का बाह्य चिह्न है।

जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष-ये सात तत्त्व हैं। इन सात तत्त्वों के साथ पुण्य-पाप को गिनने से नौ पदार्थ हैं; इन्हें नौ तत्त्व भी कहते हैं। -ऐसे तत्त्वों की श्रद्धा अर्थात् उनके सन्मुख बुद्धि, रुचि अर्थात् उसरूप अपना भाव करना, प्रतीति अर्थात् जिसप्रकार सर्वज्ञ भगवान ने कहा उसप्रकार ही है-ऐसा विश्वास करना-ऐसा तत्त्वश्रद्धान सम्यग्दर्शन का बाह्य चिह्न है।

दर्शन अर्थात् जैनमार्ग क्या है? उसका यह वर्णन चल रहा है। अंतर में तो सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र द्वारा जो जिन भाव भाते हैं। 'जिनभावना' अर्थात् -राग रहित स्वभाव की भावना ; वह जिसको वर्तती है- ऐसी मुनि धर्म मुद्रा है, वह दर्शन मार्ग है। ऐसे मुनिराज को जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप धर्म है उसमें से यहाँ सम्यग्दर्शन का वर्णन चल रहा है। धर्मी गृहस्थ को भी ऐसा सम्यग्दर्शन होता है।

आत्मा का स्वभाव शुद्ध चिदानंद है। उसमें विकार नहीं है। एकसमय का विकार वह मैं नहीं, मैं ज्ञानानन्द मूर्ति हूँ- ऐसे भेदज्ञान द्वारा जिसको सम्यग्दर्शन हुआ है और तदुपरांत जिसने अंतर में लीन होकर चारित्रदशा प्रगट की है तथा बाह्य में भी परिग्रह रहित दशा प्रगट हो गई है- ऐसी जो दशा है वह दर्शन का मार्ग है। वही धर्म की मूर्ति है । निर्विकार स्वभाव की दृष्टि में आत्मा के आनंद का अनुभव हो तभी से धर्म की शुरुआत होती है। अभी पर्याय में विकार है तथापि मैं तो शुद्ध चिदानंद मूर्ति आत्मा हूँ, विकार मेरा स्वभाव नहीं-ऐसा स्वसंवेदन ज्ञान हुआ और चैतन्य स्वभाव की प्रतीतिरूप सम्यग्दर्शन हुआ; वहाँ स्वसंवेदन प्रत्यक्ष से सम्यग्दर्शन का निर्णय हो जाता है-ऐसा सम्यग्दर्शन वह धर्म का मूल है, क्योंकि सम्यग्दर्शन के बिना धर्म नहीं होता। जैसे जड़ के बिना वृक्ष नहीं होता; वैसे ही सम्यग्दर्शन के बिना धर्म नहीं होता।

तत्त्वार्थ श्रद्धान भी सम्यग्दर्शन का बाह्य चिह्न है । जीव-अजीवादि जो तत्त्व हैं उन्हे जैसा है वैसा समकिती श्रद्धता है; अंतर में निर्विकल्प चिदानंद स्वभाव की प्रतीति के साथ नव तत्त्वों की यथार्थ प्रतीति भी होती है। तथा उन तत्त्वों को जैसा का तैसा

www.vitragvani.com

आचरता है-हेय को हेय जानता है। उपादेय को उपादेय जानकर आदर करता है।-ऐसा तत्त्वार्थ श्रद्धान सम्यग्दृष्टि के होता है।

तथा प्रशम, संवेग, अनुकंपा और आस्तिक्य-ये भी सम्यग्दर्शन के बाह्य चिह्न है। अब इनका वर्णन करते हैं।

चिदानंद स्वभाव की प्रतीतिरूप निर्विकल्प भाव है वह तो यथार्थ समकित है और उस सम्यग्दर्शन की भूमिका में होने वाले प्रशम, वैराग्य आदि भाव उस सम्यग्दर्शन के बाह्य चिह्न हैं।

प्रशमः- अनन्तानुबंधी क्रोधादि कषायों का उपशम होना प्रशम है। अन्दर में आत्मा की शान्ति प्रगटी है वह प्रशमभाव है। वह प्रशमभाव आत्मा का अकषायी परिणाम है। वह गुणरूपभाव है, राग भाव नहीं; किन्तु सम्यग्दर्शन की अपेक्षा से वह भाव जुदा है अतः उसे सम्यग्दर्शन का बाह्य लक्षण कहा है। प्रशम अर्थात् साधारण शुभभाव रखना या कषाय मंद रखना; उसकी यहाँ बात नहीं है। किन्तु सम्यग्दर्शन होने पर आत्मा में वीतरागी शान्ति प्रगटे और अनंतानुबंधी कषाय का उपशम हो जाये- उसका नाम प्रशम है- ऐसा प्रशम समकिती के होता है। इसकारण 'प्रशम' को सम्यग्दर्शन का चिह्न कहा है। सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा राजपाट में हों उससमय भी उनके अंतर में अकषायी उपशांतभाव का रस तो वर्तता ही है और अज्ञानी मूढ़ जीव हाथ में पिच्छी लेकर पुजता हो तो भी उसके जरा भी प्रशम नहीं है।

जैसे कोई अरबपति मनुष्य सादा वेष धारण करके निकला हो तो भी उसके अंदर में अरबपतिपने की हूँक है और दूसरा मनुष्य बाहर में (पुलिस जैसा) साफा और बूंट का ठाठ करता हो किन्तु घर के अंदर चारों कोने खाली हो, एकदम काली हंडिया में हाथ से खिचड़ी बनाकर खाता हो। वैसे ही यहाँ जिसको अंतर में आत्मा का स्वसंवेदन ज्ञान हुआ है, अपूर्व आनंद का अनुभव हुआ है- ऐसे समकिती जीव को अन्तर में चैतन्य स्वभाव की हूँक वीतरागी शान्ति वर्तती है-वह प्रशम है। युद्ध में या राजपाट के संयोग में खड़े हो, अल्पराग-द्वेष भी होते हों; तथापि धर्मी की दृष्टि में चैतन्य स्वभाव की हूँक वर्तती है अर्थात् उसको प्रशम वर्तता है। अज्ञानी जीव बाहर के

www.vitragvani.com

ठाठ-बाट में फिरता हो अर्थात् व्रत-तप-त्यागादि करे, दया पाले, किन्तु अंतर में शुभराग द्वारा धर्म मानता है, उसके घर में चारों कोनें खाली है अर्थात् उसको अंतर में आत्मा की शान्ति का अंश भी नहीं है। उसको शुभराग होने पर भी प्रशम नहीं है। अतः कहा है कि समकिती के बाह्य चिह्न के रूप में प्रशमादि होते हैं। अंतर में शान्ति के वेदन द्वारा सम्यग्दर्शन का निर्णय हो जाता है- अतः वह सम्यग्दर्शन का बाह्य लक्षण है; किन्तु वह लक्षण सम्यग्दर्शन से (श्रद्धागुण) भिन्न गुण की पर्याय है अतः उसको 'बाह्य' लक्षण कहा है।

'प्रशम' का बाह्य चिह्न क्या ? अर्थात् प्रशम को किसप्रकार पहिचानना-वह कहते हैं। 'प्रशम' वह ज्ञानी का अकषायी शांतभाव है; उसके समक्ष मिथ्यादृष्टि के विपरीत भाव को भी देखते हैं, वह इसप्रकार "सर्वथा एकांत तत्त्वार्थ के कहने वाले जो अन्यमत उनकी मान्यता होना वह अनंतानुबंधीकषाय है-वह मिथ्यादृष्टि का चिह्न है।" अनेकांत जैनमत के अतिरिक्त राग से धर्म मनवाने वाले जो एकांतमत उनकी जिसको मान्यता हो वह जीव मिथ्यादृष्टि है।

तथा बाह्य वेष में सत्यार्थपने का अभिमान करना और शरीर में आत्मबुद्धि रूप अभिमान करना भी अनंतानुबंधी कषाय का कार्य है और वह मिथ्यादृष्टि का चिह्न है।

देखो, यहाँ 'बाह्य वेष में सत्यार्थपने का अभिमान' कहा- इसका तात्पर्य क्या ? वस्त्रादि परिग्रह युक्तपना तो यथार्थ बाह्य वेष भी नहीं है, वह तो विपरीत वेष है। वस्त्रादि सहित मुनिपना मानना तो अनंत संसार का कारण है किन्तु बाह्य वेष को अर्थात् शरीर की दिगम्बर दशा को ही सत्यार्थ मुनिपना मान ले तो यह भी देहबुद्धि वाला मिथ्यादृष्टि है। मुनि के शरीर की दशा दिगम्बर ही होती है-यह बात सत्य है; किन्तु अंतर में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगटे बिना अकेले शरीर की दिगम्बर दशा को ही मुनिपना मानने वाला भी मिथ्यादृष्टि ही है। निर्ग्रन्थदृष्टि और निर्ग्रन्थवृत्ति हो-ऐसी दशा ही मुनिदशा है। जैसे केसर लेने के लिये निमित्तरूप बरन्डी इत्यादि ही होती है, किन्तु बरन्डी वह कोई केसर नहीं है। वैसे ही सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप जो केसर अर्थात् मुनिदशा उसके निमित्तरूप भी दिगम्बर दशा ही होती है। जो ऐसे अन्तर बाह्य दशा के बिना मुनिपना मानते हैं वे मिथ्यादृष्टि हैं।

www.vitragvani.com

जो जीव ऐसे मार्ग की सच्ची श्रद्धा रखता है उसको भले ही चारित्रदशा न हो तथापि वह धर्मी है और इससे विपरीत श्रद्धा करने वाला- राग के आश्रय से धर्म मानने वाला भले ही त्यागी हो और व्रत पालन करता हो तथापि मिथ्यादृष्टि है। बिगड़े हुए दूध के समान है। जैसे बिगड़े हुए दूध की अपेक्षा खट्टी छाछ भी श्रेष्ठ है क्योंकि वह खाने के योग्य तो है। वैसे ही मिथ्यादृष्टि द्रव्यलिंगी साधु की अपेक्षा सम्यग्दृष्टि गृहस्थ श्रेष्ठ है; क्योंकि वह सम्यग्दृष्टि (गृहस्थ) तो मोक्षमार्ग का आराधक है और द्रव्यलिंगी मिथ्यादृष्टि बिगड़े हुए दूध के समान मोक्षमार्ग का विराधक है।

देह की क्रिया मुझसे होती है, उससे मुझे धर्म होता है अथवा क्षणिक रागादि पर्याय जितना ही मैं हूँ-ऐसी जो पर्यायबुद्धि है, वह भी मिथ्यादृष्टि जीव का लक्षण है। ज्ञान का क्षयोपशम होने पर उसका अभिमान हो जाना भी पर्यायबुद्धि-मिथ्यादृष्टि ही है।-इसप्रकार-

1. एकांत तत्त्व के प्रतिपादक अन्यमत की मान्यता,
2. बाह्य वेष में, शरीर की दिगम्बर दशा में सत्यार्थपने का अभिमान तथा
3. पर्याय में एकांत आत्मबुद्धि द्वारा अभिमान- ये तीनो अनंतानुबंधी कषाय के कार्य हैं; और मिथ्यादृष्टि के ही ये होते हैं। जिसको ये तीनो प्रकार की मिथ्या मान्यतायें नहीं होती और यथार्थ चिदानंद स्वभाव की दृष्टि से वीतरागी शान्ति का अंश प्रगटा हो-वह समकिती का प्रशम गुण है।

तथा बाह्य में अनुकूलता-प्रतिकूलता होने पर उनमें एकत्त्वबुद्धि पूर्वक राग-द्वेष समकिती को नहीं होते। मिथ्यादृष्टि जीव को पर में एकत्व बुद्धि से राग-द्वेष भाव होता है। वह पर के कारण लाभ हानि मानकर राग-द्वेष करता है, श्वान की तरह! जैसे श्वान (कुत्ता) को कोई पत्थर मारे तो वह पत्थर को काटने लगता है; किन्तु ज्ञानी को वैसे राग-द्वेष नहीं हैं। यद्यपि ज्ञानी के राग-द्वेष होते हैं; तथापि मिथ्यादृष्टि की भांति पर में एकत्त्वबुद्धि पूर्वक के राग-द्वेष ज्ञानी के नहीं होते, सिंह की तरह! जैसे सिंह को बंदूक से गोली लगे तो वह बंदूक के सामने नहीं देखता अपितु गोली चलाने वाले पर झपट्टा मारता है। वैसे ही धर्मी संयोग के सामने नहीं देखता अर्थात्

www.vitragvani.com

संयोग के कारण से राग-द्वेष नहीं मानता; अपने भाव में अपने अपराध से विकार हुआ-ऐसा जानकर स्वभाव की लीनता के बल से उन्हें टालने का प्रयत्न करता है। बाहर के अनुकूल-प्रतिकूल संयोग के कारण मुझे राग-द्वेष नहीं-ऐसी भेदज्ञान की बुद्धि धर्मी को सदा वर्तती है और उस भेदज्ञानपूर्वक कषाय का अभाव होना 'प्रशम' है। समकिती की अनंतानुबंधी कषाय तो होती ही नहीं, इसके अतिरिक्त अन्य अल्प कषायें होती हैं और बाहर में आरंभादिक क्रिया में हिंसा होती है; किन्तु वह उसको भला नहीं जानता। समकिती को लड़ाई इत्यादि का भाव भी होता है और विशाल-विशाल जिनमंदिर बनवाने, प्रतिष्ठा महोत्सव करवाने जैसा शुभभाव भी होता है; किन्तु वह उस राग को धर्म नहीं मानता और न आरंभ या हिंसा को भला जानता है। उस समय भी उसको अंतर की वीतरागी अकषाय शान्ति का अंश वर्तता है- इसका नाम प्रशम है; और वह सम्यग्दर्शन का बाह्य चिह्न है।

भगवान आत्मा एकसमय में अनंत गुणों से भरा हुआ है। वर्तमान अवस्था में जो पुण्य-पाप के भाव होते हैं वह आत्मा का मूलस्वभाव नहीं वरन् विकार है। उस विकार रहित ज्ञानानंद स्वभाव की निर्विकल्प प्रतीति वह सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन होने की योग्यता वाले जीव को सच्चे देव-गुरु-शास्त्र की यथार्थ पहिचान होती है। अहो! ऐसा मनुष्य अवतार मिला, उसमें बहुत जीवों का बहुत काल तो चला गया, अल्पकाल रहा। बहुत उम्र तो व्यतीत हो गयी; तथापि अभी भी आत्मा समझमें नहीं आया। अरे! सच्चे देव-गुरु-धर्म की भी यथार्थ पहिचान नहीं हुई। उसका तो क्या अवतार? क्या मनुष्यपने की सफलता? अहो! मेरा आत्मा ज्ञानानंद स्वभाव से परिपूर्ण है, संयोग रहित है, उपाधि से रहित है- ऐसे आत्मा का अन्तर में स्वसंवेदन ज्ञान द्वारा अनुभव हो और उसके साथ ही निर्विकल्प प्रतीति हो वह सम्यग्दर्शन है। गृहस्थाश्रम में भी वह सम्यग्दर्शन होता है। अरे! तिर्यन्चगति में भी होता है। ऐसे सम्यग्दर्शन प्राप्त जीव का चिह्न क्या? उसका यह वर्णन चलता है।

अरे! सम्यग्दर्शन क्या है और वह कैसे हो?-इसकी भी खबर न हो और जिन्दगी ऐसे की ऐसे चली जाय.... तो फिर पशु के अवतार में और मनुष्य के अवतार में

Shree kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

भेद ही क्या रहा ? मात्र देह का ही भेद रहा। सम्यग्दर्शन के निमित्तरूप देव-गुरु-शास्त्र कैसे होते हैं ? यथार्थ जैनमार्ग कैसा होता है ?-उसकी पहिचान के लिये यह वर्णन चलता है। यथार्थ जैनमार्ग की पहिचान के बिना सम्यग्दर्शन नहीं होता और बिना सम्यग्दर्शन के कल्याण नहीं होता। आत्मा के स्वभाव की प्रतीति न करे और प्रतीति के साधनों में प्रीति भी न करे तो भाई! तूने मनुष्य होकर नया क्या किया ? बाहर में पुण्योदय से लक्ष्मी आदि के ठाठ मिलें या पापोदय से वे टलें उसमें आत्मा का कुछ भी हित-अहित नहीं है, तथा रूपये-पैसे मिलें उसमें भी आत्मा का कुछ हित नहीं है। और वर्तमान में कुछ दानादिक का शुभभाव करे वह भी जीव को शरण नहीं है। आत्मा की शान्ति उसमें भी नहीं है। यहाँ तो सम्यग्दर्शन की बात है। वही धर्म का मूल है। सम्यग्दर्शन होने पर आत्मा को स्वभाव की शरण से अतीन्द्रिय शान्ति के अंश का वर्तमान में वेदन होता है।

सम्यग्दर्शन के साथ अकषाय शान्ति का भाव होता है वह प्रशम है और सम्यग्दर्शन का बाह्य चिह्न है अर्थात् ऐसा प्रशम हो वहाँ सम्यग्दर्शन होता है। इसप्रकार प्रशम का वर्णन हुआ। अब संवेगादि का वर्णन करते है।

संवेगः- धर्म और धर्म के फल में परम उत्साह वह 'संवेग' है। तथा साधर्मियों के प्रति अनुराग व पंच परमेष्ठी के प्रति परम प्रीति वह भी 'संवेग' है। अहो! आठ वर्ष के बालक अथवा तिर्यंच को भी सम्यग्दर्शन होने पर ऐसी दशा होती है। उसको आत्मा के शुद्धस्वभावरूप धर्म के प्रति परम उत्साह होता है; तथा उस धर्म के फल के प्रति भी उत्साह होता है; किन्तु उसको पुण्य या पुण्य के फलरूप संयोग के प्रति उत्साह नहीं होता। अहो! तिर्यंच को भी भगवान के समवसरण में दिव्यध्वनि सुनते हुए अंतर में भान हो जाता है कि अहो! अहो! "यह मेंढ़क का देह मैं नहीं, मैं तो चिदानंद स्वरूप शुद्ध आत्मा हूँ।" इसप्रकार वह भी अंतर में स्वभाव की महिमा प्रगट करके सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लेता है। उसको अपने स्वभाव के प्रति परम उत्साह होता है और केवलज्ञान के प्रति भी परम उत्साह होता है। संसार के प्रति उत्साह टूटकर आत्मा के धर्म और धर्म फल के प्रति परम उत्साह प्रगट होता है । इसका नाम 'संवेग' है। -ऐसा संवेग समकिती जीव के होता है।

www.vitragvani.com

जैसे पुत्र के झूले के समीप विशाल सर्प आ गया हो और अन्य उपाय न हो तो पुत्र के प्रेमवश वहाँ सर्प को हाथ में पकड़ लेते हैं। वहाँ यद्यपि सर्प को हाथ में पकड़ तो रखा है; किन्तु क्या उसको पकड़े रहने का उत्साह है? पकड़े रहने की बुद्धि है? नहीं । वैसे ही समकिती धर्मात्मा को निचलीदशा में राग-द्वेष तो हों, किन्तु उसे उनमें उत्साह नहीं है, प्रीति नहीं है। उस राग को पकड़ने की बुद्धि नहीं है। होंश, प्रीति और उत्साह तो स्वभाव में ही वर्तता है। आत्मा के शुद्ध स्वभावरूप धर्म और उसका फल केवलज्ञान-उसके प्रति समकिती को परम उत्साह होता है। इसके अतिरिक्त राग का या राग के फल का उत्साह धर्मी के उड़ गया होता है।

तथा धर्मात्मा को साधर्मियों के प्रति भी परम अनुराग होता है। अपने जैसे सम्यक् श्रद्धा वाले जीवों को देखे वहाँ परम अनुराग आता है कि अहो! धन्य है.... साधर्मी मिले! तथा सच्चे देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा रखने वाले साधर्मी के प्रति प्रीति होती है और पंच परमेष्ठी भगवंतों के प्रति भी उसको परम प्रीति होती है। अरिहंत भगवान और उनकी प्रतिमाजी, सिद्ध भगवान, वीतरागी दिगम्बर मुनि-आचार्य, उपाध्याय, साधु-ऐसे परमेष्ठी भगवंतों के प्रति भक्ति और उत्साह का भाव आता है। समकिती का ऐसा संवेग है।

यहाँ धर्म और धर्म के फल के प्रति समकिती को परम उत्साह होता है-ऐसा कहा, किन्तु उसको अभिलाषा नहीं कही; क्योंकि उसे विषयों की अभिलाषा नहीं होती। विषयों में सुखबुद्धि नहीं है। यहाँ अस्थिरता सम्बन्धी राग के कारण होने वाली अभिलाषा को नहीं गिना है। किन्तु मिथ्यादृष्टि के विषयों में सुखबुद्धि के कारण जो इन्द्रिय विषयों की चाह है उसे ही अनुराग कहते हैं। देखो, अंतर की दृष्टि का भेद पड़ गया है। मिथ्यादृष्टि जीव मिष्ठान त्यागकर सूखी रोटी खाता हो तथापि मैंने मिष्ठान छोड़ा और सूखी रोटी खाई'-ऐसी विपरीत मान्यता का सेवन वह कर रहा है-इस कारण उसको विषयों की ही अभिलाषा है। और दूसरी तरफ सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा चक्रवर्ती हो और ऐसे बत्तीस ग्रास का आहार लेता हो कि छियानवें करोड़ पायदल जिसका एक ग्रास पचा न सकें; तथापि उसको अंदर में चिदानंद स्वभाव की प्रीति के कारण विषयों में से सुख बुद्धि उड़ गयी होती है। अतः वस्तुतः उसको इन्द्रिय विषयों की अभिलाषा नहीं है और जो राग होता है उसकी भी प्रीति नहीं है क्योंकि निज

www.vitragvani.com

स्वभाव की प्राप्ति का जो उत्साह है उसे अभिलाषा कहते नहीं है। देखो, समकिती के ऐसा संवेग होता है।

समकिती के ऐसा धर्म और उसके फल में उत्साहरूप संवेग होता है। उस 'संवेग' में 'निर्वेद' भी आ जाता है। जिसके स्वभाव तरफ का उत्साह हुआ उसके संसार तरफ का उत्साह छूट गया है। अपने शुद्ध स्वभावरूप धर्म की प्राप्ति के प्रति अनुराग हुआ वहाँ अन्य सभी अभिलाषाओं का त्याग हुआ, सर्व पर-पदार्थों के प्रति वैराग्य हुआ- यही 'निर्वेद' है। ऐसे प्रशम, संवेग और निर्वेदरूप जो अकषायभाव हैं, वे सम्यग्दर्शन के साथ होते ही है। अतः वे सम्यग्दर्शन का लक्षण है; किन्तु वे सम्यग्दर्शन से भिन्न गुण की पर्याय है अतः उन्हे सम्यग्दर्शन का बाह्य लक्षण कहा है।

अनुकंपाः- समकिती जीव को सभी प्राणियों के प्रति उपकार की बुद्धि तथा मैत्रीभाव हो वह 'अनुकंपा' है, और वह माध्यस्थभाव है। दूसरे अज्ञानी जीव अज्ञानभाव से दुःखी हैं यह देखकर ज्ञानी के उन पर दया आती है । देवों पर भी दया है कि अरे! यह जीव भी उसके अज्ञानभाव से दुःखी है। धर्मी के इसप्रकार की अनुकंपा युद्ध के समय भी छूटती नहीं है। समकिती को सर्व जीवों के हित की बुद्धि है- इसकारण किसी के प्रति बैर बुद्धि नहीं है, पर में इष्ट-अनिष्ट बुद्धि नहीं है और न पर का बुरा चाहते हैं-ऐसा माध्यस्थभाव समकिती को होता है। मिथ्यादृष्टि पर जीव की दया पाले वहाँ "मैने इसको बचाया या मुझे इस दया के भाव से लाभ है"-ऐसी मिथ्याबुद्धि है; अर्थात् समकिती के जैसा अनुकंपा का भाव उसके नहीं होता। ज्ञानी ज्ञाता-दृष्टापने की बुद्धिपूर्वक कहीं पर का स्वामित्व ही नहीं मानते, किसी का बुरा करने का अभिप्राय ही नहीं है, सर्व जीवों के प्रति हित बुद्धि है- ऐसा माध्यस्थभाव उनके होता है। उसका नाम यहाँ अनुकंपा है।

समकिती जीव अपने को पर से सुख-दुःख या जीवन-मरण होना नहीं मानते तथा अपने से पर को सुख-दुःख या जीवन-मरण होना नहीं मानते। अरे! समकिती के हाथ में हथियार हो तब भी अंतर में ऐसा ही अभिप्राय पड़ा है। अहो! अभी तो जीवों को सम्यग्दर्शन की सच्ची बात का श्रवण भी दुर्लभ हो गया है; किन्तु सम्यग्दर्शन

www.vitragvani.com

के बिना जीव कितनी ही क्रियायें करे वे सब व्यर्थ है। देखो, यह समकिती का अभिप्राय! कैसा अभिप्राय ? कि मैं किसी भी पर जीव का जीव-मरण, सुख-दुःख नहीं कर सकता। वैसे ही पर जीव मुझे जीवन-मरण या सुख-दुःख नहीं कर सकते-ऐसा धर्मी का अभिप्राय है। जैसे लकड़ी के पड़ने से बिल्ली की कमर टूट जाती है और वह अन्यत्र चलने मे असमर्थ हो जाती है। वैसे ही सम्यक् श्रद्धा द्वारा समस्त विपरीत अभिप्राय टूट गया वहाँ संसार की कमर टूट जाती है; तत्पश्चात् समकिती को जो रागादि होते हैं वे बहुत अल्प हैं- ऐसी समकिती की दशा है। जहाँ-जहाँ आत्मा है वहाँ-वहाँ ऐसी प्रतीतिरूप धर्म भी समकिती के साथ ही वर्तता है।

मोक्षमार्ग की प्रथम सीढ़ीरूप जो सम्यग्दर्शन, उसका यह वर्णन चल रहा है । सम्यग्दर्शन होने पर जीव के कैसे भाव होते है- यह बात चल रही है। प्रशम, संवेग, निर्वेद और अनुकंपा- ये भी सम्यग्दर्शन के बाह्य चिह्न हैं।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप अंतरंग दशापूर्वक बाह्य में भी निर्ग्रन्थ दशा हुई हो-ऐसी निर्ग्रन्थ दशारूप मुनिदशा वह जैनमार्ग की मुद्रा है, उसे ही जैनदर्शन कहा है।-ऐसे जैनदर्शन की प्रतीतिपूर्वक जो आत्मा के ज्ञानानंद स्वभाव की प्रतीति हो वह सम्यग्दर्शन है। उसका यह वर्णन है।

अंतर में निर्ग्रन्थ मुनिदशा हो वहाँ बाह्य में भी वस्त्ररहित दिगम्बर अपरिग्रही दशा ही होती है। अंतर में मुनिदशा हो और बाहर में दिगम्बर दशा न हो-ऐसा बनता ही नहीं। जिसको बाहर में निमित्तरूप ही वस्त्रादि सहित दशा हो और उसे मुनिपना माने उसकी तो मुद्रा ही खोटी है। जैनमुद्रा कैसी होती है ?- इसकी भी उसको खबर नहीं है। अंतर में अपरिग्रह दृष्टि और अपरिग्रह वृत्ति हो और बाहर में शरीर की भी दशा अपरिग्रही हो -ऐसी जैनधर्म की मुद्रा है।

जैन अर्थात् जीतने वाला,-किसको जीतने वाला ?- द्रव्य-गुण त्रिकाल एकरूप है; पर्याय में क्षणिक विकार और मिथ्यात्वादि हैं वे अधर्म हैं, वह अजैनपना है, उसको जो चिदानंद स्वभाव के भान पूर्वक जीते-नाश करे वह जीव जैन है। जिसने मिथ्यात्व का नाश किया और तदुपरांत राग-द्वेष का भी नाश करके मुनिदशा प्रगट की- ऐसे

www.vitragvani.com

जो जैन, उनकी बाह्य मुद्रा भी निर्ग्रन्थ दिगम्बर होती है- इसका नाम जैनदर्शन है। अब ऐसे जैनदर्शन में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप जो धर्म है उसका मूल सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन के बिना चारित्रदशा -मुनिदशा नहीं होती। उस सम्यग्दर्शन की पहिचान के बाह्य चिह्न क्या है-उसकी बात यहाँ चल रही है।

सम्यग्दर्शन के साथ निज का स्वसंवेदन होता है। आत्मा के अतीन्द्रिय आनंद के अंश का वेदन होता है- इस चिह्न द्वारा स्वयं को अपने सम्यग्दर्शन का निर्णय हो जाता है। सम्यग्दर्शन श्रद्धा गुण की पर्याय है, उसकी पहिचान अन्य गुण की पर्याय द्वारा करने को व्यवहार कहा है और उस अन्य गुण की पर्याय को सम्यग्दर्शन का बाह्य चिह्न कहा। उन बाह्य चिह्नों में यहाँ प्रशमादि का वर्णन चल रहा है।

'प्रशम' आत्मा की अकषाय शान्ति है। समकिती के वैसा शान्त प्रशम भाव होता है। तदुपरांत आत्मा के शुद्धस्वरूप को साधने का तीव्र उत्साह होता है-वह संवेग है। संसार और संसार सन्मुख के भावों के प्रति उसको उदासीनतारूप वैराग्य होता है- वह निर्वेद है।- ऐसे प्रशम, संवेग, निर्वेद समकिती के होते हैं और इन चिह्नों से समकिती की पहिचान होती है।

समकिती के अनंतानुबंधी कषाय का अभाव हुआ है इसकारण उसको किसी भी प्राणी का अहित करने की बुद्धि नहीं होती; सर्वजीवों के प्रति हित की बुद्धि होती है। ज्ञानस्वभाव की बुद्धि है अर्थात् सर्वजीवों के प्रति माध्यस्थभाव है। यह मेरा अहित करने वाला है-ऐसी बैर बुद्धि का शल्य समकिती के नहीं होता है; क्योंकि समकिती को ज्ञात है कि मैं किसी पर प्राणी को सुख-दुःख नहीं दे सकता और कोई अन्य प्राणी मुझे सुख-दुःख नहीं दे सकता। तथा अन्य के प्रति अनुकंपा वस्तुतः तो अपने प्रति ही अनुकंपा है। किसप्रकार? पर के प्रति कषाय न हुआ अर्थात् कषाय द्वारा स्वयं का अहित होता उससे अपने को बचाया। समकिती के अभिप्राय में पर का अहित करने का भाव होता ही नहीं। अर्थात् उसके अनंतानुबंधी कषाय तो होती ही नहीं। पर की हिंसादि का कषाय भाव होने पर अपना अहित होता; किन्तु समकिती के वैसा कषायभाव नहीं होता अतः अपना अहित भी नहीं होता यही स्वयं की अनुकंपा है।

www.vitragvani.com

इसप्रकार समकिती के सम्यग्दर्शन के बाह्य चिह्नरूप प्रशम, संवेग, निर्वेद एवं अनुकंपा का वर्णन हुआ। अब आस्तिक्य भाव की बात करते हैं।

आस्तिक्यः- जीवादि पदार्थों सम्बन्धी आस्तिक्य भाव वह 'आस्तिक्य है। सर्वज्ञ भगवान ने जैसा कहा तदनुसार सर्वज्ञ के आगम से पदार्थों का स्वरूप जानना और जैसा सर्वज्ञदेव ने कहा वैसा ही है-ऐसा प्रतीतिभाव होना वह आस्तिक्य भाव; वह भी सम्यग्दर्शन के साथ होता है। अतः वह सम्यग्दर्शन का बाह्य चिह्न है। सम्यग्दर्शन के साथ ज्ञान की ऐसी पर्याय होती है, वह पर्याय सम्यग्दर्शन (श्रद्धा) से भिन्न गुण की पर्याय होने के कारण उसको सम्यग्दर्शन का बाह्य चिह्न कहा है।

1. आत्मा के शुद्धस्वभाव की निर्विकल्प प्रतीति तो सम्यग्दर्शन का सीधा अंतरंग लक्षण है। उसके साथ स्वसंवेदनरूप ज्ञान की अनुभूति होती है वह सम्यग्दर्शन का बाह्य लक्षण है।

2. सम्यग्दर्शन हो वहाँ नवतत्त्वों की-देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा-प्रतीति-रुचि, आचरण होता है।

3. सम्यग्दर्शन के साथ प्रशम, संवेग, निर्वेद, अनुकंपा और आस्तिक्य होते हैं- वे भी सम्यग्दर्शन के बाह्य लक्षण हैं।

बाह्य लक्षण कहने से शरीरादि की बात नहीं किन्तु आत्मा के सम्यग्दर्शन के अलावा अन्य भाव कि जो सम्यग्दर्शन के होने पर होते हैं- उनके द्वारा सम्यग्दर्शन पहिचाना जाता है, उन्हें यहाँ बाह्य चिह्न कहा है। श्रद्धा अर्थात् सम्यग्दर्शन के अलावा अन्य भाव-ऐसा समझना।

इसप्रकार सम्यग्दर्शन के बाह्य चिह्नों का वर्णन किया।

तथा सम्यग्दर्शन के आठ गुण हैं वे इस प्रकार है-

1. संवेग, 2. निर्वेद, 3. निन्दा, 4. गर्हा, 5. उपशम, 6. भक्ति, 7. वात्सल्य और 8. अनुकंपा।- इन आठों गुणों का समावेश प्रशमादि चार में ही हो जाता है।

- प्रशम में निन्दा, गर्हा और उपशम आ जाते है।
- निर्वेद में वात्सल्य और भक्ति आ जाती है।
- संवेग और अनुकंपा तो भिन्न कहे ही हैं।

Shree kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

इस प्रकार आठ गुण समझ लेना चाहिये।

1. निःशंकता, 2. निःकांक्षपना
3. निर्विचिकित्सा, 4. अमूढ़दृष्टि,
5. उपगुहन, 6. स्थितिकरण,
7. वात्सल्य और 8. प्रभावना।

इसप्रकार ये सम्यक्त्व के आठ अंग हैं। अब इनका वर्णन करते हैं।

1 निःशंकित अंगः- शंका नाम तो संशय का है और भय का भी है। सर्वज्ञ भगवान के शास्त्रों में धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, कालाणु द्रव्य, परमाणु आदि सूक्ष्म पदार्थ प्रतिपादित किये गये हैं, असंख्य द्वीप, समुद्र, मेरूपर्वत आदि दूरवर्ती पदार्थ कहे गये हैं तथा तीर्थंकर, चक्रवर्ती आदि पूर्व में हो गये हैं और अभी भी दूर महाविदेह क्षेत्रादि में बिराजते हैं; उनमें जो शंका करता है वह मिथ्यादृष्टि है।

तीर्थंकर कहाँ होंगे ? चक्रवर्ती कहाँ होंगे ? शास्त्रों में कहा है वह सत्य है या नहीं -ऐसी जिसको शंका है वह तो मिथ्यादृष्टि ही है। समकिती को ऐसी शंका नहीं होती। सर्वज्ञ के शास्त्रों में कहे गये असंख्यात द्वीपों, समुद्रों की जिसको श्रद्धा नहीं है अर्थात् उसमें शंका है, वह जीव मिथ्यादृष्टि है। सर्वज्ञ के आगम में द्वीप, समुद्रादि जैसे कहे वैसे ही है या अन्य प्रकार ?-ऐसी शंका समकिती को नहीं रहती।

सर्वज्ञ भगवान ने पदार्थों को नित्य-अनित्यरूप अनेकांत स्वरूप कहा है, वह सत्य होगा या असत्य ? एक ही पदार्थ में अस्ति और नास्ति-ऐसे दो विरूद्ध धर्म कैसे हो सकते हैं ?-ऐसा संदेह समकिती को नहीं होता। इसप्रकार शंका का अभाव होना वह निःशंकित अंग है।

मिथ्यात्व कर्म के उदय से अर्थात् जब जीव स्वयं विपरीत श्रद्धा करके मिथ्यात्व कर्म के उदय में जुड़ता है तब उसको सर्वज्ञ कथित तत्त्वों में शंका होती है और विपरीत दृष्टि के कारण पर-पदार्थों में आत्मबुद्धि होती है; पर में आत्मबुद्धि मिथ्यात्व का कार्य है। शरीरादि परद्रव्यों में तथा रागादि परभावों में आत्मबुद्धि होना भय उत्पादक हैं। जिसने शरीर को निज माना उसको ही शरीर के नाश का भय होता है। धर्मी तो अपने को देह से भिन्न चैतन्य स्वरूपी अविनाशी जानता है; इसकारण उसको वस्तुतः सात प्रकार का भय नहीं होता।

www.vitragvani.com

1. इसलोक का भय, 2. परलोक का भय, 3. मरण का भय, 4. अरक्षा का भय, 5. अगुप्ति का भय, 6. वेदना का भय तथा 7. अकस्मात का भय- ऐसे सात प्रकार के भय हैं। ये सभी भय सम्यग्दृष्टि के नहीं होते। मिथ्यादृष्टि को ही इसप्रकार के भय होते है।

आशंका:- भय प्रकृत्ति का उदय तो आठवें गुणस्थान तक है और उसके निमित्त से सम्यग्दृष्टि को भय भी होता है। वह भी सर्पादि को देखकर भय से भगता है, फिर भी उसके भय का अभाव किसप्रकार है?

समाधान:- समकिती के अस्थिरता के कारण सहज भय होता है; तथापि स्वरूप में संदेह नहीं पड़ता, अतः दृष्टि अपेक्षा से उसको निर्भय ही कहा जाता हे। वह पर के कारण भय नहीं मानता और उसको स्वभाव में संदेह नहीं पड़ता, अल्प भय (अस्थिरता जन्य) है उसका भी स्वामीपना नहीं है; अतः वास्तव में समकिती निर्भय ही है। अस्थिरता जन्य भय को यहाँ गौण किया है। समकिती के स्वभाव की दृष्टि में संदेह नहीं है- ज्ञानानंद स्वभाव में ही उसको स्वामीपना वर्तता है। वह परद्रव्य से अपने स्वभाव का नाश नहीं मानता अतः वस्तुतः उसको भय नहीं होता। मैं तो अनादि- अनंत चैतन्यमूर्ति हूँ, शरीर का स्वभाव विनाशीक है वह शरीर मैं नहीं हूँ; अतः मेरा मरण नहीं। -इसप्रकार समकिती के निर्भयता है। सर्पादिक के भय से भयवान दिखने पर वहाँ भी स्वरूप में संदेह उत्पन्न होकर भय उत्पन्न नहीं होता, मात्र अस्थिरताजन्य अल्प भय है। तात्पर्य यह है कि वह कमज़ोरी का दोष है। किन्तु समकिती स्वभाव में तो निःसंदेह-निर्भय ही है। -ऐसा समकिती का निःशंकित अंग है।

इसप्रकार निःशंकित अंग का वर्णन हुआ।

2. निःकांक्षित अंग:- कांक्षा अर्थात् भोग की इच्छा, अभिलाषा। यहाँ भोगों की अभिलाषा कहने से विषयों में सुखबुद्धि पूर्वक उनकी इच्छा हो उसका नाम कांक्षा है और समकिती को ऐसी वांछा नहीं होती; अतः उसको निःकांक्षितपना है। पूर्व में किये हुए भोग की तथा उन भोगों की मुख्य क्रिया की वांछा करना तथा कर्म और कर्मफल की वांछा करना कांक्षा है। तथा मिथ्यादृष्टि जीव को भोग की प्राप्ति देखकर उसे अपने मन में अच्छा जानना और इन्द्रियों को अरुचिकर विषयों के प्रति उद्वेग करना अर्थात् परवस्तु का अनिष्ट मानकर उससे द्वेष करना- ये भोगाभिलाषा के मिथ्यादृष्टि

www.vitragvani.com

के चिह्न हैं। मिथ्यादृष्टि को ही पर में सुखबुद्धि पूर्वक भोगाभिलाषा होती है तथा पर को अनिष्ट मानकर उसको दूर करने की इच्छा भी मिथ्यादृष्टि के ही होती है। *यह न्याय है कि जिसको प्रतिकूल विषयों में जितना द्वेष है उसको अनुकूल विषयों में उतना राग भी होता है।* समकिती अपने चिदानंद स्वभाव के अतिरिक्त किसी भी परद्रव्य की इच्छा नहीं करता और सामग्री के कारणरूप पुण्य की भी उसको इच्छा नहीं होती। इसप्रकार उसके निःकांक्षितपना होता है। यद्यपि सम्यग्दृष्टि जीव व्रतादिक आचरणरूप शुभ क्रिया करते हैं अर्थात् उनको अस्थिरता के कारण वैसा शुभराग आ जाता है; करने की भावना नहीं पर हो जाता है और शुभभाव से शुभकर्म का बंध होता है, किन्तु ज्ञानी उस शुभभाव या शुभकर्म के बंध की इच्छा नहीं करता। व्रतादिक को स्वरूप का साधक जानकर आचरता है-ऐसा कहा उसका अर्थ यह है कि साधकदशा में निमित्तपने सहचररूप ऐसा राग आ जाता है। वस्तुतः राग कोई साधक नहीं है, किन्तु समकिती को ऐसा भाव होता है; तथापि उस व्रतादि के शुभराग की उसे वांछा नहीं है, भावना नहीं है। देखो, जिसको व्रतादि के शुभराग की भावना है उसको निःकांक्षित गुण नहीं है, किन्तु उसको तो पुण्य और पुण्य के फल की भावना है अर्थात् वह तो मिथ्यादृष्टि है। समकिती के पुण्य की व पुण्य के फल की अभिलाषा नहीं है, उसको तो चिदानंद स्वभाव की ही भावना है, अर्थात् उसके निःकांक्षित अंग होता है ।

इसप्रकार समकिती के आठ अंगों में से दूसरे निःकांक्षित अंग का वर्णन किया। अब तीसरे निर्विचिकित्सा गुण का वर्णन करते हैं:-

3. निर्विचिकित्सा अंगः- अपने में अपने गुण की महंतता की वृद्धि से अपने को श्रेष्ठ मानकर दूसरे के प्रति, अन्य साधर्मी के प्रति हीनपने की वृद्धि होना विचिकित्सा है। समकिती को चिदानंद स्वभाव के बहुमान में ऐसी विचिकित्सा नहीं होती । स्वभाव एक समय में शुद्ध परिपूर्ण है, उसके समक्ष क्षणिक पर्याय का अथवा बाहर के संयोग का अभिमान धर्मात्मा को नहीं होता। जहाँ पूर्णानंद स्वभाव को प्रतीति में लिया वहाँ अल्प ज्ञानादिक के क्षयोपशम का अहंकार ज्ञानी के नहीं होता। कोई धर्मात्मा हो और उसको बुद्धि का विकास अल्प हो तो समकिती को उसके प्रति तुच्छता या दीनता नहीं होती।

www.vitragvani.com

कोई जीव पाप के उदय से दुःखी हो, असाता के उदय से उसका शरीर भी ग्लानियुक्त मलिन-रोगी हो, वहाँ ज्ञानी को उसके प्रति ग्लानि भाव नहीं होता। ज्ञानी जानते हैं कि यह संयोग तो पर चीज है। इसीतरह वह अपने को भी संयोग से बड़ा नहीं मानता। ज्ञान कम हो, पुण्य अल्प हो--वहाँ धर्मी को दीनता नहीं आती और ज्ञान का क्षयोपशम विशेष हो, पुण्य का योग हो उसमें धर्मी को अहंकार नहीं होता; क्योंकि धर्मी जानता है कि मैं तो चिदानंद आत्मा हूँ। मेरा बड़प्पन या हीनता संयोग से नहीं है। निरोग शरीर हो उससे आत्मा का बड़प्पन नहीं और रोगी शरीर हो उससे आत्मा की हीनता नहीं। "मैं सम्पदावान हूँ, सुन्दर शरीर वाला हूँ, यह दीन-रंक है, मेरी बराबरी नहीं कर सकता"-ऐसा धर्मी नहीं मानते। धर्मी को स्वरूप सम्पदा के समक्ष संयोगरूप सम्पदा का गर्व नहीं होता। आठ वर्ष की बालिका भी चिदानंद स्वभाव का भान करके सम्यग्दर्शन प्राप्त करे, वहाँ स्त्री शरीर होने से उसे अपनी तुच्छता नहीं भाषित होती। इसप्रकार धर्मी बाहर के संयोग के कारण अपने को बड़ा नहीं मानते न दूसरों को ही तुच्छ जानते हैं; किन्तु वे ऐसा विचार करते है कि कर्म के उदय से प्राणियों के अनेक प्रकार की विचित्र अवस्थायें-संयोग-वियोगादि होते हैं। मेरे कर्म का वैसा उदय हो तो मैं भी बाहर में वैसा होऊँ अर्थात् निर्धनता या रोग हो इससे कोई धर्मात्मा को विचिकित्सा नहीं होती। इसीप्रकार मुनिराज आत्मा के आनंद में झूलने वाले महाभावलिंगी संत होते हैं उनके भी शरीर में रोगादि हो या शरीर अशुचितारूप हो गया हो, वहाँ धर्मात्मा को उनके प्रति ग्लानि नहीं होती अपितु उनके प्रति प्रमोदभाव आता है- ऐसा समकित का तीसरा अंग है।

4. **अमूढ़दृष्टि अंगः**- अतत्त्व में तत्त्वपने की दृष्टि वह मूढ़दृष्टि है- ऐसी मूढ़दृष्टि समकिती के नहीं होती। " कोई आत्मा सर्वज्ञ नहीं हो सकता, पूर्णज्ञान किसी को होता ही नहीं। जैसे सौ घड़ों का पानी एक घड़े में नहीं समा सकता वैसे ही सभी पदार्थों का ज्ञान एक जीव के ज्ञान में नहीं समा सकता,- अतः सर्वज्ञ नहीं हो सकता"- ऐसा अज्ञानी जीव कुयुक्ति, कुदृष्टान्त पूर्वक कहते हैं- यह विपरीत तत्त्व है; किन्तु समकिती को मिथ्यादृष्टि के ऐसे कुयुक्ति, कुदृष्टान्त पूर्वक कहे हुए अतत्त्व को सुनकर मूढ़ता नहीं होतीं। वह स्पष्टपने जानता है कि उसकी बात मिथ्या है। प्रत्येक आत्मा में परिपूर्ण सर्वज्ञ होने की सामर्थ्य विद्यमान है। जैसे दश लाख मनुष्यों

Shree kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

की सभा में वक्ता ऐसा बोले कि "आत्मा स्वतंत्र है" वहाँ उससमय दस लाख मनुष्यों को वैसा ही सुनाई देता है और वैसा ही लक्ष्य में आता है। इस प्रकार दस लाख मनुष्यों के ज्ञान का निर्णय अपने ज्ञान में हो गया। इसीप्रकार प्रत्येक आत्मा में तीनकाल-तीनलोक को जानने की सामर्थ्य विद्यमान है।

"जैसा केवली भगवान ने देखा वैसा ही होता है उसमें कुछ भी फेरफार नहीं हो सकता, तो फिर पुरूषार्थ ही कहाँ रहा ?-अतः केवलज्ञान है ही नहीं।"-ऐसा कुयुक्ति से अज्ञानी कहते हैं- यह विपरीत तत्त्व की बात है, जो कि समकिती के हृदय में नहीं बैठती। समकिती निःशंकपने उसका नकार करता है कि यह बात मिथ्या है। जहाँ सर्वज्ञ भगवान के ज्ञान का निर्णय किया वहाँ मुझमें ज्ञानस्वभाव की महिमा का पुरूषार्थ आ गया। अतः सर्वज्ञ जगत में है। सर्वज्ञदेव ने देखी वैसी ही क्रमबद्धपर्याय है और उसमें पुरूषार्थ भी है। जिसको 'जगत में केवलज्ञान है' -ऐसी प्रतीति आयी उसको स्वभाव सन्मूखतारूप पुरूषार्थ हुआ। इसप्रकार समकिती को निःशंक निर्णय है और मिथ्यादृष्टि कुयुक्ति द्वारा यद्वा-तद्वा विपरीत तत्त्व कहे उसे वह नहीं मानता। इसप्रकार उसे अमूढ़दृष्टि होती है।

अभी लोगों में सर्वज्ञ, क्रमबद्धपर्याय तथा पुरूषार्थ के संदर्भ में बहुत विपरीतता चल रही है; किन्तु समकिती को इसमें रंचमात्र संदेह नहीं है। अहो! जिसने ज्ञानस्वभाव की महिमा की- सर्वज्ञ का निर्णय किया उसका वीर्य-पुरूषार्थ स्वसन्मुख हो गया। उसके भ्रान्ति अथवा मिथ्यात्व तो होता ही नहीं। केवलज्ञान को उड़ाने वाली कुयुक्तियाँ सुनकर धर्मी को शंका नहीं होती, उदासीनता या घबराहट नहीं होती।

सर्वज्ञ भगवान ने तीनकाल और तीनलोक को देखा है और तदनुसार ही क्रमबद्धपर्याय होती है, तो फिर पुरूषार्थ कहाँ रहा ?- ऐसी शंका समकिती को नहीं पड़ती। क्योंकि जहाँ केवलज्ञान का निर्णय किया वहाँ वस्तुतः जहाँ से केवलज्ञान प्रगटा ऐसे ज्ञानस्वभाव की प्रतीति हो जाती है; उसका पुरूषार्थ मुक्तिमार्ग की दिशा में प्रारम्भ हो गया है; उसकी दृष्टि राग अथवा निमित्त पर नहीं रहती अपितु ज्ञायक स्वभाव पर ही दृष्टि रहती है।-इसप्रकार समकिती को कुयुक्तियों के कारण संदेह उत्पन्न नहीं होता किन्तु वह उन्हें विपरीत जानकर उनका श्रद्धान छोड़ता है।

तथा अनेक प्रकार की लोक प्रचलित रूढ़ियाँ भी निःसार है।

www.vitragvani.com

दूज उगे, उसके दर्शन करना और उससे लक्ष्मी आती है- ऐसा मानना। गणेश चौथ मानना, नागपंचमी पर नाग को पूजना- इसप्रकार अनेक लोक प्रचलित रूढ़ियाँ होती है उन्हें समकिती नहीं मानता। तथा भूत आया, व्यंतर आया-ऐसी भ्रमणा चलती है उन्हें समकिती नहीं मानता। जो लौकिक रूढ़ियाँ हैं वे सब निःसार है और उनका आचरण भी निःसार ऐसे मिथ्यादृष्टि जीवों के द्वारा ही किया जाता है । जिसे आत्मा में सिद्ध परमात्मा होने की सामर्थ्य का परिज्ञान नही- ऐसे निःसार पुरूष ही अनेक प्रकार की लौकिक रूढ़ियों को आदरते हैं। महासती द्रौपदी के पाँच पति होने की मान्यता भी लौकिक मूढ़जीवों की रूढ़ि है। ऐसी लौकिक रूढ़िया निःसार है। वे अनिष्ट फलदायक है, उनमें कुछ सार नहीं है। धर्मी लोक प्रचलित मूढ़ताओं को नहीं मानते हैं।

अदेव में देवबुद्धि भी मूढ़ता है। अधर्म में धर्मबुद्धि या अगुरु में गुरुबुद्धि मूढ़ता है। देव न हो उन्हें देव मानना, ब्रह्मा-विष्णु आदि को देव मानना- ये सब देव मूढ़ता है। अधर्म में धर्म की बुद्धि, पापभावों में धर्म मनवाना, हिंसादि से धर्म बताना-ऐसी धर्म मूढ़ता धर्मी को नहीं होती। तथा धर्मात्मा मिथ्यादृष्टि कुगुरुओं को गुरुरूप में नहीं मानते।

इसप्रकार धर्मात्मा को देव-गुरु-धर्म के सम्बन्ध में मूढ़ता नहीं होती। जिसको देव-गुरु-धर्म के सम्बन्ध में मूढ़ता है उसको सम्यग्दर्शन नहीं होता

यहाँ देव-गुरु-धर्म का वास्तविक स्वरूप क्या है- यह बतलाते हैं।-

देव का स्वरूपः- जिनके रागादिक दोष नहीं हैं। तथा ज्ञानावरणादि कर्मों का आवरण नहीं है अर्थात् वीतरागता और सर्वज्ञता है। वे सच्चे देव हैं। समकिती ऐसे देव को पहिचानकर इनके अतिरिक्त किसी रागी-द्वेषी को देव के रूप में नहीं मानता। जिनके किंचित मात्र भी रागादिक दोष तथा निमित्तभूत कर्मों का आवरण नहीं रहा और अनंतदर्शन, अनंतज्ञान, अनंतवीर्य व अनंतसुख-ऐसे अनंत चतुष्टय प्रगट होगये हैं वह देव हैं। सामान्यपने वह 'देव' ऐसा एक ही प्रकार है; अरिहंत और सिद्ध-ये दोनो देवरूप में समान हैं; किन्तु विशेषपने भेद करने पर अरिहंत और सिद्ध ऐसे दो प्रकार हैं। अरिहंत भगवान केवलज्ञानादि से परिपूर्ण है किन्तु अभी देह सहित हैं। जबकि सिद्ध भगवान देह रहित मात्र चैतन्यबिम्ब हो गये हैं, किन्तु दोनो के केवलज्ञानादि गुण तो समान ही हैं। विशेषपने दो भेद कहे है।

www.vitragvani.com

तथा नाम भेद से भेद करें तो ऐसे देव के हजारों नाम हैं और गुणभेद से देखने पर अनंत गुण हैं।

जो परमौदारिक शरीर में स्थित हैं, घाति कर्मों से रहित हैं, अनंत चतुष्टय से सहित हैं और दिव्यध्वनि द्वारा धर्मोपदेश देते हैं- वे अरिहंत देव हैं। तथा पुद्गलमयी देह से जो रहित हैं- चैतन्य शरीरी हैं; लोक के शिखर पर बिराजमान हैं, सम्यग्दर्शनादि आठ मुख्य गुणों से जो शोभायमान है और अष्ट कर्मों से रहित हैं -ऐसे सिद्ध परमात्मा देव हैं। सर्वज्ञ वीतरागदेव के अनेक नाम हैं वे सभी नाम उस-उस गुण की अपेक्षासे सभी अरिहंत-सिद्ध भगवंतो को लागू पड़ते है। जैसेकि :-

अरिहंतः- सभी भगवंतों ने मोहादि भावकर्मरूप शत्रुओं तथा निमित्तरूप द्रव्यकर्मो का नाश कर दिया है -इसप्रकार वे अरिहंत हैं।

जिनः- चैतन्यस्वभाव के ज़ोर से राग-द्वेष-मोह को जीत लिया है- इसकारण जिन हैं।

सिद्धः- चिदानंदस्वभाव का आश्रय करके आत्मा के स्वरूप की सिद्धि प्राप्त की है, केवलज्ञानादि प्रगट किये हैं अतः सिद्ध हैं।

परमात्माः- आत्मा का जो परमोत्कृष्ट स्वभाव है वह उनको पर्याय में व्यक्त हो गया है, अतः वे परम-आत्मा, उत्कृष्ट-आत्मा हैं। स्वभाव से तो सभी जीव परमात्मपने की सामर्थ्यरूप है; किन्तु वैसी दशा केवली भगवंतो को प्रगट हुई है -अतः वे परमात्मा हैं।

महादेवः- लोक में जो महादेव कहा जाता है वह नहीं, किन्तु जिनको सर्वज्ञता और वीतरागता खिल गयी है ऐसे अरिहंत और सिद्ध भगवंत ही जगत में महादेव हैं; वे ही गुणों में बड़े हैं अतः महादेव हैं। रागी-द्वेषी-मोही जीव को महादेव कहे, वह सच्चा देव नहीं किन्तु कुदेव है और उसको मानने वाले जीवों के देव मूढ़ता है।

शंकरः- भगवान का आत्मा स्वयं सुखरूप-कल्याणरूप हो गया है। तथा वे ही निमित्तरूप से दूसरे जीवों का कल्याण करने वाले हैं -अतः वे ही वास्तविक शंकर हैं। लोकप्रचलित शंकर वह वास्तविक देव नहीं है। समकिती उसको नहीं मानता।

विष्णुः- विष्णु रक्षा करते हैं-ऐसा कहा जाता है। किन्तु वास्तव में वह कोई विष्णु है ही नहीं। भगवान ने अपनी आत्मा को मोहादिक से बचाकर स्वभाव की रक्षा की, अतः वे ही वास्तविक विष्णु हैं।

www.vitragvani.com

ब्रह्मा:- ब्रह्मा ने सृष्टि रची यह बात तो मिथ्या है। जगत स्वयं-सिद्ध अनादि अनन्त है; किन्तु भगवान का आत्मा केवलज्ञान प्रगट करके ब्रह्मस्वरूप-ज्ञानानंद स्वरूप हो गया है इससे वे ही वास्तविक ब्रह्मा है। स्वयं अपने आत्मा को केवलज्ञानादि के उत्पन्न करने वाले है।

हरि:- आत्म स्वभाव के भान और स्थिरता द्वारा सर्व कलुषितता-विकार को हर लिया है इसलिये भगवान स्वयं ही हरि है। "पापंओध हरतीति हरि,"-पाप के ओध को हरे वह हरि। वहाँ अन्य कोई भगवान पाप का नाश करने वाले नहीं हैं; किन्तु आत्मा स्वयं स्वभाव में एकाग्र होकर अपने पाप का-विकार का नाश करके परमात्मा हो गया-वह ही हरि है।

बुद्ध:- बोद्धधर्म में जो बुद्धदेव कहे जाते हैं वे नहीं, किन्तु ज्ञानस्वरूप को प्राप्त करके भगवान स्वयं बोधस्वरूप-ज्ञानस्वरूप हो गये हैं इसलिये वे ही वास्तविक बुद्ध हैं। इनके अतिरिक्त अन्य कोई देव वंदनीय नहीं हैं। भगवान के इनके अलावा सर्वज्ञ, वीतराग इत्यादि और भी अनेक नाम हैं।

अरिहंत भगवान को शरीर का संयोग होता है परन्तु वह शरीर परमौदारिक होता है। उसमे रोग, क्षुधा, तृषा इत्यादि नहीं होते। अभी तो जो यह मानते हैं कि अरिहंत भगवान का भी क्षुधा, तृषा होती है। रोगादि होते हैं- उनने तो वास्तविकरूप से अरिहंत देव का स्वरूप भी नहीं जाना है, अर्थात उनके देवमूढ़ता है। समकिती के ऐसी देवमूढ़ता नहीं होती।

गुरु का स्वरूप:- यदि प्रयोजन अपेक्षा विचारा जाय तो अरिहंत ही गुरु हैं; क्योंकि मोक्षमार्ग का उपदेश करने वाले अरिहंत हैं। वे ही साक्षात मोक्षमार्ग का प्रवर्तन कराते है अतः वे परमगुरु हैं। और उन अरिहंत भगवान के पश्चात् उनके समान ही निर्ग्रन्थ दिगम्बररूप को धारण करने वाले छद्मस्थ ज्ञान धारक गणधरादि मुनिवर हुए वे भी गुरु हैं। उनमें भी अरिहंत भगवान के जैसा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का एकदेश शुद्धपना है। केवली के पूर्ण शुद्धता है और मुनियों के आंशिक शुद्धता है-ऐसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के धारक मुनि भी गुरु हैं और उन मुनियों को जो एकदेश शुद्धता है वह उनके संवर, निर्जरा एवं मोक्ष का कारण है। अतः अरिहंत भगवान के जैसे ही मुनिवर भी गुरु हैं। वे मुक्तिमार्ग का उपदेश करने वाले हैं।

www.vitragvani.com

अब उन मुनिवरों में आचार्य, उपाध्याय और साधु- ऐसे तीन प्रकार हैं। उनमें मुनिपना तो सामान्यपने एक ही प्रकार का है। बाह्य लिंग भी समान है। पाँच महाव्रत, पाँच समिति, तीन गुप्ति-इसप्रकार तेरह प्रकार का चारित्र भी समान ही है। तप शक्ति अनुसार होता है। उनका स्वरूप भी समान है। साम्यभाव, तीन कषाय के अभावरूप उपशांत दशा भी सभी मुनिवरों के समान ही है। कोई मुनि दिगम्बर हो और कोई मुनि वस्त्र सहित हो-ऐसा जैनमार्ग नहीं है। जैनमार्ग में सभी मुनि दिगम्बर दशा वाले ही होते हैं। तथा सभी के उत्तरगुण भी समान हैं। आहारादि की विधि भी समान है। सच्चे जैनमुनि पात्र में आहार नहीं लेते, हाथ में ही आहार लेते हैं। तथा अपने लिये बनाया हुआ उद्दिष्ठ आहार नहीं लेते। गमन, आसन, स्थान आदि समस्त चर्या समान होती है। मोक्षमार्ग के साधनरूप सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र भी समान होते हैं। देखो, समस्त मुनियों की मूल श्रद्धा एक ही प्रकार की होती है, ज्ञान भी समान होता है। यद्यपि ज्ञान में न्यूनाधिकता का भेद होता है तथापि उसमें परस्पर विपरीतता नहीं होती। आचार्य, उपाध्याय तथा साधु के मुनिपने में कोई फेरफार नहीं होता। ऐसी मुनिदशा के परिज्ञान बिना अन्य किसी को भी मुनि मान लेना वह गुरू मूढ़ता है। समकिती सच्चेदेव-गुरु-धर्म के संदर्भ में मूढ़ता रहित होता है।

आचार्य, उपाध्याय, साधु के आहार की विधि एक ही प्रकार की है वे हाथ में खड़े-खड़े एक ही बार आहार करते हैं। -ऐसी ही विधि है।

ध्याता, ध्यान, ध्येय भी समान है। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र एवं तपरूप चार आराधना भी समान हैं।

इसप्रकार मुनिपने की प्रवृत्ति तीनो के समान होती है।

इन आचार्य, उपाध्याय और साधु पदों की विशेषता इतनी ही है कि जो आचार्य हैं वे पंचाचार, दीक्षा आदि दूसरों को अंगीकार कराते हैं, किसी को दोष लगा हो तो उसका प्रायश्चित कराते हैं। धर्मोपदेश, दीक्षा-शिक्षा देते हैं। उपर कहे हुए मुनियों के गुणों सहित ऐसी पदवी के धारक आचार्य हैं। वे वंदनीय हैं। देखो, ऐसे आचार्य हो वे ही वंदन करने योग्य है। इसके अतिरिक्त मिथ्यादृष्टि जीव अन्य प्रकार से आचार्यपद मनवाते हैं वह वंदनीय नहीं है।

www.vitragvani.com

जो उपाध्याय हैं वे वादित्य विद्या में कुशल होते हैं। जैनधर्म की प्रभावना के लिये अन्यमत के साथ वाद-विवाद का प्रसंग आ पड़े या कोई जैनधर्म पर आक्षेप करे तो वाद-विवाद द्वारा उसका खण्डन करना पड़े-ऐसे प्रसंग में बुद्धि के सागर उपाध्याय अपनी तर्क आदि विद्या के बल से कुयुक्ति का खण्डन कर देते हैं। उनको इस जाति का विकल्प होता है। तथा वक्तापना, कवित्व एवं शास्त्रों के रहस्यों को प्रगट करने की बुद्धिरूप गमत्व विद्या में भी उपाध्याय प्रवीण होते हैं। वे मुख्यरूप से शास्त्रों का अभ्यास करते-कराते हैं। स्वयं शास्त्र पढ़े अन्य को पढ़ावे -ऐसे उपाध्याय गुरु वंदनीय है।

आचार्य और उपाध्याय पदवी धारकों के अलावा सभी मुनि साधु हैं। उनके भी मुनिदशा के योग्य मूलगुण, उत्तरगुण, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की आराधना आदि गुण तो आचार्य और उपाध्याय के समान ही है। उनको दीक्षा देना या दूसरों को पढ़ाने आदि की प्रधानता नहीं है; किन्तु ये स्वयं अपने ही स्वरूप की साधना में तत्पर है।

यद्यपि आचार्य, उपाध्याय भी अपने स्वरूप की साधना में ही तत्पर है; तथापि उनके दीक्षा आदि देना भी होता है। जबकि मुनियों के वह नहीं होता। ऐसी दशा वाले निर्ग्रन्थ साधु होते हैं। वे ही जैनमत में वंदनीय हैं। इसके अतिरिक्त वस्त्रादि सहित साधु नाम धरावे वे वंदन योग्य नहीं है।

जिनको अंतर में मोक्षमार्ग के साधनरूप सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र वर्तते हैं, अट्ठाईस मूलगुण हैं, बाहर में वस्त्रादि का धागा भी नहीं हैं।-ऐसी सभी मुनियों की दशा होती है। जिनागम में वर्णित निर्ग्रन्थ मुनि की प्रवृत्ति के अनुसार ही सर्व प्रवृत्ति होती है। -ऐसे साधु गुरु हैं और वे ही वस्तुतः वंदनीय है। जिनके अट्ठाईस मूलगुणों में ही दोष हो- ऐसा जीव भले ही देह से दिगम्बर हो, वंदनीय नहीं है। अन्य लिंगी तो वंदनीय है ही नहीं; किन्तु द्रव्यलिंगी हो तथापि यदि यथार्थ मूलगुण न हो, श्रद्धा भी विपरीत हो तो वह भी वंदनीय नहीं है। "अभी भावलिंगी संत मुनि तो दिखते नहीं," और "मुनिदशा के योग्य बाह्य व्यवहार यथार्थ हो ऐसा कोई द्रव्यलिंगी मुनि भी दिखता नहीं"। समकिती जीव को ऐसे सच्चे मुनि देखने में न आवे और विपरीत श्रद्धा वाले ही दिखें तो भी वह उदास नहीं होता। बाहर में स्पष्टरूप से विपरीत प्रवृत्ति होने पर भी जो जीव उन्हें साधु मानता है वह तो गृहीत मिथ्यादृष्टि है। अहो! जैनमार्ग तो तीर्थंकरों से चला आ रहा है। उस मार्ग की शुद्धता में अन्य विपरीतता संभव नहीं

www.vitragvani.com

है। अज्ञानी के अनादि से अगृहीत मिथ्यात्व तो है ही; तदुपरांत वह कुदेव-कुगुरु की मान्यता से गृहीत मिथ्यात्व का नया ईंधन जलाता है। अरे! इस पंचमकाल में द्रव्यलिंगी वेषधारी, व्रतादि रहित, परिग्रह युक्त और विषयों में आसक्त-ऐसे मिथ्यादृष्टि जीव गुरु नाम धराते हैं -ऐसे कुगुरु वंदनीय नहीं है।

इस पंचमकाल में जैनमत में भी ऐसे वेषधारी कुगुरु हुए हैं। उनके नाम देते हैं। सर्वप्रथम श्वेताम्बर का नाम दिया है। श्वेताम्बर अर्थात् जो वस्त्रादि परिग्रह सहित मुनिपना मनावे, वे कुगुरु हैं और ऐसे कुगुरुओं को वंदनादि करना अनंत संसार में परिभ्रमण का कारण है। यह बात दौसौं वर्ष पूर्व जयपुर के जयचंदजी पण्डितजी ने लिखी है और इससे पूर्व भी कुन्दकुन्दाचार्यदेव इत्यादि संत अनादि से यह मार्ग दर्शाते आये हैं। वस्त्रादि सहित मुनिदशा मानने या मनवाने या उन्हें वंदनादि करने में गृहीत मिथ्यात्व के पोषण का महापाप है। उसका फल क्या ? कि अनंत संसार में परिभ्रमण।

सैंकड़ों वर्ष पूर्व तत्त्वार्थसार आदि में भी यह बात अमृतचन्द्राचार्य देव ने की है। नेमीचन्द सिद्धांत चक्रवर्ती ने गोम्मटसार में भी यह बात की है।

भगवान के मुक्त हुए पश्चात् अमुक वर्ष में बारह वर्ष का महा दुष्काल पड़ा। तब जो यथार्थ मुनिमार्ग का निर्वाह नहीं कर सके उन्होंने भ्रष्ट होकर श्वेताम्बर मार्ग चलाया और परिग्रहादि के पोषक नवीन कल्पित शास्त्र बनाये। वे शास्त्र भगवान के नहीं,गणधर के नहीं, मुनिवरों के नहीं; अरे! समकिती के भी नहीं, किन्तु मिथ्यादृष्टि के बनाये हुए हैं और मिथ्यादृष्टि में भी गृहीत मिथ्यादृष्टि के बनाये हुए हैं।

बारहवीं गाथा में कहते हैं कि "मिथ्यात्व का फल निगोद ही कहा है। इस पंचमकाल में श्वेताम्बरादिक मिथ्यामत के आचार्य लोगों द्वारा विनय-पूजनादिक चाहते हैं उन जीवों का त्रस राशि में रहने का समय अब पूरा हो गया है, और अब एकेन्द्रिय में-निगोद में जाकर लूला, गूंगा होकर अनंतकाल निवास करेंगे-ऐसा ज्ञात होता है।" देखो, यह कठोर बात नहीं किन्तु मिथ्यात्व के पाप का फल कैसा है उसका यथार्थ स्वरूप बतलाया है। किसी व्यक्ति के विरोध के लिये यह बात नहीं है, किन्तु जीव को स्वयं में मिथ्या श्रद्धा छोड़कर देव-गुरु-धर्म की सच्ची श्रद्धा करने की बात है, उसमें जीव का हित है। हे जीव! तेरे कान में ऐसी सत्य बात पड़े, फिर तू दर्शन रहित ऐसे कुदेव-कुगुरु-कुधर्म को वंदन मत करना।

www.vitragvani.com

भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्य देव ने प्रवचनसार में शुभोपयोगी मुनि को अपवाद मार्ग कहा है और शुद्धोपयोग में लीनता रहे, उसे उत्सर्ग मार्ग कहा है। इसके बदले उसमें से ही स्वच्छंदता के पोषण के लिये ऐसा अर्थ करते हैं कि वहाँ जो अपवादमार्ग कहा वह ये जो श्वेताम्बर साधु दिखते है, वह है। अहा.....हो! जो ऐसे विपरीत अर्थ करके स्वच्छन्द मार्ग का पोषण करते हैं; वे भगवान के मूलमार्ग का विरोध करते हैं। आचार्यदेव कहते हैं कि उन्हे जीभ नहीं मिलेगी-वे निगोद जायेंगे। मिथ्यात्व के पोषण का तो यही फल है।

इनके अतिरिक्त यापनीय संघ भी भ्रष्ट है, वे स्त्री को मोक्ष आदि मानते हैं, वे भी कुलिंगी है। गाय की पूँछ की पिच्छी रखने वाले गौपुच्छपिच्छ संघ तथा निःपिच्छसंघ, द्रविड़ संघ आदि जो कोई भ्रष्ट कुलिंगी पंथो में कुगरु हैं वे कोई वंदनीय नहीं है। भगवान की परम्परा से चला आया मूलसंघ दिगम्बर सम्प्रदाय, उसमे अट्ठाईस मूलगुणों के धारक, दया का उपकरणरूप मोर पिच्छी तथा शौच का उपकरण कमण्डल रखते हैं, यथोक्त विधि से हाथ में खड़े-खड़े निर्दोष आहार ग्रहण करते हैं, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र सहित हैं -ऐसे मुनिराज ही जैनमार्ग में वंदनीय हैं। भगवान तीर्थंकरदेव ने दीक्षा के समय जैसा दिगम्बररूप धारण किया था वैसा ही दिगम्बररूप धारण करने वाले हैं। अन्य कोई वेष धारण नहीं करते-ऐसे मुनि ही वस्तुतः जैनदर्शन है और वे ही वंदनीय है।

इसप्रकार गुरु का स्वरूप कहा।

समकिती को गुरु के स्वरूप में किंचित भी कचास नहीं होती। वह अन्य विपरीत कुलिंगी गुरुओं को निःशंकपने कुगुरु जानकर वंदनादि नहीं करता -ऐसा अमूढ़दृष्टिपना समकिती का चौथा अंग है।

वीतरागमार्ग में मुनियों का जैसा स्वरूप कहा है वैसा पहिचानना चाहिये। भले ही स्वयं मुनिदशा न ले सके तथापि उसकी श्रद्धा रखे तो उसका जैनदर्शन में दण्ड नहीं है। किन्तु मार्ग ही विपरीत मनवावे वहाँ तो श्रद्धा विपरीत है। मार्ग की यथार्थ श्रद्धा रखनी चाहिये। यथार्थ मुनिमार्ग का पालन न कर सके, इसकारण मुनि का स्वरूप ही विपरीत मनवाने वाला तो विपरीत श्रद्धा का पोषण करके संसार में परिभ्रमण करता है। समकिती भले ही गृहस्थ हो तथापि उसे यथार्थ मुनिमार्ग की प्रतीति है। वह मुनिराज के अतिरिक्त अन्य कुलिंगियों को वंदनादि नहीं करता।

www.vitragvani.com

अब धर्म के स्वरूप की बात करते है।

धर्म का स्वरूपः- धर्म अर्थात् क्या? जीव को संसार के दुःखरूप नीचपद से छुड़ाकर मोक्ष के सुखरूप उच्चपद में स्थापित करे धारण कर रखे- उसका नाम धर्म है। देखो, यह धर्म की व्याख्या! स्वर्ग का भव मिले वह भी संसार है और जिस भाव से स्वर्ग का भव मिले वह भाव भी धर्म नहीं हैं। पुण्य से पैसा आदि का संयोग मिले वह भी धर्म नहीं है। आत्मा को अपने स्वभाव के अवलंबन से मोक्षदशा प्रगटती है। उस मोक्ष सुख के कारणरूप जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र वे मुनि को सर्वदेश होते हैं और श्रावक को वे एकदेश होते हैं।-ऐसे एकदेशरूप या सर्वदेशरूप धर्म का मूल सम्यग्दर्शन है। अथवा निश्चय-व्यवहार-ऐसे दो प्रकार का धर्म कहा है- उसका मूल भी सम्यग्दर्शन है। देखो, सम्यग्दर्शन के बिना तो व्यवहार धर्म भी नहीं होता। सम्यग्दर्शन के बिना धर्म की उत्पत्ति होती ही नहीं।

इसप्रकार समकिती को देव-गुरु-धर्म के स्वरूप में मूढ़ता नहीं होती किन्तु वह यथार्थ मार्ग के परिज्ञान पूर्वक प्रवर्तता है।-ऐसा समकिती का अमूढ़दृष्टि अंग है।

5. उपवृंहण अथवा उपगूहन अंगः- अपने आत्मा की शक्ति को बढ़ाना वह उपगूहन अंग है। अपने पुरूषार्थ से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की वृद्धि करना ही परमार्थ से उपगूहन है। देखो, आत्मा की शक्ति को बढ़ाना-सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का विकास करना-ऐसी समकिती की भावना है। पुण्य या संयोग को बढ़ाने की भावना समकिती के नहीं है- ऐसा उसके उपगूहन अंग है। शिष्य बढ़ें या संयोग की वृद्धि हो, इससे कोई आत्मा की वृद्धि नहीं है। किन्तु स्वभाव के अवलम्बन से निज ज्ञानादि शक्ति का विकास बढ़ते जाना-उसका नाम उपवृंहण अंग है।

तथा इस अंग को उपगूहन अंग भी कहते हैं। उपगूहन अर्थात् क्या? जिनदर्शन में कोई आठ वर्ष का बालक हो वह महाभावलिंगी संत हो, अंतर में-आनन्द में झूलता हो आत्मा का ही अर्थी हो-ऐसे संत हों -उन्हें सहज कोई दोष हो जाये तो उनकी निंदा करके जैनधर्म की अवहेलना न होने दे, किन्तु अपनी बुद्धि आदि से उसे छिपाये। कोई ऐसा कहे कि अरे! ऐसे तुम्हारे गुरु!! तो वहाँ गुरु की निंदा न होने दे। गुरुपद तो आत्मा में है या शरीर में?-ऐसा बुद्धि से खुलासा करे और जैनधर्म की हीनता न होने दे।-ऐसा समकिती का पाँचवा उपवृंहण या उपगूहन अंग है।

www.vitragvani.com

6. स्थितिकरण अंगः- जो धर्म से च्युत होते हों उन्हें उपदेशादि द्वारा धर्म में दृढ़पने स्थिर करना स्थितिकरण अंग है। स्वयं को धर्म क्या है- इसकी खबर हो तो ही अन्य को धर्म में स्थिर करे न! तात्पर्य यह है कि समकिती को ही ऐसे अंग यथार्थ होते हैं। समकिती को कोई निंदादि करे, अनादर करे- वहाँ संदेह नहीं होता कि अरे! ऐसे पापी, अधर्मी जीवों को जगत में आदर हो, और मैं धर्मी तथापि मेरा अनादर हो। जगत में अधर्मी का विशेष मान-सम्मान होता हो तो वह देखकर ऐसा नहीं होता कि 'इसमें कुछ सच्चाई होगी।' धर्मी का अनादर होता हो और पापी जगत में पूजाता हो वहाँ धर्मी जानते हैं कि यह तो पूर्व के पुण्य के कारण पापी भी पूजाते हैं। धर्मी का पुण्य कदाचित कम हो और बाहर में अनादर हो तो इससे वह अपने धर्म में शंका नहीं पड़ने देते, किन्तु श्रद्धा, ज्ञान की दृढ़ता रखकर अपने को धर्म में स्थिर करते हैं। अस्थिरता के कारण कोई संदेह हो या आचार में दोष लग जाये तो दोष टालकर फिर से दृढ़पने अपने को धर्म में स्थिर करते हैं। बीमारी आदि में शिथिल परिणाम होते देखकर तो स्वयं अपने को पुरूषार्थ द्वारा स्थिर करे कि अरे आत्मा! जिन्दगी में समाधिमरण का अवसर आया! आराधना की सफलता का अवसर नजदीक आया!! और अभी ऐसी शिथिल प्रवृत्ति क्यो? अभी तो इस देह का परित्याग कर स्वर्ग में जाकर भगवान के समीप जाना है। अतः अब इस देह का लक्ष्य छोड़! अपने चैतन्य को सम्हाल! चैतन्य का उत्साह ला !! इसप्रकार आत्मा को आराधना में उत्साहित करके स्थिर करना वह स्थितिकरण है। तथा अन्य धर्मात्मा से भी कोई सहज दोष हो गया हो या उसके परिणाम धर्म में शिथिल देखे तो उसको भी प्रेमपूर्वक उपदेश आदि से धर्म में स्थिर करे। उसकी अटक मिटाकर धर्म में दृढ़ करे-ऐसा समकिती का स्थितिकरण अंग है।

7. वात्सल्य अंगः- आत्मा ज्ञानानंद शुद्ध स्वभावी है। अंतर अनुभव सहित उसकी निर्विकल्प प्रतीति का नाम सम्यग्दर्शन है। ऐसी प्रतीतिवंत समकिती को पंचपरमेष्ठी, जिनप्रतिमा, चैत्यालय आदि के प्रति प्रेम होता है, उनके प्रति उल्लास-भक्ति-बहुमान होता है। तथा धर्म के साधक चतुर्विध संघ के प्रति हृदय से बहु प्रीति होती है-ऐसा वात्सल्य समकिती के होता है और सच्चे शास्त्रों के प्रति बहुमान होता है।

www.vitragvani.com

जैसे गाय के बछड़े के प्रति प्रीति होती है। वैसे ही धर्मी को अन्य धर्मात्मओं के प्रति तथा देव-शास्त्र-गुरु के प्रति अतिशय वात्सल्य होता है। उनके प्रति वह दासपने वर्तता है।

अरिहंत, सिद्ध तथा उनकी प्रतिमा, चैत्यालय, चतुर्विध संघ, आदि के प्रति धर्मात्मा को दासपना होता है। जैसे नोकर स्वामी के प्रति दासपने वर्तता है। वैसे ही देव-शास्त्र-गुरु आदि के प्रति धर्मात्मा दासपने वर्तता है बहुमान करता है।-ऐसा धर्म का वात्सल्य समकिती के होता है।

जैसे गाय को अपने बछड़े के प्रति सहज ही प्रेम होता है; वैसे ही धर्मात्म को पंचपरमेष्ठी तथा साधर्मी के प्रति अंतर प्रेम होता है और धर्म स्थान पर या साधर्मी आदि पर उपसर्गादि आवे तो अपनी शक्ति न छुपाते हुए सर्वशक्ति से उसे दूर करता है।

भगवान की प्रतिमा का निषेध, उनका अविनय करने वालो को तो वात्सल्य नहीं है। जिसको देव-गुरु-धर्म का आदर नहीं वह तो मिथ्यादृष्टि है। समकिती धर्मात्मा तो भगवान के प्रति, भगवान की प्रतिमा के प्रति दासपने प्रवर्तता है। तथा चतुर्विध संघ-मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका- उनके प्रति सेवकपने-दासपने-बालकपने वर्तता है।-ऐसा धर्म का वात्सल्य समकिती के होता है। जिसको धर्मात्मा के प्रति, देव-गुरु-शास्त्र के प्रति विनय, बहुमान और प्रेम नहीं आता वह तो मूढ़ स्वच्छन्दी है। समकिती को धर्म और धर्म के निमित्तों-जिनप्रतिमा, चैत्यालय, जिनशास्त्र आदि के प्रति अत्यन्त प्रीतिरूप वात्सल्य होता है।-ऐसा समकिती का सातवाँ वात्सल्य अंग है।

मिथ्यादृष्टि मूढ़ है। उसको कुदेवादिक के प्रति प्रेम होता है या धर्म की अपेक्षा भी विषय कषाय के निमित्तों के प्रति विशेष राग होता है; किन्तु धर्मात्मा को तो देव-गुरु-शास्त्र के प्रति अतिशय प्रीति होती है-दासपना होता है। इसप्रकार उसकी दिशा बदल गयी है।

तथा तीर्थस्थान-जहाँ भगवान जन्मे, मोक्ष पधारे-ऐसे तीर्थस्थान, जिनमन्दिर शास्त्र आदि पर उपसर्ग आवे तो वहाँ उनकी रक्षा का भाव धर्मात्मा को आता है। वीतरागी जिनप्रतिमा, जिनमन्दिर, या तीर्थस्थान आदि को कोई नष्ट करता हो तो अपनी शक्ति अनुसार उनकी रक्षा का प्रयत्न करता है, वहाँ अपनी शक्ति को छुपाता नही- इसप्रकार का धर्म प्रेम समकिती के होता है। किसी समय धर्म की रक्षा के लिये युद्ध का प्रसंग भी बने तो समकिती को वैसा भाव भी आता है। वह अपनी शक्ति और द्रव्य, क्षेत्र, काल का विवेक करके वर्तता है।

www.vitragvani.com

यहाँ तो इतना बतलाना है कि धर्मी को धर्म के निमित्त तथा साधर्मियों के प्रति अत्यन्त प्रीतिरूप वात्सल्यभाव होता है। उसको ऐसा धर्म का उल्लास आये बिना नहीं रहता। अन्य विकल्प आवें, विषयों के निमित्त में अपनी शक्ति से तन-मन-धन खरचे और सच्चे देव-गुरु-धर्म के लिये ऐसा उत्साह भाव न आवे तो उसको वस्तुतः धर्म की प्रीति ही नहीं है, वह तो मिथ्यादृष्टि है। धर्मी को अंतर के सम्यग्दर्शन के साथ वात्सल्य का ऐसा भाव भी होता है ।

8. प्रभावना अंगः- अंतर में अपने ज्ञानानंद स्वरूप कारणपरमात्मा के आश्रय से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप धर्म का उद्योत-प्रकाशन वह निश्चय से अपनी प्रभावना है और शुभराग होने पर बाहर में सत्य धर्म की प्रभावना का भाव आवे। दान, तप, पूजा, प्रतिष्ठा पंचकल्याणक आदि विधानों से जैन धर्म की प्रभावना करे। तथा अपनी शक्ति हो और ऐसा कोई प्रसंग आवे तो विद्या, चमत्कार, अतिशय आदि से भी जैनधर्म उद्योत करे- ऐसा प्रभावना अंग है ।

इसप्रकार ये आठ अंग सम्यग्दर्शन के हैं। जिसको ऐसे आठ अंग हो उसके ही सम्यक्त्व जानना। जिसके आठ अंगों का ठिकाना नहीं वह तो मिथ्यादृष्टि ही है। अतः इन आठ अंगों को सम्यक्त्व के बाह्य चिह्न जानना।

प्रश्नः जो ये सम्यक्त्व के आठ चिह्न कहे, वैसे मिथ्यादृष्टि के भी देखने में आते हैं; तब सम्यक्त्व या मिथ्यात्व का निर्णय किसप्रकार हो सकता है?

उत्तरः- ये अंग जैसे सम्यग्दृष्टि के होते हैं वैसे मिथ्यादृष्टि के कभी भी नहीं होते। परीक्षावान तो उसका भेद जानकर पहिचान लेता है। अपरीक्षक को-जिसे सच्चे-झूठे की कोई परीक्षा नहीं ऐसे मूढ़ जीव को वे समान लगते हैं; किन्तु परीक्षा द्वारा सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि का भेद ज्ञात हुए बिना नहीं रहता। अब परीक्षा करने में तो अपना स्वानुभव मुख्य है। सर्वज्ञ के आगम मे जिसप्रकार समकिती को आत्मा का अनुभव होना कहा है उसप्रकार अपने स्वसंवेदन से अनुभव हो तब उसके होने से अपनी वचन-काया की प्रवृत्ति भी उसी के अनुसार होती है। अपनी प्रवृत्ति अपूर्व हो जाती है। अपनी उस प्रवृत्ति के अनुसार समकिती अन्य सम्यग्दृष्टि की भी वचन-काय की प्रवृत्ति पहिचान लेता है। स्वयं को सम्यक्त्य होने पर जिसप्रकार की परिणति और प्रवृत्ति हुई वैसी परिणति और प्रवृत्ति से अन्य जीव के सम्यक्त्व को भी पहिचान लेता है। इसप्रकार परीक्षा द्वारा सम्यक्त्व और मिथ्यात्व का विभाग हो सकता है। इसमें अपने निर्णय पूर्वक पर का निर्णय करने की बात है। अभी सम्यग्दर्शन क्या वस्तु है उसकी स्वयं को ही खबर न हो और मात्र शरीर की क्रिया से निर्णय करने

www.vitragvani.com

जाय, तो इसप्रकार समकिती नहीं पहिचाना जाता। जिसको अपने में सम्यक्त्व हुआ वह अन्य के सम्यक्त्व को भी पहिचान सकता है। समकिती और मिथ्यादृष्टि के परिणाम समान नहीं होते। मिथ्यादृष्टि के कहीं न कहीं रागादि का उत्साह पड़ा रहता है। समकिती और मिथ्यादृष्टि के परिणामों में बड़ा अंतर है, किन्तु मूढ़ जीव उसे नहीं पहिचान सकते । विवेकी जीव ही परीक्षा द्वारा उसे पहिचान सकते हैं।

ज्ञान द्वारा अन्य जीव की वचनादि प्रवृत्ति से उसके सम्यक्त्व का निर्णय करना वह व्यवहार है। छद्मस्थ जीव को पर के सम्यक्त्व का निर्णय करने के लिये ऐसे व्यवहार की ही शरण है; क्योंकि सम्यक्त्व को सीधे प्रत्यक्ष तो सर्वज्ञ जानते हैं और यह छद्मस्थ तो अनुमान से ही अन्य के सम्यक्त्व का निर्णय करता है। स्वयं अपने सम्यक्त्व का निर्णय तो स्वसंवेदन प्रत्यक्ष से कर लेता है।

अंतर में शुद्ध चिदानंद स्वभाव की प्रतीतिरूप जो अंतरंग सम्यक् भाव है वही सम्यग्दर्शन है। ऐसे भावसहित व्रत, समिति, गुप्तिरूप चारित्र और तप सहित अट्ठाईस मूलगुणों का धारक और नग्न दिगम्बर मुद्रा सहित हो-ऐसे मुनि को जिनदर्शन कहा जाता है। जिन्हें देखते ही ऐसा ख्याल आने कि अहो! ऐसा जैनदर्शन है! ऐसा जिन का मार्ग है। इसके अतिरिक्त वस्त्रादि सहित मुनिदशा माने या मनावे तो उसे जैनदर्शन की खबर नहीं। उसको अंतर में तो सम्यग्दर्शन नहीं है और बाहर में जैनदर्शन कैसा होता है, उसकी भी खबर नहीं। अहो! सम्यग्दर्शन धर्म का मूल है -ऐसा जानकर हे जीवों! विपरीत मार्ग की श्रद्धा छोड़ो। सम्यग्दर्शन से रहित जीव वंदन-पूजन करने योग्य नहीं हैं। वस्त्रादि सहित मुनिपना हो-ऐसा जैनदर्शन का मार्ग नहीं है। अतः भव्यजीवों को यह उपदेश अंगीकार करके सम्यग्दर्शन से रहित ऐसे कुलिंगी-मिथ्यादृष्टि जीवों को वंदनादि करना योग्य नहीं है।

यह भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव की वाणी है और परम सत्य है। इससे अन्यथा विरूद्ध-जो वस्त्रादि सहित मुनिमार्ग मानते हैं, मनवाते हैं उनकी श्रद्धा विपरीत है। वे मिथ्यात्व के फल में अनंतकाल निगोद में जायेंगे। अतः यहाँ कहते हैं कि हे जीवों! सम्यग्दर्शन धर्म का मूल है- ऐसे इस सम्यग्दर्शन का उपदेश सुनकर, उस दर्शन से रहित जीव वंदन योग्य नहीं है। श्रद्धा करने योग्य नहीं है। सच्चे दर्शन का स्वरूप जानकर, पहिचानकर वही वंदनीय है।

आचार्यदेव कहते हे कि पहले ऐसी सच्ची श्रद्धा तो कर! यह उपदेश अंगीकार करके श्रद्धा करने योग्य है। इसप्रकार दूसरी गाथा पूर्ण हुई।

दर्शनपाहुड़ गाथा-3

अब कहते हैं कि- अन्तरंगसम्यग्दर्शन बिना बाह्यचारित्र से निर्वाण नहीं होता :-

दंसणभट्ठा भट्ठा दंसणभट्ठस्स णत्थि णिव्वाणं।
सिज्झंति चरियभट्ठा दंसणभट्ठा ण सिज्झंति ।।3।।

दर्शनभ्रष्टाः भ्रष्टाः दर्शनभ्रष्टस्य नास्ति निर्वाणम्।
सिध्यन्ति चारित्रभ्रष्टाः दर्शनभ्रष्टाः न सिध्यन्ति।।3।।

हिन्दी पद्यानुवादः

दृगभष्ट हैं वे भ्रष्ट हैं उनको कभी निर्वाण ना।
हों सिद्ध चारित्रभ्रष्ट पर दृगभष्ट को निर्वाण ना।।3।।

अर्थः जो पुरुष दर्शन से भ्रष्ट हैं वे भ्रष्ट हैं; जो दर्शन से भ्रष्ट हैं उनको निर्वाण नहीं होता; क्योंकि यह प्रसिद्ध है कि जो चारित्र भ्रष्ट हैं वे तो सिद्धिको प्राप्त होते हैं परन्तु जो दर्शनभ्रष्ट हैं वे सिद्धि को प्राप्त नहीं होते।

भावार्थः- जो जिनमत की श्रद्धा से भ्रष्ट हैं उन्हे भ्रष्ट कहते हैं; और जो श्रद्धा से भ्रष्ट नहीं हैं, किन्तु कदाचित् कर्म के उदय से चारित्रभ्रष्ट हुए हैं उन्हें भ्रष्ट नहीं कहते; क्योंकि जो दर्शन से भ्रष्ट हैं उन्हें निर्वाण की प्राप्ति नहीं होती; जो चारित्र से भ्रष्ट होते हैं और श्रद्धानदृढ़ रहते हैं उनके तो शीघ्र ही पुनः चरित्रका ग्रहण होता है और मोक्ष होता है तथा दर्शन-श्रद्धा से भ्रष्ट होय उसी के फिर चारित्र का ग्रहण कठिन होता है, इसलिये निर्वाण की प्राप्ति दुर्लभ होती है। जैसे-वृक्ष की शाखा आदि कट जायें और जड़ बनी रहे तो शाखा आदि शीघ्र ही पुनः उग आयेंगे और फल लगेंगे, किन्तु जड़ उखड़ जाने पर शाखा आदि कैसे होंगे? उसीप्रकार धर्मका मूल दर्शन जानना ।। 3 ।।

गाथा-3 पर प्रवचन

दूसरी गाथा में सम्यग्दर्शन की बहुत बात की, और यह भी बताया कि वह सम्यग्दर्शन ही धर्म का मूल है।

अब इस तीसरी गाथा में कहते हैं कि अंतरंग में ऐसे सम्यग्दर्शन बिना बाह्य चारित्र दिगम्बर मुनिपना धारण करले, तथापि उससे निर्वाण नहीं है।

www.vitragvani.com

जो जीव दिगम्बर होकर अट्ठाईस मूलगुण पाले, वस्त्र का धागा भी न रखे, किन्तु अंतर में जिसे सम्यग्दर्शन नहीं- वह जीव दर्शन से भ्रष्ट है। वह दर्शन भ्रष्ट जीव निर्वाण को नहीं पाता। जो दर्शन भ्रष्ट है वह चारित्र भ्रष्ट भी है। जहाँ दर्शन ही नहीं वहाँ चारित्र कैसा ? अकेला व्यवहार चारित्र पाले तो इससे कोई मुक्ति नहीं होती।

वस्त्र सहित मुनिपना मनवावे-ऐसे जीव को तो व्यवहार चारित्र का पालन भी नहीं है, वह तो अत्यन्त भ्रष्ट (गृहीत मिथ्यादृष्टि) ही है। किन्तु सम्यग्दर्शन के बिना व्यवहार चारित्र दिगम्बर मुनि के समान बाहर में पाले और यह माने कि "यह व्यवहार चारित्र पालकर भगवान के पास जाकर फिर सम्यग्दर्शन पाऊँगा,"-तो वह जीव दर्शन से भ्रष्ट है। व्यवहार चारित्र पालते हुए भी वह जीव दर्शन से भ्रष्ट है-विराधक है। और जिस जीव को चारित्र दशा नहीं, मुनिदशा नहीं, किन्तु अंतर में यथार्थ मार्ग की श्रद्धा है; शुद्धात्मा की प्रतीतिरूप सम्यग्दर्शन वर्तता है-वह जीव आराधक है और वह अल्पकाल में चारित्रदशा अंगीकार कर सिद्धि को प्राप्त करेगा; किन्तु जिसकी श्रद्ध ही विपरीत है वह तो संसार में ही परिभ्रमण करेगा।

जो जीव जिनमत की श्रद्धा से भ्रष्ट होकर राग से धर्म मानता-मनवाता हो, वस्त्र सहित मुनिपना मनवाता हो-उसे भ्रष्ट कहते हैं। वह जीव श्रद्धा से भ्रष्ट है। श्वेताम्बरादिक तो श्रद्धा से भ्रष्ट हैं और जिनको यथार्थ मार्ग की श्रद्धा है, यथार्थ-दिगम्बर मार्ग की प्रतीति है-ऐसे जीव को कदाचित चारित्रदशा न हो-चारित्र से भ्रष्ट हो, तो भी उसे जिनमत से भ्रष्ट नहीं कहा, वह मोक्षमार्ग का आराधक है; क्योंकि वह श्रद्धा की दृढ़ता के ज़ोर से अल्पकाल में चारित्र प्रगट करके मोक्ष प्राप्त करेगा।

जिनने आत्मा के स्वभाव में से पूर्ण निर्दोषता प्रगट की और दोष को जीत लिया-ऐसे जिनदेव हैं। वैसी पूर्ण निर्दोषदशा वाले साधक वह मुनि है। और उस पूर्णदशा पाने के यथार्थ उपाय की श्रद्धा करके जिसने मिथ्यात्व को जीत लिया है-ऐसा समकिती, वह वास्तव में जैन है। जिसको आत्मा की श्रद्धा नहीं, बाहर में भी मार्ग को -मुनिदशा आदि को -विपरीत मानता-मनवाता है, वह तो जिनमत से भ्रष्ट है।

Shree kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

कोई समकिती जीव मुनिदशा ले, किन्तु जाने कि मुझसे मुनिदशा का चारित्र नहीं पल सकता-अर्थात् चारित्र भ्रष्ट हो जाये, किन्तु अन्दर में मार्ग की श्रद्धा बराबर रखे-शुद्धात्मा की प्रतीति न त्यागे-तो वह जीव (चारित्रसे भ्रष्ट होने पर भी) दर्शन का आराधक है और अल्पकाल में फिर से चारित्र प्रगट करके मोक्ष को साधेगा। श्वेताम्बर चारित्र से तो भ्रष्ट हुए ही, और वस्त्रादि रखकर उसे ही मुनिपना मान लिया-इसकारण वे दर्शन से भी भ्रष्ट हो गये। जैनदर्शन की श्रद्धा से भी भ्रष्ट है अर्थात् उन्हें तो निर्वाण की प्राप्ति होती ही नहीं। सम्यग्दर्शन मूल है- जड़ है, जड़ सुरक्षित है तो वृक्ष उगने में समय नहीं लगता, किन्तु जिसका मूल ही खोटा हो उसके वृक्ष कैसे उगेगा? वैसे ही जिस जीव की श्रद्धा सच्ची होगी वह तो अल्पकाल में मार्ग को साधकर मुक्ति पायेगा, किन्तु जिसकी श्रद्धा ही विपरीत है उसकी मुक्ति दुर्लभ (अशक्य) है, वह तो संसार में ही भ्रमेगा।

गाथा में कहा है कि "दंसण भट्टा भट्टा," जो सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट है वह ही भ्रष्ट है, उसको निर्वाण नहीं होता।

अहो! यह जैनमार्ग तो अनादि सनातन परंपरा से चला आया है। जैसे द्रव्यस्वभाव सनातन स्वयं-सिद्ध, अनादि-अनंत है। वैसे ही जगत में जैनमार्ग नया नहीं है, किन्तु अनादि-अंनत, सनातन है। यही एक सत्य मार्ग है। जो ऐसे मार्ग की परंपरा से भ्रष्ट होकर विपरीत मार्ग का पोषण करते हैं, वे जीव दर्शन से भ्रष्ट हैं।

अंतर स्वभाव की अकषायी दृष्टि और अकषायी परिणति सहित बाहर में अपरिग्रह दशा हो-ऐसी मुनिदशा है। कदाचित ऐसी मुनिदशा से भ्रष्ट हो, किन्तु अंतर में मार्ग की यथार्थ प्रतीति रखता हो तो वह दर्शन से भ्रष्ट नहीं है। वह तो अल्पकाल में फिर से चारित्र साधकर मुक्ति पायेगा।

जिसे सम्यग्दर्शन तो निर्मल है; परन्तु कदाचित चारित्र से भ्रष्ट है, तथापि चारित्र के स्वरूप की यथार्थ श्रद्धा है अर्थात् फिर से अल्पकाल में चारित्र प्रगट करके मोक्ष पायेगा। अकेले सम्यग्दर्शन से भी मुक्ति नहीं, किन्तु सम्यग्दर्शन के उपरांत वह जीव सम्यक्चारित्र प्रगट करके मुक्ति पायेगा।

जो जीव चारित्र का स्वरूप ही विपरीत मानता है। वस्त्र सहित होने पर भी मुनिपना मानता है, उस जीव की तो श्रद्धा ही विपरीत है; वह तो जैनमार्ग से ही भ्रष्ट है। उसकी मुक्ति नहीं होती।

www.vitragvani.com

अहो! जैनदर्शन तो अत्यन्त पवित्र है। दृष्टि भी पवित्र और चारित्र भी पवित्र। वस्त्र के एक तार का भी जहाँ परिग्रह नहीं है, अंतर में अणु मात्र राग की भी पकड़ नहीं है,-ऐसी अंतर की निर्मल दृष्टिपूर्वक निर्मल परिणति हुई हो-वह मुनिपना है। अहो! ऐसे मार्ग को विपरीत मनवावे वह तो महा विपरीत दृष्टि है।

देखो भाई! यह जैनमार्ग अलौकिक है। इसकी वास्तविक पहिचान करनी चाहिये। परीक्षा करके पहिचानना चाहिये। जगत में जहाँ-तहाँ सभी स्थानों पर जाकर शिर झुकाना-यह तो मूढ़ता है। जो वास्तविक जैनमार्ग से विपरीत हैं वे कोई वंदनीय नहीं हैं।

यहाँ तो कहते हैं कि भाई! तू श्रद्धा सही रखना। श्रद्धा में विपरीतता मत करना। चारित्र का पालन न कर सके तो उसकी भावना रखना, किन्तु विपरीत मार्ग मानना नहीं।

कोई जीव छटवें-सातवें गुणस्थान में हो और कदाचित अस्थिरता हो जाय-चारित्र दशा में न टिक सके और भ्रष्ट हो जाय, किन्तु मार्ग की श्रद्धा बराबर टिकाये रखे कि अरे! चारित्रदशा मुझे नहीं, किन्तु अन्दर में सम्यग्दर्शन है-तो वह जीव मार्ग से भ्रष्ट नहीं है। वह पुनः चारित्र प्रगट करके मोक्ष प्राप्त करेगा।

दूसरा प्रकार ऐसा भी है कि कोई जीव समकिती है और उसको मुनिपने की भावना हुई। दिगम्बर मुनिदशा तो धारण की, अटठाईस मूलगुण, पाँच महाव्रत पालता है; किन्तु अन्दर में मुनिदशा के योग्य स्थिरता नहीं होती-छटवाँ-सातवाँ गुणस्थान नहीं आता है, - तो वहाँ बाहर की क्रिया ऐसी रखकर, अन्दर श्रद्धा रखता है कि मुझे वास्तविक मुनिदशा नहीं है, मुनि जितनी स्थिरता हुई नहीं है; तो वह जीव सम्यग्दर्शन टिकाये रखता है। उसके भी अल्पकाल में चारित्र दशा प्रगट होकर मुक्ति हो जायेगी।

तीसरा प्रकार-किसी जीव को गृहस्थ अवस्था में सम्यग्दर्शन हुआ। आत्मा के अनुभव पूर्वक निर्विकल्प प्रतीति तो हुई है, यथार्थ जैनमार्ग मुनिदशा, चारित्रदशा आदि की यथार्थ प्रतीति हुई है, किन्तु अभी चारित्रदशा नहीं मुनिदशा नहीं तथापि वह आराधक है। वह अल्पकाल में चारित्र प्रगट करके मोक्ष पायेगा इसप्रकार ये तीन प्रकार कहे गये हैं। तीनो प्रकार के जीव शुद्ध सम्यग्दर्शन की दृढ़ता रखते हैं, अतः ये भ्रष्ट नहीं है।

www.vitragvani.com

मिथ्यादृष्टि जीव तो मार्ग से ही भ्रष्ट है। जिसको यथार्थ दिगम्बर जैनदर्शन की प्रतीति भी नहीं है, वह वस्त्रादि सहित चारित्रदशा (मुनिदशा) मानता है। उसको तो चारित्रदशा की भी खबर नहीं है। वह तो चारित्र का प्रयत्न ही कहाँ से करेगा? अभी श्रद्धा ही विपरीत है। विपरीत श्रद्धा अनंत संसार का मूल है। वह भले ही बाहर में त्यागी हो जाय, पंच महाव्रत पाले, नौवें ग्रैवेयक तक जाय, तथापि उसके संसार का मूल सुरक्षित है। उसके कषाय की मंदता होने पर भी अंदर कषाय का मूल फल-फूल रहा है। अर्थात् उसमें से फिर तीव्र कषाय फूटेगी और फिर कषाय की तीव्रता से नरकादि में रखड़ेगा; क्योकि उसने संसार का मूल तोड़ा नहीं है। समकिती के संसार का मूल छिद गया है और मोक्ष का मूल उग गया है। अल्पकाल में वह मूल फलकर चारित्र एवं मोक्ष दशा हो जायेगी।

इसप्रकार धर्मरूपी वृक्ष का मूल 'दर्शन' जानना।

इसप्रकार यहाँ तीसरी गाथा सम्पूर्ण हुई।

Shree kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

दर्शनपाहुड़ गाथा-4

अब, जो सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट हैं और शास्त्रों को अनेक प्रकार से जानते हैं तथापि संसार में भटकते हैं; ऐसे ज्ञान से भी दर्शन को अधिक कहते हैं:-

सम्मत्तरयणभट्ठा जाणंता बहुविहाइं सत्थाइं।
आराहणाविरिया भमंति तत्थेव तत्थेव ।। 4 ।।

सम्यक्त्वरत्नभ्रष्टाः जानंतो बहुविधानि शास्त्राणि।
आराधना विरहिताः भ्रमंति तत्रैव तत्रैव ।। 4 ।।

हिन्दी पद्यानुवादः

जो जानते हों शास्त्र सब पर भ्रष्ट हों सम्यक्त्व से।
घूमें सदा संसार में आराधना से रहित वें।।4।।

अर्थः- अर्थ पुरूष सम्यक्त्वरूप रत्न से भ्रष्ट हैं तथा अनेक प्रकार के शास्त्रों को जानते हैं, तथापि वह आराधना से रहित होते हुए संसार में ही भ्रमण करते हैं। दो बार कहकर बहुत परिभ्रमण बतलाया है।

भावार्थः- जो जिनमत की श्रद्धा से भ्रष्ट हैं और शब्द, न्याय, छन्द, अलंकार आदि अनेक प्रकार के शास्त्रों को जानते हैं तथपि सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र तपरूप आराधना उनके नहीं होती; इसलिये कुमरण से चतुर्गतिरूप संसार में ही भ्रमण करते हैं- मोक्ष प्राप्त नहीं कर पाते; इसलिये सम्यक्त्वरहित ज्ञान को आराधना नाम नहीं देते।

गाथा-4 पर प्रवचन

अब कोई जीव शास्त्रों को अनेक प्रकार से जानता है। शास्त्र पढ़-पढ़कर बड़ा पण्डित हुआ है, किन्तु यदि वह सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट है तो वह संसार में ही भ्रमता है। सम्यग्दर्शन के बिना शास्त्र पठन और पंडिताई-ये दोनो व्यर्थ है।-इसप्रकार शास्त्रज्ञान से भी सम्यग्दर्शन का अधिकपना ज्ञात होता है।

आत्मा ज्ञानानंद स्वभावी है। जिसको उसकी भावना नहीं, श्रद्धा नहीं; किन्तु राग की भावना है वह तो सम्यक्त्वरत्न से भ्रष्ट है। चैतन्य स्वभाव की भावना रहित और राग की भावना सहित है वह जीव सम्यक्त्वरत्न से भ्रष्ट है। वस्त्रादि सहित मुनिपना

www.vitragvani.com

माने-ऐसे मार्ग की श्रद्धा तो गृहीत मिथ्याश्रद्धा है। वैसे मिथ्यादृष्टि को तो ग्यारह अंग का शास्त्रज्ञान भी नहीं, वह तो नव ग्रैवेयेंक तक भी नहीं जाता; किन्तु बाहर में दिगम्बर सम्प्रदाय को माने, यथार्थ जैन शास्त्रों को माने; किन्तु जिसे राग की भावना है, ज्ञानस्वभाव का आराधक नहीं, किन्तु शास्त्रों का ही आराधक है- स्वभाव का विराधक है, ऐसा वह जीव भले ही बहुत शास्त्रों का पाठी हो और महा पण्डित हो; तथापि वह श्रद्धा से भ्रष्ट है, इसकारण आराधना से रहित है।

जिसको मैं ज्ञाता चिदानंद हूँ- ऐसा अंतर स्वभाव का सेवन नहीं, आराधना नहीं और राग की ही आराधना है वह जीव आराधक नहीं, किन्तु भ्रष्ट है। अज्ञानी विद्वता के अभिमान में अटककर शास्त्रों के शब्द धारण करके अपने को सम्यग्दृष्टि मान लेता हैं किन्तु चिदानंद स्वभाव क्या है उस स्वभाव तरफ झुकता नहीं, तो वह जीव ज्ञान का आराधक नहीं, किन्तु विराधक है, भ्रष्ट है।

देखो, यह संतों ने अन्तर का जिगर (हृद्य) खोला है। उनको अन्तर में चिदानंद स्वभाव का अत्यन्त प्रेम है। अतः उससे विपरीत मार्ग की प्ररूपणा देखकर अंदर में ऐसा भाव हुआ कि अरे! हमारे निष्कलंक जैनमार्ग में यह वस्त्रादि सहित मुनिपना मनाते है यह कलंक है। इसप्रकार सत्यमार्ग की प्रीति के कारण भगवान कुन्दकुन्दाचार्य देव ने यथार्थ वस्तु स्थिति स्पष्ट की है। जगत के समक्ष संतों का हृद्य खोल दिया है!! यथार्थ जैनमार्ग जगत में प्रसिद्ध किया कि वस्त्र का एक धागा भी परिग्रह में हो तो वह मुनिमार्ग जैनदर्शन में नहीं है। जो जीव वस्त्र सहित मुनिपना मनाते हैं वे जैनदर्शन से भ्रष्ट है। ऐसी बात सुनते ही बहुत लोग भड़क उठते थे, किन्तु अब तो यह बात प्रसिद्ध हो गयी है।

अहो! जो जीव अंतर में सम्यग्दर्शन नहीं करता और अकेले शास्त्र पठन में या विद्वता में ही रूक गया है- ऐसे आत्मा में धर्म की उत्पत्ति नहीं होती, किन्तु वह वहाँ का वही, संसार में ही परिभ्रमण करता है।

चिदानंद स्वभावी आत्मा से दोष को जीतना और निर्दोषता प्रगट करना-यह जिनमत! कौन ना-इंकार करे ऐसे जिनमत की। जो जीव ऐसे जिनमत की श्रद्धा से

Shree kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

भ्रष्ट है स्वभाव की भावना से भ्रष्ट है और रागादि की भावना है-पर्याय में अल्पज्ञान के क्षयोपशम की ही भावना है, किन्तु चिदानंद स्वभाव की भावना नहीं वह जीव जिनमत की श्रद्धा से भ्रष्ट है। ऐसा भ्रष्ट जीव शब्द-व्याकरण को पढ़े, न्याय पढ़े, छंद-अलंकार जाने, संस्कृत-प्राकृत व्याकरणादि जाने,-शास्त्र पढ़े और हजारों की सभा को रीझाता हो, तथापि वह जीव सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र -तप की आराधना से रहित होने के कारण कुमरण करके चारगतिरूप संसार में ही परिभ्रमता है। जैसे कौऐं-कुत्ते कुमरण से मरते है; वैसे ही जीव भी सम्यग्दर्शन के बिना संसार में कुमरण कर-करके मरता है। अहो! एक समय में परिपूर्ण ज्ञानस्वभाव है। उस स्वभाव में से ज्ञान आता है- ऐसी स्वभाव की प्रतीति तो वह करता नहीं और मात्र शास्त्र पठन करके अभिमान में रूक जाता है- वह भ्रष्ट जीव संसार में ही भ्रमता है। संस्कृत जानी किन्तु आत्मा में धर्म के संस्कार नहीं पके तो उसका पढ़ना कुछ काम आवे ऐसा नहीं है। भगवान! ज्ञानस्वभाव के संस्कार पाड़ तेरे आत्मा में !! ज्ञानानन्द स्वभाव की श्रद्धा के संस्कार डाले बिना मात्र शास्त्रज्ञान से आराधकपना नहीं होता। आराधना का मूल सम्यग्दर्शन ही है। जो जीव सम्यग्दृष्टि है उसको शास्त्र पठन कदाचित अल्प भी हो तथापि वह आराधक है। और जो जीव बहुत शास्त्रपाठी होने पर भी यदि सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट है, स्वभाव तरफ की भावना भी नहीं-तो वह विराधक है। विराधकभाव से चार गतियों में परिभ्रमण कर कुमरण करेगा। अतः हे जीव! सम्यग्दर्शन की महिमा जानकर उसकी आराधना कर। ज्ञानानंद स्वभाव की भावना कर। अपनी दृष्टि का ध्येय बदल दे। सम्यग्दर्शन बिना तो शास्त्र पठन आदि सब निष्फल है। अंतर में चिदानंद स्वभाव की प्रीति कर और उसी की प्रतीति कर तो साधकपना होगा।

इसप्रकार सम्यग्दर्शन ही धर्म का मूल है। सम्यग्दर्शन ही सर्वज्ञ भगवान की वास्तविक स्तुति है। जो जीव राग में एकाग्रता करे और स्वभाव की दृष्टि न करे तो वह राग की ही स्तुति करता है; सर्वज्ञ की स्तुति उसके नहीं होती। और ज्ञानानंद स्वरूप सन्मुख होकर उसकी प्रतीति करना वह सर्वज्ञ की स्तुति है।

इसीप्रकार मुनि की- गुरु की स्तुति किसे कहना? कि मुनिदशा का वास्तविक स्वरूप पहिचानकर, अपने स्वरूप में उसका आदर और राग का आदर नहीं- ऐसी

www.vitragvani.com

प्रतीति करना ही गुरु की सच्ची भक्ति और स्तुति है। उसे ही साधु की और धर्म की शरण ली कहा जाता है।

मांगलिक में बोलते है न!

अरिहंता मंगलम्, सिद्धा मंगलम्, साहू मंगलम्,

केवलीपण्णत्तो धम्मों मंगलम्।

अरिहंत, सिद्ध, साधु और धर्म उत्तम हैं, मंगल हैं और शरणभूत है किन्तु किसको? जिसने अन्तर सन्मुख होकर स्वभाव का आदर किया उसने ही वास्तव में अरिहंतादि को मंगलरूप, उत्तमरूप और शरणरूप माना है। वही पंचपरमेष्ठी का भक्त हुआ है।

पूर्ण पवित्र ऐसा सिद्धपद और अरिहंत पद, पूर्ण निर्ग्रन्थ ऐसा आचार्य, उपाध्याय और साधु पद तथा उनके द्वारा कथित धर्म- इनके स्वरूप की वास्तविक पहिचान करे तो अपनी दृष्टि में राग का आदर नहीं रहता। चिदानंद स्वभाव के आश्रय से ही धर्म है।

अहो! मुनिदशा तो अलौकिक दशा है-वह तो जैनदर्शन की मुद्रा है। उनकी ऐसी दशा हो गयी है कि मानो चलते सिद्ध! ऐसा मुनिदशा का स्वरूप है। जो उसको विपरीत मानता है उसे जैनदर्शन की खबर नहीं है। उसकी दृष्टि में भूल है, ज्ञान में भूल है, चारित्र में भूल है, तप में भूल है। वह जीव मार्ग से भ्रष्ट है।

Shree kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

दर्शनपाहुड़ गाथा-5

अब कहते हैं कि-जो तप भी करते हैं और सम्यक्त्वरहित होते हैं उन्हे स्वरूप का लाभ नहीं होताः-

सम्मत्तविरहिया णं सुट्ठु वि उग्गं तवं चरंता णं।
ण लहंति बोहिलाहं अवि वाससहस्सकोडीहिं ।। 5 ।।

सम्यक्त्वविरहिता णं सुष्ठु अपि उग्रं तपः चरंतो णं ।
न लभन्ते बोधिलाभं अपि वर्षसहस्रकोटिभिः ।। 5 ।।

हिन्दी पद्यानुवादः

यद्यपि करें वे उग्रतप शत-सहस-कोटि वर्ष तक।
पर रत्नत्रय वावें नहीं सम्यक्त्व-विरहित साधु सब।।5।।

अर्थः- जो पुरुष सम्यक्त्व से रहित हैं वे सुष्ठु अर्थात् भलीभाँति उग्र तपका आचरण करते हैं तथापि वे बोधि अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रमय जो अपना स्वरूप है उसका लाभ प्राप्त नहीं करते; यदि हजार कोटि वर्ष तक तप करते रहें तब भी स्वरूप की प्राप्ति नहीं होती। यहाँ गाथा में दो स्थानों पर 'णं' शब्द है वह प्राकृत में अव्यय है, उसका अर्थ वाक्य का अलंकार है।

भावार्थः- सम्यक्त्व के बिना हजार कोटि वर्ष तप करने पर भी मोक्षमार्ग की प्राप्ति नहीं होती। यहाँ हजार कोटि कहने का तात्पर्य उतने ही वर्ष नहीं समझना, किन्तु कालका बहुतपना बतलाया हैं। तप मनुष्य पर्यायमें ही होता है, इसलिये मनुष्यकाल भी थोड़ा है, इसलिये तपका तात्पर्य यह वर्ष भी बहुत कहे हैं। ।।5।।

गाथा- 5 पर प्रवचन

सम्यग्दर्शन के बिना चाहे जितने व्रत-तपादि करे तथापि उस जीव को बोधि लाभ नहीं होता स्वरूप का-धर्म का लाभ उस जीव को नहीं होता। यह बात अब इस गाथा में कहते है।

जो पुरुष सम्यग्दर्शन से रहित है वह सुट्ठ अर्थात् अच्छी प्रकार से उग्र तप करता हो, तथापि उसको बोधि अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रमय निज स्वरूप का लाभ नहीं होता। करोड़ों वर्ष तप करे, तथापि सम्यग्दर्शन बिना धर्म का अंश भी नहीं होता।

www.vitragvani.com

यहाँ कहा है कि 'सुट्ठ पि' अर्थात् भले प्रकार दिगम्बर मुनिदशा का व्यवहार पालता है। मुनि के योग्य अट्ठाईस मूलगुण पाले, वस्त्रादि परिग्रह नहीं रखे, प्राण जाय तथापि सदोष आहार न ले- इत्यादि प्रकार तप करे; किन्तु यदि अंतर में ज्ञानानंद स्वभाव का भान नहीं करता, चैतन्य सन्मुख दृष्टि नहीं करता, मात्र राग का ही अनुभव करता है-ऐसे मिथ्यादृष्टि जीव को धर्म की प्राप्ति नहीं होती।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की शुद्धता भावलिंग है ऐसे भावलिंग सहित बाहर में दिगम्बर दशा-पंचमहाव्रतादि वह द्रव्यलिंग है-ऐसे भावलिंगी संत की दशा तो अलौकिक है।

अहो! धन्य है भावलिंगी श्रवण तुम्हे! तुम्हें मैं नमस्कार करता हूँ। धन्य आपकी दशा! नमोस्तु!! नमोस्तु!! -इसप्रकार आगे "भाव पाहुड़ में (गाथा 129 में) कुन्दकुन्दाचार्य देव स्वयं मुनि को नमस्कार करेंगे।

मंगलम् कुन्दकुन्दार्यो.....इसप्रकार महावीर भगवान और गौत्तम गणधर के पश्चात् तुरंत ही जिनका नाम मांगलिक रूप में आता है ऐसे कुन्दकुन्दाचार्य देव भावपाहुड़ की 129 वीं गाथा में कहते हैं कि:-

अहो! जो मुनि श्रेष्ठ सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के धारक है। उस सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की शुद्धिरूप भाव से सहित है और जिनके माया नष्ट हो गयी है- ऐसे जो भावलिंगी संत हैं, वे धन्य हैं। उनको हमारा त्रिविध नमस्कार हो।

अहो! तुम भी हमारे मुनिमार्ग में आये, मोक्षमार्ग में आये, उसका मैं प्रमोद से अनुमोदन करता हूँ। तुम धन्य हो। तुम्हें मेरा नमस्कार हो।

जैसे बड़े श्रीमंतों के यहाँ लग्न हो और बारात आवे, वहाँ धूमधाम से बैण्ड बाजों के साथ अगवानी करते है। वैसे ही यहाँ आचार्य देव कहते हैं कि अहो! संत तू मुक्ति सुंदरी का वरण करने चला, मैं तेरी अगवानी करता हूँ; धूमधाम से तेरा बहुमान करता हूँ ।

देखो, यह मुनिदशा का स्वरूप और उसकी महिमा!! ऐसे मुनि धन्य हैं और वे वंद्य है।

यहाँ तो कहते हैं कि जिस जीव को अंतरंग में भाव की शुद्धि तो नहीं है, सम्यग्दर्शन -ज्ञान-चारित्र तो नहीं है और मात्र व्यवहार व्रत, तपादि करता है-व्यवहार चारित्र पालता है-ऐसे जीव को भी धर्म की प्राप्ति नहीं होती। अज्ञानी की ऐसी व्यवहार करनी तो अनंतबार अज्ञानरूपी पाड़ा खा गया है। अभी तो जिसको

www.vitragvani.com

पंचमहाव्रतादि का व्यवहार ही सही नहीं हो, वस्त्रादि परिग्रह सहित मुनिपना माने-ऐसों की तो बात ही कहाँ रह गयी, वे तो भ्रष्ट है ही; किन्तु यहाँ तो कहते हैं कि दिगम्बर मत में रहे, वस्त्र सहित मुनिपना न माने, सर्वज्ञ को आहारादि न माने, और दिगम्बर जैन परम्परा के अनुसार व्यवहार व्रत-तप करे; तथापि यदि अंतरंग में राग से पार शुद्ध ज्ञानानंद तत्त्व की प्रतीति करके सम्यग्दर्शन की शुद्धता प्रगट न करे तो वैसे जीव को धर्म का कुछ भी लाभ नहीं होता। वह विराधक है; क्योंकि सम्यग्दर्शन के बिना आराधकपना नहीं होता।

सिद्ध भगवंतों के परिपूर्णपने प्रचूर शुद्धता प्रगट हो गयी है और निगोद के जीवों को प्रचूर भावकलंकरूप अशुद्धता है। ऐसी सिद्धदशा वह सम्यग्दर्शन का फल है और निगोददशा वह मिथ्यात्व का फल है।

एक आदमी का पत्र आया है कि मुझे आत्म दर्शन हो गया है.....मुझे घर-संसार में रहना रूचता नहीं है। .....किन्तु भाई! यह सब तो कल्पना है। अभी सत्य के सभी पक्षों का निर्णय नहीं है। वस्तुस्वरूप क्या है उसका भान नही, वहाँ ध्यान किसका? ध्यान की कल्पना में चढ़ जाय और मूढ़ता से सम्यग्दर्शनादि होना माने लेते हैं। एकरूप चिदानंद तत्त्व क्या? उसका वेदन नहीं; वह जीव मनुष्यपना पाकर हजारों करोड़ों वर्ष या पूरे जीवन व्रत-तप करे तथापि उसको धर्म की जरा भी प्राप्ति नहीं होती। क्यों नहीं होती? क्योंकि उसको सम्यग्दर्शन की शुद्धि नहीं है। जहाँ से धर्म प्रगटता है-ऐसे आत्मा का उसको भान नहीं है। छहढाला में भी कहा है न कि-

मुनिव्रत धार अनंतबार, ग्रीवक उपजायो।
पे निज आत्मज्ञान बिना, सुख लेश न पायो।।

(छहढाला चौथीढाल)

यथार्थ वस्तुस्वरूप क्या है? उसे पहिचाने तो मिथ्यादृष्टि रहे नहीं।

पण्डित टोडरमलजी श्री "मोक्षमार्गप्रकाशक" में कहते है कि यदि देव का, गुरु का और अनेकांत शास्त्र का वास्तविक स्वरूप पहिचाने तो वह जीव मिथ्यादृष्टि नहीं रहे। देव, गुरु का स्वरूप जानने से आत्मा का वास्तविक स्वरूप ज्ञात होता है। ऐसे सम्यग्दर्शन पूर्वक ही धर्म की प्राप्ति होती है। सम्यग्दर्शन के बिना धर्म नहीं होता।

इसप्रकार यह पाँचवी गाथा पूर्ण हुई।

Shree kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

दर्शनपाहुड़ गाथा-6

ऐसे पूर्वोक्त प्रकार सम्यक्त्व के बिना चारित्र, तपको निष्फल कहा है। अब सम्यक्त्व सहित सभी प्रवृत्ति सफल है- ऐसा कहते हैं:-

सम्मत्तणाणदंसणबलवीरियवड्डमाण जे सव्वे।
कलिकलुसपावरहिया वरणाणी होंति अइरेण ।।6।।

सम्यक्त्वज्ञानदर्शनबलवीर्यवर्द्धमानाः ये सर्वे ।
कलिकलुषपापरहिताः वरज्ञानिनः भवंति अचिरेण ।।6।।

हिन्दी पद्यानुवादः

सम्यक्त्व दर्शन ज्ञान बल अर वीर्य से वर्द्धमान जो।
वे शीघ्र ही सर्वज्ञ हों कलिकलुसकल्मस रहित जो।।6।।

अर्थः- जो पुरुष सम्यक्त्व ज्ञान, दर्शन, बल, वीर्यसे वर्द्धमान हैं तथा कलिकलुषपाप अर्थात् इस पञ्चमकाल के मलिन पापसे रहित हैं वे सभी अल्पकाल में वरज्ञानी अर्थात् केवलज्ञानी होते हैं।

भावार्थः- इस पंचमकाल में जड़-वक्र जीवों के निमित्त से यथार्थ मार्ग अपभ्रंश हुआ है। उसकी वासनासे जो जीव रहित हुए वे यथार्थ जिनमार्ग के श्रद्धानरूप सम्यक्त्वसहित ज्ञान-दर्शन के अपने पराक्रम-बलको न छिपाकर तथा अपने वीर्य अर्थात् शक्ति से वर्द्धमान होते हुए प्रवर्तते हैं, वे अल्पकाल में ही केवलज्ञानी होकर मोक्ष प्राप्त करते हैं। ।।6।।

गाथा- 6 पर प्रवचन

इसप्रकार पूर्वोक्त प्रकार से सम्यग्दर्शन के बिना जीव के चारित्र, तपादि को निष्फल कहा।

अब कहते हैं कि सम्यग्दर्शन सहित सब ही प्रवृत्ति सफल है।

जो जीव सम्यग्दर्शन-ज्ञान-दर्शन-बल और वीर्य में वर्द्धमान है और कलिकलुष पाप से रहित है। पंचमकाल में अनेक मलिन पाप-विपरीत श्रद्धा के पोषक अभिप्राय चल निकले हैं-उनसे रहित हैं और सम्यग्दर्शनादि की आराधना से सहित है, वह जीव धन्य है। वह अल्पकाल में केवलज्ञानी होता है।

www.vitragvani.com

इस पंचमकाल में जड़ और वक्र जीवों के निमित्त से यथार्थ जिनमार्ग में भी भ्रष्ट होकर मार्ग हुए हैं। जो उस विकृत मार्ग की वासना से रहित है। जगत में जीवों का बहुभाग तो विपरीत श्रद्धा वाला है; किन्तु विपरीत श्रद्धा रहित यथार्थ जिनमार्ग की प्रतीति वाले जीव बिरले ही होते हैं।- ऐसे जो जीव जिनमार्ग की यथार्थ श्रद्धारूप सम्यक्त्व सहित हैं और वे अपने पराक्रम बल को छिपाये बिना ज्ञान-दर्शन में और तपादि में वर्द्धमान होकर वर्तते हैं वे जीव अल्पकाल में केवलज्ञान पाते हैं।

कलि कलुष पाप अर्थात् यहाँ इस पंचमकाल में जो भ्रष्ट मार्ग जैनमत के नाम से चले और यथार्थ जिनमार्ग से विरूद्ध प्ररूपणा करके मिथ्याश्रद्धा को पुष्टकर सच्चे देव-शास्त्र-गुरु के स्वरूप की विपरीत कल्पना करके, भगवान के यथार्थ मार्ग का विरोध करके कुमार्ग का पोषण किया-वे जीव कलियुग के पाप से सहित हैं।

यहाँ कहा है कि अहो! जो जीव ऐसे विकराल कलियुग में भी यथार्थ जैनमत की पहिचान सहित समकिती हैं और सम्यग्ज्ञान-चारित्रादि के आराधक हैं-वे जीव अल्पकाल में मुक्ति पाते हैं।

स्वभाव का आदर करने वाले के क्रमबद्धपर्याय में ऐसा ही क्रम होता है कि अल्पकाल में ही मुक्तदशा हो जाती है। अज्ञानी जीव कहता है कि "क्रमबद्ध है तो फिर अल्पकाल में ही मुक्ति पाना कैसे रहा?" भाई! अभी तुझे क्रमबद्ध की खबर ही नहीं हैं। जैसे देवरानी-जेठानी के आपस में न बनती हो तो शब्द-शब्द में आपत्ति हो जाती है। वैसे ही अज्ञानी जीव शब्द-शब्द में विवाद करता है कि 'ऐसा कैसे कहा?' अरे भाई! तुझे संतों के हृदय की खबर नहीं हैं। जहाँ यथार्थ दृष्टि हुई वहाँ दीर्घकाल तक संसार रहता ही नहीं, वहाँ अल्पकाल में मुक्ति हो ऐसा ही क्रम है। अतः कहा है कि जो जीव सम्यग्दर्शनादि की आराधना से सहित है वह जीव शीघ्र मुक्ति पाता है।

यह तो दर्शनप्राभृत का अधिकार है। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य देव ने अष्टपाहुड़ का सार रचा है उसमें सम्यग्दर्शनादि की व्याख्या है। आत्मा शुद्ध चिदानंद है। जो उसकी प्रतीति नहीं करता और स्वरूप में स्थिरता- चारित्र प्रगट नहीं करता, वह साधु नहीं हैं। उसको वंदन करने से पाप लगता है।

इसप्रकार यह छठवीं गाथा हुई।

Shree kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

दर्शनपाहुड़ गाथा-7

अब कहते हैं कि- सम्यक्त्वरूपी जलका प्रवाह आत्मा को कर्मरज नहीं लगने देता:-

सम्मत्तसलिलपवहो णिच्चं हियए पचट्टए जस्स।
कम्मं वालुयवरणं बन्धुच्चिय णासए तस्स ।।7।।

सम्यक्त्वसलिलप्रवाहः नित्यं हृदये प्रवर्त्तते यस्य।
कर्म बालुकावरणं बद्धमपि नश्यति तस्य।।7।।

हिन्दी पद्यानुवादः

सम्यक्त्व की जलधार जिनके नित्य बहती हृदय में।
वे कर्मरज से ना बंधे पहले बंधे भी नष्ट हों।।7।।

अर्थः- जिस पुरुष के हृदय में सम्यक्त्वरूपी जलका प्रवाह निरन्तर प्रवर्त्तमान है उसके कर्मरूपी रज-धूलका आवरण नहीं लगता, तथा पूर्वकाल में जो कर्मबंध हुआ हो वह भी नाश को प्राप्त होता है।

भावार्थः- सम्यक्त्वसहित पुरुष को (निरन्तर ज्ञानचेतना के स्वामित्वरूप परिणमन है इसलिये) कर्म के उदय से हुए रागादिक भावोंका स्वामित्व नहीं होता, इसलिये कषायों की तीव्र कलुषता से रहित परिणाम उज्ज्वल होते हैं; उसे जलकी उपमा है। जैसे-जहाँ निरन्तर जलका प्रवाह बहता है वहाँ बालू-रेत-रज नहीं लगती; वैसे ही सम्यक्त्वी जीव कर्मके उदय को भोगता हुआ भी कर्मसे लिप्त नहीं होता। तथा बाह्य व्यवहार की अपेक्षा से ऐसा भी तात्पर्य जानना चाहिये कि- जिसके हृदय में निरन्तर सम्यक्त्वरूपी जल का प्रवाह बहता है वह सम्यक्त्वी पुरुष इस कलिकाल सम्बन्धी वासना अर्थात् कुदेव-कुशास्त्र-कुगुरुको नमस्कारादिरूप अतिचाररूप रज भी नहीं लगाता, तथा उसके मिथ्यात्व सम्बन्धी प्रकृतियों का आगामी बंध भी नहीं होता।।7।।

गाथा-7 पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि जिसमें सम्यक्त्वरूप जल का प्रवाह बहता है वैसा आत्मा कर्मरज लगने नहीं देता।

www.vitragvani.com

जिस पुरुष के आत्मा में निरंतर सम्यक्त्वरूप जल का प्रवाह प्रवर्तता है वह धर्मात्मा है। अपना आत्मा शरीर व पुण्य-पाप से लाभ मानने की बुद्धि से रहित है; एकसमय की ज्ञानपर्याय से भी लाभ मानने की बुद्धि से रहित है। देव-शास्त्र-गुरु-सम्मेदशिखर, शत्रुंजय, समवसरण लाभदायक नहीं; स्त्री, कुटुम्ब आदि हानिकारक नहीं। पुण्य परिणाम लाभदायक नहीं। ज्ञान, दर्शन, वीर्य की अल्पअवस्था के आश्रय से लाभ नहीं। मेरा आत्मा शुद्ध चिदानंद है, उसके अवलंबन से मेरे में शान्ति प्रगटती है-ऐसा सम्यग्दर्शनरूपी जल बहता है वह आत्मा सम्यग्दृष्टि है। मेरे द्रव्यस्वभाव के अवलंबन से ही लाभ होगा, मेरी शान्ति, स्वतन्त्रता की प्राप्ति-मेरे ज्ञानानंद स्वभाव से होगी-ऐसा वह मानता है। बाह्य की कोई वस्तु हो वह तो ज्ञेय है, उससे लाभ नुकसान नहीं है।

भगवान आत्मा एक समय में चिदानंद का पिण्ड है। उसमें अन्तर्मुख होने से शान्ति होती है देव-शास्त्र-गुरु से लाभ नहीं है, यात्रा आदि से लाभ नहीं है (क्योंकि इनके लक्ष्य वाले परिणाम परलक्ष्यी भाव हैं।) धर्मात्मा को शुभराग आता है किन्तु शुभराग से धर्म नहीं होता। आहार में या आहार देने में धर्म लाभ नही है। आहारदान देने का भाव पुण्य है। उसके कारण भोगभूमि में जन्म मिलता है, वहाँ कल्पवृक्ष के फल को भोगे किन्तु आत्मा के सुख को नहीं भोगता। कोई कहे कि पंचकल्याणक कराने से आठ भव में मुक्ति होती है, तो यह बात मिथ्या है। देव-शास्त्र-गुरु की भक्ति, पूजा, व्रत के भाव पुण्य है, वे कोई जैन धर्म नहीं है। यह बात भावपाहुड़ की 82 वीं गाथा में आयेगी। पूजा, भक्ति का राग तो अभव्य को भी होता है। वह धर्म नहीं है। अशुभराग से बचने के लिये शुभभाव आता है; किन्तु मैं शुद्ध चिदानंद हूँ-ऐसी दृष्टि ही धर्म का कारण है। शुभराग से भव घटते हैं- यह बात मिथ्या है।

प्रश्नः- ऐसा सुनकर तो कोई मन्दिर के लिये धन खर्च नहीं करेंगे ?

उत्तरः- कोई जीव पदार्थ को बनाता नहीं है कि उसकी अनुपस्थिति में उस पदार्थ की अवस्था अटक जाय। मन्दिर बनने का हो तब बनता है और तब वैसे निमित्त होते है। धर्मी को, 'आत्मा शुद्ध चिदानंद है'- ऐसी दृष्टि निरंतर वर्तती है; पुण्य से लाभ है-ऐसी दृष्टि कभी होती नहीं। स्वभाव के आश्रय की दृष्टि नहीं छूटती-यही सम्यग्दर्शन है।

www.vitragvani.com

कर्मोदय के कारण राग मानने वाले मिथ्यादृष्टि हैं। तथा सम्यग्दर्शन हुआ तो चारित्र क्यों नहीं लेते-ऐसा अज्ञानी पूछते है- किन्तु भाई! सम्यग्दर्शन श्रद्धागुण की पर्याय है, चारित्र अन्य गुण है। एक गुण के कारण दूसरा गुण प्रगटता नही है। सम्यग्दर्शन के प्रवाह के कारण नये कर्म नहीं बंधते तथा पूर्वबद्ध कर्म नाश को प्राप्त होते है। सम्यग्दृष्टि को कर्म का आवरण नहीं लगता। अल्प कर्म के बंध को यहाँ गौण किया है। सम्यग्दर्शन का ध्येय पूर्ण द्रव्य स्वभाव है। पूर्ण स्वभाव में संसार नहीं है।- ऐसे स्वभाव की दृष्टि होने से कर्म नहीं आते। पूर्वबद्ध कर्म नष्ट हो जाते है।

भगवान आत्मा अनंत पर पदार्थों से प्रथक् है, वर्तमान में वर्तते पुण्य-पाप से प्रथक् है और अल्प पर्याय जितना भी नहीं है। मैं पूर्ण ज्ञानस्वभावी हूँ- ऐसी दृष्टिवंत सम्यग्दृष्टि जीव को कर्म बंधन नहीं होता, पूर्व के कर्म छूट जाते हैं। अल्पराग आता है; तथापि बंधन नहीं होता।

सम्यग्दृष्टि होने पर भी अल्पराग है। अनंत पर पदार्थों से इष्ट-अनिष्ट की कल्पना छूट गयी है। शरीर में रोग आया अतः शान्ति नहीं रही- ऐसा मानने वाले को अनन्त पर पदार्थों में अनिष्ट बुद्धि है।

मिथ्यादृष्टि सहित अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ स्वभाव के आश्रय से नष्ट होती है। सच्ची समझ के बिना अनंतकाल के संसार प्रवाह में विश्राम नहीं मिला। आत्मा अनंतकाल से पुण्य-पाप का आश्रय लेकर खेदखिन्न हुआ है। आत्मा के अवलंबन से खेद का नाश वह विश्राम है।

सम्यग्दर्शन सहित आत्मा को कर्म के उदय के निमित्त से रागादिक होते हैं। अर्थात् स्वभाव के आश्रय से विकार नहीं होता। स्वभाव को चूककर निमित्त के आधार से स्वयं विकार करता है। यदि विकार कर्म से होता हो तो कभी भी विकार के अभाव का प्रसंग नहीं बन सकता। आचार्य जयसेन श्री प्रवचनसार की 45 वीं गाथा की टीका में लिखते हैं कि- "द्रव्य मोहनीयकर्म का उदय होने पर भी जीवभावमोह रूप न परिणमें तो बंध नहीं होता।" स्वभाव सन्मुख झुके तो निमित्त क्या करेगा? अज्ञानी कहता है कि निमित्त अकर्त्ता होने पर भी कर्त्ता है, निमित्त आता है तो विलक्षण परिणमन होता है। किन्तु यह बात मिथ्या है। स्वयं स्वभाव सन्मुख हो तो कर्म की निर्जरा हो जाती है।

Shree kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

सम्यग्दृष्टि को दया, दानादिक के भाव होते हैं; किन्तु वह उनका स्वामी नहीं। जैसे शरीर में मल आदि विकार रखने का अभिप्राय नहीं होता, वैसे ही पुण्य पाप मल के समान है। सम्यग्दृष्टि उन्हें निकालना चाहता है।

श्री पद्मनंदि पंचविंशति में एक दान अधिकार है उसमें दृष्टान्त दिया है कि, लोग अनाज रांधते हैं उसमें से जली हुई खुरचन बाहर फेंक देते हैं, उसे कौआ अकेला नहीं खाता, अन्य कौओं को बुलाकर खाता है। वैसे ही हे लक्ष्मीवंत। पूर्व में तेरे गुण की अवस्था जली थी इसकारण पुण्य बंधा है। आत्मा आनंदकंद है उसकी पर्याय में उल्टी दशा अर्थात् अवस्था जली है उसके फल में पुण्य बंधा है और पैसा मिला है। अतः यदि तू अकेले ही उस पैसे को- सम्पत्ति को भोगेगा और दान नहीं करेगा तो तू कौए से भी हीन हो जायेगा।

पुण्य परिणाम जहर है। महाव्रत के परिणाम भी जहर है। वह गुण की उल्टी दशा है; उसमें आत्म शान्ति जलती है। उसके फल में पाँच-पच्चीस लाख की धूल (सम्पत्ति) मिलती है। उसे तू दान में खर्च नहीं करेगा तो कौए से भी गया बीता है।

आचार्यदेव कहते हैं कि आत्मा का ज्ञान स्वभाव है, उसमें रमण ही ब्रह्मचर्य है- ऐसी बात की है। पुण्य से लाभ मिलता है-ऐसी बात हमारे पास नहीं है। हमें आहार की दरकार तो है नहीं, हम तो सत्य बात करते हैं। हम ब्रह्मचारी है, हम कहते हैं वह सत्य है, तुझे कष्ट हो तो क्षमा करना । तथा कन्या की शादी में पच्चीस-पचास हचार खर्च करता है और धर्म की प्रभावना में लोभ करे तो तू कपटी है, मायाचारी है।

धर्मात्मा राग का स्वामी नहीं है। यद्यपि उसको भूमिकानुसार शुभ-अशुभराग आता है, आर्त्त-रौद्र ध्यान भी होता है; किन्तु ज्ञान में ऐसी श्रद्धा वर्तती है कि यह मेरा स्वभाव नहीं। मैं तो चैतन्य का स्वामी हूँ, सहज चिदानंद का स्वामी हूँ, पुण्य-पाप का स्वामी नहीं। इसकारण सम्यग्दृष्टि को तीव्र कषाय (अनंतानुबंधी) नहीं होती, परिणाम में उज्जवलता होती है। देखो, सम्यग्दृष्टि की महिमा! अतः सम्यग्दर्शन के परिणाम जल के प्रवाह समान है। जहाँ जल प्रवाह है वहाँ बालू (रेत) नहीं आती। इसीप्रकार सम्यग्दृष्टि जीव कर्मोदय से प्राप्त सामग्री को भोगता दिखे तथापि कर्म से

www.vitragvani.com

लिप्त नहीं होता। यहाँ भोक्ता व्यवहार से कहा है। वस्तुतः तो धर्मात्मा राग का भोक्ता भी नहीं है। भरत चक्रवर्ती के छियानवैं हजार स्त्रियाँ थीं। दुनिया बाहर से उन्हें भोक्ता देखती है और कहती है कि चक्रवर्ती लड्डू खाते हैं, स्त्री का भोग लेते हैं, हीरा के थाल में मिष्ठान खाते है; किन्तु वस्तुतः सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा को बाहर के पदार्थों में कोई उत्साह नहीं होता और स्वभाव का उत्साह नहीं छूटता। अज्ञानी जीव तो मात्र बाह्य त्याग को ही धर्म मानते हैं। वस्तुतः तो अज्ञानी को 'धर्म का ही त्याग' है। पर वस्तु मेरी है, यह राग मेरी वस्तु है-ऐसा मानने वाले धर्म के त्यागी हैं।

धर्मी को पूर्व कर्मोदय के समय अल्पराग आता है-इस कारण उन्हें भोक्ता कहा जाता है। लोग बाह्य संयोग में देखते है अतः भोक्ता कहा। तीर्थंकर, चक्रवर्ती जन्म से ही तीन ज्ञान के धारक होते हैं तथापि विवाह करने जाते हैं। किन्तु वस्तुतः वे समकिती राग के स्वामी नही, चैतन्य के स्वामी है। अज्ञानी संयोग से देखता है; अतः संयोग भोगते हैं- ऐसा कहा; किन्तु वस्तुतः उनको कर्म का लेप नहीं होता ।

तथा बाह्य व्यवहार की अपेक्षा से ऐसा व्यवहार जानना कि जो धर्मात्मा के अंदर में शुद्ध स्वभाव की प्रतीतिरूप जल प्रवाह बहता है उसके कलिकाल सम्बन्धी वासना नहीं होती, अर्थात् वह कुदेव - कुगुरु - कुशास्त्र को नमस्कार नहीं करता । जो वस्त्र सहित होने पर भी, मैं साधु हूँ- मैं मुनि हूँ- ऐसा मनावे, तथा जिन शास्त्रों में वस्त्र सहित मुनिपना माना गया हो - उन कुगुरु तथा कुशास्त्रों को सम्यग्दृष्टि वंदन नहीं करता । मटका लेने जाये वहाँ भी बजाकर देखते हैं, संसार में कोई भूल करे तो सब पूछते है, कहाँ से आये ? अतः बाहर की चीज में तो परीक्षा करते हैं । यहाँ धर्म में कोई पूछने वाला नहीं, जहाँ-तहाँ नमस्कार करते हैं। जिनको अखण्ड दर्शन-ज्ञान उपयोग प्रगट हो गया है तथा जिनको क्षुधा, तृषा न हो वे देव हैं, उसके बदले देव को क्षुधा, तृषा माने वह कुदेव है । सच्चे शास्त्र से विरूद्ध बात करे वह कुशास्त्र है। वस्त्र सहित मुनिपना माने-मनावे वह कुगुरु है । सम्यग्दृष्टि ऐसे कुदेव-कुशास्त्र-कुगुरु को वंदन नहीं करता ।

कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र के मानने वाले को द्रव्य-गुण-पर्याय की भी खबर नहीं है। चाहे जैसा वेष हो अथवा शरीर की नग्नदशा हो और सदोष आहार लेता हो, तो वह कुगुरु है। अनेक कुवेष धारण करके मुनि नाम धरावे वह मूढ़ है ।

Shree kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

सम्यग्दृष्टि को कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र को वंदन करने का भाव नहीं होता । लज्जावश कुदेवादि को वंदन करे तो भी मिथ्यादृष्टि है । प्रथम प्रतीति करो ! कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र का आदर न करो !

ज्ञानी को अपनी कमजोरी के कारण अशुभ राग, आर्त्त और रोद्रध्यान का अशुभ भाव तो आता है; किन्तु कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र को मानने का अशुभभाव नहीं आता। यह बात कड़क है । जैसे दस हजार की कीमत वाला दस रति का हीरा दस हजार निंबोली (नीम का फल) में नहीं मिलता । वैसे ही कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र निंबोली के समान है। सच्चे देव-शास्त्र-गुरु हीरे के समान है; अतः उनकी यथार्थ कीमत होनी चाहिये। इसलिये सच्चे देव-शास्त्र-गुरु की प्रतीति करो ! जिसको कालिकाल में कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र की वासना घट गयी है (वह धन्य है।)

अभी तो मुनि के लिये आहार-पानी बनाते हैं और बोलते हैं कि मन शुद्ध, वचन शुद्ध, काय शुद्ध, आहार-जल शुद्ध है, किन्तु वास्तव में है पाँचो अशुद्ध । अभी कालिकाल सम्बन्धी वासना बैठ गयी है । जैसे कस्तूरी के पास पड़ी हुई बहियों के पन्ने-पन्ने में कस्तूरी की गंध फेल जाती है । वैसे ही जगत को कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र की श्रद्धा की कुवासना की गंध पर्याय-पर्याय में बैठी हुई है । इस काल में ऐसी प्रवृत्ति विशेष है, मोक्षमार्गप्रकाशक के छठवें अधिकार में कहा है कि "कुदेवादिक का त्याग न करने से मिथ्यात्व भाव बहुत पुष्ट होता है । इस काल में इनकी प्रवृत्ति विशेष देखने में आती है, अतः यहाँ उनके निषेधरूप निरूपण किया है, उसको जानकर मिथ्यात्व त्यागकर अपना कल्याण करो ।" पूर्व के पण्डित भी यथार्थ बात करते थे । अभी तो शास्त्र के नाम से विपरीत प्ररूपणा चलती है । सच्चे देव-शास्त्र-गुरु का भी पता नहीं है । सम्यग्दृष्टि कुदेव-कुगुरू-कुशास्त्र को नमस्काररूप दोष नहीं लगाता; अतः उसके मिथ्यात्व सम्बन्धी प्रकृत्ति का आगामी बंध नहीं होता ।

इस प्रकार यह गाथा पूर्ण हुई ।

Shree kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

दर्शनपाहुड़ गाथा - 8

अब कहते हैं कि-जो दर्शनभ्रष्ट हैं तथा ज्ञानचारित्र से भ्रष्ट हैं वे स्वयं तो भ्रष्ट हैं ही परन्तु दूसरों को भी भ्रष्ट करते हैं,- यह अनर्थ है :-

जे दंसणेसु भट्ठा णाणे भट्ठा चरित्तभट्ठा य।
एदे भट्ठ वि भट्ठा सेसं पि जणं विणासंति ।।8।।

ये दर्शनेषु भ्रष्टाः ज्ञाने भ्रष्टा चरित्र भ्रष्टाः च।
एते भ्रष्टात् अपि भ्रष्टाः शेषं अपि जनं बिनाशयंति।।8।।

हिन्दी पद्यानुवादः

जो ज्ञान-दर्शन-भ्रष्ट हैं चारित्र से भी भ्रष्ट हैं।
वे भ्रष्ट करते अन्य को वे भ्रष्ट से भी भ्रष्ट हैं।।8।।

अर्थः- जो पुरुष दर्शन में भ्रष्ट हैं तथा ज्ञान-चारित्र में भी भ्रष्ट हैं वे पुरुष भ्रष्टों में भी विशेष भ्रष्ट हैं। कई तो दर्शन सहित हैं किन्तु ज्ञान-चारित्र उनके नहीं है, तथा कई अंतरंग दर्शन से भ्रष्ट हैं तथापि ज्ञान-चारित्र का भलीभाँति पालन करते हैं; और जो दर्शन-ज्ञान-चारित्र इन तीनों से भ्रष्ट हैं वे अत्यन्त भ्रष्ट हैं; वे स्वयं तो भ्रष्ट हैं ही परन्तु शेष अर्थात् अपने अतिरिक्त अन्य जनोंको भी नष्ट करते हैं।

भावार्थः- यहाँ सामान्य वचन है इसलिये ऐसा भी आशय सूचित करता है कि सत्यार्थ श्रद्धान, ज्ञान, चारित्र तो दूर ही रहा, जो अपने मतकी श्रद्धा, ज्ञान, आचरण से भी भ्रष्ट हैं वे तो निरर्गल स्वेच्छाचारी हैं। वे स्वयं भ्रष्ट हैं उसीप्रकार अन्य लोगों को उपदेशादिक द्वारा भ्रष्ट करते हैं, तथा उनकी प्रवृति देखकर लोग स्वयमेव भ्रष्ट होते हैं, इसलिये ऐसे तीव्रकषायी निषिद्ध हैं; उनकी संगति करना भी उचित नहीं है।।8।।

गाथा- 8 पर प्रवचन

अब कहते हैं कि जो दर्शन से भ्रष्ट है, ज्ञान-चारित्र से भ्रष्ट है, वह स्वयं तो भ्रष्ट है ही; किन्तु अन्य को भी भ्रष्ट करता है

जो पुरूष दर्शन से भ्रष्ट है वह निर्ग्रन्थ मुद्रा और निर्ग्रन्थ भावसहित मुद्रा से भ्रष्ट है। अर्थात् उसको यह पता नहीं है कि मुनि कैसे होते हैं, चारित्र का क्या स्वरूप है ।

www.vitragvani.com

अंतर में तीन कषाय का अभाव और बाहर में नग्न दिगम्बर दशा है – वह मुनिमार्ग है । उस मुनिमार्ग से मोक्ष है। जिसको ऐसी प्रतीति नहीं वह दर्शन से भ्रष्ट है। तथा सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र से भी भ्रष्ट है।

जिसको आत्मा के पुण्य-पाप से रहित निजानंद स्वरूप की प्रतीति नहीं है और मुनि का अभ्यंतर स्वरूप अर्थात् तीन कषाय चौकड़ी के अभावरूप स्वरूप है उसकी खबर नहीं है उसका ज्ञान और चारित्र भ्रष्ट है। इसप्रकार वह भ्रष्ट से भ्रष्ट है। जो दर्शन से भ्रष्ट है वह ज्ञान और चारित्र से भी भ्रष्ट है। जो दर्शन से भ्रष्ट है उसके व्यवहार ज्ञान और चारित्र का भी ठिकाना नहीं है। वह तो भ्रष्ट में भ्रष्ट है।

किसी को आत्मा पुण्य-पाप से रहित है-ऐसा भान तो है और जैनमार्ग व मुनिदशा की खबर भी है; किन्तु समझाने की विशेष सामर्थ्यरूप ज्ञान नहीं तथा मुनिपने की दशारूप चारित्र नहीं है- स्वरूप में स्थिरतारूप अप्रमत्त दशा नहीं है; किन्तु आत्मा विकार रहित है-ऐसा भान है और बाह्यमें निर्ग्रन्थ दशा और अंतर में निर्दोष ही मुनिदशा है-ऐसी प्रतीति है। अर्थात् मुनिदशा की प्रतीति है। सर्वज्ञ ने एक ही मार्ग कहा है-ऐसी श्रद्धा है, किन्तु दूसरों को समझा सके-ऐसा ज्ञान नहीं है और विशेष अंतरलीनता नहीं है। स्वरूपाचरण चारित्र है (वह धर्मी है।) लाखों वर्षों तक मुनिपना न आवे-ऐसे धर्मी जीव भी होते है।

प्रश्न :- सम्यग्दर्शन होने पर भी चारित्र क्यों नहीं ?

समाधानः- भाई! चारित्र बाहर से नहीं आता। चारित्रदशा स्वभाव के आश्रय से आती है। मुनिपना लेने का क्रम यह है कि पहले तत्त्वज्ञान हो, फिर उदासीन परिणाम हो। मोक्षमार्गप्रकाशक में कहा है कि, "मुनिपद लेने का क्रम तो यह है कि पहले तत्त्वज्ञान हो फिर उदासीन परिणाम हो, परीषहादि सहन करने की शक्ति हो और वह अपनी इच्छा से ही मुनि होना चाहता हो तब श्रीगुरु उसे मुनिपना अंगीकार कराते है। किन्तु यह कैसी विपरीतता है कि तत्त्वज्ञान रहित विषयासक्त जीवों को माया से अथवा लोभ बताकर मुनिपद देना और फिर अन्यथा प्रवृत्ति कराना। किन्तु यह तो महा अन्याय है।" .....(छठवाँ अधिकार)

www.vitragvani.com

आत्मा राग से भिन्न है। पर से मुझे हानि-लाभ नहीं हैं ऐसा आत्मस्वरूप का भान न हो और मुनिपना लेना चाहता है। स्वर्गपद मिलेगा ऐसा लालच दिया जाता है।-यह कैसी विपरीतता है? स्वभाव के आश्रय से ही सम्यग्दर्शनादि होते हैं। सम्यग्दर्शन किसी क्रियाकाण्ड से नहीं होता। जिसको, अजीव की क्रिया मुझसे नहीं होती- ऐसा भान नहीं है, दर्शन का भान नहीं और क्रियाकाण्ड में धर्म मानता है। (वह जीव मूढ़ है।)

तथा कोई जीव ऐसे हैं जो दर्शन से भ्रष्ट है, निमित्त और राग की वासना पड़ी है, वास्तविक प्रतीति नहीं है; परन्तु बाहर से शास्त्र की बातें करते हैं और अट्ठाईस मूलगुणों का यथार्थ पालन करते हैं- व्यवहार आचरण का पालन करते हैं;- किन्तु वे भी मिथ्यादृष्टि हैं।

तथा जिसकी श्रद्धा विपरीत है, प्ररूपणा विरूद्ध है और चारित्र भी भ्रष्ट है। जो शरीर से तो नग्न दिगम्बर रहे किन्तु आचरण का ठिकाना न हो, प्ररूपणा का ठिकाना न हो, तो भी लोग बाह्य नग्नता देखकर ठगा जाते हैं। ऐसे भ्रष्ट मुनि को आहार शुद्ध कहकर पड़गाहन करते है वे भ्रष्ट होते हैं। जिस मुनि की श्रद्धा विपरीत, ज्ञान विपरीत और आचरण विपरीत-ऐसे तीनों में भ्रष्टता है, जो तत्त्व का विरोध करते है और उद्दिष्ट आहार लेते हैं वे भ्रष्ट हैं। उसे देखकर लोग भ्रष्ट होते हैं। जो मुनि के लिये उद्दिष्ट आहार बनाते हैं वे भ्रष्ट होते हैं। अहो! जो वस्त्र सहित मुनिपना मनवाते हैं वे तो भ्रष्ट में भ्रष्ट है। श्रद्धा, ज्ञान और आचरण-तीनो से ही भ्रष्ट है। जो उसके पास सुनने जाते है वे भ्रष्टता की पुष्टि करते हैं। सर्वज्ञ का मार्ग अथवा पंथ त्रिकाल में एक ही है। अन्यमार्ग में मुनिपना मानने वाले सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र से भ्रष्ट है। उन्हे सत्य वस्तुस्वरूप का परिज्ञान नहीं है। जो वस्त्र पात्र सहित मुनिपना मानते अथवा मनवाते हैं वे रत्नत्रय से भ्रष्ट हैं। जो उनसे लाभ होना मानकर उनके पास सुनने जाते हैं वे भी भ्रष्ट में भ्रष्ट हैं। निर्ग्रन्थ मुनि के अलावा अन्य को साधु माने और उसकी संगति करे उसकी श्रद्धा भ्रष्ट होने से वह भ्रष्ट में भ्रष्ट है।

यहाँ सामान्य कथन है, अतः ऐसा आशय भी सूचित होता है कि भगवान द्वारा कथित सच्ची श्रद्धा, ज्ञान और आचरण तो दूर रहा; जो अपने माने हुये दिगम्बर मत की श्रद्धा-ज्ञान और चारित्र से भ्रष्ट है वह भ्रष्ट से भ्रष्ट है। आत्मा, आस्रव, बंधादि तत्त्वों की जिसको खबर नहीं है, उनकी श्रद्धा नहीं है, उस अनुसार आचरण नही है,

www.vitragvani.com

वह निरर्गल श्वेच्छाचारी है। कुन्दकुन्दाचार्य आदि निर्ग्रन्थ मुनि सर्वज्ञ की परंपरा अनुसार क्या कहते हैं?-इसकी जिसको खबर नहीं और जो यह मानता है कि पुण्य से धर्म होगा, बाह्य क्रिया से धर्म होगा वह निरर्गल श्वेच्छाचारी है। पूज्यपादस्वामी, कुन्दकुन्दाचार्य आदि महान दिगम्बर संत धर्म के स्तम्भ हैं, वे क्या कहते है? उसकी श्रद्धा नहीं, ज्ञान नहीं। (वह स्वेच्छाचारी है।) स्वयं पैसा इकट्ठा करके जैन शाला का फण्ड बनावे, उद्दिष्ट आहार ले-यह त्यागी के लिये शोभाजनक नहीं है। मन्दिर आदि बनना हों तो बनते हैं उससे त्यागी को क्या काम है? (त्यागी होकर जो ये कार्य करते हैं) वे निरर्गल श्वेच्छाचारी हैं। उनको कोई रोकने वाला नहीं है। वे स्वयं तो भ्रष्ट है ही अन्य को भी ऐसा निरर्गल उपदेश देकर भ्रष्ट करते हैं।

लोग तो मात्र उनकी बाह्य प्रवृत्ति को देखते हैं। पुण्य के कारण वाणी का योग हो और हजारों मनुष्य सुनने आते हो; किन्तु अन्दर से भ्रष्ट होते हैं। नग्नदशा देखकर लोग भ्रमित हो जाते हैं। उनकी प्रवृत्ति देखकर लोग स्वयं अपनी उपादानगत योग्यता से भ्रष्ट होते हैं। अतः ऐसे भ्रष्ट जीवों की संगति नहीं करना चाहिये।

मिथ्यादर्शन-मिथ्याज्ञान-मिथ्याचारित्र निषिद्ध है। मिथ्यादर्शन ही तीव्र कषाय है। (जिसके वह विद्यमान हो) उसको साधुपने बहुमान देना, आहार-पानी देना, उसको वंदन करना, उसकी संगति करना उचित नहीं है। यह बात किसी व्यक्ति के प्रति द्वेषवश नहीं किन्तु तेरी श्रद्धा की निर्मलता के लिये कही जा रही है। किसी की जवाबदारी किसी के ऊपर नहीं है। अपनी श्रद्धा में विपरीतता नहीं करना। यह अपनी भूल स्वयं सुधारेगा तो सुधरेगी। अतः मिथ्यादृष्टि की संगति नहीं करना चाहिये।

वह भ्रष्ट जीव अपनी उच्चता बताने के लिये धर्मात्मा के दोष निकालता है। जो स्वयं तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र से भ्रष्ट है, परन्तु सच्चे धर्मात्माओं की भूल निकालकर उन्हें हीन बतलाता है। मैं साधु हूँ, मेरे में कुछ है-इसप्रकार अपनी उच्चता बतलाता है। कुछ दोष निकालकर अपनी सत्ता जताता है। सच्चे पुरूष में दोष निकालता है वह बड़ा पापी है। कोई धर्मात्मा ज्ञानी भावलिंगी संत है उनमें दोष निकालता है (कि) उन्हें व्याकरण नहीं आती, न्याय का ज्ञान नहीं है इत्यादि दोष निकालता है, वह अत्यधिक भ्रष्ट है।

दर्शनपाहुड़ गाथा-9

अब कहते हैं कि- ऐसे भ्रष्ट पुरुष स्वयं भ्रष्ट हैं, वे धर्मात्मा पुरुषों को दोष लगाकर भ्रष्ट बतलाते हैं:-

जो कोवि धम्मसीलो संजमतवणियमजोगगुणधारी ।
तस्स य दोस कहंता भग्गा भग्गत्तणं दिंति।।9।।

यः कोऽपि धर्मशीलः संयमतपोनियमयोगगुणधारी।
तस्य च दोषान् कथयंतः भग्ना भग्नत्वं ददति।।9।।

हिन्दी पद्यानुवादः

तप शील संयम व्रत नियम अर योग गुण से युक्त हों।
फिर भी उन्हें वे दोष दें जो स्वयं दर्शन भ्रष्ट हों।।9।।

अर्थः- जो पुरुष धर्मशील अर्थात् अपने स्वरूपरूप धर्मको साधनेका जिसका स्वभाव है, तथा संयम अर्थात् इन्द्रिय-मन का निग्रह और षट्काय के जीवोंकी रक्षा, तप अर्थात् बाह्याभ्यंतर भेदकी अपेक्षा से बारह प्रकार के तप, नियम अर्थात् आवश्यकादि नित्यकर्म, योग अर्थात् समाधि, ध्यान तथा वर्षाकाल आदि कालयोग, गुण अर्थात् मूलगुण, उत्तरगुण-इनका धारण करनेवाला है उसे कई मतभ्रष्ट जीव दोषों का आरोपण करके कहते हैं कि- यह भ्रष्ट है- दोषयुक्त है। वे पापात्मा जीव स्वयं भ्रष्ट हैं इसलिये अपने अभिमान की पुष्टि के लिये अन्य धर्मात्मा पुरुषों को भ्रष्टपना देते हैं।

भावार्थः- पापियोंका ऐसा ही स्वभाव होता है कि स्वयं पापी हैं उसीप्रकार धर्मात्मा में दोष बतलाकर अपने समान बनाना चाहते हैं। ऐसे पापियों की संगति नही करना चाहिये ।।9।।

गाथा- 9 पर प्रवचन

अभिमानी जीव अपने दोषों को तो देखता नहीं और धर्मात्माओं के दोष निकालता है। छल-बल से उनका अनादर करता है, वह बड़ा पापी है।

अपना स्वरूप चिदानन्द शुद्ध स्वभाव है, उसमे पुण्य-पाप रहित रमणता ही धर्म शील है। निमित्त को और राग को साधना वह धर्म नहीं है। मैं चिदानंद हूँ, मेरे

www.vitragvani.com

में व्यवहार नहीं-ऐसी मान्यता स्वस्वरूप धर्म है। धर्म पर्याय है। स्वरूप की एकाग्रता वह धर्म है। धर्म की अवस्था नई प्रगट होती है। चिदानंद स्वभाव के अवलम्बन से नई अवस्था प्रगटे और अधर्म की पुरानी अवस्था नष्ट हो वह धर्म है। धर्मात्मा अपने स्वरूप को साधता है।

तथा इन्द्रियाँ और मन का निग्रह करके स्वस्वरूप में लीन रहता है, वह संयम है। (धर्मात्मा) छहकाय के जीवों की रक्षा करता है-यह तो निमित्त का कथन है। जो कोई ऐसा मानता है मैं किसी पर प्राणी की रक्षा कर सकता हूँ, वह मिथ्यादृष्टि है। मैं छहकाय के प्राणियों की रक्षा कर सकता हूँ-ऐसा सम्यग्दृष्टि नहीं मानता। छहकाय में स्वयं भी आ जाता है। अपनी पर्याय में राग उत्पन्न न होने देना और स्वभाव में लीनता करना अपनी रक्षा है, वह अहिंसा है। -ऐसे जीव को तीव्र प्रमाद नहीं होता और शुभराग आता है वह व्यवहार दया है। तथा स्वभाव में राग रहित परिणाम निश्चयदया है। आत्मा परजीव की रक्षा नहीं कर सकता; परन्तु पर जीव की रक्षा करता है-ऐसा कहा जाता है। मोक्षमार्ग प्रकाशक के सातवें अधिकार में कहा हैं कि परजीवों की रक्षा के लिये यत्नाचार प्रवृत्ति को समिति मानता है; परन्तु हिंसा के परिणाम से तो पाप होता है तथा रक्षा के परिणामों से संवर कहोगे तो पुण्य बंध का कारण कौन ठहरेगा? एषणा समिति में दोष टालते है वहाँ रक्षा का प्रयोजन नहीं है अतः रक्षा के लिये ही समिति होती नहीं है। तो किस प्रकार समिति होती है? मुनि को किंचित राग होने पर गमनादि क्रिया होती है। वहाँ उन क्रियाओं में अति आसक्तता के अभाव के कारण प्रमादरूप प्रवृत्ति नहीं होती तथा अन्य जीवों को दुःखी करके अपना गमनादि प्रयोजन नहीं साधते, इसकारण स्वयं ही दया पलती है, इसप्रकार सच्ची समिति है।" परद्रव्य की पर्याय की रक्षा कौन कर सकता है? तू अपने शरीर की अवस्था नहीं कर सकता, अपने पुत्र-पुत्री को बचा नहीं सकता तो पर का क्या करेगा? प्रमादभाव (शुभराग से) से बचाने का भाव आवे परन्तु पर की रक्षा नहीं कर सकता। एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक के जीव हिंसा हो ऐसा आहार मुनि नहीं लेते, इससे मुनि छहकाय के जीवों की रक्षा करते हैं- ऐसा कहा है। जो ऐसे सच्चे मुनियों में दोष निकालता है वह पापी है।

www.vitragvani.com

तथा मुनि बाह्य-अभ्यंतर बारह प्रकार का तप करते हैं और सच्चिदानन्द प्रभु की अनुभूति में लीनता करते हैं। अट्ठाईस मूलगुणों का पालन करते हैं। आत्मभान सहित निर्दोष आहार लेते हैं, तथा कषाय मन्दता आदि धारण करते हैं। जो ऐसे मुनि में दोष निकालता है और उन्हे नीचा दिखाकर स्वयं की महत्ता करता है अर्थात् ये मुनि तो सावद्य करते हैं, आरम्भ करते हैं- ऐसा बोलता है वह पापी है। मुनि को नवकोटि से त्याग है तो फिर मन्दिर में जाने का विकल्प क्यों करते है। मन्दिर बनाकर ठीक किया-ऐसा श्रावक को क्यों कहते हैं? इसप्रकार वहाँ दोष निकालता हैं। तुम्हारे नवकोटि का त्याग है तो सावद्य को क्यों उत्प्रेरित करते हो? भाई! मुनि को स्वरूप की दृष्टि है। वे निर्मल आचरण का पालन करते है और राग भूमिकानुसार आता है। शास्त्र में कहा है कि अरहंत, सिद्ध तथा उनकी प्रतिमा, चैत्यालय, चतुर्विध संध तथा शास्त्र आदि सब के प्रति दास होते हैं। तथा स्वामी का नोकर हो उसप्रकार समकिती उनका दास है। मन्दिर मन्दिर के कारण से होता हैं धर्मी को शुभराग आता है। पद्मनंदि पंचविंशतिका में कथन आता है कि मन्दिर आदि बने तो वहाँ मुनिराज पधारें और धर्म की विशेष प्रभावना हो। परन्तु वहाँ अज्ञानी दोष निकालता है। "मुनियों का सत्कार क्यों करते हो भावलिंगी मुनि का बैण्ड बाजों से क्यों सत्कार करते हैं?" (ऐसा कहकर दोष निकालता है।)

वहाँ श्रावक अपने शुभभाव करता है; परन्तु अज्ञानी जीव धर्मात्मा के दोष निकालता है। स्वयं अभिमान करता है। मैं मुनि हूँ, मैं बिना मूर्छा के वस्त्र रखता हूँ -इसके क्या बाधा है? इसप्रकार अपना बचाव करके दूसरों के दोष निकालता है। पापी का ऐसा ही स्वभाव है। स्वयं पापी है अतः धर्मात्माओं में दोष निकालता है,-इसलिये उसकी संगति नहीं करना चाहिये। सच्चे धर्मात्मा की पहिचान करके खोटे की संगति छोड़ना ही हितकर हैं।

देखो, कुन्दकुन्दाचार्य ने प्रथम हो यह सिद्धान्त बांधा है कि जिसकी बाह्य निर्ग्रन्थ दशा हो, शरीर में निर्ग्रन्थ वृत्ति दिखती हो, अन्तर में अविकारी दशा हो, आत्मअनुभव सहित सात तत्त्वों और नौ पदार्थों की यथार्थ प्रतीति हो और अन्तर-बाह्य झलकती मुद्रा हो -वह जिनमुद्रा है और वही जिनधर्म है। उन्हें अतीन्द्रिय आनन्द की ही

www.vitragvani.com

अभिलाषा है, वे जानते हैं कि पुण्य-पाप के भाव दुःखरूप है। जिसे अविकारी आनन्द निर्ग्रन्थ- आनन्द प्राप्त करना है उसके चारित्र मुद्रा कैसी होती है-उसकी बात चलती है। जो सग्रंथ को निर्ग्रन्थ कहे वह जैनदर्शन नहीं है। ऐसा कहने वाला वीतरागी आनन्द का इच्छूक नहीं है। चारित्र मुद्रा वीतरागी आनन्द की साक्षात साधक है। बाह्य निर्ग्रन्थदशा है और अन्तर में उपशमरस प्रगट हुआ है, उसे दर्शनमार्ग कहते हैं। यह दर्शनमार्ग श्रद्धा करने योग्य है। इससे विपरीत मार्ग श्रद्धा करने योग्य नहीं हैं। प्रथम जिनके वीतरागी दृष्टि, वीतरागी आनन्द और वीतरागी झलक शरीर पर दिखे उन्हे निर्ग्रन्थ मुनि के रूप में स्वीकार करना योग्य है। उसके बदले वस्त्र सहित मुनिपना स्वीकार करने वाले को खेद की अभिलाषा है, वह आनन्द का अभिलाषी नहीं है।

वीतरागी अर्थात् अकषायी आनन्द अथवा स्वरूप आनन्द की बात करते हैं। जीव राग की आकुलता वाला लौकिक आनन्द तो अनादि से भोगता है। अतः जिनकी मुद्रा में वीतरागी आनन्द झलकता है उन्हें मुनि अथवा गुरुरूप में स्वीकार करना। जो इससे विरूद्ध है वह दर्शन से भ्रष्ट है। जिसकी मुद्रा निर्ग्रन्थ नहीं है उसे मुनि मानने, मनवाने अथवा अनुमोदन करने वाला दर्शन से भ्रष्ट है।

जिनको चारित्रदशा होती है वे निर्ग्रन्थ मुनि हैं। तथापि जो वस्त्र-पात्र सहित को मुनि माने, मनावे और मुनि मानकर आहार-पानी दे वह मूढ़ मिथ्यादृष्टि है। जो दर्शन भ्रष्ट है वह मूल में भ्रष्ट है। जिसको मूल नहीं होता उसके फल नहीं होता। जैसे मूल (जड़) के बिना आमरूप फल नहीं मिलता, उसीप्रकार सम्यग्दर्शनरूपी मूल के बिना केवलज्ञानरूपी फल नहीं मिलता।

दर्शनपाहुड़ गाथा - 10

अब कहते हैं कि- जो दर्शन भ्रष्ट है वह मूलभ्रष्ट है, उसको फलकी प्राप्ति नहीं होतीः-

जह मूलम्मि विणट्ठे दुमस्स परिवार णत्थि परवड्ढी।
तह जिणदंसणभट्ठा मूलविणट्ठा ण सिज्झंति।।10।।

यथा मूले विनेष्टें द्रुमस्य परिवारस्य नास्ति परिवृद्धिः।
तथा जिनदर्शनभ्रष्टाः मूलविनष्टाः न सिद्धयन्ति ।।10।।

हिन्दी पद्यानुवादः

जिस तरह द्रुम परिवार की वृद्धि न हो जड़ के बिना।
बस उस तरह ना मुक्ति हो जिनमार्ग में दर्शन बिना।।10।।

अर्थः- जिस प्रकार वृक्ष का मूल विनष्ट होने पर उसके परिवार अर्थात् स्कंध, शाखा, पत्र, पुष्प, फलकी वृद्धि नहीं होती, उसी प्रकार जो जिनदर्शन से भ्रष्ट हैं- बाह्य में तो नग्न- दिगम्बर यथाजातरूप निर्ग्रन्थ लिंग, मूलगुणका धारण, मयूर पिन्छिका की पींछी तथा कमण्डल धारण करना, यथाविधि दोष टालकर खड़े-खड़े शुद्ध आहार लेना- इत्यादि बाह्य शुद्ध वेष धारण करते हैं, तथा अन्तरंग में जीवादि छह द्रव्य, नवपदार्थ, सात तत्त्वों का यथार्थ श्रद्धान एवं भेदविज्ञान से आत्मस्वरूप-का अनुभवन- ऐसे दर्शन-मत से बाह्य हैं वे मूलविनष्ट हैं, उनके सिद्धि नहीं होती, वे मोक्षफलको प्राप्त नहीं करते।

गाथा- 10 पर प्रवचन

गाथा-8 में बात आई थी कि जिनमार्ग में भी जो मुनि होकर व्यवहार से निश्चय मानता है और दोषयुक्त आहार लेता है वह भ्रष्ट है। तथा श्वेताम्बर आम्नाय अनुसार भी उसका मुनिपना नहीं है और उनके शास्त्र अनुसार महाव्रत, समिति आदि आचरण नहीं है। वह तो भ्रष्ट में भ्रष्ट है। जो उसकी संगति करता है उसे पाखण्ड का लाभ होता है। ऐसे को साधु मानकर वंदन करने वाला शास्त्र का शत्रु है।

अब यहाँ कहते हैं कि जिसको मूल नहीं उसके फल नहीं। जिस वृक्ष का मूल-जड़ नष्ट हो गया है उसके स्कंध शाखा, फल, पुष्प, पत्र आदि उत्पन्न नहीं होते।

www.vitragvani.com

मूल का नाश होने से (उनकी) वृद्धि नहीं होती। उसी प्रकार जो जैनदर्शन से भ्रष्ट है उसको केवलज्ञान फल नहीं मिलता। बाहर में तो निर्ग्रन्थ नग्न दिगम्बर मुनि हैं, खड़े-खड़े आहार लेना इत्यादि अट्ठाईस मूलगुणों की धारण करता है तथा दया के साधनरूप मोर पिच्छी रखता है, उनके मुँहपट्टी नहीं होती। यहाँ आचार्य भगवान ने अन्दर का हृदय उड़ेला है। उनको शुद्ध चिदानन्द स्वभाव की दृष्टिपूर्वक मुनिपना प्रगट हुआ है। आत्मा शरीर-मन-वाणी तथा पुण्य-पाप से रहित है- जिसे ऐसा सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ है; उस सम्यग्दृष्टि को मुनि कैसे होते हैं- इसका पता होता है। मुनि को तो सम्यग्दर्शन के उपरांत विशेष (स्वरूप लीनतारूप चारित्र) दशा है। वे तो अन्तर भान सहित अट्ठाईस मूलगुणों का पालन करते हैं। मोरपिच्छी रखते हैं, शौच के लिये कमण्डलु रखते हैं। इससे विरूद्ध समस्त मिथ्यात्वमार्ग है। यह भी सत्य है और वह भी सत्य है-ऐसे दो मार्ग नहीं हैं। जिन्होंने अपने ज्ञान द्वारा तीनकाल-तीनलोक के पदार्थों का परिज्ञान किया है-ऐसे केवली भगवान ने कहा है कि सम्यग्दर्शन सहित निर्ग्रन्थदशा ही चारित्रदशा है। इसके सिवाय मुनिपना माने अथवा सग्रंथदशा को निर्ग्रन्थ दशा माने वह दर्शन से भ्रष्ट है। यह सनातन मार्ग है। इसमें किंचित् भी गड़बड़ करने वाला अनन्त केवलियों से विपरीत कहने वाला है। नग्नमुनि होकर अपने निमित्त आहार बनावे, उद्देशिक आहार ले तथा व्यवहार से निश्चय माने, निमित्त से धर्म माने वह तो द्रव्यलिंगी भी नहीं है।

एकबार कवि तुलसीदासजी के समय में एक गधा निकला। उसको पालने वाला भगवां कपड़े पहिनता था। उसके गधे के कहीं चोट लग जाने से उसने भगवां कपड़े की पट्टी चोट पर बांध दी। जिस रास्ते से वह गधा निकल रहा था उसी रास्ते मैं उस गाँव का राजा मिला। राजा अपनी सवारी से नीचे उतरा और गधे के भगवां कपड़े की पट्टी देखकर उसके पैरों में गिर गया। इसकारण तुलसीदासजी ने राजा से पूछा कि आप गधे के पैर क्यों छूते हो? राजा ने कहा-

बाना देखी नमन नहीं करणी सो काम।
तरूवर में काटा भया छाया में विश्राम।।

बाहर वेष देखकर नमना चाहिये, आचरण का काम नहीं है; जैसे भले ही तरूवर

www.vitragvani.com

में काँटे हों; परन्तु वह विश्राम देता है। अतः काँटे वाले वृक्ष के साथ सम्बन्ध नहीं; परन्तु विश्राम से प्रयोजन है। इसकारण अन्तर के साथ सम्बन्ध नहीं; परन्तु बाह्य वेष से काम (प्रयोजन) है, इसलिये नमता हूँ। तब तुलसीदास जवाब देते हैं कि –

वेष बहुत प्रकार के होते हैं, उसमें एक मर्म होता हे कि सभी वृक्ष की छाया में बैठना; परन्तु मीणाहरम के वृक्ष के नीचे नहीं बैठना, कारण कि मीणा पर पक्षी बैठे तो मर जाता है। इसलिये वेष-वेष में अन्तर होता है। अतः मात्र वेष देखकर नमस्कार नहीं करना चाहिये।

मुनि के लिये आहार बनावे, मात्र वेष मानकर उसको नमस्कार करे वह निर्ग्रन्थमार्ग का शत्रु है। वह सर्वज्ञ की प्रणाली को धक्का मारता है, तत्त्वाज्ञान से विरूद्ध प्ररूपण करता है। और जिनके आचरण खराब है उन्है मुनि मानकर वंदन करने वाला महा आत्महिंसक है- आत्मा की हिंसा करने वाला है। जिसका वेष सच्चा नहीं होने पर भी उसे मुनि मानता है वह निगोद में जायेगा। मुनि मार्ग अनादि सनातन एक ही मार्ग है। मुनि छियालीस दोष रहित भोजन लेते हैं, मुनि खड़े-खड़े आहार लेते हैं- यह उनका चिह्न है। जिनको अन्तरंग दशा खिंली है और खड़े-खड़े आहार लें वह वास्तविक जैनदर्शन की मुद्रा है। बैठे-बैठे आहार लेना जैनदर्शन की मुद्रा नहीं है। जिसके अट्ठाईस मूलगुणों का पालन नहीं है वह तो मूल से ही भ्रष्ट हैं।

अब जिसके बाह्य आचरण तो ठीक है; परन्तु अन्तरंग श्रद्धा नहीं है वह दर्शनमत से भ्रष्ट है। जिसको छह द्रव्यों, सात तत्त्वों, नव पदार्थों की यथार्थ श्रद्धा नहीं है, भेदविज्ञान नहीं है मैं शुद्ध जीव हूँ, अजीव की क्रिया अजीव से है। अनन्त आत्मायें, अनन्तानन्त परमाणु, धर्म, अधर्म आकाश और काल-ये छहों द्रव्य स्वतन्त्र है। (ऐसी श्रद्धा नहीं है वह दर्शन भ्रष्ट है।) श्वेताम्बर छह द्रव्य नहीं मानते । वे काल द्रव्य को नहीं मानते। उन्होने ज्ञान का सामर्थ्य हीन माना, इससे पर्याय का ज्ञान यथार्थ नहीं है, अतः द्रव्य-गुण का ज्ञान (भी) यथार्थ नहीं है। एकसमय की ज्ञानपर्याय की सामर्थ्य छह द्रव्यों का ज्ञान करने की है; तथापि उन्होने (ज्ञानपर्याय को) छहों द्रव्यों का ज्ञान करनेरूप नहीं माना; अतः वस्तुतः उन्होंने पर्याय को ही नहीं माना, द्रव्य गुण

www.vitragvani.com

को भी नहीं माना। छहों द्रव्य भिन्न-भिन्न हैं। जीव से कर्म नहीं होते, विकार से कर्म नहीं होते-ऐसे सात तत्त्व (भी) स्वतन्त्र हैं। अनन्त अजीव स्वतन्त्र हैं। यदि एक परमाणु के कारण अन्य परमाणु की अवस्था माने तो परमाणु अनन्त नही रहते। ज्ञायक स्वभाव त्रिकाल आत्मा है। शरीर, मन, वाणी, अजीव है। पुण्य-पाप दोनो आस्रव है। जीव विकार में अटकता है वह बंध है। आत्मा का भान होना संवर है। शुद्धि की वृद्धि होना निर्जरा है। पूर्ण शुद्धदशा मोक्ष है। कर्म के कारण विकार नहीं होता, आस्रव के कारण संवर नहीं होता इस प्रकार नव पदार्थ स्वतन्त्र हैं-ऐसा मानना चाहिये। कुन्दकुन्दाचार्य ने पहली ही गाथा में कहा है कि जैनदर्शन को संक्षेप में कहूँगा। पुण्य से पाप नहीं और पाप से पुण्य नहीं-ऐसा मानना चाहिये। कोई दया के परिणाम को पाप माने तो वह भूल है। अजीव से आस्रव माने तो अजीव और आस्रव स्वतन्त्र नहीं रहते। कर्म के कारण राग माने तो कर्म और राग स्वतन्त्र नहीं रहते। इसप्रकार नव पदार्थ स्वतन्त्र मानना चाहिये। परवस्तु (आत्मा को) कष्टकारक नहीं है। आत्मा पुत्र-पुत्रियों का विवाह नहीं कर सकता; तथापि उनका कर सकता हूँ-ऐसा जो मानता है उसे नव पदार्थों को श्रद्धा नहीं है। एक पदार्थ के कारण दूसरा पदार्थ नहीं है। यह वस्तु स्थिति है।

अहो! यथार्थ श्रद्धावंत जीव तो देव-शास्त्र-गुरु का दासानुदास होता है। उसे, मैं चतुर्विध संध का सेवक हूँ-ऐसा विकल्प आता है; तथापि 'मैं विकल्प से पार हूँ'-ऐसी श्रद्धा नहीं छूटती। जिसको सर्वज्ञ द्वारा कथित छह द्रव्य और सात तत्त्वों की श्रद्धा होती है उसे देव-शास्त्र-गुरु के प्रति उत्साह आये बिना नहीं रहता। कोई कहे कि हमें जिनप्रतिमा के प्रति उत्साह नहीं आता तो वह मूढ़ है। यहाँ तो छह द्रव्य-सात तत्त्वों की यथार्थ श्रद्धा की बात है।

अज्ञानी कहता है कि 'व्यवहार करते रहो तो धर्म हो जायेगा,' एक दिन बेढ़ा पार हो जायेगा; वस्तुतः उसकी दृष्टि जड़ की क्रिया पर हैं। मैं कषाय की मंदता लाऊँ-यही अज्ञानभाव है। धर्मात्मा को आत्मा के भानपूर्वक कषाय मंदता आती है; परन्तु वे उसे धर्म नहीं मानते। 'सृदृष्टि तरंगिणी' में दृष्टान्त है कि एक गुफा है, गुफा में छह मुनि बिराजमान है, उनमें एक मुनि को विकल्प आता है, दूसरा उसकी चिन्ता

www.vitragvani.com

नहीं करता; किसी को एक-दूसरे की परवाह नहीं है। छठवें (गुणस्थान) में विकल्प आये अथवा (सप्तम गुणस्थान आने से) स्वरूप में स्थिर हो जावें-इसका अन्य मुनियों से कोई सम्बन्ध नहीं है। छहों मुनि निर्लेप स्वतन्त्र हैं। उसीप्रकार एक ब्रह्माण्ड (लोकाकाश) में छहों द्रव्य अपनी गुफा में मस्त है।

जिसको ऐसी छह द्रव्यों की प्रतीति, नव पदार्थों की प्रतीति और भेदविज्ञान नहीं है उसको वीतराग मार्ग की प्रतीति नहीं है। श्रीमद् राजचन्द्रजी ने अष्टपाहुड़, मोक्षमार्ग प्रकाशक आदि ग्रन्थों को सत्श्रुत में गिना है, तो भी पूर्वाग्रह से ग्रसित जीव दूध-दही में पैर रखना चाहते हैं; परन्तु ऐसा नहीं चलता । कुन्दकुन्दाचार्य ने अपना हृदय खोल दिया है कि जो छह द्रव्य, नव पदार्थों को स्वतन्त्र जानता है और अट्ठाईस मूलगुणों का पालन करता है ऐसी निर्ग्रन्थ दिगम्बर दशा जैनदर्शन है। वह जैनदर्शन की मोहर-छाप है। जो इससे बाह्य हैं उनका मूल सड़ गया है। उनमें देव-शास्त्र-गुरु, छह द्रव्यों आदि की व्याख्या सही नहीं है। दिगम्बरदर्शन कहो, आत्मदर्शन कहो, वीतरागदर्शन कहो-एक ही बात है। वह अनुभव व आगम आदि से निश्चित होता है। जिसमें श्रद्धा का मूल नहीं है उसके चारित्र सच्चा नहीं होता। पूर्व में अकाल पड़ा था तब से आधा वस्त्र रखने लगे, तभी से वस्त्र रखकर भ्रष्ट हुए; उनका मूल सड़ गया है। वे राग की मंदता का नाश करके तीव्र रागी होकर निगोद में जायेंगे। जिसके मूलगुण सच्चे नहीं हैं, वेष सच्चा नहीं हैं, छह द्रव्य का स्वरूप सच्चा नहीं हैं, उस विपरीतता के फल में संसार है, इसलिये यथार्थ परीक्षा करो। अन्तर में भेदज्ञान और बाह्य में वेष यथार्थ होना चाहिये। अन्दर मे आत्म ज्ञान हो और बाह्य वेष न हो तो सम्यग्दृष्टि हो सकता है; परन्तु मुनि नहीं। अन्तर में भेदज्ञान न हो और बाह्य में वेष न हो वह मिथ्यादृष्टि है। जिसका मूल (श्रद्धा) नष्ट है उसे केवलज्ञान की सिद्धि नहीं होती, उसे मोक्षफल की प्राप्ति नहीं होती, अपितु निगोद की सिद्धि होती है।

Shree kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

दर्शनपाहुड़ गाथा-11

अब कहते हैं कि- जिनदर्शन ही मूल मोक्षमार्ग है:-

जह मूलाओ खंधो साहापरिवार बहुगुणो होइ।
तह जिणदंसण मूलो णिद्दिट्ठो मोक्खमग्गस्स।।11।।

यथा मूलात् स्कंधः शाखापरिवारः बहुगुणः भवति।
तथा जिनदर्शनं मूलं निर्दिष्टं मोक्षमार्गस्य ।।11।।

हिन्दी पद्यानुवादः

मूल ही है मूल ज्यों शाखादि द्रुम परिवार का।
बस उस तरह ही मुक्तिमग का मूल दर्शन को कहा।।11।।

अर्थः- जिसप्रकार वृक्ष के मूल से स्कंध होते हैं कैसे स्कंध होते हैं कि- जिनके शाखा आदि परिवार बहुत गुण हैं। यहाँ गुण शब्द बहुत का वाचक है; उसीप्रकार गणधर देवादिक ने जिनदर्शन को मोक्षमार्गका मूल कहा है।

भावार्थः- यहाँ जिनदर्शन अर्थात् तीर्थंकर परमदेव ने जो दर्शन ग्रहण किया उसी का उपदेश दिया है वह मूलसंघ है; वह अट्ठाईस मूलगुण सहित कहा है। पाँच महाव्रत, पाँच समिति, छह आवश्यक, पाँच इन्द्रियोंको वशमें करना, स्नान नही करना, भूमिशयन, वस्त्रादिकका त्याग अर्थात् दिगम्बर मुद्रा, केशलोंच करना, एकबार भोजन करना, खड़े खड़े आहार लेना, दंतधावन न करना- यह अट्ठाईस मूलगुण हैं। तथा छियालीस दोष टालकर आहार करना वह एषणा समिति में आगया। ईर्यापथ- देखकर चलना वह ईर्या समिति में आगया । तथा दया का उपकरण मोरपुच्छ की पींछी और शौचका उपकरण कमंडल धारण करना- ऐसा बाह्य वेष है। तथा अन्तरंग में जीवादिक षट्द्रव्य, पंचास्तिकाय, सात तत्त्व, नव पदार्थोको यथोक्त जानकर श्रद्धान करना और भेदविज्ञान द्वारा अपने आत्मस्वरूपका चिंतवन करना, अनुभव करना ऐसा दर्शन अर्थात् मत वह मूलसंघका है। ऐसा जिनदर्शन है वह मोक्षमार्गका मूल है; इस मूलसे मोक्षमार्ग की सर्व प्रवृत्ति सफल होती है। तथ जो इससे भ्रष्ट हुए हैं वे इस पंचमकाल के दोषसे जैनाभास हुए हैं वे श्वेताम्बर, द्राविड़, यापनीय, गोपुच्छपिच्छ, निपिच्छ- पाँच संघ हुए हैं; उन्होने सूत्र सिद्धान्त अपभ्रंश किये हैं। जिन्होंने बाह्य वेष को बदलकर

www.vitragvani.com

आचरण को बिगाड़ा है वे जिनमत के मूलसंघसे भ्रष्ट हैं, उनको मोक्षमार्ग की प्राप्ति नहीं है। मोक्षमार्ग की प्राप्ति मूलसंघ के श्रद्धान-ज्ञान-आचरण ही से है ऐसा नियम जानना ।।11।।

गाथा- 11 पर प्रवचन

जैसे वृक्ष का मूल (जड़) हो तो मूल में से तना होता है। तथा वह तना शाखा, डाल, फूल, फल आदि सहित होता है। उसीप्रकार आत्मा की परमानन्द दशा प्रगट करने का मूल निजदर्शन है-ऐसा चार ज्ञान के धारक गणधरदेव ने कहा है। इससे विपरीत कल्पना से और स्वच्छन्दता से मानना जैनदर्शन नहीं है। निर्दोष स्वभाव के आश्रय से सदोष पर्याय को जीतना ही जैनदर्शन है। जहाँ ऐसा मार्ग नहीं है वहाँ (जीव को) सदोष रखने का भाव है। चारित्र नहीं होने पर भी चारित्र मानना सदोष रखने का भाव है।

प्रश्नः वेषधारी अपनी तुलना में तो अच्छे है न!

समाधानः भाई! बिगड़ा हुआ दूध छाछ से भी गया-गुजरा है। छाछ तो रोटी के साथ खाने के काम आती है; परन्तु बिगड़ा हुआ दूध रोटी के साथ खाने के काम नहीं आता। गृहस्थाश्रम में सच्ची दृष्टि (सम्यग्दर्शन) करे तो मोक्षमार्ग है; परन्तु वेष नाम धराकर भ्रष्ट होवे तो वह बिगड़े हुए दूध के समान है।

देखो!- मंगलाचरण में कुन्दकुन्दाचार्य का नाम तीसरे स्थान पर आता है।

मंगलम् भगवान वीरो, मंगलम् गौतमोगणी।
मंगलम् कुन्दकुन्दार्यो, जैन धर्मोस्तु मंगलम्।।

तीर्थंकर देव, गणधरदेवों ने जो कहा है वही मैं कहता हूँ-ऐसा जैनधर्म है। वीतराग अभिप्राय और वीतराग चारित्र ही जैनदर्शन है। अन्य में वीतराग अभिप्राय और वीतराग चारित्र नहीं होता।

जैनदर्शन अर्थात् भगवान तीर्थंकर परमदेव ने दर्शन ग्रहण किया और वही उपदेश दिया। ऐसा ही मुनिपना अनादि से है। वस्त्र सहित मुनिपना मानना जैनदर्शन नहीं है। कुन्दकुन्दादि आचार्यों से जो मूलसंघ है उस मूलसंघ में बाह्य में खड़े-खड़े भोजन करना, पाँच समिति पाँच महाव्रत, छह आवश्यक आदि अट्ठाईस मूलगुण में कहे गये हैं।

www.vitragvani.com

कोई कहता है कि अट्ठाईस मूलगुणों में एक कम हो तो क्या बाधा है।

उत्तर :- एक कम मानने से अट्ठाईस नहीं रहते। उन अट्ठाईस मूलगुणों में अहिंसा, सत्य, अचोर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह-ये पाँच महाव्रत हैं। अपरिग्रह में वस्त्र रहितपना आ जाता है।

कोई तर्क करता है कि सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्षमार्गः में वस्त्र रहितपना नहीं लिखा है ।

समाधानः अपरिग्रह में वस्त्र रहितपना आता है। ईर्या, भाषा, आदाननिक्षेपण, एषणा और व्युत्सर्ग ऐसी पाँच समितियाँ मुनि पालते हैं। दोषित आहार लेने वाले एषणा समिति का पालन नहीं करते; तथापि मुनिपना माने तो वह भ्रष्ट है। तथा सामायिक, वंदना, स्तुति, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग और प्रत्याख्यान-ये छह आवश्यक हैं। मुनिराज ने पाँच इन्द्रियों को वश किया है इसकारण उनके वस्त्र नहीं होते। स्नान करने का व वस्त्रादि का त्याग होता है, भूमि शय्या होती है, वे केशलोंच करते हैं, एक बार भोजन करना, खड़े-खड़े भोजन करना , दंत धोवन नहीं करना-ऐसे अट्ठाईस मूलगुण अन्तर भेदज्ञान सहित होते हैं। उनको जैनदर्शन में मुनि कहते हैं। इससे विरूद्ध मानने वाले तथा भेदज्ञान बिना मुनिपना मानने वाले मिथ्यादृष्टि है।

दर्शन प्राभृत अर्थात् समकित का सार। आत्मा की निर्ग्रन्थ-राग रहित दशा धारण करके स्वरूप में रमणता की विशेष दशा के समय शरीर की नग्नदशा हो उसे मुनि कहते हैं। वह मुनिपना मोक्षदशा का कारण है। जैन कोई सम्प्रदाय नहीं है। आत्मा चिदानन्द पूर्ण स्वभाव है, उसकी पर्याय में विकार है। स्वभाव की रुचि से विकार की रुचि छूटना और स्वभाव की स्थिरता से विकार की अस्थिरता छूटना-यह जैनमार्ग है। श्वेताम्बर और दिगम्बर में महान अन्तर है। आत्मा पूर्ण शुद्ध चिदानन्द है। जैसे छोटी पीपल में एक समय में चौसठ पहरी चरपराहट भरी है और हरे रंग की शक्ति है अर्थात सम्पूर्ण शक्ति भरी है। प्रत्येक छोटी पीपल में पूर्ण शक्ति भरी है, तथा हरा रंग भरा है; बाहर में काला रंग दिखता है और तिखास (चरपराहट) कम है। जिसे हरे रंग वाली पूर्ण चरपराहट चाहिये वह उसके (पीपल के) स्वभाव मेंसे आती है। उसीप्रकार आत्मा पूर्ण ज्ञान और आनन्द से भरा है। जैसे प्रत्येक पीपल में चरपराहट की सामर्थ्य है उसीप्रकार आत्मा में ध्रुवशक्ति भरी है। उसमें पूर्ण सर्वज्ञ

www.vitragvani.com

होने की ताकत है। पूर्ण सर्वज्ञ शक्ति, पूर्ण वीतराग स्वभाव, पूर्ण आनन्द भरा है-ऐसी प्रतीति करना चाहिये। अल्पज्ञता, राग-द्वेष मेरी मूलवस्तु नहीं है। जैसे छोटी पीपल से चूहे की लींडी भिन्न है; उसी प्रकार शरीर चूहे की लींडी के समान है और आत्मा शरीर से भिन्न हैं। तथा जैसे पीपल का स्वभाव अल्प चरपराहट जितना नहीं है; उसीप्रकार अल्पज्ञता आत्मा का नित्य स्वभाव नहीं है। आत्मा के अन्तर ध्रुवस्वभाव में पूर्ण सर्वज्ञ, पूर्ण आनन्द की ताकत पड़ी है-ऐसे स्वभाव की प्रतीति करके अनुभव करना- धर्म की पहली सीड़ी है। यह तो यथार्थ वस्तु बतलाते है। यदि छोटी पीपल में चरपराहट पत्थर से आती हो तो चूहे की लींडी में से भी चरपराहट आनी चाहिये; परन्तु ऐसा नहीं होता। प्राप्त की प्राप्ति है। जैसे छोटी पीपल में चरपराहट की शक्ति है; उसीप्रकार आत्मा में ज्ञान-आनन्द की शक्ति है। पर से मुझे लाभ है-ऐसी रुचि छोड़कर मुझे अपने से ही लाभ है-ऐसी दृष्टि करना । राग से लाभ नहीं है, अन्तर स्वभाव से ही लाभ है- ऐसी दृष्टि करना ही सम्यग्दर्शन अर्थात पहले नम्बर का धर्म है। तदुपरांत मुनि मार्ग कैसा होता है यह बताते हैं।

मुनि का चारित्र कैसा होता है? जिसको आत्मा के स्वभाव के अवलम्बन से अरागदशा प्रगट हो उसको तीव्र राग नहीं होता, इसकारण वस्त्र-पात्र आदि बाह्य निमित्त नहीं होते। यदि तीव्रराग हो तो बाह्य निमित्त के साथ सम्बन्ध करता है; परन्तु तीव्र राग नहीं हो तो वस्त्र-पात्ररूप निमित्त के साथ सम्बन्ध नहीं होता। राग का सर्वथा अभाव हो तब तो वीतराग हो जाये। यहाँ चारित्र की बात है। आत्मा सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, आनन्द शक्ति का भण्डार है- ऐसी प्रतीति होने के बाद बहुत राग घट गया है- इसकारण मुनि को तीव्र राग नहीं होता, वस्त्र-पात्र नहीं होते। जिसके वस्त्र-पात्र नहीं छूटे उसके तीव्र राग नहीं छूटता। अर्थात् वह तीव्र चारित्रवान अथवा मुनि नहीं है। फिर भी उसे मुनि मानना पाप दृष्टि है। सदोषपना आत्मा की पर्याय में है, पर में नहीं; तथा अन्तर स्वभाव में नहीं। यदि पर्याय में सदोषता न हो तो प्रगट आनन्द होना चाहिये और अन्तर स्वभाव में आनन्द होना न हो तो आनन्द-शान्ति प्रगट नहीं होगी। वर्तमान पर्याय में अशुद्धता है और शक्ति में शुद्धता भरी है-जिसको ऐसी प्रतीति हुई है उसको सम्यग्दर्शन हुआ है। तदुपरांत जिसको स्वभाव के अवलम्बन से सदोषता बहुत घट गई है उसको वस्त्र-पात्र नहीं होते। जिसके बाह्य में वस्त्र-पात्र हो उसे मुनि मानना-साधक मानना विपरीत दृष्टि है।

प्रश्नः हमारे पर की सेवा करने की बात कब आयेगी?

उत्तरः शरीर में रोग आवे, वह तो जड़ की अवस्था है। पर की सेवा करना चाहता है तो तेरे घर के व्यक्ति बीमार पड़े तो उनकी सेवा करके ठीक कर दे न! भाई! प्रत्येक पदार्थ कायम रहकर बदलता है। पर के कारण पलटना मानना तो अर्धमभाव है। अरे! डॉक्टर अपने पिता को नहीं बचा सकता। उनकी सेवा करने का राग करता है; परन्तु उनकी अवस्था को बदल नहीं सकता। कोई पर की अवस्था में कुछ भी नहीं कर सकता। अवस्था अवस्था के कारण होने वाली चीज़ है, वह अन्य से नहीं होती। अन्य पदार्थ निमित्त भले हो; परन्तु अवस्था पर से नहीं होती।

मैं पर की क्रिया नहीं कर सकता, राग मेरे स्वभाव का साधन नहीं है; मैं ज्ञान स्वभावी हूँ-ऐसी दृष्टि होने पर मुनिपने की प्रतीति वर्तती है। राग आने पर भी राग से मेरा ज्ञान भिन्न है, पर की क्रिया मुझसे नहीं होती, राग से मुझे लाभ नहीं होता, मेरा स्वभाव अपूर्ण नहीं है, पुण्य-पापरूप कैसे भी भाव हो वे राग हैं- विकार है- अधर्म है; वे मेरे स्वभाव को सहायक नहीं है-ऐसी प्रतीति वाला मुनि होता है। उनको वस्त्र-पात्र नहीं होते। जो वस्त्र-पात्र सहित मुनिपना मानता है वह मिथ्यादृष्टि है। सबमें व्यापक एक आत्मा माने उसकी बात नहीं है। जैसे प्रत्येक छोटी पीपल में चोसठ पहरी चरपराइट की ताकत है; उसी प्रकार प्रत्येक आत्मा में सर्वज्ञ होने की ताकत है। संसार में विकार है और विकार में कर्म निमित्त है-ऐसी जिसे यथार्थ प्रतीति है उसे मुनि की यथार्थ प्रतीति है। मुनि नग्न होते हैं, अट्ठाईस मूलगुणों का पालन करते हैं। आत्मा के पूर्ण ज्ञान और आनन्द प्रगट करने का निकट साधन चारित्र है। वह चारित्र कैसा है? निर्दोष दृष्टि पूर्वक निर्ग्रन्थ दशारूप है। केवलज्ञान का नजदीकी कारण है। वह आत्मदर्शन की उग्र दशा अर्थात् अरागी मोक्षमार्ग है। -यही जैनदर्शन है।

कैसे हैं मुनि? छियालीस दोष टालकर आहार लेते हैं। वस्त्र-पात्र रखने वाला मुनि नहीं है। सर्वज्ञ दशा प्रगट करने की तैयारी वाले मुनि के राग अत्यन्त अल्प होता है। वे खड़े-खड़े आहार लेते हैं। उनको किसी समय उपदेश का विकल्प आता है। वहाँ उन्हें ऐसा भेदज्ञान वर्तता है कि वाणी तो वाणी के कारण से है और विकल्प अपनी कमज़ोरी के कारण है। ऐसे मुनि छियालीस दोष रहित आहार लेते हैं। अपने लिये बनाया हुआ भोजन ले वे मुनि नहीं हैं।

www.vitragvani.com

मुनि को कितनी लीनता होती है, कितनी मलिनता बाकी है-जिसे इसका ज्ञान नहीं उसे संवर, निर्जरा और आस्रव, बंध का ज्ञान नहीं है। तथा निर्जरा का कार्य (फल) मोक्ष है उसका भी ज्ञान नहीं है। निर्ग्रन्थ अर्थात् ग्रन्थ (परिग्रह) नहीं, ममत्व रहित आत्मा। पूर्ण चिदानन्द आत्मा की प्रतीति वाले को मुनि की प्रतीति है। मुनि को निर्दोष आहार लेने की वृत्ति उठती है। उनके वस्त्र नहीं होते, दोषित (उद्दिष्ट) आहार नहीं होता- इस बात के परिज्ञान बिना मुनि को अजीव का संयोग कैसा होता है उसकी खबर नहीं है। अर्थात् उसे अजीव की भी खबर नहीं है। मुनिदशा में कितना राग घटना चाहिये और कितना राग रहना चाहिये-इसका जिसे पता नहीं है उसे न तो आस्रव, बंध का पता है और न संवर, निर्जरा, मोक्ष का भान है। अर्थात् उसको नव तत्त्वों का ही भान नहीं है। मुनि तो सर्वज्ञपद की तैयारी करने वाले होते हैं, इसकी उसे खबर नहीं है। जिन्हें दोषित (उद्दिष्ट) आहार लेने का विकल्प उठता हो उन्हें मुनि मानने वाले को मुनिमार्ग की विपरीत दृष्टि है तथा मुनिदशा का पूर्णकार्य मोक्ष की विपरीत दृष्टि है। यहाँ विशेष साधक अथवा उग्र साधक की बात है। यद्यपि वह अरागीदशा का उग्र साधन करता है तथापि अपनी कमजोरी से अल्प राग-द्वेष होते हैं। यदि स्वरूप में पूर्ण स्थिर हो जावे तो केवलज्ञान हो जाता है।

इसप्रकार जो वस्त्र-पात्र सहित मुनिपना मनाते हैं उनके नवतत्त्वों की विपरीत श्रद्धा है।

किसी प्राणी को दुःख न हो-ऐसी वृत्ति मुनि को उठती है। उन्हें अन्तर भान है कि शरीर के चलने की क्रिया शरीर के कारण होती है। वे समितियों का पालन करते हैं। मुनि के दया के उपकरणरूप मोरपिच्छी होती है। दण्ड, आदि उपकरण मुनि के नहीं होते। मुनि अविकारी दशा वाले होते हैं। जिसे नवतत्त्व की वास्तविक प्रतीति सहित उग्र दशा नहीं है वह मुनि नहीं है। यह बात चाहे आज मानो, कल मानो- यह एक ही बात है। पूर्ण ज्ञान और पूर्ण आनन्द लेने को तैयार हुए जीव का बहुत राग घट गया होता है। पूर्ण शक्ति के विकास करने के मार्ग में ऐसा ही निमित्त होता है। तथा मुनि को शौच के लिये कमण्डलु होता है। मुनि भोजन के बाद दूसरी बार पानी नहीं पीते। आनन्द की दशा वाले मुनि को जंगल जाना पड़े तो शरीर को साफ करने के लिये पानी लेते हैं; परन्तु पीने के लिये पानी नहीं रखते।

www.vitragvani.com

मुनि को किस प्रकार के संयोग रहते हैं और कैसे संयोग छूट जाते हैं जिसको इसका पता नहीं है वह पाप दृष्टि, परिभ्रमण की दृष्टि, पाखण्डदृष्टि, असत्यदृष्टि वाला है। जैसा वस्तु (आत्म) स्वरूप है, उसके अवलम्बन से प्रगटने वाली मुनिदशा में किसप्रकार के संयोग होते हैं वह बताते हैं। इसे युक्ति से, न्याय से, आगम से, अनुभव से स्वीकार करना चाहिये।

जैनदर्शन अर्थात् सदोषता को जीतने वाला और निर्दोषता को प्रगट करने वाला। अन्तर स्वभाव में निर्दोषता पड़ी है- ऐसे स्वभाव के आश्रय से निर्दोषता प्रगट करना और दोष का नाश करना और स्वभाव का ध्रुव रहना-इसमें उत्पाद-व्यय-ध्रुव तीनों आ जाते हैं। सदोषता का अभाव हो जाता है। यदि सदोषता का अभाव न होता हो तो संसार का नाश नहीं हो सकता और स्वभाव में निर्दोषता न हो तो निर्दोषता प्रगट नहीं हो सकती। इसप्रकार निर्दोष स्वभाव के आश्रय से ही निर्दोषता प्रगट होती है और दोष नष्ट होते हैं। ऐसे मोक्षमार्ग में कैसे निमित्त होते हैं उन्हें नहीं जानने वाले को संयोग का पता नहीं है-मोक्षमार्ग का भी पता नहीं है।

अरे! जड़ की अवस्था कौन बदले। डॉक्टर स्वयं मर जाते हैं, अपने को भी बचा नहीं सकते। अतः दृष्टि बदलो! संयोग प्रथक् है, विभाव विपरीत है, स्वभाव सामर्थ्यवान है। दया, दान आदि (भाव) विपरीत क्षणिक है, मेरा स्वभाव परिपूर्ण ज्ञान और आनन्द है-ऐसी दृष्टि करके उग्र साधन करके मुनिदशा प्रगट होती है- उसकी यह बात चलती है। वस्त्र-पात्र रखकर मुनिपना मानने-मनवाने वालों को तो नवतत्त्व की भूल है। मुनिपने की प्रतीति में गड़बड़ करने वाला स्वभाव का चोर है।

प्रश्न : ककड़ी के चोर को फाँसी की सजा ?

समाधानः भाई! ककड़ी का चोर नहीं, यह तो बड़ा चोर है। आत्मा चैतन्यस्वरूप पूर्ण ज्ञानानन्द स्वभाव से भरा है-ऐसे भान पूर्वक राग घट जाने पर संयोग घट जाते हैं। फिर भी कोई कहे कि राग घट गया है और संयोग नहीं घटे, तो उसे (यथार्थ वस्तुस्थिति का) भान नहीं है। वह स्वभावरूपी दरबार को लूटने वाला है। जैसे कोई राजा को भेंट देने के लिये अच्छा तरबूज लाये और कोई उस तरबूज की चोरी करे तो वह सजा को पाता है। उसीप्रकार चैतन्यस्वभाव पूर्ण ज्ञानानन्द स्वरूप की प्रतीति करना तथा मुनिपने की प्रतीति करना वह स्वभाव की भेट है; इनमें गड़बड़ करने वाला स्वभाव का चोर है। भाई! वस्तु का ऐसा स्वभाव है। विपरीत श्रद्धा छोड़ो! विपरीत श्रद्धा वालों का राग छोड़ो!

तथा कैसे हैं मुनि? मुनि के बाह्य वेष की बात करके अब अन्तर श्रद्धा की बात करते हैं। अनन्त आत्मा, अनन्तानन्त पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल-ये छह द्रव्य हैं। पंचास्तिकाय-जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश हैं। तथा सात तत्त्व जैसे हैं वैसे मानना। सात में भूल करने वाले को तत्त्वार्थ श्रद्धान नहीं है। नव पदार्थों को वे जैसे हैं वैसे मानना। मैं पर से और राग से भिन्न हूँ, मैं ज्ञायकस्वभावी हूँ- ऐसे भेदज्ञान पूर्वक आत्मा का अनुभव करना वह मूलसंघ है। वह जैन दर्शन है। ऐसा जैनदर्शन-जिनदर्शन मोक्षमार्ग का मूल है। बाह्य निर्ग्रन्थदशा और अन्तर भेदज्ञान सहित अन्तर अनुभव वह जिनदर्शन है। ऐसे मूल से मोक्षमार्ग की सर्व प्रवृत्ति सफल होती है। जिस वृक्ष का मूल अच्छा है उसमें अच्छे फल जाते हैं। जिसे मूलसंघ की श्रद्धा-ज्ञान नहीं है उसके सब अफल है। सर्वज्ञ कथित सर्वज्ञ होने के मार्ग (की जिसको श्रद्धा है) उसकी सर्व प्रवृत्ति सफल है।

लोग कहते हैं कि सभी मतों में मोक्ष होता है। यह बात मिथ्या है। जगत में अनन्त आत्मायें हैं, पुद्गलादि अनन्त हैं, स्वभाव के आश्रय से दोष का अभाव होता है-यह बात जैनमत के सिवाय अन्यत्र नहीं हैं। जैन के नाम से स्थानकवासी, मन्दिरमार्गी, तेरापंथी (श्वेताम्बर) आदि निकले हैं, वे सब मूलमार्ग से विपरीत है। धर्मी जीव तो, स्वभाव के आश्रय से अविकारी दशा कितनी हुई और विकार कितना बाकी है- यह जाँच करता है। शुद्ध चिदानन्द स्वभाव की प्रतीति-ज्ञान और रमणता वाले जीव को भान है कि साधकदशा कितनी बढ़ी है और बाधकभाव कितना है-ऐसा वह जानता है। इसके सिवाय श्वेताम्बर-स्थानकवासी, तेरापंथी सब मिथ्या हैं। अनन्तकाल से सर्वज्ञदेव ऐसा ही कहते हैं। एक द्राविड़ पंथ है, मुनि होकर खेती करे और प्रवृत्ति करे वह द्राविड़ पंथ है । वह अभी नहीं है। उनकी श्रद्धा भी विपरीत है। यापनीय नग्नदशा में रहते हैं; परन्तु स्त्री को मुनिपना मानते हैं और केवली को आहार मानते है; अतः मिथ्यादृष्टि है। तथा कोई गाय की पूँछ की पिच्छी रखते हैं तथा कोई मुनि होकर मोर पिच्छी नहीं रखते वे निंपिच्छ है। इसप्रकार पाँचों मार्ग केवली के मार्ग का अपभ्रंश करने वाले हैं। श्वेताम्बर श्रृंगार वाली मूर्ति को मानते हैं। स्थानकवासियों ने मूर्ति को उड़ा दिया है। तेरापंथी स्थानकवासी दया, दान को पाप मानते हैं-ये सब श्रद्धा से भ्रष्ट हैं। इन्होंने नये-नये सिद्धान्त बनाये हैं। पैंतालीस सूत्र

www.vitragvani.com

बनाये हैं वे सच्चे नहीं हैं। बाह्य वेष बिगाड़ा है, जिनमतानुसार आचरण नहीं है-ये मूलसंघ से भ्रष्ट है। (इनके मत में) परिपूर्ण स्वभाव की प्रतीति-ज्ञान और आचरण की प्रतीति नहीं है। कुन्दकुन्दाचार्य आदि के मूलसंघ की श्रद्धा-ज्ञान-आचरण से मोक्षमार्ग की प्राप्ति होती है-ऐसा नियम जानना। मूलसंघ का आदर करने वाले को सम्यग्दर्शन होता है, अन्य को सम्यग्दर्शन नहीं होता-ऐसा त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव कहते हैं।

यह विषय विशेष परिचय से समझमें आने योग्य है। भगवान कुन्दकुन्द सनातन निर्ग्रन्थ पंथ में आचार्य हुए हैं, उन्होंने यह शास्त्र बनाया है।

आत्मा पूर्ण शुद्ध पवित्रता की मूर्ति है। दया, दान, काम, क्रोध के भाव होते हैं वे विकार निर्विकार द्रव्य की विपरीत दशा है। स्वभाव दृष्टि से उन्हें जीतना अर्थात् मैं शुद्ध चिदानन्द मूर्ति हूँ, निर्दोषता, नित्यानन्द मेरा स्वभाव है- उसकी रुचि करके विकार की रुचि छोड़ना सच्ची निर्ग्रन्थ दृष्टि है। वैसी दृष्टि पूर्वक पर्याय में विशेष निर्दोष दशा प्रगट हो वह चारित्रदशा है। सम्यग्दृष्टि जघन्य साधक है। यदि अन्दर में ज्ञान और आनन्द न हो तो प्रगट कहाँ से हो? तथा वर्तमान पर्याय में विकार न हो तो आनन्द प्रगट होना चाहिये। अतः पर्याय में वर्तमान में विकार है; परन्तु स्वभाव में पूर्ण ज्ञान और आनन्द है- ऐसी दृष्टि करना जघन्य साधकदशा-सम्यग्दर्शन है। जीव दोष निकालना चाहता है और निर्दोष होना चाहता है-इसका अर्थ यह है कि जो पर्याय बदलती है उसमें दोष है। यदि त्रिकाल वस्तु में दोष हो तब तो दोष का अभाव नहीं हो सकता। पर्याय में दोष का अभाव होता है। पर्याय में दोष न हो तो प्रगट आनन्द होना चाहिये और 'मुझे दोष का अभाव करना है' इस बात का अवकाश भी नहीं रहता। तथा यदि अन्दर में निर्दोषता न हो तो निर्दोषता बाहर से नहीं आती। वर्तमान में दोष है और उसका नाश करना चाहता है और निर्दोषता लाना चाहता है। वह निर्दोषता अन्दर (स्वभाव में) भरी है। दोष पर्याय में है, उसकी रुचि छोड़कर निर्दोष स्वभाव की रुचि करके सत्य स्वभाव का स्वीकार करने वाला पूर्ण निर्दोषता का जघन्य साधक है। पूर्ण निर्दोष स्वभाव में विशेष लीन होकर विशेष निर्दोषता प्रगट होना पूर्ण निर्दोषता का मध्यम साधक है। आत्मा पूर्ण निर्दोष ध्रुवस्वभाव है। दोष मेरी वस्तु नहीं है-ऐसी श्रद्धा पूर्वक स्वभाव की शक्ति को व्यक्त करना चाहता है वह अविरत सम्यग्दृष्टि है। स्वभाव में विशेष स्थिर होकर अशुद्धता का विशेष अंश नाश

www.vitragvani.com

करके विशेष शुद्धता प्रगट करना चाहता है वह मध्यम साधक है। आत्मा निर्दोषता का भण्डार है-ऐसी प्रतीति पूर्वक जिसने उसमें लीनता की है और जिसका राग बहुत घट गया है वह पूर्ण निर्दोषता का उग्र साधक है-वह निर्ग्रन्थ मुनि है। उन्होंने मिथ्यात्व के नाश के साथ राग-द्वेष का बहुत नाश किया है, वे स्वरूप सन्मुखता के उग्र साधक है। यही सत्य पंथ है, यही मोक्षमार्ग हैं। चारित्रदशावंत मुनि हैं उन मुनिराज को मंद राग आता है तो दया का भाव आता है। उनके वस्त्र-पात्र का संयोग नहीं रहता। उनके शरीर पर वस्त्र नहीं रहते, क्योंकि उनके मंदराग है। उनको मोक्ष के उग्र साधक कहते हैं।

जो इस मार्ग से भ्रष्ट हुआ है और तीव्र राग करता है तथा वस्त्र रखकर अपने को उग्र साधक कहता है। हम वीतरागता के साधक हैं-ऐसा कहता है उसके आत्मा की उल्टी बुद्धि है-मोक्षमार्ग की उल्टी बुद्धि है। धर्म का आधार लेकर धर्म का उपदेश देते हैं- ये सब आचार्य नाम धराकर अपने को मुनि मनाते हैं वे निगोद में जाने वाले हैं। जो स्वभाव में पूर्ण लीनता करे वह परमात्मा हो जाता है। स्वरूप लीनता करने वाले ही वीतरागता के उग्र साधक हैं।-यही सत्य पंथ है। इससे भ्रष्ट होकर वस्त्र-पात्र रखकर अपने को मुनि मनाते हैं और अरागीदशा के उग्र साधक मनाते हैं वे यथार्थ दृष्टि और यथार्थ पंथ से भ्रष्ट हैं। मूलसंघ के सम्यग्दृष्टि को मोक्ष तथा मोक्षमार्ग की प्रतीति है। जो अज्ञानी ऐसे सम्यग्दृष्टि से अपनी विनय कराना चाहता है वह दुर्गति पाता है।- यह बात अब कहेंगे।

Shree kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

दर्शनपाहुड़ गाथा-12

आगे कहते हैं कि जो यथार्थ दर्शन से भ्रष्ट हैं और दर्शन के धारकों से अपनी विनय कराना चाहते हैं वे दुर्गति प्राप्त करते हैं:-

जे दंसणेसु भट्ठा पाए पाडंति दंसणधराणं।
ते होंति लल्लमूआ बोही पुण दुल्लहा तेसिं।।12।।

ये दर्शनेषु भ्रष्टाः पादयोः पातयंति दर्शनधरान्।
ते भवंति लल्लमूकाः बोधिः पुनः दुर्लभा तेषाम्।।12।।

हिन्दी पद्यानुवादः

चाहें नमन दृगवन्त से पर स्वयं दर्शनहीन हों।
है बोधिदुर्लभ उन्हें भी वे भी वचन-पग हीन हों।।12।।

अर्थः- जो पुरुष दर्शन में भ्रष्ट हैं तथा अन्य जो दर्शन के धारक हैं उन्हे अपने पैरों पड़ाते हैं, नमस्कारादि कराते है वे परभव में लूले, मूक होते है, और उनके बोधि अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रकी प्राप्ति दुर्लभ होती है।

भावार्थः- जो दर्शन भ्रष्ट हैं वे मिथ्यादृष्टि हैं और दर्शनके धारक हैं वे सम्यग्दृष्टि हैं; जो मिथ्यादृष्टि होकर सम्यग्दृष्टियोंसे नमस्कार चाहते हैं वे तीव्र मिथ्यात्व के उदय सहित हैं, वे परभवमें लूले, मूक होते हैं अर्थात् एकेन्द्रिय होते हैं, उनके पैर नहीं होते, वे परमार्थतः लूले, मूक हैं; इसप्रकार एकेन्द्रिय-स्थावर होकर निगोदमें वास करते हैं वहाँ अनन्तकाल रहते हैं; उनके दर्शन-ज्ञान-चारित्रकी प्राप्ति दुर्लभ होती है; मिथ्यात्वका फल निगोद ही कहा है। इस पंचमकाल में मिथ्यामत के आचार्य बनकर लोगों से विनयादिक पूजा चाहते हैं उनके लिये मालूम होता है कि त्रस राशिका काल पूरा हुआ, अब एकेन्द्रिय होकर निगोद में वास करेंगे-इसप्रकार जाना जाता है।

गाथा-12 पर प्रवचन

ये शब्द कुन्दकुन्दाचार्य देव के हैं। अनादि से मूलसंघ अथवा सनातन पंथ चला आता है। जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र से भ्रष्ट होकर मिथ्या कल्पना से पंथ चलाते हैं वे भ्रष्ट हैं। वे सम्यग्दृष्टि से अपनी विनय कराना चाहते हैं। मैं आचार्य हूँ, मैं पण्डित हूँ, मैं उपाध्याय हूँ, - ऐसा नाम धराने वाले मूलमार्ग में रहने वाले सम्यग्दृष्टि से वंदन कराना चाहते हैं । नग्न दिगम्बर मुनि होकर उद्दिष्ट आहार लेते हैं - उद्दिष्ट

www.vitragvani.com

भोजन लेते हैं और धर्म का रक्षक नाम धराते हैं, वे जीव धर्मात्मा सम्यग्दृष्टि से वंदन कराना चाहते हैं उन्हें पैर और जीभ नहीं मिलेगी । एकेन्द्रिय हो जाने से ऐसे जीवों को सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की दुर्लभता हो जायेगी । अनादि से परम सत्य पंथ चला आता था । उसमें से भ्रष्ट होकर वस्त्र-पात्र रखकर मुनिपना मनावे अथवा नग्न दिगम्बर होकर भी निमित्त से कार्य माने, व्यवहार से धर्म माने वे मूलसंघ से भ्रष्ट हैं । अपने स्वभाव के आश्रय से अरागीदशा होती हैं- ऐसी मूल बात है, उसके बदले निमित्त से लाभ मानने वालों को द्रव्यदृष्टि नहीं है मुनि और क्षुल्लक नाम धराकर पदवी अनुसार बाह्य आचरण का पालन नहीं करते और अपने को धर्म का रखवाला मानतें हैं, वे सम्यग्दृष्टि को अपने पैरों मे पड़वाना चाहते हैं, उन्हे सत् का तिरस्कार वर्तता है । सम्यग्दृष्टि का पुण्य कम हो इसकारण सम्यग्दृष्टि से विनय करवाना चाहते हैं वे एकेन्द्रिय होंगे ।

मुनि अल्पकाल में पूर्ण परमात्मदशा आनन्ददशा के साधक हैं। उनके अरागीदशा कितनी है और कितना राग बाकी है- ऐसे मुनिपद का जिसको भान नहीं है उसे परमेष्ठी पद का भान नहीं है। उसको सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का भान नहीं है । उसको नवतत्त्वों का भान नहीं है। जैसे कन्या के पैसे नहीं ले वह सम्पन्न घर है । गरीब होवे तो मात्र एक नारियल देकर कन्या का विवाह करता है; परन्तु यदि पिता कन्या के पैसे लेता है तो वह माँस के पैसे लेता है। वह अपने कुल को कलंक लगता है । उसीप्रकार आचार्य कुन्दकुन्द कहते हैं कि हमारे संघ में निर्ग्रन्थ मुनिदशा है, जो उसमें से निकलकर भ्रष्ट होता है, वस्त्र सहित मुनिपना मनाता है वह हमारे संघ को कलंक लगाता है । तथा नग्न दिगम्बर मुनि होकर विकार से लाभ मनाता है, व्यवहार से निश्चय का लाभ मनाता है वह भी सग्रंथमार्गी है, मूल संघ से च्युत है । निमित्त और संयोग से लाभ मनाने वाले को निमित्त का परिग्रह है । पुण्य से आत्मा के सन्मुख हुआ जा सकेगा - ऐसी मान्यता वाले को कषाय मंदता की पकड़ है । यह सग्रंथमार्ग होने पर भी उसे निर्ग्रन्थमार्ग मनाता है इसलिये कलंक लगाता है ऐसा कहा है।

जैसे युद्ध के लिये तत्पर राजपूत (क्षत्रिय) छुपता नहीं है तथा बादलों की छाया होने पर भी चन्द्र छुपता नहीं है। उसी प्रकार वीतराग मार्ग में चढ़ा हुआ निर्ग्रन्थ छुपता नहीं है - ऐसा कहकर कुन्दकुन्दाचार्य ने अपना हृदय उड़ेल दिया है। जिसको

www.vitragvani.com

निमित्त और राग की पकड़ है वह मिथ्यादृष्टि है। इस प्रकार जो भ्रष्ट होकर सग्रंथ मार्ग को निर्ग्रन्थ मार्ग में चलाता है वह पाप दृष्टि है- मिथ्यादृष्टि है। यह बात स्वयं के लिये है किसी व्यक्ति पर आक्षेप के लिये नहीं। जैसे विष्ठा को कस्तूरी मानना ज्ञान दोष है; उसी प्रकार सग्रंथ को निर्ग्रन्थ मानने वाले की मान्यता में दोष है। सर्वज्ञ की परम्परा से आया हुआ मार्ग दिगम्बर पंथ है। उसे वीतराग पंथ, सर्वज्ञता का उग्र साधक पंथ कहते हैं। जो इससे भ्रष्ट हैं वे मिथ्यादृष्टि हैं।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र मार्ग राग की पकड़ और संयोग की पकड़ से रहितता का मार्ग है, स्वभाव में लीनता का मार्ग है। ऐसे स्वभाव में लीनता करने वाले के वस्त्र छूट जाते हैं। तथापि जो वस्त्रादि परिग्रह रखकर अपने को मुनि माने-मनावे वह मिथ्यादृष्टि है। - ऐसी दृष्टि पापदृष्टि- सग्रंथदृष्टि है। राग से और निमित्त से लाभ नहीं मानने वाले तथा स्वभाव से लाभ मानने वाले सम्यग्दृष्टि से मिथ्यादृष्टि विनय चाहता है। मैं त्यागी हुआ हूँ- ऐसा कहता है। जिसकी राग से लाभ बुद्धि निकल गई है तथा वस्त्र सहित चारित्र (मुनिपना) मानने की बुद्धि निकल गई है- उस सम्यग्दृष्टि से व्यवहार में धर्म मानने वाला, निमित्त से लाभ मानने वाला दोषित (उद्दिष्ट) आहार लेने पर भी मुनि मानने वाला विनय कराना चाहता है, तो वह लूला और बहरा होगा। जिसकी मिथ्याबुद्धि निकल गई है उससे मिथ्याबुद्धि वाला विनय चाहता है वह पैर और भाषा (जीभ) रहित हो जायेगा; क्योंकि त्रिकाल स्वरूप से विपरीत मान्यता का फल निगोद (एकेन्द्रिय) है।

एकेन्द्रिय हैं उसके पैर नहीं है। परमार्थ से वह लूला और गूंगा है। तत्त्व के विरोध के कारण एक शरीर में अनन्त जीव निगोददशा को पाते हैं। जिन्होने तत्त्व की आराधना की है वे अविकारी पूर्णदशा-सिद्धदशा को प्राप्त हुए हैं। मिथ्यादृष्टि जीव सम्यग्दृष्टि से अपनी विनय चाहता है वह लूला हो जायेगा।

संयोग बुद्धि, संयोग (परिग्रह) पदार्थ में निर्ग्रन्थपना और चारित्र की बुद्धि तीव्र मिथ्यादृष्टि के परिणाम हैं। ऐसे जीव अनन्तकाल तक निगोद में परिभ्रमण करेंगे- यह बात आचार्य कुन्दकुन्द दो हजार वर्ष पूर्व कह गये हैं। ऐसे जीवों को दो इन्द्रियपना भी प्राप्त नहीं होगा- यह वस्तुस्वरूप है। आलू, शकरकंद के एक टुकड़े में असंख्य शरीर हैं और एक-एक शरीर में (आज तक हुए) सिद्धों से अनन्तगुने

www.vitragvani.com

आत्मा हैं, वे अनन्तकाल तक उसमें (निगोद में) रहेंगे; उनको सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की प्राप्ति नहीं होगी। जो अन्तर में राग की ग्रंथी से और बाहर में वस्त्रादि की ग्रंथी से लाभ मानता है उसको राग रहित निर्ग्रन्थदशा की प्रतीति दुर्लभ हो जायेगी। देखो! श्रीमद् राजचन्द्रजी ने सत्श्रुत में अष्टपाहुड़, समयसार, प्रचवनसार, मोक्षमार्गप्रकाशक आदि का गिना हैं। (श्वेताम्बरों के) पैंतालीस सूत्रों में से एक को भी सत्श्रुत में नहीं गिना है। अन्य मार्ग में राग, व्यवहार और निमित्त की पकड़ है; उस मार्ग से वीतरागता होगी- ऐसा मानने वाले जीव एकेन्द्रिय में जायेंगे। उनको दर्शन-ज्ञान-चारित्र दुर्लभ हो जायेंगे। विपरीत मान्यता का फल निगोद है। त्रिकाल स्वरूप से विपरीत मान्यता मिथ्यात्व है। उसका फल निगोद है- ऐसा श्री सर्वज्ञदेव ने देखा है।

इस पंचमकाल में मिथ्यामत के आचार्य हुए हैं। राग से लाभ और वस्त्र सहित चारित्रपना-मुनिपना मानने वाले मिथ्यामत के आचार्य, उपाध्याय, साधु, अग्रेसर होकर विपरीत मान्यता, आचरण और प्ररूपण करते हैं। वे दुनिया के पास से अपनी भक्ति चाहते हैं। वस्तुतः आचार्य, उपाध्याय और साधु तो परमेश्वर पद है- ऐसे पद का उन्हें पता नहीं हैं। वस्त्र सहित मुनिपना नहीं हैं, जिनको ऐसी दृष्टि नहीं हैं वे मिथ्यादृष्टि जीव सम्यग्दृष्टियों से अपनी विनय-पूजादि चाहते हैं, इससे मालूम पड़ता है कि उनका त्रसराशि का काल पूरा होने को आया है। त्रस का काल दो हजार सागर का है। जो सत्यमार्ग से भ्रष्ट होकर विपरीत प्ररूपणा करता है उसकी त्रस की स्थिति समाप्त होने को आई है और वह निगोद में जायेगा। एक चोर बारम्बार चोरी करके जेल में जाता था और जब जेल से छूटा तो कहने लगा कि मेरी जल पीने की मटकी को बिगाड़ना मत, मैं शीध्र ही जेल में वापस आऊँगा। उसीप्रकार जीव निगोद से निकलकर बाहर आया; परन्तु सग्रन्थ दशा से निर्ग्रन्थ दशा होगी- ऐसा मानता है, निमित्त से लाभ होगा- ऐसा मानता है उसको निगोददशा में जाने की आदत हो गई है। अरे भाई! मुनि की बाह्य-अभ्यंतर निर्ग्रन्थ दशा होती है।- ऐसा न जानकर जो जीव व्यवहार और निमित्त से लाभ मानने वाला है; ज्ञानानन्द स्वभाव से लाभ नहीं मानता- वैसा जीव मुनि और क्षुल्लक नाम धराकर भी निगोद में जायेगा। इस पंचमकाल में अपनी कल्पना से अपने को आचार्य मनाता है, ऐसे जीवों को आचार्य मानकर, उनसे लाभ होगा- ऐसा विचारकर, धर्मबुद्धि से वहाँ जाकर नमता है वह

www.vitragvani.com

लूला (पैर रहित-एकेन्द्रिय) होगा। जो सग्रंथ को निर्ग्रन्थ मानता है ऐसे मिथ्यादृष्टि की प्रशंसा करने वाले शिष्य को भी यही दोष लगता है।

दिगम्बर पंथ- अनादि-सनातन पंथ एक ही है। इससे भ्रष्ट होकर, मैं मुनि हूँ- ऐसा मानकर सम्मान चाहने वाला निगोद में जायेगा।

प्रश्नः- लोकिकरूप से (लोकलाज से) मान लें तो?

समाधानः- कोई पेट दर्द से पीड़ित व्यक्ति हरड़ के बदले भूल से ज़हर खा ले तो मर जाता है। यदि हरड़ ले तो दस्त हो जाये; परन्तु भूल से संखिया (ज़हर) ले ले तो मर जाता है। उसने भूल से खा लिया है इसलिये मरेगा नहीं- ऐसा नहीं है। एक कूएँ के ऊपर चारों तरफ दरी फेलाई है और उसके चारों तरफ पत्थर रखे हुये हैं, उसके ऊपर कोई बैठने को बुलावे और कोई बैठने जाए तो अन्दर कुएँ में पड़कर मर जाता है। उसीप्रकार वस्त्र सहित चारित्र मनावे, स्त्री को मुक्ति मनावे; वे जीव कहें कि हम तो भोले हैं हमें कुछ पता नहीं था। तो अज्ञान वह बचाव नहीं है। जैसे हरड़ के बदले संखिया (ज़हर) ले लेवे तो मरण हो जाता है; उसीप्रकार निर्ग्रन्थ के बदले सग्रंथ के साधु पद माने तो मर जाता है- संसार परिभ्रमण होता है। पोस्ट की थैली पर मोहर लगाते समय पोस्ट मास्टर को उपस्थित रहना पड़ता है, यदि वह कहे कि मुझे पता नहीं था, तो यह जवाब नहीं चलता। वस्तु के स्वभाव का अज्ञान वह बचाव नहीं है। जीव संसार में तो परीक्षा करता है। लखपति की स्त्री भी तीन पैसे की नथ की परीक्षा करती है। यदि परीक्षा नहीं करे तो उसकी नाक कट जाए। उसीप्रकार यहाँ धर्म में परीक्षा करनी चाहिये। जो सग्रंथ को निर्ग्रन्थ माने-मनावे तथा सम्यग्दृष्टि से विनय कराना चाहे उसकी त्रसराशि का काल पूरा हुआ है। वह निगोद में निवास करेगा। जो दर्शन भ्रष्ट पुरुष है वह भावलिंगी मुनि को वंदन नहीं करता, आदर नहीं करता और चारित्रपद को स्वीकार नहीं करता , वह भी लूला हो जायेगा।

अहो! धन्य चारित्रदशा। अहो! वैसी दशा प्राप्त होना कठिन है। अहो! ऐसे मुनि को सम्यग्दृष्टि वंदन नहीं करे- ऐसा नहीं होता। जो दर्शन भ्रष्ट पुरुष ऐसे मुनि को वंदन नहीं करता वह एकेन्द्रिय में जायेगा।

दर्शन का अर्थ क्या? यह आत्मा शुद्ध ज्ञानानन्द स्वरूपी है। इसकी पर्याय में पुण्य-पाप के परिणाम होते हैं। जो उन्हें धर्म मानता है वह दर्शनभ्रष्ट है। भगवान

www.vitragvani.com

आत्मा एकसमय में पूर्ण ज्ञानानन्द है। जैसे सिद्ध हैं वैसा अन्तर स्वरूप है। उसकी अवस्था में पुण्य-पाप, दया, दानादि के भाव होते हैं। उनसे मुझे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र होगा- ऐसी प्रतीति वाला दर्शनभ्रष्ट है। सम्यग्दर्शन कैसा है और कैसे प्रगट होता है- इसकी उसको खबर नहीं हैं। जैसे सिद्ध भगवान है वैसा ही मेरा द्रव्य है। द्रव्यस्वभाव शान्ति का कुण्ड है, चिरकाल धाराप्रवाह शान्ति का कुण्ड है। जो उसके सन्मुख झुकाव नहीं करके राग तरफ के झुकाव से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र मानता है वह दर्शन भ्रष्ट है। प्रथम व्यवहार करो तो निश्चय प्रगट होगा- ऐसा मानने वाले ने राग से लाभ माना है, राग रहित स्वभाव के आश्रय से लाभ नहीं माना। जो एकसमय में पूर्ण शान्ति लेना चाहता है वह अपूर्ण नहीं हो सकता। जो शान्ति और सुख (तू) प्राप्त करना चाहता है वह बाहर में नहीं हैं। अन्तर स्वभाव में पूर्ण शान्ति भरी है। उसके अवलम्बन से शान्ति होती है। काम, क्रोध, मान, माया की मंदता से मुझे लाभ होगा- ऐसी प्ररूपणा करने वाले भले ही आचार्य नाम धरावे, पण्डित नाम धरावे, साधु नाम धरावे, तो भी वे मिथ्यादृष्टि हैं। राग से धर्म मानने-मनवाने वाला सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट है। स्वभाव के अवलम्बन से वर्तमान अवस्था में अविकारी दशा होती है। मुनि अवस्था में राग रहता है। आहार-पानी, उपदेश का विकल्प रहता है; उसे मुनिराज अपना स्वरूप नहीं मानकर अन्तर स्वरूप में ही स्थिर होना चाहते हैं- यह जैनमार्ग है- यही मोक्षमार्ग है, यही अरागी- अविकारी उग्र साधकदशा है और यही दर्शनमार्ग है। उनकी अभ्यंतर और बाह्यदशा कैसी होती है- इसके परिज्ञान बिना राग को चारित्र मानने वाला जीव दर्शनभ्रष्ट है। जैसे लुटेरों की मदद अथवा उसे रोटी देने वाला सरकार का अपराधी है। उसीप्रकार भगवान आत्मा पूर्ण शक्ति का भण्डार है। उसके आश्रय से केवलज्ञान दशा प्राप्त होती है। जिसके अभ्यंतर ग्रंथी नहीं है और बाह्य में भी वस्त्रादि ग्रंथी नहीं- ऐसी मुद्रा से जो भ्रष्ट है उसके पैंरो में भय अथवा लज्जा से भी पड़े तो वह लुटेरे के मददगार के समान है।

Shree kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

दर्शनपाहुड़ गाथा - 13

आगे कहते हैं जो दर्शन भ्रष्ट हैं उनके लज्जादिक से भी पैरों पड़ते हैं वे भी उन्ही जैसे ही हैं:-

जे वि पडंति य तेसिं जाणंता लज्जागारवभयेण।
तेसिं पि णत्थि बोही पावं अणुमोयमाणाणं।।13।।

येऽपि पतन्ति च तेषां जानंतः लज्जागारवभयेन।
तेषामपि नास्ति बोधिः पापं अनुमन्यमानानाम्।।13।

हिन्दी पद्यानुवादः

जो लाज गारव और भयवश पूजते दृगभ्रष्ट को।
की पाप की अनुमोदना ना बोधि उनको प्राप्त हो।।13।।

अर्थः- जो पुरुष दर्शन सहित हैं वे भी, जो दर्शन भ्रष्ट हैं उन्हे मिथ्यादृष्टि जानते हुए भी उनके पैरों पड़ते हैं, उनकी लज्जा, भय, गारव से विनयादि करते हैं उनके भी बोधि अर्थात् दर्शन-ज्ञान-चारित्र की प्राप्ति नहीं है, क्योंकि वे भी मिथ्यात्व जो कि पाप है उसका अनुमोदन करते हैं। करना, कराना, अनुमोदन करना समान कहे हैं। यहाँ लज्जा तो इस प्रकार है कि-हम किसीकी विनय नहीं करेंगे तो लोग कहेंगे यह उद्धत हैं, मानी हैं, इसलिये हमें तो सर्वका साधन करना है। इसप्रकार लज्जासे दर्शनभ्रष्ट के भी विनयादिक करते हैं। तथा भय इस प्रकार है कि- यह राज्य मान्य है और मंत्र विद्यादिक की सामर्थ्ययुक्त है, इसकी विनय नहीं करेंगे तो कुछ हमारे ऊपर उपद्रव करेगा; इसप्रकार भय से विनय करते हैं। तथा गारव तीन प्रकार कहा है; रसगारव, ऋद्धिगारव, सातगारव। वहाँ रसगारव तो ऐसा है कि-मिष्ट, इष्ट, पुष्ट, भोजनादि मिलता रहे तब उससे प्रमादी रहता है; तथा ऋद्धिगारव ऐसा है कि कुछ तप के प्रभाव आदि से ऋद्धिकी प्राप्ति हो उसका गौरव आजाता है, उससे उद्धत, प्रमादी रहता है। तथा सातगारव ऐसा कि शरीर निरोग हो, कुछ क्लेशका कारण न आये तब सुखीपना आजाता है, उससे मग्न रहते हैं- इत्यादिक गारवभाव की मस्तीसे भले-बुरेका कुछ विचार नहीं करता तब दर्शनभ्रष्ट की भी विनय करने लग जाता है। इत्यादि निमित्त से दर्शनभ्रष्ट की विनय करे तो उसमें मिथ्यात्व का अनुमोदन आता है; उसे भला जाने तो आप भी उसी समान हुआ, तब उसके बोधि कैसे कही जाये? ऐसा जानना।।13।।

www.vitragvani.com

गाथा- 13 पर प्रवचन

अब कहते हैं कि जिसके निर्ग्रन्थ दृष्टि नहीं है, निर्ग्रन्थ मुद्रा नहीं है, निर्ग्रन्थ चारित्र नहीं है तथा जिसकी प्ररूपणा विपरीत है उसको वंदन करने वाला जीव दर्शन भ्रष्ट है ।

कोई भी राग रहित और संयोग रहित दृष्टि वाला है । अर्थात् संयोग से चारित्र पर्याय भिन्न है- ऐसे भान सहित जीव भी कुगुरु को वंदन करे तो भ्रष्ट हो जाता है । जो राग से लाभ मानता है, जिसकी काया में चारित्र मुद्रा नहीं है- ऐसे जीव को चारित्र संत मानकर वंदन करता है। अथवा राग से लाभ होगा, व्यवहार से लाभ होगा- ऐसी जिसकी वचन मुद्रा है तथा वस्त्र सहित सग्रंथ दशा है,- फिर भी मैं अरागी साधु हूँ- ऐसा मानता है - ऐसों को ऐसे जानते हुए भी जो उनके पैंरो पड़ता है वह मिथ्यादृष्टि है। यह ख्याल में आने पर भी कि यह व्यवहार से धर्म मनाते हैं और जिनवचन से विरूद्ध प्ररूपण करते हैं - ऐसा जानने पर भी जो जीव उनको नमस्कार करता है वह दर्शनभ्रष्ट है । नग्न शरीर होने पर भी यदि उनकी वाणी में ऐसा आता है कि पुण्य करते-करते धर्म होगा तो उनकी मुद्रा यथार्थ नहीं है - इसप्रकार ममता वाले जीव को चारित्र स्वरूप मानता है वह वचन में सग्रंथपने की मोहर - छाप वाला है; फिर भी लज्जावश उनके पेंरो पड़े तो वह भ्रष्ट है - श्रद्धा भ्रष्ट है । कारण कि विपरीत मान्यता करने में, कराने में और अनुमोदन में- तीनों में मिथ्यात्व का पाप है।

मैं समाज का प्रमुख हूँ। यदि मैं इनके पैरों नहीं पड़ूँगा तो मेरी इज्जत नहीं रहेगी। जो राग से धर्म और वस्त्र सहित मुनिपना मानते है- ऐसे जीवों को जो लज्जा से या अभिमान से नमस्कार करता है वह भ्रष्ट है। साधु की वंदना करने से अपने को अच्छा भोजन मिलेगा- ऐसी आशा से नमता है वह श्रद्धा भ्रष्ट है। जिसको निर्ग्रन्थ दृष्टि, निर्ग्रन्थ मुद्रा, निर्ग्रन्थ चारित्र नहीं है, जिसकी प्ररूपणा विपरीत है उसे लज्जा आदि से वंदन करने वाला (भी) भ्रष्ट हो जायेगा। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र से भ्रष्ट हो जायेगा।

जो सिद्ध भगवान हुए हैं वे कहाँ से हुए हैं? अन्दर में से हुए हैं। जो विकार से लाभ मनाता है राग से चारित्र मनाता है वह मिथ्यादृष्टि है। 'णमो अरिहंताणं' अरि माने पुण्य-पाप दोनो दुश्मन हैं। दया, दान, कोमलता पुण्य है, विकार है, ग्रंथ है, संयोगी भाव है। उनसे किंचित् भी लाभ माने, मनावे वह चारित्र से भ्रष्ट है। उसके

www.vitragvani.com

ख्याल में है कि ऐसी प्ररूपणा तत्त्व से विरूद्ध है, तो भी (ऐसी) प्ररूपणा वाले के पैरों पड़ने वाला मिथ्यात्व की अनुमोदना करता है। जिसको दृष्टि विपरीत है, जो अचारित्र में चारित्र मानता है, सग्रन्थ में निर्ग्रन्थ मानता है, तो भी जो उसके पैरों पड़ता है वह मिथ्यादृष्टि है। जिसे सत्य स्वीकार करना हो और असत्य की अभिलाषा न हो उसको कुदेवादि को वंदन नहीं करना चाहिये। यदि श्रद्धा वाला भी उन्हें वंदन करता है तो वह दर्शन से भ्रष्ट होता है और मिथ्यादृष्टि खोटी श्रद्धा को दृढ़ करता है। लज्जा से, भय से अथवा गौरव से भी वंदन करता है वह भ्रष्ट होता है। उसके स्वभाव सन्मुखता की योग्यता नहीं है। विपरीत अभिप्राय का सेवन, अनुमोदन करना और उससे सहमत होना- ये सब पाप है।

प्रश्नः- पता न होवे तो क्या करना?

समाधानः- जैसे दुकान की खोज के लिये मेहनत करते हैं और संसार में मेहनत करते है; उसीप्रकार यहाँ भी परीक्षा करना चाहिये। अज्ञानी जीव धर्म में मूढ़ हो जाता है। अनन्तकाल में एकसमय मात्र भी परीक्षा नहीं की। जो श्रद्धा से भ्रष्ट है, चारित्र से भ्रष्ट है उसके पैर नहीं पड़ना चाहिये। प्रतिदिन अरिहन्त देव, निर्ग्रन्थ गुरु और केवली भगवान द्वारा प्ररूपित धर्म की शरण होओ- ऐसा बोलता है; परन्तु निर्ग्रन्थ मुनि क्या? जिसके राग की ग्रन्थी टूट गई है और अरागी परिणाम हुए हैं, उनकी मुद्रा में वैराग्य की झलक दिखती है- ऐसे परिणामों से विहीन जीव को मुनि मानकर वंदन करने वाला (श्रद्धा) भ्रष्ट है। जो शास्त्र में- उपदेश में व्यवहार से निश्चय होना बतलाने वाले को मानता है वह मिथ्यादृष्टि है।

समाज में प्रतिष्ठा के लिये मिथ्यादृष्टि मुनि को वंदन करने वाला दर्शन भ्रष्ट है। नग्न मुनि हमारे शहर में आये हैं और सब पूजन करने जाते हैं। (ऐसा मानकर) उनके लिये चौका बनाता है, वह आहार शुद्धि, जल शुद्धि, मन शुद्धि, वचन शुद्धि और काय शुद्धि बोलता है; परन्तु पाँचों ही अशुद्ध है; क्योंकि आहार मुनि के लिये बनाया है। ऐसा होते हुए भी उस उद्दिष्ट आहार को मुनि ग्रहण करे, वैसे मुनि की जो लज्जावश भक्ति करता है वह दर्शनभ्रष्ट है। हमारी समाज में हमारी बड़ी इज्जत है। हमारी लड़कियाँ बड़ी (विवाह योग्य) है, हमें क्या करना? हमें तो समाज में सबके

www.vitragvani.com

साथ रहना है- ऐसा कहकर लज्जावश पैरों पड़ता है। जो उद्दिष्ट आहार लेता है और राग से धर्म मानता है वह दर्शन भ्रष्ट है। उसकी मुद्रा भ्रष्ट है। उसकी मिथ्यात्व की मुद्रा है। सत् का जैसा स्वभाव है वैसा स्वीकार पूर्वक पुण्य से लाभ नहीं- ऐसी जिसको प्रतीति नहीं है तथा जो तीव्र राग के कार्य करता है उसे मुनि मानकर वंदन करना योग्य नहीं है। लोग कहेंगे कि यह वंदन नहीं करता, मूसल की तरह खड़ा है; जगत में उद्दण्ड गिना जाऊँगा और मानी की मूहुर लग जायेगी; अतः सबके समाधान के लिये सबसे बनाकर रखना- यह लज्जाभय है। धर्म अकषायभाव है। अविकारी श्रद्धा-ज्ञान-रमणता धर्म है। जो सकषाय रूप अधर्मभाव में अकषाय रूप धर्म मानता है उसे जो लज्जावश नमन करता है, दुनिया के हृदय में मेरा मान बना रहे, इसलिये नमन करता है वह पापी है।

प्रश्नः- सबका समन्वय करें तो .....?

समाधानः- अविकार मार्ग का विकार के साथ मेल-समन्वय नहीं बैठता। चोर चोरी का माल अंदाज से बेच देता है, पूरे मूल्य में नहीं बेचता। चोरों को एक लाख का चोरी का माल बेचने में भी विवाद नहीं होता, क्योंकि उन्हे वह मुफ्त में मिला है। परन्तु व्यापारी तो कहता है कि "हिसाब कोड़ी का और बक्षिस लाख की," वह एक कोड़ी (पैसा) कम नहीं लेगा। सत्य के लिये बराबर हिसाब रखता है। उसीप्रकार धर्मी जीव सग्रंथ को वंदन नहीं करता। यह क्लेश नहीं, यह तो शान्ति का मार्ग है। धर्म भ्रष्ट का आदर करना योग्य नहीं है। यहाँ कुन्दकुन्दाचार्य ने अपना हृदय खोल दिया है। उन्होंने महाविदेह जाकर आठ दिन तक भगवान की वाणी सुनी थी। फिर वहाँ से आकर यह शास्त्र बनाया है। उनको करूणा का विकल्प आया और शास्त्र बन गया। भाई! असत्य पंथ में शरण नहीं मिलेगी जिसकी श्रद्धा और चारित्र भ्रष्ट है- ऐसे मुनि को वंदन नहीं करेंगे तो समाज बुरा कहेगी- ऐसा मानकर जो सबको समान मानकर वंदन करता है वह दर्शन भ्रष्ट है।

अब भय से वंदन करने की बात करते हैः-

यह मुनि मिथ्यादृष्टि है- ऐसा जानता है; परन्तु इसको करोड़पति मानते हैं, राजा मानते हैं। देखो न ! जो गाय आदि की दया तथा दानादि के भावों में पाप मानते

www.vitragvani.com

हैं, फिर भी उनको मानने वाले बहुत हैं, जैसे विवाह के दिन ही कोई युवा मर जाये तो उसके श्मशान (दाहक्रिया) में हजारों मनुष्य आते हैं तो क्या उसकी भावना कोई करता है कि मेरे घर हजारों मनुष्य इकट्टे होवें तो ठीक। उसीप्रकार पुण्य से संयोग मिलना तो श्मशान का मेला है। मिथ्यादृष्टि को उसके पुण्य के कारण हजारों मनुष्य वंदन करते हों और सम्यग्दृष्टि को कोई मानता न हो; परन्तु सम्यग्दृष्टि जब सिद्ध हो जायेगा तब सब नमस्कार करेंगे। तात्पर्य यह है कि बाह्य पुण्य के साथ पवित्रता का सम्बन्ध नहीं हैं। अज्ञानी जीव भय से नमन करता है। वेषधारी भय बताता है कि मुझे नमन नहीं करोगे तो तुम्हारे परिवार का नाश हो जायेगा, तू बाँझ ही रह जायेगा। इस प्रकार वेषधारी भ्रमाते हैं। तथा वेषधारियों के पास देव-देवियाँ आते है- ऐसा मानकर (अज्ञानी) उनके पैरों पड़ता है।

तात्पर्य यह है कि जो श्रद्धा भ्रष्ट और चारित्र भ्रष्ट है - ऐसे जीवों के पैरो में भय से पड़ता है, वे हमे उपद्रव करेंगे - ऐसा भय करके उनकी विनय करता है वह भ्रष्ट है।

अब कहते हैं कि तीन प्रकार के गारव से सत्य-असत्य का निर्णय नहीं करने वाला भी मिथ्यादृष्टि है।

गारव तीन प्रकार के कहे हैं (1) रस गारव, (2) ऋद्धि गारव (3) सात गारव। अब वहाँ रस गारव यह है कि मिष्ट, इष्ट, पुष्ट भोजन मिला वहाँ प्रमादी रहे। महाराज के साथ रहेंगे तो मिष्ट, पुष्ट भोजन मिलेगा। परन्तु वहाँ प्रमाद करके उसके सत्यासत्य का विचार नहीं है। तथा स्वयं तप करता हो और तप के कारण कोई महानता प्राप्त हुई हो, उसके अभियान में असत्य का आदर करे तो मिथ्यादृष्टि हो जाता है। तथा सात गारव अर्थात् शरीर निरोग हो और कुछ भी पीड़ा का कारण न बने वहाँ सुखियापना आवे और उसमें मग्न रहे -इत्यादि गारवभाव की मौज में भले - बुरे का विचार नहीं करता। अपना प्रभाव पड़ता है - ऐसा मानकर निर्दोष सत् को छोड़कर विपरीत श्रद्धावंत को मानने वाला भ्रष्ट है। मस्त अर्थात् पाड़ा जैसा। मैं पैसे वाला हूँ, मुझे कोई समाज बाहर नहीं निकाल सकता - ऐसा मानकर दर्शनभ्रष्ट का विनय करना मिथ्यात्व की अनुमोदना है। तथा किसी को बुद्धि बहुत हो और वह

www.vitragvani.com

कुतर्क करे वह भी खोटी मस्ती है। मैं इतने वर्ष मुनि के पास रहा इसलिये वंदन तो करना पड़ता है न ! मेरे पिता के गुरु हैं इसलिये आदर करना पड़ता है-ये सव दर्शन भ्रष्ट हैं।

देखो! राजा को वंदन करने में धर्मबुद्धि नहीं है । जबकि यहाँ तो धर्म की बात है । सम्यग्दृष्टि भी भ्रष्ट को वंदन करे तो वह भी भ्रष्ट हो जाता है।

इसप्रकार जो मिथ्यात्व की अनुमोदना करे उसे भला नहीं कहते। वह भी मिथ्यादृष्टि जैसा हुआ इसलिये उसे बोधि किसप्रकार हो? पूर्ण शुद्ध चिदानन्द की प्रतीति वाला पुण्य से लाभ नहीं मानता । वह बहिर्मुख दृष्टिवंत को नमस्कार नहीं करता । जो बाह्य में वस्त्र होने पर भी उसे चारित्र अर्थात् मुनिपना माने, उसे निर्ग्रन्थ दशा के स्वरूप का पता नहीं है।

अरे ! लोग कमाने में पड़े हैं । आत्मा क्या है ? इसका भी उन्हें पता नहीं है। मैं बहिर्मुख दृष्टि से लाभ मानता हूँ - ऐसा भी पता नहीं है। बहिर्मुख दृष्टिवंत को वंदन करने से सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती। स्वभाव दृष्टि बहिर्मुख दृष्टि से प्राप्त नहीं होती । जैसे बाह्य वस्त्र से निर्ग्रन्थ दशा नहीं होती, उसीप्रकार भगवान की प्रतिमा को रागी बनाकर वीतराग मानने वाला भी मिथ्यादृष्टि है। पण्डितजी (वचनिकाकार पण्डित जयचन्द्रजी) कहते हैं कि यह वचनिका मैने ख्याति, प्रतिष्ठा के लिये नहीं बनाई है, किन्तु सामान्य मनुष्य को सत् स्वरूप ख्याल में आवे इसलिये बनाई है।

Shree kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

दर्शनपाहुड़ गाथा - 14

दुविहं पि गंथचायं तीसु वि जोएसुसंजमो ठादि।
णाणम्मि करणसुद्धे उब्भसणे दंसणं होदि ।।14।।

द्विविधः अपि ग्रन्थत्यागः त्रिषु अपि योगेषु संयमः तिष्ठति।
ज्ञाने करणशुद्धे उभ्दभोजने दर्शनं भवति ।।14।।

हिन्दी पद्यानुवादः

त्रैयोग से हो संयमी निर्ग्रन्थ अन्तर-बाह्य से।
त्रिकरण शुध अर पाणिपात्री मुनीन्द्रजन दर्शन कहें।।14।।

अर्थः- जहाँ बाह्याभ्यंतर भेदसे दोनों प्रकार के परिग्रह का त्याग हो और मन-वचन-काय ऐसे तीनों योगों में संयम हो तथा कृत-कारित-अनुमोदना ऐसे तीन करण जिसमें शुद्ध हों वह ज्ञान हो, तथा निर्दोष जिसमें कृत, कारित, अनुमोदना अपनेको न लगे ऐसा, खड़े रहकर पाणिपात्र में आहार करे, इसप्रकार मूर्तिमन्त दर्शन होता है।

भावार्थः- यहाँ दर्शन अर्थात् मत है; वहाँ बाह्य वेश शुद्ध दिखाई दे वह दर्शनः वही उसके अंतरङ्गभावको बतलाता है। वहाँ बाह्य परिग्रह अर्थात् धन-धान्यादिक और अंतरङ्ग परिग्रह मिथ्यात्व-कषायादिक, वे जहाँ नहीं हो, यथाजात दिगम्बर मूर्ति हो, तथा इन्द्रिय-मनका वश में करना, त्रस-स्थावर जीवोंकी दया करना, ऐसे संयम का मन-वचन-काय द्वारा शुद्ध पालन हो और ज्ञान में विकार करना, कराना अनुमोदन करना- ऐसे तीन करणों से विकार न हो और निर्दोष पाणिपात्र में खड़े रहकर आहार लेना इस प्रकार दर्शन की मूर्ति है वह जिनदेव मत है, वही वंदन-पूजन योग्य है, अन्य पाखंड वेष वंदना-पूजा योग्य नहीं हैं।।14।।

गाथा- 14 पर प्रवचन

जैनदर्शन में मुनि कैसे हैं ? जिनके बाह्य में वस्त्र- पात्र नहीं है और अन्तर में जिनको वस्त्र का राग नहीं होता - ऐसा बाह्य - अभ्यंतर परिग्रह जिनको छूट गया है वे मुनि हैं।

www.vitragvani.com

देखो ! जैनदर्शन में बडी प्रतिज्ञा नहीं लेने का पाप नहीं हैं; परन्तु प्रतिज्ञा लेकर भंग करने वाला भ्रष्ट है । उपवास की प्रतिज्ञा लेकर एक दाना भी खाने वाला भ्रष्ट है और स्वभाव की दृष्टि पूर्वक एकबार आहार ले तो वह धर्म के मार्ग पर है। जो मूनिपने की बड़ी प्रतिज्ञा लेकर मुनिपने का पालन नहीं करता वह भ्रष्ट है।

जो प्राणी दर्शनभ्रष्ट है अर्थात् आत्मा में सदोषता की तीव्रता होने पर भी चारित्र मानता है, सदोषता से धर्म होगा- ऐसा वाणी से प्ररूपित करता है तथा अन्तर मे ममत्व विशेष घटा नहीं होने से ममत्व के संयोग वस्त्र-पात्र आदि शरीर पर दिखते हैं - ऐसे जीव को मुनि मानने से बोधि दुर्लभ हो जाती है। राग रहित दशावंत को वस्त्र-पात्र नहीं होते। तथा जिसके वस्त्र-पात्र तो छूट गये हैं; परन्तु व्यवहार से धर्म मनाता है, निमित्त से धर्म मनाता है वह भी सदोष मुद्रा है, जिनमुद्रा नहीं। सनातन सत्यमार्ग इसी प्रवाह से चलता है- ऐसा श्री कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। इसे छोड़कर राग से धर्म माने वह भ्रष्ट है। जो राग रहित वीतराग मार्ग से भ्रष्ट हुआ है, उसको जिनमुद्रा मानकर वंदन करता है वह सम्यक्त्व का नाश करता है और मिथ्यात्व को वंदता है। पहले सम्यग्दर्शन पाने के बाद भी भ्रान्ति हो जाए और राग से लाभ माने तो मिथ्यादृष्टि हो जाता है। जो मिथ्यादृष्टि है उसको भी कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र को छोड़ना चाहिये। कुदेव-कुगुरु को साक्षात आत्मघातक माने बिना बोधि दुर्लभ है। श्रीमद् राजचन्दजी (पत्रांक 277) में कहते हैं - "आत्मा को भिन्न-भिन्न प्रकार की कल्पना द्वारा विचारने में लोक संज्ञा, ओघ संज्ञा और असत्संग- ये तीन कारण है । जिन कारणों में उदासीन हुए बिन निःसत्व ऐसी लोक सम्बन्धी जप-तपादि क्रिया में साक्षात मोक्ष नही, परम्परा मोक्ष नहीं- ऐसा माने बिना निःसत्व ऐसे असत्शास्त्र और असत्गुरु जो आत्मस्वरूप को आवरण में मुख्य कारण है उन्हे साक्षात आत्मघाती माने बिना जीव को जीव के स्वरूप का निश्चय होना बहुत दुर्लभ है- अत्यन्त दुर्लभ है" सब ऐसा मानते हैं तो क्या करना ? आत्मा के भान बिना जप - तपादि क्रिया में साक्षात मोक्ष नहीं, परम्परा मोक्ष नहीं। मैं पर से प्रथक् और स्व से एकत्व हूँ - ऐसे भान बिना समस्त क्रियायें व्यर्थ हैं । मुनि निर्ग्रन्थ होते हैं, उनके वस्त्र-पात्र नहीं होते। उनकी दशा राग रहित होती है, हजारों बार अप्रमत्त दशा आती है- ऐसे मुनि को छोड़कर मिथ्यादृष्टि को मुनि मानकर आहार-पानी देना मिथ्यादृष्टि का चिह्न है।

Shree kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

संत की राह अथवा पंथ कौनसा था? महाविदेह में, भरतक्षेत्र में कैसा था? सदोषता का दृष्टि में अभाव तथा सदोषता का चारित्र में अभाव वर्तता है वह मुनि है। जिसको बाह्य में दस प्रकार के परिग्रह का त्याग वर्तता है और अन्तरंग में चौदह प्रकार के परिग्रह अर्थात् मिथ्यात्व, चार कषायें और नौ नोकषाय का त्याग है वह मुनि है। राग से क्रम-क्रम से धर्म होगा, ऐसी प्ररूपणा करने वाला मुनिमार्ग से भ्रष्ट है। मन-वचन-काया से परिग्रह रखना, रखाना और उसका अनुमोदन नहीं होता- ऐसी नवकोटि से परिग्रह छोड़े बिना, अभ्यंतर परिग्रह नहीं छूटता। जिसको अन्तर में अनुकूल संयोग की पकड़ है तथा राग की पकड़ है वह अभ्यंतर परिग्रहवान है। बाह्य से नग्न होने पर भी राग के परिग्रह वाला मिथ्यादृष्टि है, चारित्र न हो तो अचारित्र का दोष है; परन्तु चारित्र नहीं होने पर भी चारित्र मानना तो मिथ्यात्व का दोष है। मुनि को हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, परिग्रह को करना-कराना नहीं होता। मात्र नग्न होने से मुनि नहीं हो जाता। अभ्यंतर राग-द्वेष की पकड़ छूटे बिना और स्वभाव में एकत्व हुए बिना अभ्यंतर राग-द्वेष नहीं छूटते उसके एक भी निमित्त छूटा नहीं कहलाता। जो ऐसा प्रतिपादन करता है कि पुण्य से धर्म होगा, मन्दिर बनाने से कल्याण हो जायेगा, अर्थात राग की मंदता से धर्म मनाता है उसके अभिप्राय में अनन्त कषाय पड़ी हुई है, अविकारी आनन्द स्वभाव से लाभ है- ऐसी दृष्टि नहीं है। मुनि मन-वचन-काया से संयम में स्थित है। मन-वचन-काया से परिग्रह का त्याग तथा त्रस - स्थावर की हिंसा का त्याग वर्तता है। मुनि के लिये (निमित्त से) भोजन बनावे उसमें हिंसा होती है, तो भी मुनि उस भोजन को ग्रहण करे तो वह भ्रष्ट है। हमारे लिये भोजन बनाओं (ऐसा कहे) अथवा अनुमोदन करे उसके नव कोटि का त्याग नहीं है। वह भ्रष्ट है।

तथा चारित्रवंत संतो का ज्ञान कैसा होता है? राग से प्रथक् होकर ज्ञानस्वभाव में एकत्व हो वह ज्ञान है। वे वैसा ज्ञान करते हैं, कराते हैं और अनुमोदन करते हैं; परन्तु विपरीत ज्ञान अर्थात् सत्य से विरूद्ध कहे, निमित्त से धर्म होने की प्ररूपणा करे उनका ज्ञान मिथ्या है । मुनि निर्दोष ज्ञान करते हैं, निर्दोष ज्ञान कराते हैं और निर्दोष ज्ञान की अनुमोदना करते हैं- इसप्रकार तीनों प्रकार से ज्ञान शुद्ध हैं। शुद्ध चैतन्य

www.vitragvani.com

स्वभाव की दृष्टि बिना, राग से ज्ञान होगा, अनुकूल निमित्त से ज्ञान होगा- ऐसा मिथ्यादृष्टि का ज्ञान अशुद्ध है। उसका सम्यग्दृष्टि अनुमोदन नहीं करता। मिथ्यादृष्टि प्ररूपण करता हो और हजारों मनुष्य सुनने के लिये इकट्टे होते हो, वह कहें कि पहले व्यवहार करो तो धर्म होगा; और उसका अनुमोदन करे। इस प्रकार विपरीत ज्ञान करने में, कराने में, अनुमोदन में शुद्धता नहीं आती।

प्रश्न - यह तो पंचमकाल है न ?

समाधान - पंचमकाल में आकाश में फूल नहीं आते, आम के वृक्ष पर निम्बौली नहीं पकती; वस्तु का स्वभाव त्रिकाल में भी नहीं पलटता। वस्तु के स्वभाव में गड़वड़ नहीं चलती । क्या पंचमकाल में खरगौश के सींग आते है ? नही; उसी प्रकार पंचमकाल में विपरीत मार्ग को सम्यक् नहीं माना जा सकता। मिथ्यादृष्टि को (ज्ञान का) क्षयोपशम बहुत होने पर भी सम्यग्दृष्टि उसके अज्ञान-मिथ्याज्ञान की अनुमोदना नहीं करता।

प्रश्न - शिथिलता चलाना पड़ती है न ?

समाधान - लड़का कुसंगति में पड़ जाए तो उसे घर से बाहर निकाल देते हैं; क्योकि वह कुटुम्ब का कलंक है। उसीप्रकार धर्म में विपरीतता कलंक है। धर्म में गड़बड़ नहीं चलती। किसी मिथ्यादृष्टि के भाषण में हजारो मनुष्य सुनने जाते हो; परन्तु सम्यग्दृष्टि उसकी अनुमोदना नहीं करता। वीतराग मुद्रा में संयम शुद्ध है और ज्ञान शुद्ध है। निर्दोषता के मार्ग में गतिशीत पूर्ण सर्वज्ञपद के अभिलाषी संत कैसे हैं- उसकी बात चलती है। पानी की एक बूंद में असंख्यात जीव होते हैं। इसलिये उनके लिये बनाया हुआ पानी आदि मुनि नहीं लेते। तथा उनके लिये अनार, आम आदि लाये हों तो उसके ग्रहण करने में मुनि को पाप है। मुनि का आहार निर्दोष होता है। निर्दोष आहार अर्थात् जिसमें कृत-कारित-अनुमोदन का दोष न हो-ऐसा आहार वे लेते हैं । तथा मुनि खड़े-खड़े कर पात्र में आहार लेते हैं। जो पात्र में भोजन ले जाते हैं वे मुनि नहीं हैं । निर्दोष संयम, निर्दोष ज्ञान, निर्दोष आहार और खड़े-खड़े आहार लेते हैं वे मुनि हैं यही सनातन वीतरागमार्ग है। पात्रों में आहार लेना और घर ले जाकर बैठे-बैठे भोजन करना मुनि मार्ग नहीं है। वह चारित्र पंथ नहीं है। मुनिपद

www.vitragvani.com

तो परमेश्वरपद है। उन्हें तो गणधरदेव भी नमस्कार मंत्र में नमस्कार करते हैं। इसकी प्रतीति करो ! श्रद्धा में गड़बड़ मत करो ! इसप्रकार दर्शनपाहुड़ में दर्शन का स्वरूप कहा है। यही मोक्षमार्ग है। मोक्षमार्ग में मुनि का अन्तर और बाह्य वेष ऐसा होता है।

यहाँ दर्शन नाम मत का है। वहाँ बाह्य वेष शुद्ध है और वे अतीन्द्रिय आनन्दकन्द आत्मा में रमते हैं। क्षण में विकल्प उठता है और क्षण में आनन्द में रमते हैं। उनमें निर्दोषता दिखती है। यहाँ श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र सहित निर्दोषता की बात है; अकेली बाह्य नग्नदशा की बात नहीं है। मुनिराज दस प्रकार के धन-धान्यादि परिग्रह से रहित हैं तथा मिथ्यात्व, चार कषाय और नौ कषाय के अन्तरंग परिणाम से रहित होते हैं। इसप्रकार चौदह प्रकार के अन्तरंग परिग्रह से रहित हुए हैं। अकेली नग्नता की बात नहीं है क्योंकि; नग्न तो पशु भी होते हैं। यहाँ तो अन्तरंग भान सहित नग्नता की बात है। अन्तर में राग घट गया कहे और बाहर में वस्त्र रह गया है- ऐसा मुनि के लिये कहे तो वह मुनि का स्वरूप नहीं जानता। मुनि की तो अन्तर में यथाजात दशा और बाह्य में जन्मजात दशा होती है। तथा वे इन्द्रिय-मन को वश में करते हैं और उनको त्रस-स्थावर जीवों की दया पालने का विकल्प आता है। मुनि के निमित्त पानी बनावे तो पानी की एक बूंद में असंख्य प्राणी मरते हैं, उस पानी को लेने वाला मुनि भ्रष्ट है। राग-द्वेष और अज्ञान रहित मार्ग निर्दोष मार्ग है। मुनि उद्देशिक आहार ले तो वह भ्रष्ट है और देने वाला भी मिथ्यात्व का दान देता है।

तथा मुनि को ज्ञान की शुद्धता होती है। मिथ्याज्ञान का अनुमोदन करे तो सम्यक्तता नहीं रहती। मिथ्यादृष्टि को क्षयोपशम बहुत हो, इससे वह लाखों मनुष्यों को जैन मार्ग में लगाता है - ऐसा लोग कहे; परन्तु उसका ज्ञान मिथ्या है। सम्यग्ज्ञानी भी मिथ्याज्ञानी के ज्ञान की प्रशंसा नहीं करता, फिर यह तो मुनि है। मुनि कभी भी मिथ्याज्ञान की प्रशंसा नहीं करते। मुनि खड़े-खड़े आहर लें - ऐसी विधि अन्यत्र कहीं नहीं है। जो शास्त्र ग्यारह अंग और चौदह पूर्व के (द्वादशांग के) धारी गणधरदेव को वस्त्र-पात्र सहित आहार लेने जाना कहते हैं वे कुशास्त्र हैं। उनकी अनुमोदना करने से मिथ्यात्व की पुष्टि होती है। सदोषता करना नहीं, कराना नहीं और अनुमोदना करना नहीं। सबको प्रसन्न रखना - यह मिथ्यामार्ग है। दुनिया तीनकाल

www.vitragvani.com

में कभी प्रसन्न नहीं होती। अनन्त तीर्थंकर हुए; परन्तु सभी (जीव) संसार तिर नहीं गये । मुनिराज कर पात्र मे निर्दोष आहर लेते हैं। चिदानन्द के निर्दोष पंथ में दोष के अभावरूप सम्यग्दर्शन और दोष के अभावरूप चारित्र मुद्रा कैसी होती है - उसकी बात यहाँ चलती है।

वस्त्र-पात्र सहित भोजन लेने जाना और भोजन को दो घड़ी रखना - यह ममता की तीव्रता है। फिर भी उसे मुनि माने तो मानने वाले की त्रस की स्थिति पूरी होने को आई है। सच्चे और झूठे का मिश्रण नहीं हो सकता। ऐसी दर्शन मूर्ति (निर्दोष मुनि मुद्रा) दर्शन और पूजन करने योग्य है। यदि मैं ऐसा मानूँगा तो पुत्र-पुत्रियों की सगाई-शादी नहीं होगी, हमारी प्रतिष्ठा नहीं रहेगी- ऐसा अज्ञानी कहता है। वीतराग मार्ग की रूचि वाले को वीतराग मुद्रा-वेश ही वंदन करने योग्य है। जो अन्य को मुनि मानता-मनाता है वह भ्रष्ट है। कोई स्थावरकल्पी को वस्त्र सहित और जिनकल्पी को वस्त्र रहित कहे, तो यह बात मिथ्या है। पाखण्ड वेष वंदन-पूजन योग्य नहीं है। जिसको राग रहित दृष्टि पूर्वक एकत्व स्वभाव की प्रतीति नहीं है तथा चारित्र नहीं है वह वंदन योग्य नहीं है- ऐसा सनातन मार्ग अनादि से चला आ रहा है।

प्रश्न :- ऐसे मार्ग का पता न हो तो क्या करे ?

समाधानः- पता नहीं हो और ज़हर खाले तो भी मरण हो जाता है। हरड़ के बदले संखिया पीले तो मर जायेगा; अतः अज्ञान बचाव नहीं हैं। राग रहित चिदानन्द मार्ग का पता नहीं और कहे कि 'मैं निर्दोष पंथ में हूँ'- ऐसा माने, मानवे और अनुमोदन करे उसको सम्यग्दर्शन की प्राप्ति नहीं होती। आत्मा का भान अर्थात् सम्यग्दर्शन होने से कल्याण-अकल्याण का पता पड़ता है। व्रत, तप करके, क्रियाकाण्ड करके मर जाए और बहुत शास्त्र पढ़कर पण्डित हो जाए तो यह सब (सम्यग्दर्शन के बिना) व्यर्थ है। सच्चें मार्ग की प्रतीति वाले को कल्याण-अकल्याण का निश्चय होता है। ऐसी प्रतीति से रहित वाले जीवों को कल्याण-अकल्याण का निश्चय नहीं होता।

दर्शनपाहुड़ गाथा - 15

आगे कहते हैं कि- इस सम्यग्दर्शनसे ही कल्याण-अकल्याण का निश्चय होता है:-

सम्मत्तादो णाणं णाणादो सव्वभावउवलद्धी।
उवलद्धपयत्थे पुण सेयासेयं वियाणेदि ।।15।।

सम्यक्त्वात् ज्ञानं ज्ञानात् सर्वभावोपलब्धिः।
उपलब्धपदार्थे पुनः श्रेयोऽश्रेयो विजानाति।।15।।

हिन्दी पद्यानुवादः

सम्यक्त्व से हो ज्ञान सम्यक् ज्ञान से सब जानना।
सब जानने से ज्ञान होता श्रेय अर अश्रेय का।।15।।

अर्थः- सम्यक्त्वसे तो ज्ञान सम्यक् होता है, तथा सम्यक्ज्ञान से सर्व पदार्थों की उपलब्धि अर्थात् प्राप्ति अर्थात् जानना होता है; तथा पदार्थों की उपलब्धि होने से श्रेय अर्थात् कल्याण अश्रेय अर्थात् अकल्याण- इन दोनों को जाना जाता है।

भावार्थः- सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान को मिथ्याज्ञान कहा है, इसलिये सम्यग्दर्शन होने पर ही सम्यग्ज्ञान होता है, और सम्यग्ज्ञान से जीवादि पदार्थों का स्वरूप यथार्थ जाना जाता है। तथा जब पदार्थों का यथार्थ स्वरूप जाना जाये तब भला-बुरा मार्ग जाना जाता है। इसप्रकार मार्ग के जानने में भी सम्यग्दर्शन ही प्रधान है।।15।।

गाथा- 15 पर प्रवचन

मुझे अभ्यंतर ज्ञानस्वभाव की प्रतीति है - ऐसा कहे और बाह्य मे वस्त्र सहित को मुनि माने वह मूढ़ है। मैं राग और व्यवहार से प्रथक् ज्ञानानन्द हूँ। जितना शुभ राग आता है वह अधर्म है। शुद्ध चिदानन्द स्वभाव की प्रतीति- ज्ञान और रमणता में धर्म है। जिसकी दृष्टि सच्ची होती है उसका ज्ञान सम्यक् होता है। जिसकी दृष्टि खोटी है उसका ज्ञान सम्यक् नहीं होता। सम्यक् ज्ञानी को सम्यग्ज्ञान से समस्त पदार्थों का ज्ञान होता है इस कारण वह कल्याण और अकल्याण को जान लेता है।

www.vitragvani.com

आत्मा शुद्ध चिदानन्द है, निमित्त और पुण्य-पाप से रहित है- ऐसी प्रतीति से सम्यक् ज्ञान होता है। जिसको सम्यग्ज्ञान होता है वह समस्त पदार्थों को यथार्थ जान लेता है। अजीव, आस्रव, बंध आदि पदार्थों को यथार्थ जान लेता है। तथा पदार्थों का बोध होने से कल्याण अथवा अकल्याण को जान लेता है। पुण्य-पाप से अकल्याण है, स्वभाव के आश्रय से होने वाले संवर, निर्जरा में कल्याण है- ऐसा धर्मात्मा जानता है। अज्ञानी को सम्यग्ज्ञान के बिना कल्याण और आचरण का पता नहीं है। छह ढाला में कहा है कि-

मुनिव्रतधार अनंत बार ग्रैवेयक उपजायो।
पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।।

सम्यग्दर्शन के बिना सब अज्ञान है। ग्यारह अंग, नवपूर्व का ज्ञान भी मिथ्याज्ञान है।

कोई कहे कि भले ही उनका वेष कुवेष हो और उनकी दृष्टि विपरीत हो, परन्तु वे हमे कुछ देते है न ? नहीं, उनसे तो विपरीतता मिलती है। जिसको देव-शास्त्र-गुरु के स्वरूप में भ्रम है वह तो मिथ्यादृष्टि है। विपरीत मान्यता और विपरीत ज्ञान के दोष से युक्त है।

कोई कहे कि 'भगवान कहते हैं वह सत्य है'- ऐसा माने तो हमें समकित होगा या नहीं ?

समाधान- नहीं, जिसको अपना पता नहीं है उसको सम्यग्दर्शन नहीं होता। सच्चे ज्ञान बिना प्रतीति सच्ची नहीं होती। सम्यग्दर्शन होने पर ही ज्ञान सम्यक् संज्ञा पाता है। सम्यग्ज्ञान से जीवादि नवतत्त्वों का पता पड़ता है। जीव ज्ञायक है, शरीर आदि अजीव हैं, हिंसा, झूठ, चोरी आदि पाप हैं, दया, दानादि परिणाम पुण्य हैं- दोनो आस्रव हैं, स्वभाव में एकाग्रता से संवर- निर्जरा होती है और पूर्ण एकाग्रता से मोक्ष होता है। इस प्रकार सम्यग्ज्ञान से जीवादि पदार्थों का स्वरूप जानने से भले - बुरे मार्ग का विवेक होता है। इसप्रकार मार्ग जानने में सम्यग्दर्शन प्रधान है।

www.vitragvani.com

आत्मा की पूर्ण पवित्रता के अभिलाषी जीव को जहाँ पवित्रता पड़ी है वहाँ दृष्टि करना चाहिये। प्राप्त की प्राप्ति होती है। जिसमें पवित्रता नहीं होती उसमें से पवित्रता नहीं आती। अपवित्रता का नाश करना है और पवित्रता प्रगट करना है। हमारे आत्मा की वर्तमान पर्याय में सदोषता है, उसका अभाव करके निर्दोषता प्रगट करना है। अन्दर (स्वभाव मे) निर्दोषता भरी है, पवित्रता भरी है उसमें से वह प्रगट होगी। क्या निर्दोषता शरीर में से आयेगी? शरीर और चेतन तो भिन्न-भिन्न वस्तुयें हैं। अपनी वस्तु पर में से नहीं आती। पर मे आत्मा नहीं है। निर्दोषता अथवा वीतरागता का अभिलाषी हो। अथवा दोष का अभाव करके आनन्द का अभिलाषी हो! तो वह आनन्द- पवित्रता कहाँ से आयेगी? अन्दर ध्रुवस्वभाव पवित्रता की मूर्ति भरा पड़ा है, अन्तर्मुख दृष्टि से उसकी प्रतीति होती है; पर की प्रतीति से निर्दोषता नहीं आती। जो सदोषता का अभाव करके निर्दोषता प्रगट करना चाहता है, तो (आत्म वस्तु) 'उत्पाद व्यय ध्रोव्य युक्तं सत्' है। अपना हित चाहने वाले को तीन बातें स्वीकार करना चाहिये।-

(1) मेरी अवस्था में पूर्ण सदोषता है और स्वभाव में पूर्ण निर्दोषता है।

(2) पूर्ण निर्दोषतारूप स्वभाव की प्रतीति करने से सदोषता की मर्यादा हो जाती है; मात्र-चारित्र दोष रहता है।

(3) जिसको हित करना है अर्थात् सुखी होना है और जो आनन्द प्रगट करना चाहता है इससे निश्चित होता है कि वर्तमान दशा में हित अथवा आनन्द नहीं है, अपितु पर्याय में सदोषता है। उसका नाश स्वभाव के आश्रय से होता है। ऐसा कहने वाले सर्वज्ञ कौन, मुनि कौन और शास्त्र कौनसे है? - इसकी खबर बिना धर्म नहीं होता।

आत्मा स्वतन्त्र है। 'है' उसका कोई कर्त्ता नहीं है। 'है' उसमें दो अंश हैं (1) त्रिकाल ध्रुव अंश है और (2) वर्तमान (पर्याय) अंश है।- ये दो अंश हैं। एक पलटता अंश है और दूसरा कायम रहने वाला सदृश अंश है। पलटने वाले अंश में दुःख है और वीतरागता लाना है। उस कायम अंश में पूर्ण निर्दोषता भरी है और

www.vitragvani.com

पर्याय मे पूर्ण दोष भरा है। पुण्य से हित है- ऐसी भ्रान्ति पूर्ण दोष है। आत्मा है वह कायम रहने वाला है या नही? 'है' उसका वर्तमान अंश है या नहीं ? कायम रहने वाला अंश और वर्तमान अंश- दोनो होकर सम्पूर्ण द्रव्य पूरा होता है। मैं शरीर, कर्म, पर नहीं हूँ; मैं आत्मा हूँ आदि- अन्त से रहित हूँ। मैं कायम रहकर अवस्था को पलटने वाला हूँ। पलटनेरूप अवस्था में दुःख न हो तो प्रगट आनन्द होना चाहिये; परन्तु प्रगट आनन्द नहीं है। अतः शान्ति के अभिलाषी को दया, दानादि मेरी चीज है- ऐसी भ्रान्ति छोड़ना चाहिये। मैं ज्ञायक, ध्रुव, पूर्ण निर्दोष हूँ पूर्ण स्वतन्त्र हूँ - ऐसा मेरा स्वभाव है। ऐसी दृष्टि करने पर सम्यग्दर्शन होता है। (स्वभाव में) पूर्ण निर्दोषता है- ऐसी प्रतीति हुई कि सदोषता मर्यादित हो गई। अभी सदोषता पूर्ण मिटी नहीं। मैं पूर्ण निर्दोष हूँ- ऐसी चैतन्य दृष्टि हुई कि सदोषता मर्यादित हो गई। मैं सदोष ही हूँ- ऐसी दृष्टि पूर्ण सदोष मिथ्यादृष्टि है। पर को निज मानने वाला तो पूर्ण सदोष है। आत्मा एक सैकेण्ड के असंख्यातवें भाग मे पूर्ण शुद्ध चिदानन्द है- ऐसी प्रतीति होने पर सदोषता मर्यादित रह जाती है। पर्याय में निर्दोषता कितनी है और कितनी सदोषता रह गई है- यह ख्याल में आता है। स्वभाव में स्थिरता से पूर्ण निर्दोषता प्रगट होती है और सदोषता का सम्पूर्ण नाश होता है- यह वीतरागता है।

Shree kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

दर्शनपाहुड़ गाथा - 16

आगे, कल्याण-अकल्याण को जानने से क्या होता है सो कहते हैं:-

सेयासेयविदण्हू उद्धुददुस्सील सीलवंतो वि।
सीलफलेणब्भुदयं तत्तो पुण लहइ णिव्वाणं।।16।।

श्रेयोऽश्रेयवेत्ता उद्धृतदुःशीलः शीलवानपि।
शीलफलेनाभ्युदयं ततः पुनः लभते निर्वाणम्।।16।।

हिन्दी पद्यानुवादः

श्रेयाश्रेय के परिज्ञान से दुःशील का परित्याग हो।
अर शील से हो अभ्युदय अर अन्त में निर्वाण हो।।6।।

अर्थः- कल्याण और अकल्याणमार्ग को जाननेवाला पुरुष "उद्धृतदुःशीलः" अर्थात् जिसने मिथ्यात्वस्वभाव को उड़ा दिया है- ऐसा होता है; तथा "शीलवानपि" अर्थात् सम्यक्स्वभावयुक्त भी होता है, तथा उस सम्यक्स्वभाव के फल से अभ्युदयको प्राप्त होता है,तीर्थंकरादि पद प्राप्त करता है, तथा अभ्युदय होने के पश्चात् निर्वाणको प्राप्त होता है।

भावार्थः- भरे-बुरे मार्ग को जानता है तब अनादि संसार से लगाकर जो मिथ्याभावरूप प्रकृति है वह पलटकर सम्यक्स्वभावस्वरूप प्रकृति होती है; उस प्रकृति से विशिष्ट पुण्यबंध करे तब अभ्युदयरूप तीर्थंकरादिकी पदवी प्राप्त करके निर्वाणको प्राप्त होता है।। 16 ।।

गाथा- 16 पर प्रवचन

अब कल्याण - अकल्याण को जानने से क्या होता है- यह कहते हैं।

कल्याण अथवा अकल्याण मार्ग जानने वाले पुरुष ने मिथ्यात्वभाव नष्ट कर दिया है। अपनी पर्याय में जितना विकार है वह अकल्याण है और मेरी पर्याय द्रव्य के साथ अभेद हुई वह प्रगट कल्याण है। पवित्रता का प्रगट होना पुरुषार्थ से होता है। स्वरूप में पूर्ण आनन्द भरा है- वैसी प्रतीति होते ही अल्प प्रगटरूप कल्याण प्रगट

www.vitragvani.com

हुआ और जितना राग-द्वेष शेष रहा वह अकल्याण है। शरीर, मन, वाणी अथवा पर में कल्याण या अकल्याण नहीं है। अपनी अवस्था में निर्मलता हुई वह कल्याण है और स्वभाव त्रिकाल कल्याण स्वरूप है।- ऐसी दृष्टि से मिथ्यात्व का नाश होता है। मैं पर की क्रिया कर सकता हूँ, दया, दान पूजादि से कल्याण होता है- ऐसी मान्यता भ्रान्ति है। परपदार्थ की अवस्था पर के कारण होती है-ऐसा न मानकर पर का पलटना अपने से मानना- यह असत्यदृष्टि, दुःखदृष्टि, मिथ्यादृष्टि है। मिथ्या माने असत्य, और असत्य माने दुःख। कल्याण-अकल्याण मार्ग जानने वाले को भ्रान्ति नहीं रहती। मैं पर का कुछ कर सकता हूँ, अथवा दया, दानादि के भाव से धर्म होता है- ऐसी भ्रान्ति उसको नहीं रहती। आत्मा सम्पूर्ण स्मृद्धि से भरपूर है। जैसे एक-एक छोटी पीपल में चौसठ पहरी चरपराहट भरी है; चौसठ अर्थात् परिपूर्ण चरपराहट और हरापना भरा है। उसी प्रकार प्रत्येक आत्मा का अन्तर स्वभाव पर से भिन्न है और पुण्य-पाप के भाव सदोष हैं। अहो! मेरा स्वभाव पूर्ण आनन्द से परिपूर्ण है। ऐसी प्रतीति वाले को राग से मेरा हित होगा- ऐसी भ्रान्ति का नाश हो जाता है। मैं एक समय में पूर्ण शुद्ध हूँ- ऐसे दृष्टिवंत को कल्याण के मार्ग की प्रतीति हुई, उसे कल्याण की खबर है। तथा जितना पुण्य-पापरूप राग भाव शेष है वह अकल्याण है। यह चौदह पूर्व और दिव्यध्वनि का सार है।

उक्त प्रतीति के बिना सच्चा फल नही आता। व्यवहार से-निमित्त से मेरा कल्याण होगा- ऐसी भ्रान्ति, वह अमर्यादित पाप है। यह मिथ्यात्व का अमर्यादित दोष है और चारित्र का दोष मर्यादित है। सम्यग्दृष्टि का हिंसा, झूठ, चोरी का दोष मर्यादित है- तुच्छ है। कल्याण को जानने वाले पुरुष ने मिथ्यात्व का मूल छेद दिया है। सदोषता पलटने वाली चीज है सो वह तो नष्ट होगी और ध्रुवस्वभाव कायम रहेगा। सदोषता अंश है, निर्दोष स्वभाव अंशी है। मैं सदोषता जितना नहीं हूँ। मैं तो पूर्ण शुद्ध आनन्दकन्द हूँ- ऐसी अन्तर दृष्टि से मिथ्यात्व का मूल से नाश होता है।

www.vitragvani.com

क्या आत्मा घर, परिवार, जाति, देश की सेवा कर सकता है? नहीं। शरीर तो पुद्गल द्रव्य है। ये बाल काले से सफेद हो गये, तो क्या सफेद लाने का भाव है? नहीं। (यह तो जड़ परमाणुओं का स्वतन्त्र परिणमन है।)

सम्यग्दृष्टि ने मिथ्यात्वभाव को उड़ा दिया है। पैसे से आनन्द है, दया, दान, व्रत के शुभराग से शान्ति मिलेगी- यह असत्य स्वभाव है, पापदृष्टि स्वभाव है, दुःखदायक स्वभाव है। इसका सम्यग्दृष्टि नाश करता है। वर्तमान दशा में क्षणिक विकार है, उसकी काल से मर्यादा है; परन्तु भाव से मर्यादा नहीं। दया, दानादि जितना मैं हूँ, मुझे संयोग से लाभ होगा- ऐसी पाप बुद्धि-पाखण्ड बुद्धि वह बेहद्- अमर्यादित है। धर्मात्मा उसके नाश का उपाय जानता है। ऐसा विवेक करने वाले को कल्याण का भान है, अल्पराग शेष है उसका भान है और उसे आगे बढ़कर पूर्ण दशा होगी।

मिथ्यात्व भाव बुरा है। आत्मा एक समय में पूर्ण आनन्दकन्द स्वभाव है। उसकी प्रतीति बिना जीव विकार को अच्छा मानता है। समाज और देश के कार्य करना चाहिये- ऐसा मानता है। वे पदार्थ तो उनके कारण पलटते हैं। जो 'है' उसको बनाने वाला अन्य नहीं है, जो 'है' उसको पलटाने वाला अन्य नहीं है। अज्ञानी कहता है कि अकेले अपना पेट तो कुत्ता भी भरता है; परन्तु अन्य का करे तो अच्छा कहलाये? समाधान यह है कि- क्या तू पर का कुछ कर सकता है? जो 'है' उसका तू क्या कर सकता है? जिसको, मैं पर का कुछ कर सकता हूँ- ऐसी दृष्टि छूट गई है और मैं अपने स्वभाव का कर सकता हूँ- ऐसी सच्ची दृष्टि हुई है वह दौलत है। पर पदार्थ हितकर अथवा अहितकर नहीं है। मेरी पर्याय में राग-द्वेष होता है वही अहितकर है और मेरा स्वभाव हितकर है।

इसप्रकार जिसको स्वभाव का पता मिला है- अनुभव हुआ- ऐसे सम्यग्दृष्टि को शुभराग आ जाए तो उसे तीर्थंकर नामकर्म आदि उच्च पदवी बंध जाती है। मिथ्यादृष्टि की दृष्टि असत्य है, वह कितने ही दया, दान और भक्ति आदि के परिणाम करे; परन्तु सम्यग्दर्शन बिना उसको तीर्थंकर नामकर्म नहीं बंधता। जिसने

www.vitragvani.com

मार्ग का परिज्ञान किया है- ऐसे जीव को शुभराग से इन्द्रपद अथवा तीर्थंकरपद की प्राप्ति हो जाती है। पुण्य की रुचि वाले को ऐसा पुण्य नही बंधता। उसको ऐसी पदवियां नहीं मिलती। मैं शुद्ध चैतन्य मूर्ति आनन्दकन्द हूँ- ऐसे भान वाले को अल्पराग है, उसके बंधन में (फल में) अच्छी पदवियां मिलती है। उसका कोई भव बिगड़ता नहीं है। सम्यग्दृष्टि को ही तीर्थंकरपद, इन्द्रपद प्राप्त होते हैं। जिसको स्वभाव का भान नहीं हैं- ऐसे मिथ्यादृष्टि को बाह्य उत्कृष्ट पद भी नहीं मिलते। ज्ञानी के मिथ्यात्व का व्यय और सम्यग्दर्शन का उत्पाद हुआ है; परन्तु अभी राग शेष है, सर्वथा वीतराग नहीं हुआ है- ऐसे धर्मात्मा को तीर्थंकर, चक्रवती, बलभद्र आदि पद प्राप्त होते हैं।

तत्पश्चात् सम्यग्दृष्टि को निर्वाण पद की प्राप्ति होगी। उसको राग मे रुचि नहीं है, इसकारण राग के फल में भी रुचि नहीं हैं। उसको केवलज्ञान होगा। उसे नरक अथवा निगोद में नहीं जाना पड़ेगा। आत्मा के भान बिना अज्ञानी को शुभभाव से स्वर्गादि मिले; परन्तु तत्पश्चात् वह नरक अथवा निगोद में जायेगा। सम्यग्दृष्टि को अल्पराग शेष है, इस कारण ऊँची पदवी प्राप्त करेगा। मिथ्यादृष्टि को पुण्य के कारण कदाचित स्वर्ग मिले तो भी वह क्रमशः नरक और निगोद में जायेगा। धर्मात्मा को शुभराग के फल में देवादिक की प्राप्ति होगी। वह उन पदों पर से लक्ष्य हटाकर स्वभाव में स्थिरता करके केवलज्ञान प्राप्त करेगा। मिथ्यादृष्टि के पुण्य के पीछे (परम्परा में) नरक और निगोद है। कारण कि उसे जिसमें से शान्ति मिलती है ऐसे स्वभाव की रुचि नहीं है और पुण्य-पाप व निमित्त की रुचि-बहिर्मुख रुचि है, उसका फल नरक-निगोद है। तथा स्वभाव की अन्तर्मुख रुचि का फल मोक्ष है। वर्तमान पर्याय दोष सहित है। निर्दोषता प्रगट करने का उपाय सच्ची द्रव्यदृष्टि करना है। उसके (द्रव्यस्वभाव के) आश्रय से सम्यग्दर्शन का उत्पाद और मिथ्यात्व का नाश होता है। अल्पराग शेष रहे उसके फल में देवादिक की प्राप्ति होने के बाद मोक्ष है।

www.vitragvani.com

जैसे एक सेठानी नौकर की अनुपस्थिति में धान्य (छिलके सहित चावल) को कूट रही थी, उसे एक बाई ने देखा; परन्तु उसने मात्र ऊपर का छिलका देखा, अन्दर का चावल नहीं देखा। इससे उसे लगा कि सेठानी छिलके को कूटती है, अतः अवश्य ही इनमें कुछ माल होगा। ऐसा विचार कर वह भी छिलके कूटने लगी; परन्तु चावल की प्राप्ति नहीं हुई। उसीप्रकार ज्ञानी की दृष्टि अन्तर ध्रुवस्वभाव पर पड़ी है; परन्तु वीतरागता न होवे वहाँ तक उसको बाह्य में शुभराग आता है। अज्ञानी उसे छिलके की तरह देखता है। धर्मात्मा पूजा, भक्ति करता है- ऐसा देखता है वह छिलके देखता है। ज्ञानी, को 'राग रहित मेरा स्वभाव है'- ऐसी दृष्टि को वह नहीं देखता। अज्ञानी ज्ञानी के शुभराग की नकल करता है। भगवान ने भी उपवास किये थे, अतः मुझे भी करना; वहाँ ज्ञानी को शुभराग आता है अज्ञानी उसका अनुसरण तो करता है; परन्तु राग रहित स्वभाव का उसको पता नहीं है।

एक व्यापारी ने मात्र छिलके की बोरियाँ गौदाम में भरकर सच्चे माल का प्रदर्शन किया। ऐसा करके उस व्यापारी ने बाजार से रूपये उधार लिये और बाद में भग गया, जिससे व्यापारियों के रूपये डूब गये। उसीप्रकार अज्ञानी बाहर की क्रिया देखता है और अन्दर का माल नहीं देखता। इसकारण वह चार गतियों में डूबता है। ज्ञानी के मिथ्यात्व का अभाव है, स्वभाव का भान है, अल्पराग शेष है; उसके फल में देवादिक की प्राप्ति होती है और तत्पश्चात् उसको क्रमशः मोक्ष होगा।

जब भले-बुरे मार्ग का परिज्ञान होता है तब अनादि संसार में (प्रवर्तमान) मिथ्यात्व भाव पलटकर सम्यग्दर्शन हो जाता है, सम्यक् स्वभाव की पहिचान होती है। उसकी भूमिका में अवशेष रागांश से विशेष पुण्य बंधता है। इसकारण अभ्युदय पदवी - तीर्थंकर आदि को प्राप्त करके निर्वाण प्राप्त करता है।

दर्शनपाहुड़ गाथा-17

आगे कहते हैं कि ऐसा सम्यक्त्व जिनवचन से प्राप्त होता है इसलिये वे ही सर्वदुःखों को हरनेवाले हैं:-

जिणवयणमोसहमिणं विसयसुहविरेयणं अभिदभूदं।
जरमरणवाहिहरणं खयकरणं सव्वदुक्खाणं ।।17।।

जिनवचनमौषधमिदं विषयसुखविरेचनममृतभूतम्।
जरामरणव्याधिहरणंक्षयकरणं सर्वदुःखानाम् ।।17।।

हिन्दी पद्यानुवादः

जिनवचन अमृत औषधी जरमरणव्याधि के हरण।
अर विषयसुख के विरेचक हैं सर्वदुख के क्षयकरण ।।17।।

अर्थः- यह जिनवचन हैं सो औषधि हैं। कैसी औषधि हैं?- कि इन्द्रिय विषयों में जो सुख माना है उसका विरेचन अर्थात् दूर करनेवाले हैं। तथा कैसे हैं- अमृतभूत अर्थात अमृत समान हैं और इसीलिये जरामरणरूप रोग को हरने वाले हैं, तथा सर्वदुःखोका क्षय करने वाले हैं।

भावार्थः- इस संसार में प्राणी विषयसुखोंका सेवन करते हैं जिनसे कर्म बंधते हैं और उससे जन्म-जरा-मरणरूप रोगों से पीड़ित होते है; वहाँ जिनवचनरूप औषधि ऐसी है जो विषयसुखोंसे अरुचि उत्पन्न करके उनका विरेचन करती है। जैसे गरिष्ठ आहर से जब मल बढ़ता है तब ज्वरादि रोग उत्पन्न होते हैं और तब उसके विरेचन को हरड़ आदि औषधि उपकारी होती है उसी प्रकार उपकारी हैं। उन विषयोंसे वैराग्य होनेपर कर्मबन्ध नहीं होता और तब जन्म-जरा-मरण रोग नहीं होते तथा संसारके दुःखका अभाव होता है। इसप्रकार जिनवचनोंको अमृत समान मानकर अंगीकार करना ।।17।।

गाथा 17 पर प्रवचन

अब कहते हैं कि ऐसा सम्यग्दर्शन जिनवचन से मिलता है। इसलिये जिनवचन सर्व दुःख के नाश का कारण है।

'राग करो'- ऐसी वीतराग की वाणी नहीं होती। जो पूर्ण वीतराग हुए हैं- ऐसे सर्वज्ञ की वाणी में, 'राग करो अथवा राग से लाभ मानो'- ऐसा नहीं आता। जिनने सरागता का नाश करके वीतरागता उत्पन्न की है, उनकी वाणी में तो वीतरागता कैसे

www.vitragvani.com

प्राप्त हो-यह बात आती है। जो यह मानता है कि 'मुझे राग से लाभ होगा' उसे वीतराग और वीतराग की वाणी का पता नहीं है। कोई कहे कि व्यवहार करते-करते धर्म होगा- तो यह बात मिथ्या है। जो भी वीतराग हुए वे व्यवहार को छोड़कर वीतराग हुए हैं। भगवान को दया, दानादि का विकल्प नहीं हैं। उनको राग का अभाव करके एकसमय में तीनकाल-तीनलोक को जाने- ऐसा ज्ञान प्रगट हुआ है। स्वभाव सन्मुख दृष्टि और स्थिरता से केवलज्ञान प्रगट हुआ है। निमित्त और राग से केवलज्ञान प्रगट नहीं हुआ। ऐसा जिस उपदेश में आया वह जिनवचन कैसा होता है? विभाव की उपेक्षा करके स्वभाव की अपेक्षा पूर्वक वीतरागता प्रगट कराने का उपदेश जिनवाणी में आता है।

सर्वज्ञ देवाधिदेव जिनपरमेश्वर ने सर्वज्ञपद की प्राप्ति की है। उनके वचन औषधि है। उनकी वाणी में वीतरागता आती है। स्वभाव सन्मुखता का झुकाव तथा विभाव की उपेक्षा की बात आती है। दर्शनप्राभृत अर्थात् दर्शनसार में यह बात ली है। भगवान के उपदेश में ऐसा आया कि व्यवहार की रुचि छोड़कर, विभाव की उपेक्षा कर और स्वभाव की अपेक्षा कर! शुद्ध स्वभाव का होना और अशुद्धता का न होना अनेकान्त है। ऐसी वाणी से देव-शास्त्र-गुरु की परीक्षा की जाती है। जैसे आर्य मनुष्य माँस खाने को नहीं कहता; वैसे ही वीतरागदेव राग करने को नहीं कहते। मेरा सर्वज्ञपद अन्तर में से आया है। बहिर्मुख रुचि बहिर्मुख अस्थिरता छोड़ने से सर्वज्ञता प्रगट होती है।

जो स्वभाव की सन्मुखता और विभाव से विमुखता करो- ऐसा कहे वे जिनवचन हैं।

आत्मभ्रान्ति समरोग नहीं, सद्गुरु वैद्य सुजान।
गुरु आज्ञा सम पथ्य नहीं, औषध विचार ध्यान।।

श्रीमद् राजचन्द्र- आत्मसिद्धि-काव्य

ज्ञान और ध्यान औषधि है। किसी भी अनुयोग में ऐसा कथन नहीं मिलता है कि निमित्त से अथवा राग से लाभ होता है- ऐसा जैन वचन नहीं है। मुझे वीतराग पद चाहिये, तो वीतराग ने क्या कहा? जिनवाणी में वीतरागता आई है। चारित्र में वीतरागता है और मुद्रा में वीतरागता है।

www.vitragvani.com

जिसके फल में इन्द्रियों के विषय मिलते हैं वह राग है, उसे छुड़ाते हैं। उस फल में तथा उसके कारणरूप राग में सुख नहीं है- ऐसा जिनवचन कहते हैं। ***भगवान को देखना वह इन्द्रिय विषय है; इससे शुभराग बंधता है और उसके फल में इन्द्रियों के विषय मिलते हैं।*** सम्यग्दृष्टि को विषयों में सुख बुद्धि नहीं हैं। सुख आत्मा में है, राग में सुख नहीं है- ऐसा वह मानता है। अनन्त आत्मायें, अनन्त परमाणु आदि अनन्त पदार्थ हैं। वे सब अपने-अपने कारण पलटते हैं- जिसको ऐसा भान नहीं है वह वैरागी नहीं है। प्रत्येक आत्मा परिपूर्ण है- ऐसे भान बिना ध्यान नहीं होता । 'सब मिलकर एक आत्मा हैं'- ऐसा मानने वाला ध्यान करे उसका ध्यान अपने में नहीं रहा। तथा जिसके अभिप्राय में भगवान ज्ञाता-दृष्टा नहीं रहा, बल्कि कर्त्ता-हर्त्ता हुआ- ऐसा माने तो वस्तु कायम नहीं रही और वस्तु अक्रत्रिम नहीं हुई- ऐसा मानने वाले को ध्यान नहीं होता।

अभी दया, दानादि करुँ तो स्वर्ग में जाऊँगा और वहाँ से भगवान के पास जाऊँगा- ऐसा अज्ञानी कहता है। भाई! शुभराग धर्म नहीं है, शुभराग रहित आत्मा के भान बिना धर्म नहीं होता। जैसे रोगी मनुष्य को सर्वप्रथम निरोग होना चाहिये, भले ही कमज़ोरी होवे; उसीप्रकार सर्वप्रथम राग और राग के फलरूप विषयों की रुचि छोड़। उनमें सुख बुद्धि छोड़! तीर्थंकरपद और इन्द्रपद की रुचि छोड़! इसप्रकार राग की रुचिरूप मिथ्यात्व की रुचि छुड़ाते हैं। जैसे जमाल गोठा का जुलाब दे तो रोग नष्ट होता है; उसीप्रकार आत्मा का भान ही मिथ्यात्व के रोग के नाश का उपाय है- ऐसा यहाँ बताते हैं।

सर्वज्ञ भगवान के वचन कैसे होते हैं? वीतराग की वाणी भवरोग की औषधि है। वाणी तो निमित्त है, वाणी का आशय वह औषध है। प्रत्येक भगवान आत्मा परिपूर्ण प्रभु है, ईश्वर है। उसकी पर्याय में अन ईश्वरता दिखती है वह नित्य स्वभाव नहीं है। कायम पद ध्रुवस्वभाव है- उसकी दृष्टि और लीनता करने से दुःख का नाश होता है- (यह वीतराग वाणी का आशय है) परसन्मुख होने से शुभाशुभ वृत्तियाँ उठती है, उनका वीतराग वाणी नाश कराती है। वीतराग वाणी का आशय परिपूर्ण स्वभाव की सन्मुखता कराने का है। वीतराग वाणी लौकिक सुख का विरेचन अथवा जमाल गोठा (जुलाब) है। महाव्रतादि का राग दूर करो- ऐसा यह वाणी कहती है। चिदानन्द स्वभाव पूर्णशक्ति से सम्पन्न है- ऐसा कहती है। यहाँ तू अपना ईश्वर स्वयं है, उसकी

www.vitragvani.com

दृष्टि करके पुण्य-पाप की अनीश्वरता का नाश करना है। वीतराग कहते हैं कि पुण्य-पाप छोड़ने योग्य है और स्वभाव ग्रहण करने योग्य है। तेरी परमेश्वरता कहाँ से प्रगट होगी? अन्दर परमेश्वर स्वभाव है उसके सन्मुख झुकाव करके पुण्य-पाप का अभाव करने से प्रगट होगी- ऐसा वीतराग वाणी का आशय है।

वीतराग के वचन कायर को प्रतिकूल लगते हैं-

वचनामृत वीतराग के, परमशान्त रस मूल।
औषध जो भवरोग के, कायर को प्रतिकूल।। श्रीमद् राजचन्द्रजी

वीतराग के वचन कायर को प्रतिकूल है। पर सन्मुख को रुचि वाले और पुण्य की रुचि वाले को वीतराग की वाणी प्रतिकूल लगती है। क्या देव से भी लाभ नहीं होता। तो क्या करना? अन्तर स्वभाव की दृष्टि और लीनता करो! भगवान से भी कुछ लाभ नहीं है।

प्रश्नः- यदि आप ऐसा कहोगे लोग भगवान की पूजा छोड़ देंगे?

समाधानः- भाई! कोई पर का कुछ नहीं करता। मन्दिर में जाने से शुभराग नहीं होता, तू शुभराग करे तो मन्दिर को निमित्त कहते हैं। तथा शुभराग धर्म नहीं है। अरे! वीतराग के वचन जमाल गोठा (जुलाब- विरेचन) के समान है। जीव को पुण्य से और संयोग से लाभ मानकर कब्जियत हो गई है, चैतन्य स्वभाव को कब्ज कर दिया है। उसके लिये वीतराग के वचन जुलाब के समान है, भवरोग के औषध हैं। भव में देव और मनुष्य भव को रद्द नहीं किया है। अतः भव और उसके कारण की रुचि छोड़! - ऐसा वाणी कहती है। जिस भाव से तीर्थंकर नामकर्म बंधता है उस भाव की भी रुचि छोड़! तीर्थंकरों ने राग करने का निषेध किया है; तो 'मेरे प्रति भी राग तुझे कैसे हितकर होगा'- ऐसा श्रीमद् राजचन्द्रजी कहते हैं। वीतराग की वाणी तो राग की मंदता का विरेचन कराने वाली है। उसका आशय है कि अरागी द्रव्यस्वभाव का संग करो और रागादि का संग छोड़ो! पर द्रव्य की सन्मुखता के झुकाव का विरेचन करने वाली वाणी है। यह वाणी कायर को प्रतिकूल लगती है। निमित्त और राग है; परन्तु उसका सम्बन्ध छोड़! स्वभाव का सम्बन्ध जोड़ और रागादि का सम्बन्ध तोड़! - ऐसा वीतराग की वाणी कहती है। जैसे जीवादि गमन करते हैं तो उसमें धर्म द्रव्य निमित्त है; उसमें जीवादि की पराधीनता नहीं है। उसीप्रकार जीव सम्यग्दर्शन प्रगट करे तो ज्ञानी निमित्त होते हैं; परन्तु इससे पराधीनता नहीं है।

www.vitragvani.com

वीतराग के वचन अमृत स्वरूप है तथा जन्म-जरा-मृत्यु को हरने वाले हैं।

वीतराग के वचन अमृत समान है। तू अपने स्वभाव की श्रद्धा कर! 'वचनामृत वीतराग के'- ऐसा कहा है न! वहाँ वचनों में अमृत नहीं है; किन्तु वे वचन आनन्दकन्द आत्मा को बताते हैं, इससे उनको अमृतस्वरूप कहा है। वहाँ यदि उनका आशय समझे तो वचनरूप निमित्त को अमृत कहा जाता है। उससे चिदानन्द ज्योति आत्मा जीवित रहता है। उसकी सन्मुखता के झुकाव से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट होंगे।

कोई कहे- सब व्यवहार छोड़ देंगे?

समाधानः- भाई! व्यवहार के अभाव से वीतराग होता है। आत्मा अमृत स्वरूप है, जन्म-जरा-मृत्यु का नाशक है, संसार के दुःखों का नाश करने वाला है। पैसे में, इन्द्रपद में सुख है- ऐसी कल्पना का नाश करता है। विषयों और लक्ष्मी की परसन्मुख कल्पना में दुःख है। जिनवचन संसार का सुख रखने को नहीं कहते। अहो! जिस भाव से तीर्थंकर पद मिले उसे भी छोड़!- ऐसा कहने वाले जिनेन्द्र कैसे होंगे? उसकी प्रतीति दर्शन है यह बताते हैं।

आत्मा की विकारी दशा संसार है। उसमें प्राणी विषय सुख का सेवन करता है। उससे कर्म बंधते हैं और जीव जन्म-जरा-मरणरूप रोग से पीड़ित होता है। जिनवचन कहते हैं कि तेरे हित का पद तुझमें है। किन्तु ऐसा नहीं कहते कि पुण्य से तुझे मार्ग मिलेगा और फिर तू धर्म करेगा। इसकारण जिनवचन जुलाब के समान है। जिसप्रकार मिष्ठान्न खाने से मल बढ़ता है और ज्वर रोग आदि होता है, उसके लिये हरड़ औषधि के समान है। जीव को अनादिकाल से संयोग और विकार की रुचि से मिथ्यात्वरूपी मल जमा है। वीतराग की वाणी उस मिथ्यात्वरूपी मल को निकालती है, विषयों से वैराग्य कराती है। इसकारण जीव को कर्मबंध नहीं होता, तब (जीव) जन्म, जरा, मरणरूप रोग का नाश करता है, इसकारण संसार के दुःख का नाश होता है। इसतरह जिनवचन अमृत समान है अतः उनको अंगीकार करना।

Shree kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

दर्शनपाहुड़ गाथा-18

आगे, जिनवचन में दर्शनका लिंग अर्थात् भेष कितने प्रकार का कहा है सो कहते हैं:-

एगं जिणस्स रूवं विदियं उक्किट्ठसावयाणं तु।
अवरट्ठियाण तइयं चउत्थ पुण लिंगदंसण णत्थि।।18।।

एकं जिनस्य रूपं द्वितीयं उत्कृष्ट श्रावकाणां तु।
अवरस्थितानां तृतीयं चतुर्थ पुनः लिंगदर्शनं नास्ति।।18।।

हिन्दी पद्यानुवादः

एक जिनवर लिंग है उत्कृष्ट श्रावक दूसरा।
अर कोई चौथा है नहीं, पर आर्यिका का तीसरा।।18।।

अर्थः- दर्शन में एक तो जिनका स्वरूप है; वहाँ जैसा लिंग जिनदेवने धारण किया वही लिंग है; तथा दूसरा उत्कृष्ट श्रावकों का लिंग है और तीसरा 'अवरस्थित' अर्थात् जघन्यपद में स्थित ऐसी आर्यिकाओं का लिंग है; तथा चौथा लिंग दर्शनमें है नहीं।

भावार्थः- जिनमतमें तीनों लिंग अर्थात् भेष कहते हैं। एक तो वह है जो यथाजातरूप जिनदवने धारण किया; तथा दूसरा ग्यारहवीं प्रतिमा के धारी उत्कृष्ट श्रावकका है, और तीसरा स्त्री आर्यिका हो उसका है। इसके सिवा चौथा अन्य प्रकार का भेष जिनमत में नहीं है। जो मानते हैं वे मूलसंघसे बाहर हैं।।18।।

गाथा- 18 पर प्रवचन

अब वीतराग वचन में चारित्र में बाह्य वेष कैसे होते हैं उनकी बात करते हैं। जिनवचन अमृत स्वरूप है उसमें लिंग (चारित्रदशा के वेष) बताते हैं। आत्मा की सावधानी से साधन करते हैं और विशेष सावधानी होने पर बाह्य लिंग कैसे होते हैं उनकी बात करते हैं। यहाँ तीन लिंगों की बात करते हैं; क्योंकि चौथा लिंग जैनदर्शन में मान्य नहीं है। राग की उपेक्षा करके स्वभाव की अपेक्षा करने वाले मुनि को राग घट जाता है- एक तो उनका लिंग, तथा श्रावक और आर्यिका का लिंग कैसा होता ?- उसकी बात चलती है। अकेला वेष ले लेना, वह द्रव्यलिंग सच्चा नहीं है; उसकी यहाँ बात नहीं है। बाह्य द्रव्यलिंग सच्चा हो; परन्तु अन्तर स्वभाव का भान नहीं तो उस

www.vitragvani.com

(द्रव्यलिंग को) निमित्त नहीं कहते। यहाँ निमित्त का ज्ञान कराते हैं। जैसे जीव-पुद्गल गति करते हैं तो धर्मद्रव्य निमित्त होता है; उसीप्रकार जिनमार्ग में (अन्तर वीतरागता के साथ) कैसा लिंग निमित्त होता है उसकी बात करते हैं। वीतराग की वाणी में और ज्ञान में तीन लिंगों का हुकम है। मुनि, आर्यिका और उत्कृष्ट श्रावक-इन तीन लिगों की बात करते हैं। वीतराग की वाणी दुःख का नाश कराने वाली और सुख की उत्पत्ति कराने वाली है। उनकी वाणी में जिस वेष की बात आई उसकी बात यहाँ करते हैं। वे लिंग इस प्रकार हैः-

1. सम्यग्दर्शन पूर्वक मुनि की नग्नदशा- यह प्रथम लिंग है।

जैन कोई सम्प्रदाय नहीं है। आत्मा एकसमय में अमृत ज्ञानस्वरूप प्रभु है। (जैन धर्म में) उसकी अपेक्षा कराकर विकल्प की उपेक्षा कराते हैं। बंध का कारण छोड़ना अथवा विकल्प छोड़ना- यह एक ही बात है। वीतराग के ज्ञान में और वाणी में तीन वेष आये हैं। सम्यग्दृष्टि को मान्य हो तो वह मुनि का लिंग वस्त्र-पात्र रहित होता है। वस्त्र-पात्र सग्रंथता को बताते हैं, वे राग को दर्शाते हैं, उसे पवित्र दशा नहीं है। तत्वज्ञान पूर्वक राग रहित दशा में नग्न लिंग होता है, नग्न मुनि- यही वेष है। बाह्य नग्नमात्र हो तो यह भी काम का नहीं है। सम्यग्दर्शन सहित भले ही संसार में हो, तत्त्वदृष्टिवंत श्रावक हो, वह भी मोक्षमार्गी है। परन्तु बाह्य नग्नदशा धारण करके जो अन्तर में राग से लाभ मानता है और निमित्त से कार्य मानता है वह मोही है, संसारमार्गी है। जो वस्त्र-पात्र से मुनिपना मानता है वह वीतराग मार्ग से बाहर है। श्रीमद् राजचन्द्रजी ने इस मोक्षमार्गप्रकाशक और अष्टपाहुड़ ग्रन्थ को सत्शास्त्र कहा है। इनसे विरूद्ध (प्रतिपादन करने वाले) असत् शास्त्र हैं। जो वस्त्र सहित मुनिपना प्रतिपादित करते हैं वे असत् शास्त्र हैं। मुनि की मुद्रा वीतराग होती है। उनके वीतराग दृष्टि पूर्वक अरागदशा देखने में आती है। वह जिनलिंग मान्य है। मुनि होकर लंगोटी रखे तो जैनमार्ग से विरूद्ध है, मिथ्यादृष्टि है। मुनिपने में 'नग्नदशारूप' लिंग होता है। ऐसा ही निमित्त होता है। निमित्त को बनाना नहीं पड़ता। अन्तर दृष्टिपूर्वक स्थिरता होने पर नग्नदशा हो जाती है, बनाना नहीं पड़ती। परन्तु आत्मा के भान के अभाव में अपने को मुनि मानने वाला मिथ्यादृष्टि है। एक वस्त्र का तार भी रखे तो

www.vitragvani.com

वह चारित्रवंत- मुनि नहीं है। और जो चारित्र नहीं होने पर भी चारित्र मानता है वह मिथ्यादृष्टि है।

अन्य आगम में मुनि के उपकरण, वस्त्र-पात्र मॉने हैं, वह आगम नहीं है; अपितु कल्पित रचना है। गुरुपद संवर-निर्जरा में आता है और देवपद मोक्ष तत्त्व में आता है। इसप्रकार देव-गुरु के स्वरूप का पता नहीं है और कहे कि मुझे नवतत्त्व की श्रद्धा है, ज्ञान है; तो यह बात मिथ्या है। अहो! भगवान के वचन अमृत समान है। राग घटकर चारित्रदशा हुई है वह वस्त्र रखे और दण्ड रखे- यह वीतराग की आज्ञा नहीं है। वह तो सर्वज्ञ की आज्ञा से बाहर है। जिसको अन्तर में संवर-निर्जरारूप दशा और अत्यन्त राग रहित दशा हुई हो और उसके वस्त्र-पात्र होवे तो वह चारित्रवंत नहीं है। वह 'णमो लोए सव्व साहूणं' में नहीं आता। वह तो मिथ्यादृष्टि है।

2. सम्यग्दर्शन पूर्वक ग्यारहवीं प्रतिमाधारी श्रावक- यह दूसरा लिंग है।

दूसरा लिंग ग्यारह प्रतिमाधारी क्षुल्लक, ऐलक उत्कृष्ट श्रावक का है। उन्हें अन्तर भान है कि मैं वस्त्र का कर्त्ता नहीं हूँ। स्वभाव सन्मुख होकर पंचमगुणस्थानरूप दशा में उग्र दशा होने पर उनके पास लंगोटी अथवा खण्ड वस्त्र रहता है। आत्म भान वाले उत्कृष्ट श्रावक को बाह्य में ऐसा होता है- यह दूसरा लिंग है।

3. सम्यग्दर्शन पूर्वक आर्यिका- यह तीसरा लिंग है।

तीसरा लिंग आर्यिका का है। वे पंचम गुणस्थान में हैं। स्त्री को छठवाँ गुणस्थान त्रिकाल में भी नहीं होता। स्त्री को साधुपना अथवा केवलज्ञानपना नहीं होता। यदि कोई स्त्री को सातवाँ गुणस्थान कहे तो यह बात मिथ्या है। अज्ञानी कहता है कि स्त्री की देह वालों को करणानुयोग की अपेक्षा सातवाँ गुणस्थान आता है, तो यह बात सत्य नहीं है। स्त्री को पाँचवें से अधिक गुणस्थान नहीं आता। स्त्री, 'णमो लोए सव्व साहूणं' में नहीं आती। तथा बाह्य नग्नदशा वाले बाबा (अन्यमती साधु आदि) हों तो वे मिथ्यादृष्टि हैं। तथा कोई दो प्रकार के मुनि कहते है- (1) वस्त्र-पात्र सहित स्थावर कल्पी और (2) वस्त्र रहित जिनकल्पी- ऐसा कहते हैं। यह बात भी सत्य नहीं है। समस्त मुनि नग्न ही होते हैं। वस्तुतः समुदाय में रहें वे स्थावर कल्पी और अकेले नग्न रहें वे जिनकल्पी- ऐसा उसका अर्थ है। चारित्र दशा धारण करे तब नग्न ही

www.vitragvani.com

लिंग होता है। यहाँ तो आर्यिका की बात चल रही है। श्राविका चौथे, पाँचवें गुणस्थान में आती है; परन्तु आर्यिका को वेष (लिंग) गिनने में आता है। आर्यिका उत्कृष्ट त्यागरूप वेष के अन्तर्गत आती हैं। तथा स्त्री के आत्मा की योग्यता पंचम गुणस्थान से अधिक की नहीं होती। वह योग्यता कोई शरीर के कारण नहीं है; परन्तु उसके परिणाम की योग्यता ही ऐसी होती है।

बाह्य में पुरूष का शरीर हो और अन्दर में स्त्रीवेद का उदय हो तो उसका अभाव करके केवलज्ञान भी प्रगट कर सकता है; परन्तु बाह्य में स्त्री का शरीर हो तो मुनिपना भी प्रगट नहीं कर सकता। उनको तो पंचम गुणस्थान तक की ही दशा आती है।

जिनमुद्रा में मूल मुद्रा मुनि की है उससे नीचे (ऐलक) क्षुल्लक और आर्यिका- ये दो लिंग बताकर कुल तीन लिंग बताये। चौथा लिंग संयमधर के रूप में जैनदर्शन में नहीं है। स्वभाव के उग्र साधकरूप में अथवा राग के अभावरूप दशा में निमित्तरूप से तीन लिंग होते हैं- ऐसी वस्तुस्थिति है। यह कोई पक्ष की बात नहीं है। अरे! जिनवचन विरेचन के समान है। मिथ्या कथन की पकड़ है वह छोड़! कुलिंग में साधुपना और उग्र (उत्कृष्ट) श्रावकपना आवे- ऐसा नहीं होता। बाहर में लाल वस्त्र रखकर अपने को साधु मानने वाला मिथ्यादृष्टि है। वह तो मिथ्यात्व को ही साधता है।

वीतराग का अभिप्राय जिनमत है। वीतराग दृष्टि पूर्वक वीतराग चारित्र जिनमत में हैं। उसके तीन लिंग है-

(1) जैसा माता के गर्भ से जन्मा वैसा नग्न वेष होता है। मोर पिच्छी अपवादिक उपकरण हैं। श्रीमद् राजचन्द्रजी कहते हैः-

सर्वज्ञ के शासन में अट्ठाईस मूलगुणों में अदंत-धोवन आता है-

मात्र देह संयम का हेतु होती है। जैसा माता ने जन्म दिया वैसा यथाजात होता है। इससे विपरीत मानने वाला भ्रष्ट है।

(2) उत्कृष्ट श्रावक ग्यारहवीं प्रतिमा धारक है। प्रतिमाधारी को उत्कृष्ट श्रावक कहा है; परन्तु वेष में ग्यारहवीं प्रतिमाधारी उत्कृष्ट श्रावक है।

(3) आर्यिका का वेष है।

www.vitragvani.com

चौथा वेष मानने वाला मूलसंध से बाहर है। इसके अतिरिक्त चौथा वेष जिनमत में नहीं है। जो चौथा वेष मानता है वह मूलसंध-जिनमत से बाहर है। वह सर्वज्ञ के आदेश और उनकी वाणी के आदेश को त्यागकर (अन्यवेष को) संयमधर के रूप में मान्यता देता है- मानता है। अज्ञानी तो मात्र बाह्य नग्नदशा देखकर नमस्कारादि करता है। जो मैंने कपड़े छोड़े- ऐसा मानता है तथा उद्देशिक आहार लेता है वह मिथ्यादृष्टि है। जो निमित्त तथा राग से धर्म मानता है- ऐसा मानने वाले को अनन्त निमित्तों की परिग्रह बुद्धि है, वह मिथ्यादृष्टि है।

तत्त्वार्थसूत्र में 'मार्ग के अच्चयन' के लिये तथा कर्मों की निर्जरा के लिये परीषह सहन करना योग्य है- ऐसा कहा है। परन्तु जहाँ मार्ग ही नहीं है वहाँ 'अच्चयन' कहाँ से आया? जहाँ श्रद्धा-ज्ञान का मार्ग नहीं हैं वहाँ परीषह कहाँ से आये? उमास्वामी आदि किसी भी मुनि का ग्रन्थ लो तो वह सनातन सत्य है। समयसार लो या द्रव्य संग्रह लो- सबमें एक ही बात है। चौथे प्रकार का वेश संयमधररूप में मानने वाला मूलसंध से बाहर है। जैसे आजीवन कारावास के लिये कालापानी भेजते है; उसीप्रकार यहाँ चौथा लिंग मानने वाला मूल संध से बाहर है। आत्मा के भानपूर्वक राग घटने से (मुनि के) वस्त्र-पात्र नहीं होते- ऐसा जो नहीं मानते वे मूलसंध से बाहर हैं। यही बात वर्तमान में महाविदेहक्षेत्र में सीमन्धर परमात्मा कह रहे हैं। उनकी वाणी के अनुसार ही आचार्य कुन्दकुन्ददेव ने यह शास्त्र बनाया है। मुनि, श्रावक, आर्यिका के सिवाय चौथा वेष मानने वाला मिथ्यादृष्टि है। भले ही वह बहुत क्षयोपशम का धनी हो तथापि मिथ्यादृष्टि है, पापदृष्टि वाला है।

जैनदर्शन, वीतरागदर्शन, आत्मदर्शन- सब एक ही है। इसमें तीन लिंग संयमधर के रूप में मान्य हैं, अन्य लिंग नहीं।

कोई कहे कि वेष कहाँ रोकता है? आत्मा अखण्ड चैतन्य स्वरूप है- ऐसा भान है, फिर पर द्रव्य कहाँ बाधा करता है? आत्मा की चारित्र पर्याय आत्मा से होती है, तो फिर कैसा भी लिंग हो? वस्त्र सहित हो तो क्या बाधा है? आप तो अध्यात्म की बातें करते हो और फिर वस्त्र सहित मुनिपने में बाधा है- ऐसा कहते हो, आखिर ऐसा क्यो?

www.vitragvani.com

समाधानः- चारित्र पर पदार्थ से होता है- यह बात तो नहीं है; परन्तु जब अन्तर भान सहित चारित्रदशा होती है तब नग्नदशा ही होती है, अन्य नहीं होती। परद्रव्य आत्मा को हानि कर सकता है- यह बात तो है ही नहीं; परन्तु वस्त्र के प्रति राग है वह बाधक है। जिसकी दृष्टि राग रहित हुई हो और राग रहित चारित्र हुआ हो उसे वस्त्र सहित दशा होती ही नहीं। अपनी मुद्रा वीतराग जैसी हुई हो वह वीतरागी प्रतिमा को मानता है, श्रृंगार युक्त प्रतिमा को नहीं मानता।

जिनदर्शन में (1) मुनि (2) ऐलक (3) आर्यिका और क्षुल्लक- ऐसे तीन वेष कहे हैं। अब उनके अन्तरंग श्रद्धा कैसी होती है- यह बताते हैं। बाह्य से क्षुल्लक कहे; परन्तु वस्तु का पता न हो तो वह मिथ्यादृष्टि है। अभी तक निमित्तरूप बाह्य वेष कैसे होते हैं- यह बात आई; तदुपरांत अन्तरंग श्रद्धा कैसी होती है- यह बात अब करते हैं। व्यवहार श्रद्धा का विकल्प कैसा होता है, उसकी बात करते हैं।

Shree kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

दर्शनपाहुड़ गाथा- 19

आगे कहते हैं कि- ऐसा बाह्यलिंग हो उसके अन्तरङ्ग श्रद्धान भी ऐसा होता है और वह सम्यग्दृष्टि है:-

छह दव्व णव पयत्था पंचत्थी सत्त तच्च णिद्दिट्ठी।
सद्दहइ ताण रूवं सो सद्दिट्ठी मुणेयव्वो ।।19।।

षट् द्रव्याणि नव पदार्थाः पंचास्तिकायाः सप्ततत्त्वानि निर्दिष्टानि।
श्रद्दधाति तेषां रूपं सः सद्दृष्टिः ज्ञातव्यः ।।19।।

हिन्दी पद्यानुवादः

छह द्रव्य नव तत्त्वार्थ जिनवर देव ने जैसे कहे।
हैं वही सम्यग्दृष्टि जो उस रूप में ही श्रद्ध है।।19।।

अर्थः- छह द्रव्य, नव पदार्थ, पाँच अस्तिकाय, सात तत्त्व-यह जिनवचन में कहे हैं, उनके स्वरूप का जो श्रद्धान करे उसे सम्यग्दृष्टि जानना।

भावार्थः- (जाति अपेक्षा छह द्रव्यों के नाम) जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल- यह तो छह द्रव्य हैं; तथा जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष और पुण्य, पाप-यह नव तत्त्व अर्थात् नव पदार्थ हैं; छह द्रव्य काल बिना पंचास्तिकाय हैं। पुण्य-पाप बिना नव पदार्थ सप्त तत्त्व हैं। इनका संक्षेप स्वरूप इसप्रकार है- जीव तो चेतनास्वरूप है और चेतना दर्शनज्ञानमयी है; पुद्गल स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, गुणसहित मूर्तिक है, उसके परमाणु और स्कंध दो भेद हैं; स्कंधके भेद शब्द, बन्ध, सूक्ष्म, स्थूल, संस्थान, भेद, तम छाया, आतप, उद्योत इत्यादि अनेक प्रकार हैं; धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य ये एक एक हैं- अमूर्तिक हैं, निष्क्रिय है; कालाणु असंख्यात द्रव्य है। कालको छोड़कर पाँच द्रव्य बहुप्रदेशी हैं इसलिये अस्तिकाय पाँच हैं। कालद्रव्य बहुप्रदेशी नहीं है इसलिये वह अस्तिकाय नहीं है; इत्यादिक उनका स्वरूप तत्त्वार्थ सूत्र की टीकासे जानना। जीव पदार्थ एक है और अजीव पदार्थ पाँच हैं, जीव के कर्मबन्ध योग्य पुद्गलोंका आना आस्रव है, कर्मोका बँधना बन्ध है, आस्रवका रुकना संवर है, कर्मबन्ध का झड़ना निर्जरा है, सम्पूर्ण कर्मोका नाश होना मोक्ष है, जीवोंको सुखका निमित्त पुण्य है और दुःखका निमित्त पाप है- ऐसे सप्त तत्व और

www.vitragvani.com

नवपदार्थ हैं। इनका आगम के अनुसार स्वरूप जानकर श्रद्धान करनेवाले सम्यग्दृष्टि होते हैं।।19।।

गाथा- 19 पर प्रवचन

अब उनका कैसे श्रद्धान होता है- यह कहते हैं।

उनको छह द्रव्यों की प्रतीति होना चाहिये। एक ही आत्मा मानना वह भूल है।

कोई कहे कि शास्त्राभ्यास खेद है?

समाधानः- भाई! वह तो विकल्प की अपेक्षा से कहा है। आत्मा के स्वभाव की अखण्ड प्रतीति कराने के लिये कहा है। परन्तु शास्त्र क्या कहते है, उसकी व्यवहार श्रद्धा होनी चाहिये। छह द्रव्य, नव पदार्थ, पंचास्तिकाय, सात तत्त्व जिनवाणी में आये हैं। मात्र वेष लेकर (अपने का धर्मात्मा) मानले तो काम नहीं चलता। अन्तर में ऐसी प्रतीति न हो तो व्रती नहीं होता।

यथार्थ बाह्य लिंगधारी को छह द्रव्य, नव तत्त्व आदि की व्यवहार श्रद्धा यथार्थ होती है। सब होकर एक व्यापक जीव है- ऐसा माने तो यह भूल है। जीव अनन्त हैं।

लोग तो बाहर में कोई वैराग्य देखकर झुक पड़ते हैं तथा कोई शरीर को नग्न देखकर झुक पड़ते हैं।

देह होत जिसकी दशा वर्ते देहातीत।
उस ज्ञानी के चरण में वंदन हो अगणित।।श्रीमद् राजचन्द्र, आत्मसिद्धि

ऐसा कहकर उसे देहातीत मानकर नम पड़ते हैं। जिसे आत्मा, देह और राग क्या है? इसका पता नहीं है वह मिथ्यादृष्टि है। अतः जीव अनन्त है- ऐसी प्रतीति करना चाहिये। जैसे बाह्य व्यवहार लिंग कहे उसीप्रकार अब व्यवहार प्रतीति की बात करते हैं।

अनन्त जीव हैं, अनन्त गुण हैं, अनन्त पर्यायें हैं। अनन्तानन्त पुद्गल है- ऐसी प्रतीति होनी चाहिये। धर्म द्रव्य चौदह ब्रह्माण्ड (लोकाकाश) में व्याप्त अरूपी पदार्थ है। जब जीव और पुद्गल स्वयं गति करते हैं, उसमें धर्मद्रव्य निमित्त है। और स्थिरता में अधर्म द्रव्य निमित्त है। आकाश एक है। काल असंख्य (लोकप्रमाण असंख्यात) है। छहों द्रव्य भिन्न-भिन्न हैं। अनन्त आत्माओं की भिन्नता, अनन्त पुद्गल परमाणुओं की भिन्नता जानना चाहिये।

www.vitragvani.com

अब नव पदार्थों की बात चलती है। जीव-अजीव- ये दो द्रव्य हैं। आस्रव मलिन पर्याय है तथा द्रव्य आस्रव कर्म के परमाणुओं की अवस्था है। दया, दानादि के भाव तथा गुण-गुणी के भेद का विकल्प उठता है वह आस्रव है। महाव्रत आस्रव है। जो महाव्रत को संवर का कारण मानता है उसके एक भी वेष सच्चा नहीं है। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य राग है, मलिन है, आस्रव है; तो भी मुनि, श्रावक, आर्यिका होकर कहे कि राग करो तो धर्म होगा- तो ऐसा मानने वाले को सच्ची श्रद्धा नहीं है। कर्म के परमाणुओं का आना द्रव्यास्रव है। जीव के परिणामों का (शुभाशुभ भावों में) अटकना भावबंध है, कर्म के परमाणुओं की बंधरूप अवस्था द्रव्यबंध है। अशुद्धता टलकर शुद्धदशा प्रगट होना वह भावसंवर है और कर्म का आना रुक जाना वह द्रव्यसंवर है। स्वभाव के आश्रय से शुद्धि की वृद्धि भाव निर्जरा है और कर्मों का खिर जाना द्रव्यनिर्जरा है। तथा पूर्णदशा मोक्षतत्त्व है और सम्पूर्णपने कर्मों का खिर जाना द्रव्यमोक्ष है। एकसमय में सर्व को जान ले वह केवलज्ञान है- ऐसी श्रद्धा होना चाहिये।

'एकसमय में तीनकाल-तीनलोक को जान लिया तो पदार्थ मर्यादित हो गये'- ऐसा कोई कहे तो यह मिथ्याबात है। वस्तु अमर्यादित है- ऐसा एक समय में केवलज्ञान जानता है। इसप्रकार केवलज्ञान के धरने वाले केवली और सिद्ध हैं। दया, दानादि पुण्य है, हिंसा, झूठ आदि पाप है। इसप्रकार नव पदार्थ हैं, छह द्रव्य हैं, काल के अलावा पंचास्तिकाय हैं। काल द्रव्य उपचार नहीं है। काल द्रव्य असंख्यात है। तत्त्वार्थसूत्र में काल द्रव्य 'है' ऐसा कहा है। काल द्रव्य एक प्रदेशी है, अनन्त गुण-पर्याय वाला है। इसप्रकार काल द्रव्य मानना चाहिये। पुण्य-पाप सहित नव पदार्थ और पुण्य-पाप बिना सात तत्त्व हैं- उनका स्वरूप यहाँ संक्षेप में कहा है।

मैं चैतन्य-ज्ञान-दर्शन स्वरूप हूँ। मैं पर का करने वाला नहीं हूँ। मैं जानने वाला हूँ- ऐसी राग सहित प्रतीति व्यवहार सम्यक्त्व है। राग क्या है? स्वभाव क्या है? विकार में विविधता कैसे है? वह जानना चाहिये। मेरा स्वभाव ज्ञाता-दृष्टा है। जो जीव को पर का कर्त्ता मानता है उसे जीव के स्वभाव का पता नहीं है। नग्न होकर मुनि होवे अथवा आर्यिका होवे, उससे क्या हुआ? अन्तर श्रद्धा होनी चाहिये। पुद्गल

www.vitragvani.com

में स्पर्श, रस, गंध, वर्ण गुण है और पुद्गल पदार्थ है। उसे आत्मा के पास से कोई शक्ति लेनी नहीं है, देनी नहीं है। जीव ने अणुबम बनाये- ऐसा लोक में कहते हैं; परन्तु अणुबम में अनन्त शक्ति स्वयं के कारण है- ऐसा नहीं मानने वाले के तो व्यवहार श्रद्धा का भी ठिकाना नहीं है।

पुद्गल के दो भेद हैं- 1. परमाणु और 2. स्कंध । लड्डू, दाल, भात होना- यह पुद्गल का भेद (स्कंध) है, ये आत्मा से नहीं होते। जिसको ऐसा भान नहीं है वे मिथ्यादृष्टि हैं। शब्द स्कंध का भेद है। शब्द आत्मा की प्रेरणा से नहीं बोला जाता, क्योंकि वह पुद्गल का भेद है, आत्मा का भेद नहीं। जीव की इच्छा शब्द को छूती नहीं है। तथा पुद्गल का बंध पुद्गल से है। स्थूल बंध मकान आदि को कारीगर नहीं बांधता। कर्म का सूक्ष्म बंध आत्मा से नहीं होता। संस्थान वह आहार वर्गणा के परमाणुओं से होता है, जीव से नहीं होता। मुझसे पर का आहार होता है- ऐसा मानने वाले को तो व्यवहार श्रद्धा का भी ठिकाना नहीं है। तथा भेद- टुकड़े होना...वह उसका स्वभाव है। अंधकार, छाया पुद्गल का स्वभाव है। धर्म, अधर्म, आकाश एक-एक अमूर्तिक द्रव्य है और निष्क्रिय है। निष्क्रिय का अर्थ उनमें परिणमन नहीं होता- ऐसा नहीं है; परिणमन तो होता है; परन्तु क्षेत्रान्तर नहीं होता। परमाणु (और जीव में) क्रियावती शक्ति-गमनरूप शक्ति का स्वभाव है। धर्मादिक में गमन का स्वभाव नहीं है।

तथा कालाणु असंख्यात है। काल द्रव्य के अलावा शेष पाँचों द्रव्य बहुप्रदेशी भी है; अतः वे पाँचों अस्तिकाय है। काल द्रव्य बहुप्रदेशी नहीं होने से अस्तिकाय नहीं है। इन सबका स्वरूप तत्त्वार्थ सूत्र की टीका से जानना।

निश्चय सम्यग्दर्शन होवे तो सात तत्त्वों की श्रद्धा व्यवहार से होती है।

तथा एक जीव पदार्थ और पाँच अजीव पदार्थ है- ऐसी प्रतीति होना चाहिये।

कोई कहता है कि इन सब द्रव्यों का विचार करने से विकल्प उठता है और शिरपच्ची होती है, हमें तो आत्मा के ध्यान में रहना है; आखिर तो आपको भी नय का लक्ष्य छुड़ाकर आत्मा में ही ले जाना है; अतः हम पहले से ही एक आत्मा माने तो.....?

www.vitragvani.com

समाधानः- भाई! नवतत्त्व की श्रद्धा सही होना चाहिये। जीव पदार्थ है, अजीव पदार्थ पाँच हैं। जीव के कर्म बंधन योग्य पुद्गल कर्मों का आना वह आस्रव है, कर्म बंधते हैं वह बंध है। आस्रव का रुकना संवर है, कर्मों का निर्जरित होना निर्जरा है और सम्पूर्ण कर्मों का नाश होना मोक्ष है।

जीव के सुख का निमित्त पुण्य है। यहाँ पर समझाते हैं कि कषाय की मंदता से पुण्य बंधता है उससे बाह्य सामग्री मिलती है। वह (लौकिक) सुख का निमित्त होती है। (तथा कषाय की तीव्रता से पाप बंधता है उसके निमित्त से प्राप्त बाह्य सामग्री दुःख का निमित्त होती है।) इसप्रकार सात तत्त्व, नौ पदार्थ हैं। आगम के अनुसार उनका स्वरूप जानकर श्रद्धा करना सम्यग्दर्शन है। नौ तत्त्वों की श्रद्धा का राग पुण्य है, व्यवहार समकित अर्थात् औदयिकभाव है, पुण्यभाव है। कर्म के अनुसार कर्म के प्रमाण में होने वाला भाव औदयिक भाव है- ऐसी कोई व्याख्या करे तो वह खोटी बात है।

व्यवहार समकित राग है, चारित्रगुण की पर्याय है। नौ तत्त्व, छह द्रव्यों की श्रद्धा का राग व्यवहार समकित है।

दर्शनपाहुड़ गाथा- 20

अब व्यवहार निश्चय के भेद से सम्यक्त्व को दो प्रकार का कहते हैः-

जीवादीसद्दहणं सम्मत्तं जिणवरेहिं पण्णत्तं।
ववहारा णिच्छयदो अप्पाणं हवइ सम्मत्तं।।20।।

जीवादीनां श्रद्धानं सम्यक्त्वं जिनवरैः प्रज्ञप्तम्।
व्यवहारात् निश्चयतः आत्मैव भवति सम्यक्त्वम्।।20।।

हिन्दी पद्यानुवादः

जीवादि का श्रद्धान ही व्यवहार से सम्यक्त्व है।
पर नियतनय से आत्म का श्रद्धान ही सम्यक्त्व है।।20।।

अर्थः- जिन भगवान ने जीव आदि पदार्थों के श्रद्धान को व्यवहार सम्यक्त्व कहा है और अपने आत्मा के ही श्रद्धान को निश्चय सम्यक्त्व कहा है।

भावार्थः- तत्त्वार्थका श्रद्धान व्यवहार से सम्यक्त्व है और अपने आत्मस्वरूपके अनुभव द्वारा उसकी श्रद्धा, प्रतीति, रुचि, आचरण सो निश्चय से सम्यक्त्व है, यह सम्यक्त्व आत्मा से भिन्न वस्तु नहीं है आत्माही का परिणाम है सो आत्मा ही है। ऐसे सम्यक्त्व और आत्मा एक ही वस्तु है यह निश्चय का आशय जानना ।।20।।

गाथा- 20 पर प्रवचन

अब यह बताते हैं कि व्यवहार-निश्चय के भेद से सम्यक्त्व दो प्रकार का कहा जाता है।

व्यवहार समकित वास्तव में समकित नहीं है, परन्तु राग है। जिनेन्द्र भगवान ने जीवादि तत्त्वों को समकित कहा है वह व्यवहारनय से है। अर्थात् वास्तव में वह समकित नहीं है। आनन्दकन्द शुद्ध चैतन्यस्वभावी जीव की प्रतीति करने वाले जीव को ऐसा शुभराग होता है। उसे छह द्रव्य, सात तत्त्वों की राग सहित प्रतीति वर्तती है, इसकारण उसको व्यवहार समकित कहते हैं। व्यवहार समकित का अर्थ क्या? नव तत्त्वों की श्रद्धा सहचररूप से वर्तती है, इसलिये उसे व्यवहार कहते हैं। त्रिलोकनाथ भगवान समकित कहते हैं उसका क्या अर्थ? आत्मा एकसमय में पूर्ण शुद्ध आनन्दकन्द है- वैसी निश्चय प्रतीतिवंत को उससमय का शुभराग निमित्त है। निमित्त

www.vitragvani.com

को सहचर जानकर व्यवहार समकित कहते हैं। यद्यपि राग समकित नहीं है, तथापि राग को सहचर जानकर उस पर समकित का आरोप आया है।

कोई कहता है कि अन्दर में केवलज्ञान पड़ा है और पश्चात् शरीर में रोग और व्याधि आवे तो क्या बाधा है?

समाधानः- नहीं, जो एकसमय में तीनकाल- तीनलोक को जानते हैं, उनके शरीर में (व्याधि आदि होने की कारणभूत) असाता अत्यन्त मंद है। उनको क्षुधा, तृषा रोगादि नहीं होते- ऐसी व्यवहार श्रद्धा को समकित कहते हैं। परन्तु वस्तुतः वह समकित नहीं है। उसको अन्तर में निश्चय सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ है इसकारण उसके शुभराग को व्यवहार समकित कहा है। निश्चय समकित शुद्धभाव है तथा वह उपशम अथवा क्षयोपशम भावरूप होता है। व्यवहार सम्यग्दर्शन आस्रव है, इसलिये वह औदयिक भावरूप है।

व्यवहार का विषय है अवश्य; परन्तु वह एक द्रव्य का अन्य द्रव्य में आरोप करके कहा जाता है।

व्यवहार अभूतार्थ है अर्थात् विकल्प अभूतार्थ है। राग निश्चय सम्यग्दर्शन नहीं है; अतः अभूतार्थ है। मोक्षमार्गप्रकाशक में स्पष्टीकरण आया है कि मोक्षमार्ग में राग को सहचर जानकर व्यवहार मोक्षमार्ग कहा है। इसीप्रकार आत्मा की प्रतीति ही सम्यग्दर्शन है; परन्तु उससमय छह द्रव्य, नौ पदार्थ की श्रद्धारूप प्रशस्त राग वर्तता है- इसकारण उसे व्यवहार से सम्यग्दर्शन कहा है। वस्तुतः तो वह चारित्र का दोष है, समकित (श्रद्धागुण) की भी विपरीत पर्याय नहीं है। छह द्रव्य, नव तत्त्व आदि की श्रद्धा वाले को व्यवहार समकिती कहते हैं; क्योंकि उस भूमिका में ऐसा ही विकल्प आता है- इसकारण उसे व्यवहार कहा है। इसप्रकार धर्मात्मा को निश्चय समकित के साथ व्यवहार समकित होता है।

अब निश्चय समकित की बात करते हैं। एकसमय में अखण्ड पूर्ण स्वभाव की प्रतीति निश्चय समकित है। ऐसा निश्चय सम्यग्दर्शन हो वहाँ व्यवहार सम्यग्दर्शन होता है।

www.vitragvani.com

कोई कहे कि हमको निश्चय सम्यग्दर्शन हुआ है, तो फिर नव तत्त्वों की क्या जरूरत है? हमतो एक आत्मा को मानते हैं। जीव-अजीव आदि नव तत्त्वों की माथापच्ची से क्या काम है?

समाधानः- तुझे निश्चय-व्यवहार एक भी समकित नहीं है। छह द्रव्य, नव तत्त्वो का नकार करने से ज्ञान का नकार (निषेध) होता है।

तत्त्वार्थ श्रद्धान है वह व्यवहार समकित है। यहाँ जो तत्त्वार्थ श्रद्धान कहा है वह तत्त्वार्थसूत्र में कथित तत्त्वार्थ श्रद्धान नहीं है। वहाँ तो ज्ञानरूप व अभेद श्रद्धान की बात है- निश्चय श्रद्धान की बात है। यहाँ कथित तत्त्वार्थ श्रद्धान औदयिकभाव है जो निश्चय समकित में सहचरपने होता है। यह भेदरूप श्रद्धा है। तत्त्वार्थसूत्र में कथित तत्त्वार्थ श्रद्धान उपशम, क्षयोपशम और क्षायिकभावरूप है। जबकि यहाँ कथित तत्त्वार्थ श्रद्धान मलिन भाव- औदयिकभावरूप है।

कोई कहे कि हमारे व्यवहार से क्या काम है? हमें तो निश्चय से काम है?

समाधानः- अन्तर भावना वाले को सात तत्त्वों की श्रद्धा का विकल्प आये बिना नहीं रहता। यदि दो घड़ी लगातार शुद्धोपयोग रहे तो केवलज्ञान हो जाए; परन्तु छद्मस्थ को शुद्धोपयोग अधिक समय तक नहीं टिकता; इसकारण उसे सात तत्त्वों की श्रद्धा का विकल्प आ जाता है। स्वयं ज्ञाता-दृष्टा है उसका अनुभव करके अन्तर आचरण करना वह निश्चय है।

इसप्रकार निश्चय- व्यवहार समकित की बात हुई ।

दर्शनपाहुड़ गाथा- 21

अब कहते हैं कि यह सम्यग्दर्शन ही सब गुणों में सार है उसे धारण करोः-

एवं जिणपण्णत्तं दंसणरयणं धरेह भावेण।
सारं गुणरयणत्तय सोवाणं पढम मोक्खस्स।।21।।

एवं जिनप्रणीतं दर्शनरत्नं धरत भावेन।
सारं गुणरत्नत्रये सोपानं प्रथमं मोक्षस्य।।21।।

हिन्दी पद्यानुवादः

जिनवर कथित सम्यक्त्व यह गुण रतनत्रय में सार है।
सद्भाव से धारण करो यह मोक्ष का सोपान है।।21।।

अर्थः- ऐसे पूर्वोक्त प्रकार जिनेश्वर देवका कहा हुआ दर्शन है सो गुणो में और दर्शन-ज्ञान-चारित्र इन तीन रत्नोंमें सार है- उत्तम है और मोक्षमन्दिर में चढ़नेके लिये पहली सीढ़ी है इसलिये आचार्य कहते हैं कि- हे भव्यजीवों! तुम इसको अन्तरंग भाव से धारण करो, बाह्य क्रियादिक से धारण करना तो परमार्थ नहीं है, अन्तरंग की रुचिसे धारण करना मोक्ष का कारण है।। 21।।

गाथा- 21 पर प्रवचन

दर्शन अर्थात् सम्यग्दर्शनरूपी सार, उसका प्राभृत है। सम्यग्दर्शनरूपी रत्न सार है। इस रत्न से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र मिलते हैं। आत्मा की शुद्धि, शान्ति, केवलज्ञान की प्राप्ति और चारित्र का कारण यह सम्यग्दर्शन है। यह सम्यग्दर्शन सब गुणों में सार है, इसलिये इसे धारण करो- ऐसा अब कहते हैं।

इसप्रकार पूर्व में कहें अनुसार जिनेन्द्र देव ने दर्शन कहा है। आत्मा के स्वभाव द्वारा राग और विकार को जीतना- यह जैनदर्शन है। जैनदर्शन की मुद्रा कैसी होती है? मुनि नग्न दिगम्बर होते हैं। इसप्रकार उत्कृष्ट श्रावक, आर्यिका आदि तीन वेषों की श्रद्धा करना, छह द्रव्य, नवतत्त्व आदि की श्रद्धा करना यह व्यवहार समकित है। तथा आत्मा निमित्तादि के वेष से रहित है- ऐसे अपने ज्ञानानन्द स्वभावी आत्मा की प्रतीति और रुचि करना, वह निश्चय सम्यग्दर्शन है। उस निश्चय सम्यग्दर्शनवंत जीव को छह द्रव्य, नवतत्त्व, पंचास्तिकाय आदि की श्रद्धा को उपचाररूप- आरोपरूप

www.vitragvani.com

सम्यग्दर्शन कहने में आता है। आत्मा पूर्ण शुद्ध चिदानन्द है। वह छह द्रव्य आदि को जानने वाला है- ऐसा आत्मा का ज्ञान करके रुचि करना, वह आत्मा से भिन्न वस्तु नहीं है। वह आत्मा का ही परिणाम है। उस भूमिका वाले जीव को छह द्रव्य, नवतत्त्व आदि की श्रद्धा का विकल्प है वह आरोप है- उपचार है। भगवान आत्मा एकसमय में पूर्ण ज्ञाता है, अनन्तगुणों का पिण्ड है, पूर्ण शान्ति की निधि है- ऐसी रुचिरूप निर्मल परिणाम को स्वाश्रित निश्चय सम्यग्दर्शन कहते हैं और उसकी तीनलोक की श्रद्धा, छह द्रव्यादिक की श्रद्धा को व्यवहार समकित कहते हैं। निर्विकार ज्ञान में प्रतीति करना वह निश्चय सम्यग्दर्शन है और राग सहित छह द्रव्यादिक की श्रद्धा, वह व्यवहार है। वीतराग परमात्मा, देवाधिदेव ने ऐसा दर्शन रत्न कहा है। यहाँ निश्चय सम्यग्दर्शन की बात है। जिसको ऐसा निश्चय सम्यग्दर्शन होता है तो बाह्य मुनि का वेष, क्षुल्लक का वेष, आर्यिका का वेष तथा छह द्रव्यादिक की श्रद्धा होती है। इस बात में गड़बड़ नहीं चलती।

उत्तमक्षमा, उत्तम ब्रह्मचर्य आदि गुण हैं, उनमें सम्यग्दर्शन सार है। सम्यग्दर्शन रहित क्षमा या ब्रह्मचर्य व्यर्थ है। स्वभाव सन्मुख होकर आत्म अनुभूति करना सम्यग्दर्शन है। क्षमा आदि गुणों में सम्यग्दर्शन सार है, प्रधान है- उत्तम है। जिसको आत्म स्वभाव की यथार्थ प्रतीति नहीं है तथा छह द्रव्य आदि की प्रतीति नहीं है उसके सब व्यर्थ है। वह भले ही देव-शास्त्र-गुरु के प्रति अर्पणता करे; परन्तु वह 'रण में पीठ दिखाने' के समान है। जिन्होंने वीतरागी केवलज्ञान प्रगट किया है वे परमात्मा कहते हैं कि आत्मा की प्रतीति करो! सात तत्त्व और पंचास्तिकाय की प्रतीति करो! जैनमत में तीन वेष हैं- ऐसी प्रतीति करो! क्षमा, ब्रह्मचर्य आदि में सम्यग्दर्शन मुख्य है। तथा दर्शन-ज्ञान-चारित्र में दर्शन 'सार' है- उत्तम है। दर्शन बिना अकेले वेष अथवा मुनिपने आदि में कोई सार नहीं है। और स्वभाव का भान होने पर आगे बढ़ने पर ऐसे वेष आये बिना रहते नहीं हैं। सम्यग्दर्शन उत्तम है। वही मोक्षरूपी महल में जाने के लिये पहली सीढ़ी है।

सम्यग्दर्शन आत्मा की पूर्ण शुद्धदशा की पहली सीढ़ी है। मोक्षकी पहली सीढ़ी है। लोग चारित्र करने की बात करते है; परन्तु सम्यग्दर्शन बिना चारित्र मिथ्याचारित्र

www.vitragvani.com

है, बाल तप है अर्थात् मूर्खतापूर्ण तप है। और मूर्खतायुक्त तप में मूर्खतायुक्त त्याग है। पर्याय में संसार है, उससे रहित स्वभाव के आश्रय से मोक्षदशा प्रगट होती है। उस मोक्षरूपी मन्दिर में चढ़ने के लिये सम्यग्दर्शन पहली सीड़ी है। दुनिया कहती है कि पहले व्यवहार चाहिये। जबकि यहाँ कहते हैं कि सम्यग्दर्शन पर्याय पहली सीढ़ी है। तुझे मोक्ष मन्दिर की अभिलाषा होवे तो उसमें चढ़ने के लिये सम्यग्दर्शन पहली सीढ़ी है।

आचार्य महाराज कहते हैं कि हे भव्य जीव! तुम इस सम्यग्दर्शन को अन्तरंगभाव से धारण करो। सम्प्रदाय में इज्जत मिलेगी- ऐसे भाव से नहीं; पर अन्तरंगभाव से धारण करो! लखपति मनुष्य इस सम्प्रदाय को मानते हैं इसलिये नहीं; परन्तु अन्तरंगभाव से धारण करने को कहा है। आत्मा शुद्ध चिदानन्द है- ऐसी प्रतीति करो! नव तत्त्वादि तथा त्रिवेष की प्रतीति करो! वस्त्र-पात्र सहित मुनिपना मानना तो मिथ्यात्व है। मुनि तो नग्न दिगम्बर होते हैं। दुनिया धर्म कहेगी, संसार में लाभ मिलेगा, व्यापार का रास्ता खुलेगा, इसलिये मानने को नहीं कहा, अन्तरंगभाव से कहा है। अकेली बाह्य क्रिया धारण करना वह परमार्थ नहीं है। आत्मा का पंथ अन्तर में है, बाहर से वह नहीं मिलता। व्रत पालना आदि क्रिया से (मुक्ति का) लाभ नहीं है, अन्तरंग में स्वरूप की रुचि करना ही मोक्ष का कारण है। सम्यग्दर्शन की प्राप्ति अन्तर्मुखता से होती है। स्वभाव की प्राप्तिवंत साधकों को जो विकल्प आता है उसे व्यवहार कहते हैं। इसप्रकार निश्चय रुचि मोक्ष का कारण है।

दर्शनपाहुड़ गाथा- 22

अब कहते हैं कि- जो श्रद्धान करता है उसी के सम्यक्त्व होता है:-

जं सक्कइ तं कीरइ जं च ण सक्केइ तं च सद्दहणं।
केवलिजिणेहिं भणियं सद्दहमाणस्स सम्मत्तं।।22।।

यत् शक्नोति तत् क्रियते यत् च न शक्नुयात् तस्य च श्रद्धानम्।
केवलिजिनैः भणितं श्रद्दधानस्य सम्यक्त्वम् ।।22।।

हिन्दी पद्यानुवादः

जो शक्य हो वह करें और अशक्य की श्रद्धा करें।
श्रद्धान ही सम्यक्त्व है इस भाँति सब जिनवर कहें।।22।।

अर्थः- जो करने को समर्थ हो वह तो करे और जो करने को समर्थ नहीं हो वह श्रद्धान करे क्योंकि केवली भगवान ने श्रद्धान करनेवाले को सम्यक्त्व कहा है ।।22।।

भावार्थः- यहाँ आशय ऐसा है कि यदि कोई कहे कि- सम्यक्त्व होने के बाद में तो सब परद्रव्य-संसार को हेय जानते हैं। जिसको हेय जाने उसको छोड़ मुनि बनकर चारित्रका पालन करे तब सम्यक्त्वी माना जावे, इसके समाधानरूप यह गाथा है (कि) जिसने सब परद्रव्य को हेय जानकर निजस्वरूप को उपादेय जाना, श्रद्धान किया तब मिथ्याभाव तो दूर हुआ परन्तु जबतक (चारित्र में प्रबल दोष है तबतक) चारित्र मोहकर्मका उदय प्रबल होता है [और] तबतक चारित्र अङ्गीकार करनेकी सामर्थ्य नहीं होती। जितनी सामर्थ्य है उतना तो करे और शेष का श्रद्धान करे, इसप्रकार श्रद्धान करनेवाले को ही भगवान ने सम्यक्त्व कहा है ।।22।।

गाथा- 22 पर प्रवचन

अब कहते हैं कि चारित्र का पालन न कर सके तो नवतत्त्व आदि की यथार्थ प्रतीति करना।

आत्मा पूर्ण चिदानन्द है। राग तथा बाह्य का करने वाला नहीं है। (ज्ञानी को) शुभराग आता है; परन्तु लाता नहीं है। शुद्ध आनन्दकन्द आत्मा की श्रद्धा सहित अन्तर रमणता करना, वह चारित्र है। यदि हो सके तो चारित्र करना। वस्त्र सहित चारित्र-मुनिपना नहीं होता; परन्तु मात्र नग्नदशा में भी चारित्र नहीं है। स्वरूप की

www.vitragvani.com

प्रतीति करके ध्यान लगाकर अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञान प्राप्त कर सके तो करना; परन्तु यदि आसक्ति नहीं छूटी हो तो श्रद्धा तो यथार्थ रखना। कोई इन्द्र आवे तो भी श्रद्धा फिरे नहीं। जिनेन्द्रदेव द्वारा कथित लिंग (त्रिवेष) की श्रद्धा यथार्थ रखना। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के अनुभव के साथ तीन वेष तथा छह द्रव्यादि की श्रद्धा यथार्थ करना। सर्वप्रथम क्या करना? बराबर यथार्थ प्रतीति करना। सर्वज्ञ देवाधिदेव द्वारा कथित तत्त्व की यथार्थ प्रतीति की नहीं और व्रत पालूंगा तो धर्म होगा- ऐसा अज्ञानी मानता है।

आत्मा शुद्ध चिदानन्द है, निमित्त व राग का लाने वाला नहीं- ऐसी श्रद्धा करना। कारण कि केवली भगवान ने श्रद्धा करने वाले को सम्यक्त्व कहा है। स्त्री-पुत्रादि को छोड़े तो समकित होता है- ऐसा नहीं है। जीव ने अनन्तबार मुनिपना धारण किया, परन्तु श्रद्धा बिना लाभ नहीं हुआ। यह सम्यग्दर्शन धर्म है। सम्यग्दर्शन कैसा है?- यह जिसने सुना नहीं उसको चारित्र कैसा? लोगों को सम्यग्दर्शन की महिमा नहीं आती है, अकेले पर पदार्थ छोड़ने की महिमा आती है; परन्तु मिथ्यामान्यता का त्याग करके सच्ची मान्यता का आदर और महिमा नहीं आती।

यहाँ कहते हैं कि तेरे से केवलज्ञान प्रगट किया जा सके तो केवलज्ञान प्रगट करना; परन्तु यदि उतना पुरुषार्थ न होवे तो श्रद्धा रखना! आत्मा की प्रतीति रखना। जो आत्मभान सहित ध्यान में लीन होते हैं और छठवें- सातवें गुणस्थान में झूलते हैं वे मुनि है। उनके वस्त्र-पात्र नहीं होते, वे नग्न दिगम्बर होते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य को साधुपद नहीं कहते। जो वस्त्र-पात्र सहित मुनिपना मानता-मनाता है वह मिथ्यादृष्टि है। कुन्दकुन्दाचार्य ने सब स्पष्ट किया है। वे आठ दिन तक महाविदेह में भगवान सीमन्धर के पास रहे थे, तत्पश्चात् इस शास्त्र की रचना की थी। कुन्दकुन्दाचार्य के समय में श्वेताम्बर मूर्तिपूजक पंथ निकल गया था। वे वस्त्र सहित मुनिपना मानते हैं, इसलिये यह सब स्पष्ट किया है।

देखो, इस ग्रन्थ के भाषा टीकाकार पंडित जयचन्दजी यथार्थ लिखते हैं। पहले के पण्डित भी यथार्थ प्ररूपणा करते थे, मार्ग में गड़बड़ नहीं करते थे। जिनेन्द्र भगवान सीमन्धर परमात्मा आदि यही मार्ग कह रहे हैं, इन्द्र इस मार्ग को मानते हैं। जैन के

www.vitragvani.com

अतिरिक्त अन्यमत में धर्म नहीं है; परन्तु जैन नाम धारक श्वेताम्बर मत में भी धर्म नहीं है। उस सम्प्रदाय में निश्चय-व्यवहार एक भी धर्म नहीं है- ऐसा कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं।

शंका- यदि राग छोड़ने लायक है तो सम्यग्दृष्टि तुरन्त ही चारित्र क्यों नहीं ले लेता। यहाँ आशय यह है कि- सम्यग्दर्शन होते ही तुरन्त चारित्र होना चाहिये। यहाँ (शंकाकार) कहता है कि आत्मा ज्ञानानन्द है वह उपादेय है अर्थात् उसे अंगीकार करना। आत्मा शुद्ध चिदानन्द है, पुण्य-पाप छोड़ने योग्य है, सर्व पर पदार्थ छोड़ने लायक है- ऐसा सम्यग्दर्शन मानता है। श्रावक होने के पूर्व सम्यग्दर्शन होने पर धर्मी मानता है कि त्रिलोकनाथ भगवान भी आश्रय करने योग्य नहीं है- ऐसी उसे श्रद्धा वर्तती है। अपने को राग आता है तो भक्ति के परिणाम होते हैं। आत्मा सिवाय सर्व परद्रव्य-देव-शास्त्र-गुरु भी आश्रय करने योग्य नहीं है। एकसमय में पूर्णानन्द आत्मा ही आश्रय करने योग्य है। वह दृष्टि में परद्रव्य को आश्रय करने योग्य नहीं मानता। तथा मुनि के अट्ठाईस मूलगुण पालन, खड़े-खड़े आहार लेने के विकल्प इत्यादि को वह हेय मानता है। जिस भाव से तीर्थंकर नामकर्म बंधता है वह भी हेय है, वह उस वृत्ति को भी हेय मानता है। भले ही पर्याय में राग होता है; परन्तु उसे अंगीकार करने योग्य नहीं मानता। मन्दिर, सम्मेदशिखर आदि पर द्रव्य आश्रय करने योग्य नहीं है तथा पूर्ण शुद्ध ज्ञायक स्वभावी अपने आत्मा के अतिरिक्त अपनी ज्ञानादि की पर्याय, शुभराग और परद्रव्य आश्रय करने लायक नहीं है, शुभरागादि हेय है (-ऐसा मानता है।), तो अब यहाँ अज्ञानी तर्क करता है कि उसने परद्रव्य की उपेक्षा की है और राग को हेय मानता है तो सम्यग्दर्शन होते ही तुरन्त चारित्र प्रगट होना चाहिये। चिदानन्द स्वभाव का अवलम्बन लेने योग्य है, उसके आश्रय से शान्ति मिलती है, देव-शास्त्र-गुरु के राग से शान्ति नहीं मिलती, अतः जिस राग को हेय मानता है उसे तुरन्त ही छोड़ना चाहिये। इसलिये चारित्र होवे तो सम्यग्दर्शन हुआ माने- ऐसा अज्ञानी कहता है। सभी पदार्थ छोड़ने लायक है- ऐसा कहते हो तो मुनि हो जाओ-चारित्र ले लो! श्रावक हो जाओ!- ऐसा तर्क अज्ञानी करता है। जब तुमने (राग को) ज़हर माना है, तो फिर ज़हर क्यों खाते हो? इसलिये तुमने ज़हर को जाना ही नहीं। उसीप्रकार

www.vitragvani.com

सम्यग्दर्शन होने पर रागादि को हेय जानता है तो मुनि हो जाये न! जिसको हेय जानते हो तो फिर ये खाने-पीने आदि के कार्य क्यों करते हो?- यह अज्ञानी का तर्क है।

समाधानः- भाई! श्रद्धा और चारित्रगुण के कार्य भिन्न-भिन्न है। सम्यग्दृष्टि को युद्ध के परिणाम आते हैं। शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ भगवान क्षायिक सम्यग्दृष्टि थे, तीन ज्ञान के धारक थे तथा उसी भव में तीर्थंकर होने वाले थे; तथापि छियानवैं हजार स्त्रियों से विवाह किया। भाई! वह संसार (चारित्र का) अल्पदोष है, दृष्टि का दोष नहीं है। यदि सम्यग्दर्शन के साथ (ही) चारित्र होवे तब तो चारित्र रहित सभी अविरत सम्यग्दृष्टि मिथ्यादृष्टि ठहरें। सम्यग्दर्शन के पश्चात् करोड़ों वर्षों तक संसार में दिखें और चारित्र न ले- वे समझते हैं कि राग आता है वह ज़हर है।

अज्ञानी को ऐसा प्रश्न उत्पन्न होता है कि चिदानन्द स्वभाव आदरणीय है, अन्य वस्तु आदरणीय नहीं है, तो फिर स्त्री-पुत्रादि में क्यों पड़ा है? यदि स्त्री-पुत्रादि को छोड़े और चारित्र ले तो समकित हुआ कहलाये। श्रीमद् राजचन्द्रजी के अपूर्व अवसर काव्य में मुनिपने की भावना आयी है। उसे सुनकर कोई नामधारी साधु कहता है कि- इन्हें किसने विघ्न किया था कि स्त्री-पुत्रादि में पड़े हैं। स्त्री-पुत्रादि को छोड़कर दीक्षा ले लेना थी न! अरे! देखो, नामधारी साधु को अन्तर के भाव का कुछ पता नहीं है। तीर्थंकर भी गृहस्थ दशा में ऐसी भावना भाते हैं। सम्यग्दृष्टियों को अशुभराग आता है, वे उसे छोड़ने योग्य मानते हैं; परन्तु छोड़ने लायक मानने से तुरन्त ही राग छूट जाये- ऐसा नहीं है। चारित्रदशा आने में समय लगता है। सम्यग्दृष्टि राज्यपरिवार में हो, और चक्रवर्ती छियानवैं हजार स्त्रियों में होवे; (यह चारित्र का दोष है।) क्षायिक सम्यग्दर्शन हुआ, इसलिये तुरन्त ही राग छूट जाये - ऐसा नहीं होता। स्वभाव में लीन होने से राग छूटता है। सम्यग्दर्शन हुआ है इसलिये तुरन्त ही चारित्र होना ही चाहिये- यह बात खोटी है। सर्व परद्रव्य तथा विकार छोड़ने योग्य है। आत्मा पूर्ण शुद्ध चिदानन्द है- वही अंगीकार करने योग्य है- ऐसी सम्यक् श्रद्धा से (ज्ञानी के) मिथ्या मान्यता का नाश हुआ है। सम्यग्दृष्टि ने अनन्त संसार के बीजरूप विपरीत मान्यता का अभाव किया है। सम्यग्दृष्टि चक्रवर्ती संसार में होने पर भी उसे सम्यक् प्रतीति है; परन्तु चारित्र नहीं हैं। तथा कोई बाहर में (तो) नग्न हो जाये और आत्मा की

www.vitragvani.com

प्रतीति नहीं है तो वह मिथ्यादृष्टि है। सम्यग्दृष्टि को स्वभाव की लीनता की कमी है, पुरुषार्थ की कमी है- इसकारण चारित्रमोहनीय कर्म के उदय से रूका है- ऐसा कहते हैं- यह व्यवहारनय का कथन है। आत्मा उपादेय है, विकार हेय है- ऐसा जानने-मानने से मिथ्याभाव मिटा है; परन्तु पुरुषार्थ की कमी से स्वरूप में लीनता का सामर्थ्य नहीं है। श्रद्धागुण और चारित्र गुण- दोनो गुण भिन्न है, अतः श्रद्धागुण के कारण चारित्रगुण प्रगट होना मानने वाले को दो भिन्न गुणों की श्रद्धा भी नहीं है।

भाई! सम्यग्दृष्टि राग में दिखने पर भी राग को करने लायक नहीं मानता।

कवि द्यानतरायजी भी पूजा में कहते हैं-

'कीजै शक्ति प्रमाण, शक्ति बिना श्रद्धा धरै।
द्यानत श्रद्धावान अजर-अमर पद भोगवे।।

ऐसा द्यानतरायजी कहते हैं। शक्ति प्रमाण करना; परन्तु यदि चारित्र की शक्ति न हो तो श्रद्धा धरना। क्षयोपशम सम्यक्त्व की स्थिति छियासठ सागर तक की लम्बी है। किसी को लम्बे काल तक क्षयोपशम समकित रहने पर भी पाँचवां गुणस्थान नहीं आता। जैसे किसी का पुत्र झूले में सो रहा है और सर्प उसे डंक मारने के लिये जाता है तो उसका पिता सर्प को मुँह से पकड़ लेता है। वहाँ उसका पिता थोड़े समय तक सर्प को पकड़े हुए दिखता है; तथापि वह घर में से निकालने के लिये है, रखने के लिये नहीं। उसीप्रकार समकिती को विषय- भोग, युद्ध, खाने-पीने आदि के परिणाम आते हैं। पिस्ते के पापड़, बादामपाक आदि खाने के भाव आते हैं, तथापि वह सम्यग्दृष्टि है; क्योंकि वह उन भावों को रखने लायक मानता ही नहीं। जबकि अज्ञानी ने बाह्य वस्तु छोड़ी है, तो भी वह मूढ़ है; उसने धर्म का त्याग किया है। मैं ज्ञान हूँ, शुद्ध चिदानन्द हूँ, राग मेरा स्वभाव नहीं- ऐसा भेदज्ञान नहीं होने के कारण अज्ञानी को त्याग मूर्खता युक्त है। ज्ञानी के बाह्य त्याग नहीं होने पर भी आत्मा का भान हैं, एकवतारी (अल्प संसारी) है, विशेष पुरुषार्थ से स्वरूप में लीनता करके मोक्ष प्राप्त करेगा।

Shree kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

देखो! यहाँ प्रश्न यह है कि सम्यग्दृष्टि अपने आत्मा के अलावा सर्व पर द्रव्यों को तथा शुभाशुभ राग को हेय मानता है, तो जिसे ऐसी प्रतीति हुई है तो वह तुरन्त ही त्यागी क्यों नही हो जाता? जिसको हेय जानता-मानता है उसे छोड़ क्यों नहीं देता-ऐसा अज्ञानी का अभिप्राय है। वह चारित्र और समकित को एकान्त अविनाभावी सम्बन्ध मानता है, गुण भेद मानता ही नहीं। चारित्र होवे तो समकित हुआ मानें- ऐसे प्रश्न के उत्तर स्वरूप यह गाथा है।

समकिती जीव को पर वस्तु में किंचित् भी सुख बुद्धि नहीं होती। उसने समस्त पर वस्तुओं और परभावों से ममत्व छोड़ा है, मिथ्याभाव मिटा है; परन्तु चारित्र की कमजोरी से कषायभाव मे जुड़ता है। उसको गृहस्थदशा का अनेक प्रकार का राग होता है वह राग चारित्रगुण का अशुद्धतारूप कार्य है परन्तु श्रद्धागुण का कार्य नहीं है। क्षायिक सम्यग्दृष्टि गृहस्थ का पुत्र मर जाये और वह रोवे, पंचम गुणस्थान तक रौद्रध्यान भी होता है। अज्ञानी के पुत्र वियोग होवे और कदाचित् वह रोवे नहीं और अपनी कमज़ोरीवश किसी समय ज्ञानी शोक करता है। अज्ञानी के लाखों रूपयों का नुकसान होने पर भी शोक नहीं करे- इन बाह्य स्थितियों से ज्ञानी-अज्ञानी का माप नहीं है।

कोई अज्ञानी बीस वर्ष का इकलौता पुत्र मर जाने पर भी जरा शोक न करे; परन्तु बाहर से पुण्य-पाप और शुभराग से धर्म माने, णमो अरिहन्ताणं की माला फेरा करे, इससे कोई वह सम्यग्दृष्टि नहीं कहलाता। जहाँ सच्चे देव-शास्त्र-गुरु की, नवतत्त्वों की सच्ची पहिचान नहीं है, हेय-उपादेय का भान नहीं है उसको व्यवहार अथवा निश्चय किसी प्रकार से धर्म नहीं होता। लोग मंद कषायरूप वैराग्य देखकर ज्ञानी मान ले इससे क्या? और समकिती युद्ध में भी होता है; उसके कर्म कारण राग-द्वेष है- ऐसा कहना लौकिक स्पष्टीकरण है, वस्तुतः वर्तमान अपनी उस समय की योग्यता से राग-द्वेष है, उसमें अपना अपराध है- ऐसा जानना सच्चा स्पष्टीकरण है।

जब भगवान ऋषभदेव मोक्ष पधारे तक भरत चक्रवर्ती की आँखों में से अश्रुधारा बहने लगी। भरतजी स्वयं समकिती हैं, आत्मा का भान है; परन्तु चारित्र के दोष से ऐसा शोक का भाव हो जाता है। अरे! आज भरतक्षेत्र का सूर्य अस्त हो गया!!

तब गणधर कहते हैं कि अरे भरत! यह क्या? भगवान तो परमपद को प्राप्त हुए हैं और तुम भी अल्पकाल में- इसी भव से सिद्धपद प्राप्त करने वाले हो। भगवान तो मोक्षपद को प्राप्त हुए, अनादि से नहीं प्राप्त ऐसे मोक्षपद को प्राप्त हुए हैं। उसके तो आनन्द के उत्सव होते हैं (फिर तुम्हारी आँखों में आँसू?)

तब भरतजी कहते हैं कि मैं जानता हूँ कि पिताजी मोक्षपद को प्राप्त हुए हैं और मैं भी यही पद पाने वाला हूँ; परन्तु अस्थिरता से राग आ जाता है। राग के समय भी धर्मी को ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव का सम्यक भान छूटता नहीं है- ज्ञायक स्वभाव की ही मुख्यता है। इसीप्रकार रामचन्द्रजी लक्ष्मण की मृतक देह को कंधे पर रखकर छह माह तक धूमे; तथापि वहाँ मात्र अस्थिरता का ही राग था, ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव का भान था और वे उस राग को हेयरूप मानते थे। राग को उपादेय नहीं मानते थे। समकिती हेय को हेय जानता है। ज्ञानानन्दस्वभाव उपादेय है उसे उपादेय जानता है। यदि राग को हेय न जाने और स्वभाव की उपादेय न माने तो मिथ्यादृष्टि हो जाये। राग को हेय जानने पर भी उसे उपादेय नहीं मानने पर भी, उपादेय तो ज्ञानानन्द स्वभाव को ही मानते हैं ऐसा भान होने के पश्चात् भी यदि रागादि हेय भाव जरा भी नहीं होते हो तो वीतरागता और केवलज्ञान हो जाये। तात्पर्य यह है कि विकार न होवे तो वीतरागता होती है और विकार को हेय न जाने तो मिथ्यादृष्टि होता है।

अहो! मैं यह राग तोड़कर स्वरूप में ठहरूँ और केवलज्ञान प्राप्त करूँ- उस क्षण को धन्य है- ऐसी भावना समकिती की होती है। उसे राग की भावना नहीं, परन्तु स्वभाव को ही भावना है, अभेद स्वभाव का उपादेयपना किंचित् भी नहीं छूटता और राग होता है उसे हेय जानता है।

साधक समकिती को द्रव्यदृष्टि में अपनी प्रभुता का स्वीकार है और पर्याय में अभी पामरता है- ऐसा भी जानता है। उस अज्ञानी को प्रभुता के आदर के बल से पामरता टूटती जाती है।

www.vitragvani.com

देखो! श्रीमद् राजचन्द्रजी भी कुन्दकुन्दाचार्य देव के समक्ष अपनी पामरता बताते हुए कहते हैं कि- "हे कुन्दकुन्दादि आचार्यों! तुम्हारे वचन भी स्वरूप अनुसंधान में इस पामर को परम उपकारभूत हुए हैं, उसके लिये मैं तुमको अतिशय भक्ति से नमस्कार करता हूँ।" यहाँ अपने को पामर कहने के साथ-साथ उसीसमय आत्मा की उत्कृष्ट प्रभुता का भी भान वर्तता है।

आचार्यदेव इस गाथा में कहते हैं कि- 'पूर्णानन्द स्वभाव की प्रतीति करना'! पूर्णता न होवे तो भी प्रतीति तो उसी की रखना, रागादि होवे; परन्तु उन रागादि भावों को उपादेय नहीं मानना, उपादेय तो चिदानन्द स्वभाव को ही मानना।

यही बात नियमसार की 154 वीं गाथा में भी बहुत सुन्दर ढंग से कही है- वहाँ कहा है कि- हे जीव! यदि तेरे से हो तो आत्मा के भान पूर्वक ऐसे निश्चय ध्यानमय वीतरागी प्रतिक्रमणादि करना; परन्तु यदि इतना न बन सके तो उसकी श्रद्धा तो अवश्य रखना; क्योंकि जो श्रद्धा से भ्रष्ट है वह तो मार्ग से ही भ्रष्ट है। जो जीव सच्ची श्रद्धा रखता है उसे भले ही चारित्र न हो, तथापि वह जीव मार्ग में है- आराधक है। स्वभाव का उपादेयपना और राग का हेयपना- ऐसी श्रद्धा के बल से वह अल्पकाल में राग का नाश करके चारित्रदशा और केवलज्ञान प्रगट करेगा। इसलिये सम्यक् श्रद्धा तो अवश्य करना- ऐसा भगवान का उपदेश है।

ज्ञानी सम्यग्दर्शन सहित अपनी शक्ति को देखकर, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव का विचार करके जितना राग घटे (उतनी प्रतिज्ञा करते हैं) वे न तो धीरज छोड़ते हैं और न प्रमाद करते हैं। अरबों वर्षो तक अव्रतदशा हो इससे समकित का नाश नहीं होता। श्री धवल शास्त्र में आता है कि क्षायिक समकिती अधिकतर प्रायः महाव्रत ही लेते हैं। महाव्रत धारियों की संख्या बहुत थोड़ी है। बहुभाग तो स्वरूप में उग्र लीनता करके चारित्र लेते हैं। अपनी शक्ति अनुसार निर्वाह होता जाने उतना पाले; अन्यथा हठ नहीं करते। परन्तु वीतरागभाव आदरणीय है- करने योग्य है- ऐसी श्रद्धा रखते हैं। ऐसा श्रद्धान करने वाले को ही भगवान ने सम्यक्त्व कहा है। अज्ञानी प्रश्न करता है

www.vitragvani.com

कि समकिती को मोक्ष की श्रद्धा होने पर भी स्त्री के साथ विवाह क्यों करता है? क्षायिक समकिती चक्रवर्ती तीन ज्ञान के धारक होते हैं, हजारों स्त्रियों से विवाह करते हैं, इससे समकित में दोष नहीं आता। और अज्ञानी विवाह नहीं करे इससे उसे धर्म नहीं हो जाता। बाह्य दृष्टि वालों को, धर्म-अधर्म कहाँ से होते हैं- इस का पता नहीं है। श्रेणिक राजा क्षायिक समकिती थे, उनके तीर्थंकर नामकर्म बंधा है, तो भी कृष्ण लेश्या सहित नरक में गये हैं। वहाँ भी निरन्तर तीर्थंकर नामकर्म बांधते हैं। नरक क्षेत्र में क्षेत्र के कारण दुःख नहीं; परन्तु अपनी कमजोरी से अल्प खेद होता है, उसे वे ज्ञेयरूप-हेयरूप जानते हैं और मुख्य श्रेष्ठ ज्ञाता स्वभाव को उपादेय मानते हैं। मिथ्यात्वभाव का आदर एक समय मात्र भी नहीं होने देते। पर से राग-द्वेष, सुख-दुःख नहीं मानते। मैं पर का कर्त्ता-भोक्त हूँ, शरीर की क्रिया मुझसे होती है, पर मेरा कुछ कर सकता है- ऐसा नहीं मानते। अविरत सम्यग्दृष्टि को ऐसा स्वरूपाचरण चारित्र निरन्तर होता है।

लोग कहते हैं कि पहले व्रतादिक चारित्र पालन करो, उसके आधार से समकित हो जायेगा। इसप्रकार जो राग से वीतरागता होना मानते हैं वे मिथ्यादृष्टि हैं।

Shree kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

दर्शनपाहुड़ गाथा 23-24

अब आगे कहते हैं कि जो ऐसे दर्शन-ज्ञान-चारित्र में स्थित हैं वे वंदन करने योग्य हैः-

दंसणणाणचरित्ते तवविणये णिच्चकालसुपसत्था ।
एदे दु वंदणीया जे गुणवादी गुणधराणं।।23।।

दर्शनज्ञानचारित्रे तपोविनये नित्यकालसुप्रस्वस्थाः।
ऐते तु वन्दनीया ये गुणवादिनः गुणधराणाम्।।23।।

हिन्दी पद्यानुवादः

ज्ञान दर्शन चरण में जो नित्य ही संलग्न है।
गणधर करें गुण कथन जिनके वे मुजीजन वंद्य हैं।।23।।

अर्थः- दर्शन-ज्ञान-चारित्र, तप तथा विनय इनमें जो भले प्रकार स्थित हैं वे प्रशस्त हैं, सराहने योग्य हैं अथवा भले प्रकार स्वस्थ हैं लीन हैं और गणधर आचार्य भी उनके गुणानुवाद करते हैं अतः वे वन्दने योग्य हैं। दूसरे जो दर्शनादिक से भ्रष्ट हैं और गुणवानोंसे मत्सरभाव रखकर विनयरूप नहीं प्रवर्तते हैं वे वंदने योग्य नहीं हैं ।। 23 ।।

अब कहते हैं कि- जो यथाजातरूप को देखकर मत्सरभाव से वन्दना नहीं करते हैं वे मिथ्यादृष्टि ही हैः-

सहजुप्पण्णं रूवं दटठं जो मण्णएण मच्छरिओ।
सो संजमपडिवण्णो मिच्छाइट्ठी हवइ एसो ।। 24 ।।

सहजोत्पन्नं रूपं द्रष्ट्वा यः मन्यते न मत्सरी।
सः संयमप्रतिपन्नः मिथ्यादृष्टिः भवति एषः।। 24 ।।

हिन्दी पद्यानुवादः

सहज जिनवर लिंग लख ना नमें मत्सर भाव से।
बस प्रगट मिथ्यादृष्टि हैं संयम विरोधी जीव वे।।24।।

अर्थः- जो सहजोत्पन्न यथाजातरूप को देखकर नहीं मानते हैं, उसका विनय सत्कार प्रीति नहीं करते हैं और मत्सर भाव करते हैं वे संयमप्रतिपन्न हैं, दीक्षा ग्रहण की है फिर भी प्रत्यक्ष मिथ्यादृष्टि हैं।

भावार्थः-जो यथाजातरूप को देखकर मत्सरभाव से उसका विनय नहीं करते हैं तो ज्ञात होता है कि- इनके इस रूपकी श्रद्धा-रुचि नहीं है ऐसी श्रद्धा-रुचि बिना तो मिथ्यादृष्टि ही होते हैं। यहाँ आशय ऐसा है कि-जो श्वेताम्बरादिक हुए वे दिगम्बर रूपके प्रति मत्सरभाव रखते हैं और उसका विनय नहीं करते हैं उनका निषेध है।। 24 ।।

गाथा- 23 व 24 पर प्रवचन

अब कहते हैं कि जो आत्मा के आश्रित निर्मल दर्शन-ज्ञान-चारित्र में रमण करते हैं वे वंदना के योग्य है।

दर्शन-ज्ञान-चारित्र-तप तथा पूर्ण स्वभाव सन्मुख ढलनेरूप विनय में जो भलीप्रकार-सम्यक्रूप से रहते हैं वे प्रशंसा के योग्य हैं। अथवा सम्यक् प्रकार से आत्मस्वभाव में स्वस्थ हैं- जागृत है- लीन हैं, गणधर- आचार्य भी उनका गुणानुवाद करते हैं वे भावलिंगी मुनि वंदना योग्य है। अन्दर में अमृत का भण्डार खोलकर एकाग्रता का आनन्द करने वाले नग्न दिगम्बर भावलिंगी संत होते हैं। उनसे जो विपरीत श्वेताम्बर आदि हैं वह जैनदर्शन से भ्रष्ट हैं। वे किंचित् भी गुणवान नहीं हैं, वे वंदन योग्य नहीं है। नग्न दिगम्बर निर्ग्रन्थ परमेश्वर (मुनि) अतीन्द्रिय ज्ञानानन्द में मस्त हैं। वे अन्दर में अमृत का सागर उछालकर उसमें सिद्ध परमात्मा की जाति के अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव करते हैं- ऐसे जैनमुनि होते हैं। जो उनकी विनय नहीं करते, मत्सरभाव रखते हैं वे वंदन योग्य नहीं हैं।

जो सहज उत्पन्न यथाजातरूप जिन मुद्रा है, उसे देखकर जो उसकी श्रद्धा नहीं करते, तथा उसका विनय सत्कार-प्रीति नहीं करते और मत्सरभाव करते हैं वे स्वयं के माने हुए कुसंयम को प्राप्त है। अर्थात् लौकिक दीक्षा ग्रहण की है तो भी वे प्रत्यक्ष मिथ्यादृष्टि हैं।

यहाँ कहना यह है कि जिसको ज्ञानानन्द स्वभावी आत्मा की दृष्टि हुई है और तदुपरान्त असंग स्वभाव में लीन होकर मुनिदशा प्रगटी है और बाहर में भी असंगदशा हो गई है- ऐसे मुनि का रूप जैनदर्शन की मुद्रा है। ऐसी अन्तर बाह्य मुद्रा धारक संत को देखकर जिसको प्रमोद नहीं आता और मत्सरभाव से उनकी निन्दा करता है वह जीव मिथ्यादृष्टि है। उसको धर्म की प्रीति नहीं है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप

www.vitragvani.com

भावलिंग और बाह्य में दिगम्बर दशारूप द्रव्यलिंग धारक- ऐसे जो संत, उन्हें देखकर जो जीव उनका विनय, सत्कार, बहुमान आदि नहीं करता और द्वेषभाव का सेवन करता है वह जीव धर्म का द्वेषी प्रत्यक्ष मिथ्यादृष्टि है। दिगम्बर मुनिराज को देखकर श्वेताम्बर मत के आग्रह वाले जीव निन्दा करते हैं, उन्हें प्रत्यक्षरूप से मिथ्यादृष्टि ही जानना- ऐसा यहाँ आचार्य देव ने स्पष्ट किया है। जिसको भावलिंगी दिगम्बर संत के प्रति बहुमान नहीं आता और उनके प्रति अभिमान पूर्वक द्वेष से वर्तता है उसे तो मिथ्यादृष्टि ही जानना; उसमें अन्य कोई परीक्षा की आवश्यकता नहीं है।

तथा वे कल्पित शास्त्र बनाकर उनमें मुनिदशा को विरूद्ध मनाते हैं, मुनि को वस्त्रादि का परिग्रह रखना मनाते हैं- वे सब कथन मिथ्यादृष्टि के ही जानना। श्वेताम्बर भगवती सूत्र में ऐसा आता है कि जो मुनि भिक्षा के लिये गये हो वहाँ यदि कोई श्रावक उन्हें कम्बल, दण्डा आदि दे तो वे दस कम्बल आदि को ले सकते है, उनमें से एक अपने पास रखकर शेष गुरु को सोप दें। देखो! मुनिदशा में ऐसे परिग्रह के पोटले (ढेर) रखने की बतावें, वे कथन समकिती के नहीं हैं; अपितु प्रगटरूप मिथ्यादृष्टि के ही हैं।

यहाँ तो कहते हैं कि मुनि के परिग्रह में वस्त्र का तार भी नहीं होता। अन्तर-बाह्य निर्ग्रन्थ दशा वाले भावलिंगी संत तो धर्म की मूर्ति हैं। जिसे ऐसी धर्म की मूर्ति को देखकर उनका बहुमान नहीं आता उसको धर्म की श्रद्धा ही नहीं है; वह तो कुधर्म को मानने वाला मिथ्यादृष्टि है। श्वेताम्बर आदि लोग महा दिगम्बर संत (कुन्दकुन्दाचार्य देव आदि) के प्रति मत्सरभाव से वर्तते हैं, वहाँ समझना कि वे मिथ्यादृष्टि हैं। उनको वीतराग मार्ग का प्रेम नहीं है। जिनको धर्म का प्रेम हो उसको धर्म की मूर्ति- वीतरागी मुनिराज- को देखकर प्रमोद आये बिना नहीं रहता। जिसको ऐसा प्रेम नहीं आता, उल्टे द्वेष आता है वे तो तीव्र मिथ्यादृष्टि जीव हैं।

दर्शनपाहुड़ गाथा- 25

आगे इसीको दृढ़ करते हैं:-

अमराण वंदियाणं रूवं दट्ठूण सीलसहियाणं ।
जे गारवं करंति य सम्मत्तविवज्जिया होंति।। 25 ।।

अमरैः वंदितानां रूपं दृष्ट्वा शीलसहितानाम् ।
ये गौरवं कुर्वन्ति च सम्यक्त्वविवर्जिताः भवंति।। 25 ।।

हिन्दी पद्यानुवादः

अमर वंदित शील मण्डित रूप को भी देखकर।
ना नमें गारब करें जो सम्यक्त्व विरहित जीव वे।।25।।

अर्थः- देवोंसे वंदने योग्य शीलसहित जिनेश्वरदेव के यथाजातरूप को देखकर जो गौरव करते हैं, विनयादिक नहीं करते हैं सम्यक्त्व से रहित हैं।

भावार्थः- जिस यथाजातरूप को देखकर अणिमादिक ऋद्धियों के धारक देव भी चरणों में गिरते हैं उसको देखकर मत्सरभाव से नमस्कार नहीं करते हैं उनके सम्यक्त्व कैसा ? वे सम्यक्त्व से रहित ही हैं ।। 25 ।।

गाथा- 25 पर प्रवचन

अब इसी बात को दृढ़ करते हैं-

जो सम्यग्दर्शनादि सहित होते हैं, शीलवान होते हैं, देवों से जो भी वंदित होते हैं- ऐसे भावलिंगी सन्त जिनेश्वर देव के यथाजातरूप के धारक हैं।

अहो! अभी तो इस भरतक्षेत्र में भावलिंगी सन्त- मुनिराज के दर्शन भी दुर्लभ हो गये हैं। यथानुकूल व्यवहार वाले भावलिंगी संत को देखकर धर्मी को ऐसा भाव होता है कि अहो! धन्य आपका अवतार! धन्य (हूँ मैं कि) आपके दर्शन हुए। धन्य आपकी मुनि दशा!! जिस जीव को इसप्रकार विनय-नम्रता का भाव नहीं आता और गौरव करता है- अभिमान से वर्तता है तो वह जीव सम्यक्त्व से रहित मिथ्यादृष्टि है।

जैसे पिता को देखते ही पुत्र को हर्ष होता; उसीप्रकार अपने धर्मात्मा को- धर्म पिता को देखते ही धर्मात्मा को हर्ष होता है। जिसको स्वप्न में भी ऐसे दिगम्बर संत के दर्शन के प्रति अरुति का भाव आता है वह जीव पापी है। अरे। देवता भी जिनके चरणों में नमते हैं, कुन्दकुन्दाचार्य देव जैसे महानसंत भी जिनके लिये धन्य-धन्य कहते हैं- ऐसे दिगम्बर संत- मुनियों के प्रति जिस जीव को प्रमोद- भक्ति- बहुमान नही आता वह जीव मिथ्यादृष्टि है।

दर्शनपाहुड़ गाथा- 26

अब कहते हैं कि असंयमी वंदने योग्य नहीं है:-

अस्संजदं ण वन्दे वत्थविहीणोवि तो ण वंदिज्ज।
दोण्णि वि होंति समाणा एगो वि ण संजदो होदि।।26।।

असंयतं न वन्देत वस्त्रविहीनोऽपि स न वन्द्यते।
द्वौ अपि भवतः समानौ एकः अपि न संयतः भवति।।26।।

हिन्दी पद्यानुवादः

असंयमी ना वन्द्य है दृगहीन वस्त्रविहीन भी।
दोनों ही एक समान हैं दोनो ही संयत हैं नहीं।।26।।

अर्थः- असंयमीको नमस्कार नहीं करना चाहिये। भावसंयम नहीं हो और बाह्य में वस्त्र रहित हो वह भी वंदने योग्य नहीं है क्योंकि यह दोनो ही संयम रहित समान हैं, इनमें एक भी संयमी नहीं है।

भावार्थः- जिसने गृहस्थ का भेष धारण किया है वह तो असंयमी है ही, परन्तु जिसने बाह्य में नग्नरूप धारण किया है और अन्तरङ्गमें भावसंयम नहीं है तो वह भी असंयमी ही है, इसलिये यह दोनो ही असंयमी है, अतः दोनों ही वंदने योग्य नहीं है। यहाँ आशय ऐसा है अर्थात् ऐसा नहीं जानना चाहिये कि- जो आचार्य यथाजातरूप को दर्शन कहते आये हैं वह केवल नग्नरूप ही यथाजातरूप होगा, क्योंकि आचार्य तो बाह्यअभ्यंतर सब परिग्रह से रहित हो उसको यथाजातरूप कहते हैं। अभ्यंतर भाव संयम बिना बाह्यनग्न होने से तो कुछ संयमी होता नहीं है ऐसा जानना। यहाँ कोई पूछे- बाह्य भेष शुद्ध हो, आचार निर्दोष पालन करनेवाले के अभ्यंतर भावमें कपट हो उसका निश्चय कैसे हो, तथा सूक्ष्मभाव केवलीगम्य हैं, मिथ्यात्व हो उसका निश्चय कैसे हो, निश्चय बिना वंदने की क्या रीति? उसका समाधान-ऐसे कपटका जबतक निश्चय नहीं हो तबतक आचार शुद्ध देखकर वंदना करे उसमें दोष नहीं है, और कपटका किसी कारण से निश्चय हो जाय तब वंदना नहीं करे, केवलीगम्य मिथ्यात्व की व्यवहार में चर्चा नहीं है, छद्मस्थके ज्ञानगम्यकी चर्चा है। जो अपने ज्ञान का विषय

www.vitragvani.com

ही नहीं उसका बाधनिर्बाध करने का व्यवहार नहीं है, सर्वज्ञ भगवान की भी यही आज्ञा है। व्यवहारी जीव को व्यवहार का ही शरण है।।26।।

(नोट- एक गुणका दूसरे आनुषंगिक गुण द्वारा निश्चय करना व्यवहार है उसीका नाम व्यवहारी जीव को-व्यवहार का शरण है)

गाथा- 26 पर प्रवचन

असंयमी जीव वंदन योग्य नहीं है- ऐसा अब कहते हैं।

यहाँ चारित्रदशा की प्रधानता से बात है। जो जीव बाह्य में तो संयम पालता है; परन्तु अन्तर में सम्यग्दर्शन का ठिकाना नहीं है- श्रद्धा विपरीत है तो वह जीव वास्तव में असंयमी ही है। भावलिंग से रहित अकेला द्रव्यलिंग वास्तव में वंदनीय नहीं है तथा जिसने गृहस्थ वेष धारण किया है वह भी असंयमी है। कोई बाह्य नग्नरूप धारण करे और अन्तरंग में वीतरागभावरूप संयम नहीं हो, पुण्य से, व्रतादि के शुभराग से और शरीर के नग्नपने से धर्म माने तो वह मिथ्यादृष्टि है।

कोई कहे कि वर्तमान में हुण्डावसर्पिणी पंचमकाल है- इसकारण ऐसा शिथिल मुनिपना होता है; अतः उसे सच्चा निर्ग्रन्थ मानकर उसका आदर करो; तो ऐसा कभी नहीं बनता; क्योंकि कालभेद से मोक्षमार्ग नहीं बदलता।

पूर्व में कहा जा चुका है कि यदि शक्ति होवे तो चारित्र का पालन करना अन्यथा उसकी श्रद्धा और भावना अवश्य करना; परन्तु विपरीत मार्ग अथवा इस काल में ऐसा मार्ग होता है- ऐसा नहीं मानना। निश्चय सम्यग्दर्शन सहित बाह्य-अभ्यंतर निर्ग्रन्थपने सहित मुनि के नग्न शरीर होता है। तीन कषाय चौकड़ी का अभाव होने से बारम्बार छठवां-सातवां गुणस्थान आता है। चलते-चलते, खाते-पीते भी मुनि वीतरागदशा में झूलते होने से बारम्बार सातवां गुणस्थान आ जाता है। वे क्षण-क्षण में निर्विकल्प अतीन्द्रिय आनंद में लीन होते रहते हैं- ऐसी दशा मुनिपद है। ऐसा नहीं मानकर वस्त्रादि रखकर मुनिपना माने वह और मिथ्यादृष्टि द्रव्यलिंगी नग्न वेषधारी ये दोनो असंयमीपने समान है- इसकारण वे वंदन योग्य नहीं है।

जो वीतराग दर्शन की मुद्रा है वह यथाजात निर्ग्रन्थ मुनि मुद्रा है। वह दर्शन में मुख्य है। उनको अन्तर में निरन्तर अतीन्द्रिय आनन्द के झरने झरते होते हैं। परन्तु

www.vitragvani.com

कषाय के अभावरूप अभ्यंतर संयम के बिना बाह्य संयम संयम नहीं कहलाता। निश्चय चारित्र बिना उपचार-व्यवहार चारित्र कहना किसको? कोई कहे कि जितना करता है उतना उसके आत्मा को लाभ होता है न? नहीं, भाई! पुण्य तो आस्रवतत्त्वरूप है। उससे बंधन ही होता है- इसकारण उसे मिथ्यात्वरूप अधर्म का लाभ होता है। (क्योंकि वह पुण्य को लाभ मानता है।) बाह्य नग्न हो और मंदकषायरूप शुभ आचरण करे, तो भी उससे आत्मा को कुछ लाभ नहीं होता, क्योंकि ऐसा तो पूर्व में अनन्तबार किया है।

प्रश्नः जो व्यवहार पंचाचार बराबर पालता हो और अन्दर में मिथ्यात्व होवे तो उसका निर्णय कैसे हो? और निर्णय हुए बिना उसको वंदन कैसे हो?

समाधानः आगम अनुसार आचार और उपदेश देखकर वंदन करने में दोष नहीं है। परन्तु जिसके उपदेश में हेय-उपादेय तत्त्वों का प्रत्यक्ष विरोध हो, आचरण में गड़बड़ हो, अट्ठाईस मूलगुण सही न हो, उद्देशिक, अधःकर्मी आहार लेता हो वह तो प्रत्यक्ष विपरीत है, उसको वंदन नहीं करते। जो यह कहता हो कि सर्वज्ञ का स्वरूप अपने निर्णय में नहीं आता, अपन भव्य हैं या अभव्य- इसका निर्णय नहीं हो सकता- ऐसा माने और कहे वह वंदन करने योग्य नहीं है, वह तो मिथ्यादृष्टि है।

बाह्य व्यवहार में विपरीत प्ररूपणा और विपरीत आचरण न दिखें और अन्तर में केवलीगम्य सूक्ष्म मिथ्यात्वादि हों जो छद्मस्थ के ज्ञान में नहीं आ सकें तो वहाँ भी छद्मस्थ वंदनादि व्यवहार करता है- उसमें दोष नहीं है; क्योंकि समय-समय के सूक्ष्म परिणाम छद्मस्थ के पकड़ में नहीं आते। तथा छद्मस्थ समस्त परिणामों को जान नहीं सकता। इसलिये अपनी ज्ञान शक्ति प्रमाण परीक्षा करके व्यवहार करे; परन्तु जो अपने ज्ञान का विषय नहीं है उसमें बाधा-निर्बाधा का निर्णय नहीं हो सकता तो वहाँ बाधा निर्बाधा का व्यवहार नहीं होता- ऐसी सर्वज्ञ की आज्ञा है। ऐसा व्यवहार छद्मस्थ के होता है; क्योंकि कि छद्मस्थ जीव सब नहीं जान सकता। अतः अपने प्रयोजन जितनी परीक्षा करना चाहिये। जिसकी बाह्य प्ररूपणा ही खोटी हो और आचरण ही खोटा हो वह तो एकदम भ्रष्ट है- ऐसे जीव के प्रति वंदनादि व्यवहार करना योग्य नहीं है। इसी अर्थ को आगे दृढ़ करते हैं

दर्शनपाहुड़ गाथा 27

आगे इसही आर्थ को दृढ़ करते हुए कहते हैं:-

ण वि देहो वंदिज्जइ ण वि य कुलो ण वि य जाइसंजुत्तो।
को वंदमि गुणहीणो ण हु सवणो णेय सावओ होइ ।।27।।

नापि देहो वंद्यते नापि च कुलं नापि च जातिसंयुक्तः।
कः वंद्यते गुणहीनः न खलु श्रमणः नैव श्रावकः भवति।। 27।।

हिन्दी पद्यानुवादः

ना वंदना हो देह की कुल की नहीं ना जाति की।
कोई करे क्यों वंदना गुणहीन श्रावक-साधु की।।27।।

अर्थः- देहको भी नहीं वंदते हैं और कुल को भी नही वंदते हैं तथा जातियुक्तको भी नहीं वंदते हैं क्योंकि गुण रहित हो उसको कौन वंदे? गुण बिना प्रकट मुनि नहीं, श्रावक भी नहीं है।।

भावार्थः- लोकमें भी ऐसा न्याय है जो गुणहीन हो उसको कोई श्रेष्ठ नहीं मानता है, देह रूपवान हो तो क्या, कुल बड़ा हो तो क्या, जाति बड़ी हो तो क्या, क्योंकि मोक्षमार्ग में तो दर्शन-ज्ञान-चारित्र गुण है, इनके बिना जाति-कुल-रूप आदि वंदनीय नहीं हैं, इनसे मुनि-श्रावकपणा नहीं आता। मुनि-श्रावकपणा तो सम्यग्दर्शन- ज्ञान-चारित्रसे होता है, इसलिये इनको धारण हैं वही वंदने योग्य हैं, जाति, कुल आदि वंदने योग्य नहीं हैं।।27।।

गाथा- 27 पर प्रवचन

देखो! यह जैनमार्ग! जैनमार्ग में कोई देह को वंदन नहीं होता। सुन्दर शरीर होने पर भी महामूर्ख हो, वह कोई वंदनीय नहीं है। तथा शरीर की दिगम्बर दशा होवे, उससे वह कोई वंदनीय नहीं हो जाता। देह तो जड़ है; परन्तु भावलिंगी संत होते हैं कदाचित उनकी देह बेडौल होवे तो भी वंदनीय है। अतः देह कोई वंदनीय नहीं है।

तथा ऊँचा कुल हो, राजपुत्र हो और त्यागी हुआ हो, तो भी वह कोई कुल के कारण वंदनीय नहीं है, क्योंकि कुल वंदनीय नहीं है तथा जाति भी वंदनीय नहीं है।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान और वीतरागीभाव बिना श्रावक और मुनिपद भी नहीं है। लोक

www.vitragvani.com

में भी ऐसा कहते हैं कि कोई उच्च कुल में जन्मा होने पर भी नीचा काम करे तो निंद्य है। रूपवान हो उससे भी क्या? मोक्षमार्ग में तो तीनो काल एक ही रीति है कि निर्मल सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र सहित होने पर ही वंदन योग्य है। जाति-कुल आदि वंदन योग्य नहीं है।

कोई विद्वान प्रश्न करते हैं कि जिसको माता-पिता की जाति-कुल से शुद्धि हो उसको धर्म होता है। तो उसके आधार पर मुनिपना नहीं है। जिसको चाण्डाल आदि नीच गोत्र का उदय है, जो अस्पर्श है उसको मुनिपद नहीं आ सकता। कोई कहे कि मुनिपना लेने से नीच गोत्र चला जाता है, कारण कि नीच गोत्र का उदय पाँचवें गुणस्थान तक ही है; तो उसका यह तर्क खोटा है। मुनिपना हो उसको अमुक पिण्ड शुद्धि होती है; परन्तु संयम पर उसका प्रभाव पड़ता है- ऐसा नहीं है।

तात्पर्य यह है कि वीतरागभाव ही धर्म है। उसके धारक अर्थात् दर्शन-ज्ञान-चारित्र के धारक ही वंदनीय है। आत्मा ज्ञाता-दृष्टा आनन्दस्वरूप है, राग और व्यवहार से भिन्न है- ऐसी अन्तरदृष्टि होने के पश्चात् जिन्हें अन्तर लीनतारूप दशा हुई है और बाह्य नग्नदशा हुई है उसे दर्शन कहते हैं। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र बिना नग्नदशा धारण करे वह वंदन योग्य नहीं है- आदरणीय नहीं है- यह बात हुई।

Shree kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

दर्शनपाहुड़ गाथा- 28

अब कहते हैं कि जो तप आदि से संयुक्त हैं उनको नमस्कार करता हूँ:-

वंदमि तवसावण्णा सीलं च गुणं च बंभचेरं च।
सिद्धिगमणं च तेसिं सम्मत्तेण सुद्धभावेण।।28।।

वन्दे तपः श्रमणान् शीलं च गुणं च बह्मचर्य च।
सिद्धिगमनं च तेषां सम्यक्त्वेन शुद्धभावेन।।28।।

हिन्दी पद्यानुवादः

गुण शील तप सम्यक्त्व मंडित ब्रह्मचारी श्रमण जो।
शिवगमन तत्पर उन श्रमण को शुद्धमन से नमन हो।।28।।

अर्थः- आचार्य कहते हैं कि जो तप सहित श्रमणपना धारण करते हैं उनको तथा उनके शीलको, उनके गुणको व ब्रह्माचर्यको मैं सम्यक्त्व सहित शुद्धभाव से नमस्कार करता हूँ क्योंकि उनके उन गुणो से -सम्यक्त्व सहित शुद्धभाव से सिद्धि अर्थात् मोक्ष उसके प्रति गमन होता है।

भावार्थः- पहले कहा कि- देहादि वंदने योग्य नहीं हैं, गुण वंदने योग्य हैं। अब यहाँ गुण सहित की वंदना की है। वहाँ जो तप धारण करके गृहस्थपना छोड़कर मुनि हो गये हैं उनको तथा उनके शीलगुणब्रह्मचर्य सम्यक्त्व सहित शुद्धभाव से सुंयुक्त हो उनकी वंदना की है। यहाँ शील शब्द से उत्तरगुण और गुण शब्द से मूलगुण तथा ब्रह्मचर्य शब्द से आत्मस्वरूप में मग्नता समझना चाहिये ।। 28।।

गाथा- 28 पर प्रवचन

अब कहते हैं कि जो तप आदि से संयुक्त है उनको नमस्कार करता हूँ।

इच्छा का निरोध तप है। अतीन्द्रिय स्वभाव में से विशेष अतीन्द्रियदशा प्रगट हो, उसे तप कहते हैं। ऐसे तप सहित श्रमणपने की बात यहाँ करते हैं। अन्तर में सच्चिदानन्द प्रभु राग रहित स्वभाव है, उसकी एकता में जिन्होंने सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रदशा धारण की है, उन्हें मैं वंदन करता हूँ, उनके अकषायी स्वभाव को वंदन करता हूँ। निर्विकारी गुण को प्रगट करता हूँ। स्वरूप में- आनन्द में लीन होना वह ब्रह्मचर्य है- ऐसे मुनि को मैं सम्यक्त्व सहित शुद्धभाव से वंदन करता हूँ। जो अभ्यंतर

सच्चिदानन्द प्रभु की लीनता के पुरुषार्थ की उग्रता कर रहे हैं और जिन्होंने इच्छा के निरोधरूप तप को धारण किया है और मूलगुण अर्थात ज्ञानानन्द स्वभाव के आश्रय से प्रगट हुई दशा, जो अनन्त चतुष्ट्य का कारण है, उसे वंदन करता हूँ। सम्यक्त्व सहित अन्तर दृष्टि-अनुभव पूर्वक आचरण से उन अनन्त चतुष्ट्यरूप गुणों का परिणमन होता है। नग्न शरीर या बाह्य से अनन्त चतुष्ट्य का परिणमन नहीं होता। मैं आचार्य हूँ तथापि जिनके अन्तर में आनन्दादि गुण प्रगट हुए हैं- ऐसे मुनियों को वंदन करता हूँ। देखो! आचार्यदेव को प्रमोद आया है, इसकारण संत-मुनियों को वंदन करते हैं।

यह पंचमकाल की बात चलती है। निमित्त से कार्य माने, राग से धर्म माने- ऐसी मान्यता वाला द्रव्यलिंग धारण करे तो वह मुनि नहीं है। व्यवहार करते-करते धर्म होगा- ऐसी मान्यता वाले की श्रद्धा खोटी (मिथ्या) है। आत्मस्वभाव निमित्त और राग से पार है। मुनि को ऐसे स्वभाव की श्रद्धा सहित चारित्र होता है। अन्तर स्वभाव की श्रद्धा-ज्ञान और आनन्द की रमणता ही मुनि की स्तुति है- केवली की स्तुति है। विकल्प उठना वह केवली की स्तुति नहीं है। इन्द्रियों (द्रव्य इन्द्रियों) से पार, खण्ड-खण्ड (भाव) इन्द्रियों से पार और इन्द्रियों के विषयों से पार आत्मा है- ऐसा भान करने वाला जितेन्द्रिय केवली भगवान की स्तुति करता है। यहाँ आचार्य भगवान मुनि की स्तुति करते हैं कि मैं शुद्धभाव सहित मुनि को वंदन करता है। वस्तुतः गुण को वंदन होता है; परन्तु (मात्र) नग्नदशा या शुभराग वंदन योग्य नहीं है।

कोई कहे कि बाह्य में वस्त्र-पात्र हो; परन्तु अन्तर में निर्ग्रन्थ दशा हो गई है?

समाधानः ऐसा नहीं हो सकता। परन्तु यदि बाह्य में नग्नदशा हुई है और अन्तर में स्वभाव दृष्टि नहीं हुई तो वह भी वंदन योग्य नहीं है। देहादिक वंदन योग्य नहीं है, गुण वंदन योग्य है। यहाँ गुण सहित वंदन है। गृहस्थपने का वेष छोड़कर, तप धारण करके मुनि होते हैं। गृहस्थपने का भाव छोड़ते हैं- यह उपचार मात्र है। वस्तुतः तो आनन्दकन्द स्वभाव में लीन होने पर गृहस्थपने का भाव छूट जाता है और वस्त्र छूट जाते हैं- ऐसे मुनि को तथा उनके शीलगुण, ब्रह्मचर्य, सम्यक्त्व सहित शुद्धभावरूपदशा को वंदन करता हूँ।

महाशील शब्द से यहाँ शील के उत्तर गुण लेना, अन्तर निर्मलदशा समझना। गुण

www.vitragvani.com

शब्द से अन्तर गुण समझना। अट्ठाईस मूलगुण तो आस्रव है, वे वंदन योग्य नहीं हैं। जो ब्रह्मचर्य, सम्यक्त्व सहित शुद्धभाव से संयुक्त हो उसे वंदन करते हैं। निमित्त से धर्म मानने वाले, व्यवहार से निश्चय होता है- ऐसी दृष्टि वाले तो स्वभाव से पराङ्मुख है। जो व्यवहार से लाभ मानता है उसकी व्यवहार दृष्टि नहीं मिटेगी। मुनि का झुकाव स्वभाव की तरफ है, व्यवहार की तरफ मुनि का झुकाव नहीं है।

यहाँ 'सिद्धिगमनम्' मोक्षगमन लिखा है। इसका अर्थ पंचमकाल में मोक्षगमन है- ऐसा अर्थ नहीं है। यहाँ तात्पर्य यह है कि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप मोक्षमार्ग का फल मोक्ष है। यहाँ पंचमकाल या चौथे काल की बात नहीं। पंचमकाल के मुनि कहते हैं कि यहाँ मोक्ष की तरफ गति है, स्वभाव की एकाग्रता में गमन है। स्वर्ग में जाने पर भी उस तरफ गमन नहीं है। वह व्यवहार है, ज्ञान का ज्ञेय है। अन्तरस्वभाव की एकाग्रता से मोक्षगमन है। बीच में व्यवहार आता है, उसका फल स्वर्ग आयेगा- यह बात गौण है। पंचमहाव्रतों की तरफ मुनि का झुकाव नहीं है। मुनि का झुकाव पूर्णानन्द प्रभु की तरफ है, व्यवहार की तरफ झुकाव नहीं है। जैसे सोने पर गेरूँ लगाकर चमक चढ़ाते हैं; उसीप्रकार (मुनि) शुद्ध चिदानन्द स्वभाव में चमक चढ़ाते हैं और निर्विकारी दशा व्यक्त करते हैं, आनन्द में रमते है- ऐसे मुनि का झुकाव स्वभाव की तरफ है अर्थात् मोक्ष की तरफ झुकाव है; परन्तु व्यवहार की तरफ झुकाव नहीं है- ऐसे मुनि को मैं वंदन करता हूँ। निमित्त तथा व्यवहार से लाभ होगा- ऐसा मानने वाले की दृष्टि पर की तरफ है, स्वभाव की तरफ नहीं। उसको 'निगोदगमनम्' अर्थात वह निगोद तरफ जायेगा। (मुनि को) अपूर्णदशा में व्यवहार आता है, उसको गौण करके उसकी तरफ झुकाव नहीं है। क्या (मुनि को) पुण्य तथा व्यवहार की तरफ झुकाव है? नहीं, पंचमकाल के मुनि होने पर भी उनका झुकाव स्वभाव सन्मुख है। नग्नदशा होती है, व्यवहार होता; परन्तु उस तरफ झुकाव नहीं है। उनका गमन तो आनन्दकन्द स्वभाव की तरफ है, मोक्ष तरफ गमन है। जो वस्त्र-पात्र सहित मुनिपना मानते हैं उनकी तो बात ही नहीं है, उनका तो निमित्त भी सच्चा नहीं है। परन्तु बाह्य निमित्त नग्नदशा सच्ची कब? जिसका झुकाव अन्तर स्वभाव के सन्मुख है और निमित्त तरफ झुकाव नहीं है, उसके निमित्त सच्चा कहलाता है। मुनि के वस्त्र-पात्र

www.vitragvani.com

आदि निमित्त नहीं है, निमित्त तो नग्नदशा है; तथापि नग्नदशा की तरफ उनका झुकाव नहीं है। अहो! कुन्दकुन्दाचार्य देव तो आचार्य पद में हैं, पंचपरमेष्ठी पद में आते हैं।

श्रीमद् राजचन्द्र जी कहते हैं कि- हे कुन्दकुन्दादि आचार्यो! आपके वचन भी इस पामर को स्वरूपानुसंधान में उपकारी हुए हैं, इसलिये मैं आपको वंदन करता हूँ। यहाँ 'आदि' कहने से दिगम्बर मुनि समझना। आचार्य, उपाध्याय और साधु- तीनो मोक्षमार्गी है, उन्हें वंदन किया है। वे सब सिद्धिगमन में है। आचार्य भगवान को शास्त्र लिखने का विकल्प आया है, तो भी उनका झुकाव राग और निमित्त की तरफ नहीं है, स्वभाव की तरफ झुकाव है। इसलिये कहते हैं कि मुनि का झुकाव स्वभाव तरफ होता है, परन्तु विकल्प तरफ नहीं- उन्हें मैं वंदन करता हूँ। राग आता है, शास्त्र की रचना होती है; परन्तु वह मेरा कर्तव्य नहीं है। स्वभाव की तरफ झुकाव दर्शन शुद्धि है और व्यवहार व निमित्त की तरफ झुकाव मिथ्यात्व की पुष्टि है। मिथ्यात्व की पुष्टि वाला साधु नहीं है तथा सम्यग्दृष्टि भी नहीं है। कुन्दकुन्दाचार्य अपने समय के महान आचार्य थे। कविवर पण्डित वृन्दावनदासजी कहते है कि-

"हुए न, है न, होयगें, मुनिन्द्र कुन्दकुन्द से।"

कुन्दकुन्दाचार्य देव क्या कहते है ?- यह मूढ़ जीव नहीं जानता। यहाँ कहा है कि कुन्दकुन्दाचार्य के समान न कोई थे, न हैं और न होंगे- ऐसे कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि नग्नदशा की ओर मेरा ज़ोर-झुकाव नहीं है, अट्ठाईस मूलगुण पालन की तरफ मेरा ज़ोर नहीं है; मेरा ज़ोर तो स्वभाव तरफ है। इस प्रकार दिगम्बर मुनियों का झुकाव स्वभाव की तरफ है- ऐसा बताते हैं। जो मुनि साधक है, जिनका झुकाव पूर्ण शुद्धता की और है उन्हें मैं वंदन करता हूँ। जो व्यवहार अथवा निमित्तादि से लाभ मानते हैं उन्हें मैं वंदन नहीं करता।

दर्शनपाहुड़ गाथा- 29

आगे कोई आशङ्का करता है कि- संयमी को वंदने योग्य कहा तो समवसरणदि विभूति सहित तीर्थंकर हैं वे वंदने योग्य हैं या नही? उसका समाधान करने के लिये गाथा कहते हैं कि- जो तीर्थंकर परमदेव हैं वे सम्यक्त्वसहित तपके माहात्म्य से तीर्थंकर पदवी पाते हैं वे भी वंदने योग्य हैं:-

चउसट्ठि चमरसहिओ चउतीसहि अइसएहिं संजुत्तो।
अणवरबहुसत्तहिओ कम्मक्खयकारणणिमित्तो ।।29।।

चतुःषष्टिचमरसहितः चतुस्त्रिंशद्भिरतिशयैः सुंयुक्त।
अनवरतबहुसत्त्वहितः कर्मक्षयकारणनिमित्तः ।।29।।

हिन्दी पद्यानुवादः

चौसठ चमर चौतीस अतिशय सहित जो अरहंत हैं।
वे कर्मक्षय के हेतु सबके हितैषी भगवन्त हैं।।29।।

अर्थः- जो चौसठ चँवरों से सहित हैं, चौतीस अतिशय सहित हैं, निरन्तर बहुत प्राणियों का हित जिनसे होता है ऐसे उपदेश के दाता हैं, और कर्मके क्षय का कारण हैं ऐसे तीर्थंकर परमदेव हैं वे वंदने योग्य हैं।

भावार्थः- यहाँ चौसठ चँवर चौतीस अतिशय सहित विशेषणों से तो तीर्थंकर का प्रभुत्व बताया है और प्राणियों का हित करना तथा कर्मक्षय का कारण विशेषणसे दूसरे का उपकार करनेवालापना बताया है, इन दोनों ही कारणों से जगत में वंदने पूजने योग्य हैं। इसलिये इस प्रकार भ्रम नहीं करना कि- तीर्थंकर कैसे पूज्य हैं, यह तीर्थंकर सर्वज्ञ वीतराग हैं। उनके समवसरणादिक विभूति रचकर इन्द्रादिक भक्तजन महिमा करते हैं। इनके कुछ प्रयोजन नहीं है, स्वयं दिगम्बरत्व को धारण करते हुए अंतरीक्ष तिष्ठते हैं ऐसा जनना।।29।।

गाथा- 29 पर प्रवचन

अब यहाँ कोई आशंका करता है कि- संयमी वंदन योग्य है; परन्तु तीर्थंकर के समवसरण आदि विभूति है, परिग्रह बहुत है तो वे वंदन योग्य है या नही?

www.vitragvani.com

समाधानः- अभी अपरिग्रह दृष्टि हुई तब तो सम्यग्दर्शन हुआ है और सर्वथा परिग्रह छूटने के पश्चात् चारित्र प्रगट हुआ है, तत्पश्चात् केवलज्ञान दशा हुई है और वहाँ तीर्थंकर नामकर्म का उदय आया है, जिससे बाह्य समवसरण आदि विभूति होती है। (तथापि वे वंदन योग्य ही है) देखो! यहाँ यह आशंका की है कि जैसी विभूति तीर्थंकर के होती है वैसी अन्य के नहीं होती, तो वे वंदन योग्य है या नही?

आत्मा का भान होने के बाद शुभराग में तीर्थंकर नामकर्म बंध गया है, परन्तु मुनिपद में शुभराग की तरफ झुकाव नहीं है, तो केवलज्ञान होने पर बाह्य संयोगों की तरफ झुकाव हो- ऐसा नहीं होता। जब दृष्टि (सम्यग्दर्शन) में ही प्रवृत्ति की तरफ झुकाव नहीं है तो केवलज्ञानी का झुकाव संयोगों की तरफ हो- यह तो हो ही नहीं सकता। (अतः वे वंदनीय ही है।)

भगवान तीर्थंकर कैसे हैं? तीर्थंकर चौसठ चँवर सहित हैं। खम्मा प्रभु! खम्मा प्रभु!! - ऐसा देव कहते हैं; परन्तु यह सब पुण्य प्रकृति का फल है।

कोई कहे कि हमें भी मुनिदशा में वस्त्र पुण्य प्रकृति के फल में मिला है- इसमें क्या आपत्ति है?

समाधानः- वहाँ वस्त्र के प्रति राग उत्पन्न हुआ है, मुनिपने में वैसा राग नहीं होता। पुण्य से बाह्य संयोग मिलते है; परन्तु उन्हें भोगने का भाव पाप है। अज्ञानी पुण्य के फल को मीठा कहता है। उन्हें भोगने का भाव पाप है, पुण्य नहीं।

कोई कहे कि तीर्थंकर को छद्मस्थदशा में कर्म के कारण भोगावली-भोग सामग्री के बीच रहना पड़ता है, अथवा केवली भगवान को चार अघाति कर्मों के कारण रहना पड़ता है?

समाधानः- नहीं, कर्म के कारण नहीं रहना पड़ता। अज्ञानी को कर्म ही दिखते हैं, आत्मा भासित नहीं होता। देवगण तीर्थंकर के चौसठ चँवर ढोलते हैं- ऐसी बाह्य विभूति होने पर भी आशंका नहीं करना; क्योंकि भगवान वीतराग है। चँवर आदि ढोलकर तो देव अपने भाव करते हैं।

www.vitragvani.com

भगवान की वाणी हितकारी है। वहाँ वाणी तो वाणी के कारण निकलती है, भगवान उसके कर्त्ता नहीं है। जैसा केवलज्ञान में देखा, अथवा छह द्रव्यों का जैसा स्वरूप है, वैसी वाणी निकलती है। वह वाणी छह द्रव्य, पंचास्तिकाय, निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध आदि का सही स्वरूप बताती है, तो उस वाणी पर आत्मा का प्रभाव है न? नहीं, वाणी तो वाणी की योग्यता से निकलती है। उस वाणी से शिष्य का निरन्तर हित होता है। अर्थात् शिष्य लक्ष्य करता है कि जैसे भगवान सर्वज्ञ हुए हैं वे आत्मा में से हुए है और मैं भी आत्मा हूँ। इसप्रकार स्व लक्ष्य करके अपना हित करता है। अतः भगवान की वाणी को हितकारी कहते हैं। यद्यपि निमित्त (वाणी) से हित नहीं होता; परन्तु हित करने वाला स्वयं जागृत होता है तब (वाणी से) हित हुआ- ऐसा कहा जाता है। इसप्रकार भगवान उपदेशदाता हैं।

भगवान अन्य के कर्म क्षय का निमित्त हैं- यह भी व्यवहार का कथन है। बहुत जीव भगवान की वाणी सुनने आते हैं; परन्तु जो स्वयं समझता है उसके लिये वाणी को निमित्त कहा जाता है और उसके कर्म क्षय का कारण है। इस प्रकार तीर्थंकर परमदेव वंदन योग्य है।

भावार्थ यह है कि यहाँ चौसठ चँवर तथा चौतीस अतिशय सहित तीर्थंकर का प्रभुत्व बताया है, वह निमित्त का प्रभुत्व है। आत्मा के प्रभुत्व गुण के कारण आत्मा की प्रभुता प्रगटी है; परन्तु तीर्थंकर के ऐसे (बाह्य) अतिशय है, अन्य के नहीं- इसकारण तीर्थंकर का प्रभुत्व बताया। वे प्राणियों का हित करने वाले हैं, तथा कर्म क्षय का कारण है- ऐसे कारण विशेष से भगवान उपकार करने वाले हैं यह व्यवहार का कथन है। भगवान ने आत्मा का स्वरूप बताया, वैसा शिष्य ने जाना और वह स्वयं धर्म दशा प्रगट करता है उसमें भगवान का उपदेश निमित्त है- इसकारण भगवान उपकार करने वालें हैं- ऐसा कहा है। इसप्रकार दोनो कारणों से भगवान जगत में पूजने - वंदन करने योग्य है। ऐसी पुण्य प्रकृति सर्वज्ञ के सिवाय अन्य के नहीं होती, इसलिये जगत में पूज्य है। अतः भ्रम नहीं करना कि भगवान क्यों पूज्य है। समवसरण की रचना होने के पश्चात् इन्द्रों को महिमा आती है कि अहो! यह

www.vitragvani.com

समवसरण भगवान के पुण्य के बिना नहीं हो सकता। तीर्थंकर देव तो सर्वज्ञ वीतराग हैं। उनकी समवसरणादि विभूति की रचना करके इन्द्रादि भक्तजन महिमा करते हैं, भगवान को समवसरण से कुछ प्रयोजन नहीं है। वे तो दिगम्बरत्व को धारण करके रहे हुए हैं, उनके शरीर के ऊपर परिग्रह नहीं होता। तथा कोई कहे कि यह समवसरणादिक होते ही नहीं तो यह बात मिथ्या है।

कोई कहे कि यह सब बातें मात्र अलंकार के लिये की है, तो यह बात भी खोटी है। जहाँ तीर्थंकर पुण्य प्रकृति है वहाँ ऐसी समवसरण की रचना होती है, देव चँवर ढोलते हैं तथापि निष्परिग्रहपने का अभाव नहीं होता। समवसरण की रचना बाहर में होती है- ऐसा जानना ।

Shree kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

दर्शनपाहुड़ गाथा- 30

आगे मोक्ष किससे होता है सो कहते हैं:-

णाणेण दंसणेण य तवेण चरियेण संजमगुणेण।
चउहिं पि समाजोगे मोक्खो जिणसासणे दिट्ठो।।30।।

ज्ञानेन दर्शनेन च तपसा चारित्रेण संयमगुणेन।
चतुर्णामपि समायोगे मोक्षः जिनशासने दृष्टः ।।30।।

हिन्दी पद्यानुवादः

ज्ञान दर्शन चरण तप इन चार के संयोग से।
हो संयमित जीवन तभी हो मुक्ति जिनशासन विषैं।।30।।

अर्थः- ज्ञान, दर्शन, तप और चारित्र से इन चारों का समायोग होनेपर जो संयमगुण हो उससे जिन शासन में मोक्ष होना कहा है ।।30।।

गाथा- 30 पर प्रवचन

अब कहते हैं कि मोक्ष किस प्रकार होता है-

भगवान आत्मा ज्ञान की मूर्ति है, उसका ज्ञान करके तथा ज्ञान की रुचि करके, ज्ञान की उग्रता तथा स्वभाव में लीनता करके मोक्षदशा होती है। अकेले सम्यग्दर्शन से मोक्ष नहीं होता। मैं पूर्ण शुद्ध हूँ- ऐसी ज्ञान में प्रतीति वह सम्यग्दर्शन है, ज्ञान का ज्ञान में वेदन वह सम्यग्ज्ञान है, ज्ञान में उग्रदशा वह तप है और ज्ञान में रमणता वह चारित्र है। इसप्रकार (दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप) चारों की एकता से मोक्षदशा होती है। इसप्रकार जैन शासन में मोक्ष कहा है। निमित्त बताया है; परन्तु निमित्त से मोक्षदशा नहीं होती। उक्त चारों की एकता से पूर्ण शुद्धदशा होती है।

दर्शनपाहुड़ गाथा- 31

आगे इन ज्ञान आदि के उत्तरोत्तर सारपणा कहते हैं:-

णाणं णरस्स सारो सारो वि णरस्स होइ सम्मत्तं।
सम्मत्ताओ चरणं चरणाओ हाइ णिव्वाणं।।31।।

ज्ञानं नरस्य सारः सारः अपि नरस्य भवति सम्यक्त्वम्।
सम्यक्त्वात् चरणं चरणात् भवति निर्वाणम्।।31।।

हिन्दी पद्यानुवादः

ज्ञान ही है सार नर का और समहित सार है।
सम्यक्त्व से हो चरण अर चारित्र से निर्वाण है।।31।।

अर्थः- पहिले तो इस पुरुष के लिये ज्ञान सार है क्योंकि ज्ञानसे सब हेय-उपादेय जाने जाते हैं फिर उस पुरुष के लिये सम्यक्त्व निश्चय से सार है क्योंकि सम्यक्त्व बिना ज्ञान मिथ्या नाम पाता है, सम्यक्त्व से चारित्र होता है क्योंकि सम्यक्त्व बिना चारित्र भी मिथ्या ही है, चारित्र से निर्वाण होता है।

भावार्थः- चारित्र से निर्वाण होता है और चारित्र ज्ञानपूर्वक सत्यार्थ होता है तथा ज्ञान सम्यक्त्वपूर्वक सत्यार्थ होता है इस प्रकार विचार करने से सम्यक्त्व के सारपना आया । इसलिये पहिले तो सम्यक्त्व सार है पीछे ज्ञान चारित्र सार हैं। पहिले ज्ञान से पदार्थो को जानते हैं अतः पहिले ज्ञानसार है तो भी सम्यक्त्व बिना उसका भी सारपना नहीं है, ऐसा जानना ।।31।।

गाथा- 31 पर प्रवचन

अब ज्ञान आदि का उत्तरोत्तर सार कहते हैं।

प्रथम तो सम्यग्ज्ञान मनुष्य की शोभा अथवा सार है। हीरा-माणिक से शोभा नहीं है। आत्मा शुद्ध चिदानन्द है, उसका ज्ञान करना ही सार है। आत्मा चिद्धन है, उसका ज्ञान करना सार है।

कोई पूछता है कि - आत्मा दिखता तो नहीं है न?

समाधानः-घट पटादि तू जानता, उनकी थिति को मान।
जाननहार न मानता, कहिए कैसा ज्ञान।।

www.vitragvani.com

आत्मा की शंका करे, आत्मा स्वयं ही आप।
शंका का करनार खुद, अचरज यही अमाप।।

श्रीमद्राजचन्द्र आत्मसिद्धि

शरीर है, कुटुम्ब है- ऐसा किसने जाना? किसमें जाना? आत्मा जानता है, पुण्य-पाप नहीं जानते हैं। आत्मा जाननहार है; इसलिये ज्ञान को सार कहते हैं। ग्रहण करने योग्य क्या है और छोड़ने योग्य क्या है- इसे ज्ञान जानता है। रागादि छोड़ने लायक है और स्वभाव अंगीकार करने लायक है, निमित्त भिन्न है- इसप्रकार ज्ञान से हेय-उपादेय का पता पड़ता है। आत्मा विकार और संयोग से रहित है- ऐसा ज्ञान करना सम्यग्ज्ञान है।

तथा सम्यक्त्व निश्चय से आत्मा का सार है; कारण कि सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान मिथ्या नाम पाता है। आत्मा स्वयं शुद्ध चिदानन्द है- ऐसे स्वभाव सन्मुख दृष्टि ही सार है। मेरी प्रभुता मेरे में पड़ी है। पर्याय में पामरता क्षणिक है, निमित्त प्रथक् काम करता है, आत्मा ज्ञानानन्द स्वरूप है- ऐसी प्रतीति ही सार है। समकित रहित ज्ञान मिथ्याज्ञान है। निज स्वभाव में अन्तर्मुख ढलने से कल्याण होता है- ऐसी प्रतीति और दृष्टि बिना ज्ञान व्यर्थ है। पाँच-पचास लाख रूपये इकट्ठे करना, प्रतिष्ठा बनाना, अथवा साधु होकर बड़ी इज्जत जमाना, बहुत मनुष्यों को मदद करता हूँ- ऐसा मानना इत्यादि में कुछ सार नहीं है। मैं वर्तमान निमित्त नहीं, वर्तमान पुण्य-पाप नहीं, वर्तमान अल्पज्ञता नहीं; मैं तो त्रिकाल ज्ञानस्वरूप हूँ। जो शान्ति, सुख और स्वतन्त्रता प्रगट करना चाहता हूँ वह अन्तर में भरी है। आत्मा पूर्ण शुद्ध कारण है, उससे सम्यग्दर्शन कार्य प्रगट होता है। ऐसे कारण स्वभाव के सन्मुख हुए बिना प्रतीति नहीं होती।

ऐसे सम्यक्त्व से चारित्र होता है। अमुक आहार-पानी छोड़े तो चारित्र होता है- ऐसा नहीं है। 'स्वयं परमात्मा है'- उसे कारण बनावे तो सम्यग्दर्शन प्रगटने से चारित्र प्रगट होता है। शुभराग को कारण बनाओ, ज्ञान का उघाड़ प्रगट करो तो कार्य होगा- ये सब बातें निरर्थक हैं। मेरा शुद्धस्वभाव उपशांतरस का सागर है- ऐसी प्रतीति बिना

www.vitragvani.com

सम्यग्दर्शन नहीं होता और न चारित्र होता है। बाहर की मुद्रा चारित्र का कारण नहीं है और न अट्ठाईस मूलगुणों का पालन चारित्र का कारण है। इसलिये सम्यक्त्व बिना चारित्र मिथ्या है। अट्ठाईस मूलगुणों का पालन करे; परन्तु यथार्थ प्रतीति बिना चारित्र नहीं होता।

तथा चारित्र से निर्वाण होता है। चारित्र सम्यग्दर्शन से होता है और सम्यग्दर्शन स्वभाव के आश्रय से होता है। व्यवहार आदि (सम्यक्त्व के) साधन नहीं है। स्वभाव सन्मुख दृष्टि हुए बिना समकित नहीं होता और समकित बिना चारित्र नहीं होता तथा चारित्र बिना मोक्ष नहीं होता। इसलिये स्वभाव सन्मुख झुकाव करके सम्यग्दर्शन प्रगट करना ही सार है।

चारित्र से निर्वाण होता है और चारित्र ज्ञानपूर्वक सत्यार्थ होता है। ज्ञान सम्यक्त्व पूर्वक सत्यार्थ होता है- ऐसा विचारने पर सम्यक्त्व सार है। समकित बोधि ा बीज है, उसका कारण आत्मा है। उसमें से वृद्धिगत होकर केवलज्ञान होता है। इसलिये प्रथम समकित सार है। पश्चात् ज्ञान, चारित्र सार है।

भगवान आत्मा पूर्ण शुद्ध चिदानन्द है- ऐसी दृष्टि बिना ध्यान नहीं होता। शरीर, संयोग, राग और अल्प पर्याय में लाभ नहीं है, लाभ अन्तर में है- ऐसी प्रतीति के बिना ध्यान नहीं होता। पहले सम्यग्दर्शन सार है, पश्चात् ज्ञान-चारित्र सार है। इसलिये प्रथम, अपने में विशेषता है, रागादि में लाभ नहीं है- ऐसी स्वरूप की महिमा आवे तो सम्यग्दर्शन प्राप्त करने का ध्यान प्रगट होता है। निमित्त, राग और अल्पज्ञता में परिपूर्णता नहीं है, परिपूर्णता स्वभाव में है- इसप्रकार स्वभाव की तरफ एकता बिना सम्यग्दर्शन नहीं होता और सम्यग्दर्शन बिना चारित्र नहीं होता।

लोग कहते हैं कि कंचन, कामिनी और कुटुम्ब को छोड़े तो चारित्र होता। वस्तुतः ऐसा कथन अज्ञानी का है।

क्रमबद्धपर्याय का नियम तो यह है कि वर्तती पर्याय की दृष्टि निमित्त तरफ है, उसकी दिशा बदलकर स्वभाव की तरफ झुकाव कर कि मैं ज्ञानानन्द स्वभाव हूँ- ऐसा निर्णय करना ही पुरुषार्थ है इसमें संदेह नहीं है। स्वभाव सन्मुख होने पर ही यह

www.vitragvani.com

निर्णय होता है कि सभी पदार्थों की पर्याय क्रमसर होती हैं। यही समकित है। इसप्रकार सम्यग्दर्शन होने के बाद चारित्रदशा होती है। अज्ञानी कहता है कि पहले दीक्षा लो, फिर समकित हो जाएगा। जबकि यहाँ कहते हैं कि समकित होने पर सम्यग्ज्ञान होगा और चारित्रदशा होगी। पहले सम्यक्त्व सार है फिर ज्ञान और चारित्र सार है।

कोई कहे कि क्या अशुभ में से शुद्धदशा आती है? शुद्धदशा तो शुभ में से आती है; अतः पहले तो शुभ चाहिये न?

समाधानः- नहीं, पहले सम्यक्त्व सार है। आत्मा त्रिकाल ज्ञानस्वरूप है, उसका ज्ञान करना वह विद्या "शा विद्या या विमुक्तये" है। जिस विद्या से मुक्त दशा मिलती है उसे विद्या कहते हैं। अज्ञानी बाहर से विद्या हुई मानता है। आत्मा का सम्यग्दर्शन होवे तो (ज्ञान) सच्ची विद्या नाम पाता है। प्रथम ज्ञान से पदार्थ का ज्ञान होता है। निश्चय- व्यवहार, द्रव्य-गुण-पर्याय का ज्ञान होता है; परन्तु सम्यक्त्व बिना उसमें सारपना नहीं है- ऐसा जानना। इसी अर्थ को आगे दृढ़ करते हैं।

दर्शनपाहुड़ गाथा- 32

आगे इसी अर्थ को दृढ़ करते हैं:-

णाणम्मि दंसणम्मि य तवेण चरिएण सम्मसहिएण।
चउण्हं पि समाजोगे सिद्धा जीवा ण सन्देहो ।।32।।

ज्ञाने दर्शने च तपसा चारित्रेण सम्यक्त्वसहितेन।
चतुर्णामपि समायोगे सिद्धा जीवा न सन्देहः ।।32।।

हिन्दी पद्यानुवादः

सम्यकपने परिणमित दर्शन ज्ञान तप अर आचरण।
इन चार के संयोग से हो सिद्ध पद सन्देह ना।।32।।

अर्थः- ज्ञान और दर्शनके होने पर सम्यक्त्व सहित तप करके चारित्रपूर्वक इन चारोंका समायोग होनेसे जीव सिद्ध हुए हैं, इसमें सन्देह नहीं है।

भावार्थः- पहिले जो सिद्ध हुए हैं वे सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप इन चारों के संयोग से ही हुए हैं यह जिनवचन है, इसमें सन्देह नहीं है ।।32।।

गाथा- 32 पर प्रवचन

आज तक जो भी सिद्ध हुए, वर्तमान में हो रहे हैं और भविष्य में होंगे वे सब आत्मा का ज्ञान करके, आत्मा की प्रतीति करके, इच्छा का निरोध करके तथा स्वरूप में लीनता करके - इन चार के समायोग से ही सिद्धदशा को पाते हैं। इसमें संदेह करना योग्य नहीं है। अन्य किसी भी कारण से सिद्धदशा नहीं होती। मुनिपना ही तप है। इसप्रकार चार कारणों से सिद्धदशा प्राप्त करते हैं। क्रियाकाण्ड, व्यवहार अथवा शरीर की क्रिया से सिद्धदशा प्राप्त नहीं करते। यहाँ तप माने इच्छा का अभाव- ऐसा समझना। स्वभाव की उग्रता को तप कहते हैं । महाविदेहक्षेत्र में भी इसी प्रकार सिद्ध होते हैं- इसमें शंका नहीं है।

तात्पर्य यह है कि जो पूर्व में सिद्ध हुए वे सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप- इन चारों के समायोग से हुए हैं। यह वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा का वचन है। इसमें संदेह नहीं है। (तथा वर्तमान में जो सिद्ध हो रहे हैं और जो भी भविष्य में होंगे- सबके लिये एक ही मार्ग है।) बाह्य क्रियाकाण्ड, नग्नदशा अथवा संहनन से मोक्ष होगा- यह बात ही नहीं है।

दर्शनपाहुड़ गाथा- 33

आगे कहते हैं कि- लोक में सम्यग्दर्शनरूप रत्न अमोलक है वह देव दानवोंसे पूज्य है:-

कल्याणपरंपरया लहंति जीवा विसुद्धसम्मत्तं
सम्मद्दंसणरयणं अग्घेदि सुरासुरे लोए।।33।।

कल्याणपरंपरया लभंते जीवाः विशुद्धसम्यक्त्वम्।
सम्यग्दर्शनरत्नं अर्घ्यते सुरासुरे लोके।।33।।

हिन्दी पद्यानुवादः

समकित रतन है पूज्यतम सब ही सुरासुर लोक में।
क्योंकि समकित शुद्ध से कल्याण होता जीव का।।33।।

अर्थः- जीव विशुद्ध सम्यक्त्व को कल्याण की परम्परा सहित पाते हैं इसलिये सम्यग्दर्शन रत्न है वह इस सुरअसुरों से भरे हुए लोक में पूज्य है।

भावार्थः- विशुद्ध अर्थात् पच्चीस मलदोषोंसे रहित निरतिचार सम्यक्त्व से कल्याण की परम्परा अर्थात् तीर्थङ्कर पद पाते हैं इसीलिये यह सम्यक्त्व रत्न लोक में सब देव, दानव और मनुष्योंसे पूज्य होता है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके बंध के कारण सोलहकारण भावना कही हैं उनमें पहिली दर्शनविशुद्धि है वही प्रधान है, यही विनयादिक पंद्रह भावनाओं का कारण है, इसलिये सम्यग्दर्शनके ही प्रधानपना है।।33।।

गाथा -33 पर प्रवचन

अब कहते हैं कि लोक में सम्यग्दर्शनरूपी रत्न अमूल्य है तथा देव-दानवों से पूज्य है। लोगों को हीरा-माणिक आदि की महिमा आती है, सम्यग्दर्शन की महिमा नहीं आती। सम्यग्दर्शन के कारण अनन्त काल की दरिद्रता मिटकर अपनी निधि मिलती है। राग की प्रीति वाले को संयोग की प्रीति है। लाख रूपये दान में खर्च करने से कल्याण होगा। लाखों रूपये खर्च करके इन्दौर से पालीताणा की यात्रा निकाले और बीस-बीस हजार मनुष्य साथ फिरें और सब प्रसन्न हों। तथा तीर्थंकर नामकर्म प्रकृति बंधे तो प्रसन्न हों; परन्तु भाई! यह सब राग है। राग पूज्य नहीं है, सम्यग्दर्शन रत्न

www.vitragvani.com

पूज्य है। इससे अनन्त संसार का नाश होता है और स्वभाव स्थिरता से अवशेष संसार का अभाव होता है; इसलिये सम्यग्दर्शन मूल है। इसकारण वह देव-दानवों द्वारा पूज्य है। स्वभाव की प्रतीति करना सम्यग्दर्शन है, वह पूज्य है।

सम्यग्दर्शन को पूजनीय कहा है। जिस जीव को निश्चय निर्मल सम्यग्दर्शन है वह कल्याण की परम्परा (तीर्थंकर पद) प्राप्त करता है। जिस भाव से तीर्थंकर नामकर्म बंधता है वैसा भाव इस भूमिका में सहज आता है। इसलिये यह सुर-असुर द्वारा पूज्य है। आत्मा के आश्रय से हुई प्रतीति रत्न है। असंख्य देव अथवा असुर हो, परन्तु सम्यग्दर्शन पूज्य है। उस भूमिका में तीर्थंकर पद मिलता है। शुभ विकल्प के कारण तीर्थंकर पद मिलता है। तीर्थंकर को गणधर नमस्कार करते हैं, अतः सम्यग्दर्शन लोक में पूज्य है।

यहाँ दर्शन प्राभृत का अधिकार चलता है। आत्मा शुद्ध आनन्दकन्द है उसकी दृष्टि करके अपरिग्रहदशा प्रगट करे और शरीर में नग्नदशा धारण करे वह जैनदर्शन है। ऐसे जैनदर्शन की प्रतीति करना सबमें सार है। सर्वज्ञ भगवान जैनपरमेश्वर द्वारा कथित आत्मा का स्वभाव और मुनि के योग्य मूलगुण पालने वाला साधक है, उसकी श्रद्धा करना विशुद्ध सम्यक्त्व है। वह कल्याण की परम्परा को प्राप्त करता है- इसकारण सम्यग्दर्शन रत्न है। अतएव सम्यग्दर्शन सुर-असुरों से भरे लोक में पूज्य है।

वह सम्यग्दर्शन कैसा होना चाहिये? पच्चीस दोषों से रहित होना चाहिये । कुदेव, कुगुरु, कुधर्म, का आदर नहीं होना चाहिये, उन्हें मानने वाले की प्रशंसा नहीं करना चाहिये। कुदेव- कुशास्त्र-कुगुरु को मानने वाला जो करता है वह ठीक करता है- ऐसा अनुमोदन नहीं करना चाहिये। कुदेव-कुशास्त्र-कुगुरु और उनके मानने वाले यह छह अनायतन हैं- अधर्म के स्थान हैं। निर्दोष अर्थात् अठारह दोष रहित, क्षुधा -तृषादि रहित देव होते हैं। उनके केवलज्ञान और केवलदर्शन उपयोग में (क्रम) नहीं पड़ता। इससे विरूद्ध मानना दोष है। जो तत्त्व से विरूद्ध कहते हैं वे कुशास्त्र है, उनके भक्त का सहारा नहीं करना बल्कि स्वभाव का सहारा करना अथवा विकल्प उठे तो

www.vitragvani.com

सच्चे देव-शास्त्र-गुरु की भक्ति का अथवा उनके भक्त के प्रति विकल्प उठता है। तथा आठ प्रकार के शंकादि दोष नहीं होना चाहिये। तथा जाति, कुल, लक्ष्मी आदि आठ प्रकार के मद का त्याग होना चाहिये। देवमूढता, गुरु मूढ़ता और लोक मूढ़ता का त्याग होना चाहिये। इसप्रकार छह अनायतन, आठ शंकादि दोष, आठ मद और तीन मूढ़ता- इन पच्चीस दोषों से रहित सम्यग्दर्शन होना चाहिये। जैसे दीवार मे छिद्र पड़े तो दीवार नहीं रहती है- गिर जाती; उसीप्रकार सम्यग्दर्शन में अतिचार के छिद्र पड़ने पर सम्यग्दर्शन नहीं रहता। अतः निरतिचार सम्यग्दर्शन प्रगट करना चाहिये।

इसप्रकार शुद्ध सम्यक्त्व से कल्याण की परम्परा प्रवर्तती है। कारण कि तीर्थंकर पदवी सम्यग्दृष्टि को ही मिलती है- इसकारण सम्यक्त्व सर्व लोक में देव, दानव और मनुष्यों द्वारा पूज्य है। तीर्थंकर प्रकृति के बंध का चकारण सोलहकारण भावना है, उसमें पहली दर्शनविशुद्धि भावना प्रधान है। आत्मभान के बिना सोलहकारण की भावना भावे तो वह आस्रव की भावना है उसे पूर्ण शुद्ध आनन्दकन्द आत्मा का पता नहीं है। सम्यग्दृष्टि को राग आ जाता है उसमें तीर्थंकर प्रकृति बंध जाती है। सोलहकारण भावनाओं में दर्शन विशुद्धि प्रधान है और विनय सम्पन्नता आदि पन्द्रह भावनाओं की कारण है। आत्मभान बिना अकेले देवादि की विनय करे तो वह अकार्यकारी है। तात्पर्य यह है कि सम्यग्दर्शन प्रधान है।

दर्शनपाहुड़ गाथा- 34

अब कहते हैं कि जो उत्तम गोत्र सहित मनुष्यत्वको पाकर सम्यक्त्वकी प्राप्ति से मोक्ष पाते हैं यह सम्यक्त्वका माहात्म्य है:-

लद्धूण य मणुयत्तं सहियं तह उत्तमेण गोत्तेण।
लद्धूण य सम्मत्तं अक्खयसोक्खं च मोक्खं च।।34।।

लब्ध्वा च मनुजत्त्वं सहितं तथा उत्तमेन गोत्रेण।
लब्ध्वा च सम्यक्त्वं अक्षयसुखं च मोक्षं च ।।34।।

हिन्दी पद्यानुवाद:

प्राप्तकर नरदेह उत्तमकुल सहित यह आतमा।
सम्यक्त्व लह मुक्ति लहे अर अखय आनन्द परिणमे।।34।।

अर्थ:- उत्तमगोत्र सहित मनुष्यपना प्रत्यक्ष प्राप्त करके और वहाँ सम्यक्त्व प्राप्त करके अविनाशी सुखरूप केवलज्ञान प्राप्त करते हैं, तथा उस सुखसहित मोक्ष प्राप्त करते हैं।

भावार्थ:- यह सब सम्यक्त्वका माहात्म्य है ।।34।।

गाथा- 34 पर प्रवचन

अब उत्तम गोत्र सहित मनुष्यपने को प्राप्त करके सम्यक्त्व प्राप्त करे तो मोक्ष होता है- यह सम्यक्त्व का माहात्म्य है। ऐसा कहकर बताते हैं कि चाण्डाल आदि नीच गोत्र वाले को मुनिपना नहीं आता, केवलज्ञान नहीं होता। आचार्य भगवान परम्परानुसार कहते हैं कि नीचकुल में जन्मा जीव सम्यक्त्व पाता है; परन्तु केवलज्ञान नहीं पाता।

जीव उत्तम गोत्र सहित मनुष्यपने में सम्यग्दर्शन सहित केवलज्ञान पाता है। यहाँ निमित्त का परिज्ञान कराया है; परन्तु वह है तो केवलज्ञान पाता है- ऐसा नहीं है। उच्चगोत्र और मनुष्यपने बिना मुनिपना और केवलज्ञान नहीं होता- इसप्रकार यहाँ निमित्त बताया है। यद्यपि गोत्र पूजनीय नहीं है; परन्तु चारित्रदशा और केवलज्ञान प्राप्त करने की जाति उच्चगोत्र तथा मनुष्य शरीर होती है- ऐसा वस्तु का स्वभाव है। आचार्य भगवान ने दर्शनपाहुड़ में सत्य का प्रदर्शन किया है, वीतराग का पंथ बताया

www.vitragvani.com

है। उत्तम गोत्रादि के बिना मुनिपना और केवलज्ञान नहीं होता। यद्यपि उत्तमगोत्र और मनुष्यपना तो बहुत बार मिला है; परन्तु जो जीव वहाँ सम्यग्दर्शन प्रगट करता है तो वह केवलज्ञान प्राप्त करता है। अकेले उत्तमगोत्र से नहीं, अकेले मनुष्यपने से नहीं; क्योंकि उत्तमगोत्र तो स्वर्ग में भी होता है। इसलिये उत्तमगोत्र और मनुष्यपना-दोनो बतलाये हैं। दोनो को प्राप्त करके यदि वहाँ जीव सम्यग्दर्शन प्राप्त करे तो केवलज्ञान प्राप्त करता है। उसे अतीन्द्रिय आनन्द की प्राप्ति होती है। इसका यह अर्थ नहीं है कि आचार्य ने संकीर्णता की है। भाई! असत्य को सत्य कह देना विशालता नहीं है। एकेन्द्रिय और पशु को मोक्ष होना कह देना विशालता नहीं है। उत्तमकुल और मनुष्यदशा में केवलज्ञान होना कहना तो वस्तु का स्वरूप है, इसमें संकीर्णता नहीं है।

गोत्र, शरीर मेरा स्वरूप नहीं है। मैं अखण्ड ज्ञान उपयोग स्वरूप हूँ- ऐसा भान करने वाला केवलज्ञान प्राप्त करता है। अकेले उच्चगोत्र और मनुष्यदेह की बात नहीं है। जीव सम्यग्दर्शन सहित चारित्र प्रगट करे तो केवलज्ञान प्राप्त होता है। जिसप्रकार स्त्री को साधुपना नहीं होता; उसीप्रकार चाण्डाल को मुनिपना नहीं होता। श्वेताम्बरमत में स्त्री आदि को मुक्ति होना बताते हैं। वह तो सबको प्रसन्न रखने के लिये लिखा है। यहाँ तो वस्तुस्वरूप बताते हैं।

तात्पर्य यह है कि यह सब (केवलज्ञानादि की प्राप्ति आदि सब) सम्यक्त्व का माहात्म्य है।

दर्शनपाहुड़ गाथा- 35

अब प्रश्न उत्पन्न होता है कि– जो सम्यक्त्व के प्रभाव से मोक्ष प्राप्त करते हैं वे तत्काल ही प्राप्त करते हैं या कुछ अवस्थान भी रहते हैं? उसके समाधानरूप गाथा कहते हैं:--

विहरदि जाव जिणिंदो सहसट्ठसुलक्खणेहिं संजुत्तो।
चउतीसअइसयजुदो सा पडिमा थावरा भणिया ।।35।।

विहरति यावत् जिनेन्द्रः सहस्त्राष्टलक्षणैः संयुक्तः।
चतुस्त्रिशदतिशययुतः सा प्रतिमा स्थावरा भणिता।।35।।

हिन्दी पद्यानुवादः

हजार अठ लक्षण सहित चौंतीस अतिशय युक्त जिन।
विहरें जगत में लोकहित प्रतिमा उसे थावर कहें।।35।।

अर्थः- केवलज्ञान होने के बाद जिनेन्द्र भगवान जबतक इसलोक मे आर्यखंडमें विहार करते हैं तबतक उनकी वह प्रतिमा अर्थात् शरीर सहित प्रतिविम्ब उसको 'थावर प्रतिमा' इस नाम से कहते हैं। वे जिनेन्द्र कैसे हैं? एक हजार आठ लक्षणों से संयुक्त हैं। वहाँ श्रीवृक्ष को आदि लेकर एक सौ आठ तो लक्षण होते हैं। तिल मुसको आदि लेकर नो सौ व्यंजन होते हैं। चौतीस अतिशयों में दस तो जन्मसे ही लिय हुए उत्पन्न होते हैं:- 1. निस्वेदता, 2. निर्मलता, 3. श्वेतरुधिरता, 4. समचतुरस्त्रसंस्थान, 5. वज्रवृषभ नाराच संहनन, 6. सुरूपता, 7. सुगंधता, 8. सुलक्षणता, 9. अतुलवीर्य, 10. हितमितवचन ऐसे दस होते हैं।

घातिया कर्मोके क्षय होने पर दस होते हैं:-

1. शतयोजन सुभिक्षता, 2. आकाशगमन, 3. प्राणिवधका अभाव, 4. कवलाहारका अभाव, 5. उपसर्गका अभाव, 6. चतुर्मुखपना, 7. सर्वविद्याप्रभुत्व, 8. छायारहितत्व, 9. लोचननिस्पंदन रहितत्त्व, 10. केश नखवृद्धिरहितत्व ऐसे दस होते हैं।

देवों द्वारा किये हुए चौदह होते हैं:-

1. सकलार्द्धमागधी भाषा, 2. सर्वजीव मैत्रीभाव, 3. सर्वऋतुफलपुष्प प्रादुर्भाव, 4. दर्पणके समान पृथ्वीका होना, 5. मंद सुगंध पवनका चलना, 6. सारे संसार में आनन्दका होना, 7. भूमिकंटकादिरहित होना, 8. देवों द्वारा गंधोदककी वर्षा होना, 9.

www.vitragvani.com

विहारके समय चरणकमल के नीचे देवों द्वारा सुवर्णमयी कमलों की रचना होना, 10. भूमि धान्यनिष्पत्ति सहित होना, 11. दिशा आकाश निर्मल होना, 12. देवों का आह्वानन शब्द होना, 13. धर्मचक्रका आगे चलना, 14. अष्ट मंगल द्रव्य होना- ऐसे चौदह होते हैं। सब मिलकर चौंतीस होगये।

आठ प्रातिहार्य होते हैं, उनके नामः- 1. अशोकवृक्ष, 2. पुष्पवृष्टि, 3. दिव्यध्वनि, 4. चामर, 5. सिंहासन, 6. छत्र, 7. भामंडल, 8. दुन्दुभिवादित्र- ऐसे आठ होते हैं। ऐसे अतिशय सहित अनंतज्ञान अनंतदर्शन, अनंतसुख, अनंतवीर्य सहित तीर्थंकर परमदेव जबतक जीवोंके सम्बोधन निमित्त विहार करते विराजते हैं तबतक स्थावर प्रतिमा कहलाते हैं। ऐसे स्थावर प्रतिमा कहने से तीर्थङ्कर के केवलज्ञान होनेके बाद अवस्थान बताया है और धातु पाषाणकी प्रतिमा बनाकर स्थापित करते हैं वह इसीका व्यवहार हैं।।35।।

गाथा- 35 पर प्रवचन

केवलज्ञान होने पर तुरन्त ही मोक्ष पाते हैं या थोड़े काल रहते हैं, उसके लिये यह गाथा लिखते हैं। जीव समकित के प्रभाव से केवलज्ञान प्राप्त करता है, तो वह तुरन्त ही मोक्ष पाता है या थोड़े समय तक विचरता है- इसके समाधान स्वरूप यह गाथा है।

जीव उत्तम गोत्र और मनुष्यपने सहित सम्यग्दर्शन प्राप्त करके केवलज्ञान प्राप्त करता है। उस केवलज्ञान को प्राप्त करने के पश्चात् वे जिनेन्द्र भगवान इस लोक में आर्य खण्ड में विहार करते हैं। यहाँ यह बताते हैं कि केवलज्ञान होने के पश्चात् कुछ काल (इस लोक में) रहते हैं। केवलज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् तुरन्त ही मुक्ति पाते हैं अथवा कुछ काल रहते हैं? केवलज्ञान होने के पश्चात् थोड़ा काल रहते हैं। उनके वाणी और शरीर होते हैं- ऐसा बताना है। केवलज्ञान होने के पश्चात् तुरन्त ही छूट जाए- ऐसा नहीं होता। यहाँ यह बात तीर्थंकर भगवान की मुख्यता से ली है। केवलज्ञान होने के पश्चात केवली परमात्मा को देह, वाणी रहती है या तुरन्त ही मोक्ष हो जाता है- इसका स्पष्टीकरण कर रहे हैं। भगवान इस लोक में आर्यखण्ड में बिहार करते हैं तब शरीर सहित प्रतिबिम्ब को थावर प्रतिमा कहते हैं।

www.vitragvani.com

अब जिनेन्द्र भगवान के अतिशयों की बात करते हैं-

कैसे हैं जिनेन्द्र ? एक हजार आठ लक्षण वाले हैं। वहाँ श्रीवृक्ष को आदि लेकर एक सौ आठ लक्षण है। तथा तिल-मुसको आदि लेकर नौ सौ व्यंजन हैं। तथा चौतीश अतिशयों में - दस जन्म से है। मनुष्य देह तथा उच्च गोत्र के उपरांत देह के लक्षण बताते हैं-

(1) तीर्थंकर को जन्म से पसीना नहीं होता। तीर्थंकर के जन्म से ही निहार नहीं होता। वे आहार-पानी लेते हैं, परन्तु उनके मल-मूत्रादि नहीं होते- ऐसा तीर्थंकर का शरीर होता है। तीर्थंकर के माता-पिता को भी निहार नहीं होता। श्वेताम्बर में तीर्थंकर के छह माह तक दस्त (पेचिश) होना बताते हैं और भगवान उसकी दवा लेते हैं ऐसा मानते हैं- यह सत्य से विरूद्ध है।

(2) भगवान का शरीर निर्मल होता है।

(3) जन्म से ही सफेद खून होता है। भक्तामर स्तोत्र में आचार्य मानतुंग कहते हैं कि - हे नाथ! आपकी पवित्रता तो परिपूर्ण है ही, परन्तु पुण्य भी इतना उग्र है कि जगत के सभी शान्तरस के परमाणु आपके शरीर में आ गये हैं।

(4) समचतुरस्त्रसंस्थान होता है।

(5) वज्रवृषभ नाराच संहनन होता है।

(6) भगवान के सुरूपता ऐसी है कि जन्म होते ही इन्द्र उनके रूप को एक हजार आठ आँखों से देखता है- ऐसा निमित्त तीर्थंकर के होता है। जो निमित्त का निषेध करता है उसको तीर्थंकर की पहिचान नहीं है।

(7) भगवान के जन्म से सुगन्धितता होती है, तो फिर उन्हें दस्त (पेचिश) कैसे हो सकती है ?

(8) भगवान के शरीर में सुलक्षण होते हैं।

(9) शरीर का बल अतुल होता है। तथा

(10) उनकी वाणी हितकारी और मर्यादित होती है। ऐसी वाणी भाषावर्गणा की सहज योग्यता से होती है, उसमें भगवान का पुण्य निमित्त होता है।

www.vitragvani.com

तथा घाति कर्मों का नाश होकर दस अतिशय निम्न प्रकार होते हैं-

(1) शतयोजन सुभिक्षताः- सौ योजन में दुष्काल, अकाल अथवा अतिवृष्टि नहीं होती। अज्ञानी कहता है कि देखो! भगवान के निमित्त की बलवत्तता है। परन्तु यह बात मिथ्या है। उससमय के जीव की तथा परमाणुओं की वैसी ही योग्यता होती है। भगवान का अतिशय तो उसमें निमित्तमात्र है। यदि अतिशय के कारण पर में असर होता हो तो वह निमित्त नहीं रहकर उपादान हो जाए।

(2) आकाश गमनः- भगवान अध्धर आकाश में चलते हैं। श्वेताम्बर कहते हैं कि भगवान नीचे चलते है- यह खोटी बात है।

(3) प्राणिबध का अभावः- विपाकसूत्र में बात आती है कि भगवान के समवसरण के चोक में मनुष्यों का कत्ल होता है उसे गणधर देखते हैं - ऐसा लिखा है, जो कि एकदम मिथ्या है। तीर्थंकर के समीप में ऐसी हत्यायें नहीं होती। तथा गणधर कत्ल देखकर भी आहार लावे- यह भी भूल है। जैसे लोक में प्राणियों का वध होता है वैसे वहाँ नहीं होता। भगवान के समवसरण में हत्या नहीं होती तथा सौ योजन में ऐसा नहीं होता।

(4) कवलाहार का अभावः- भगवान के कवलाहार का अभाव होता है। भगवान के न तो पात्र होते हैं और न आहार होता है। यह बात किसी व्यक्ति विशेष के लिये नहीं; परन्तु सत्य समझने के लिये है। सत्य से विपरीत श्रद्धा नहीं करना। श्वेताम्बर कहते हैं कि भगवान के रोग हुआ और उन्होंने आहार लेने भेजा, तब रेवती श्राविका के यहाँ से आहार लाये और रोग मिट गया- यह बात मिथ्या है।

(5) उपसर्ग का अभावः- भगवान के उपसर्ग का अभाव है। भगवान पर तेजुलेश्या फेंके- ऐसा नहीं होता।

(6) भगवान के चार मुख दिखते हैं।

(7) सर्व विद्या प्रभुत्व है अर्थात् केवलज्ञान हुआ है।

(8) शरीर की छाया नहीं पड़ती।

(9) उनकी आँख नहीं फिरती- पलक नहीं झपकते।

(10) उनके केश तथा नख नहीं बढ़ते।

www.vitragvani.com

तथा देवकृत चौदह अतिशय होते हैं। वस्तुतः तो ये उनके पुण्य के कारण हैं, देव तो निमित्तमात्र है।

(1) सकल अर्धमागधी भाषा होती है।

(2) समवसरण में सभी जीवों के मैत्रीभाव होता है। समवसरण में चूहा-बिल्ली, शेर, गाय आदि के बैरभाव नहीं होता। वहाँ उन जीवों की वैसी योग्यता है उसमें भगवान निमित्त है।

(3) प्रतिदिन छह ऋतुओं के फल-फूल मिलते है। भगवान बिराजमान हो वहाँ बारह महीनो आम पकते हैं।

(4) दर्पण के समान पृथ्वी होती है।

(5) मंद-सुगंधित पवन चलती है।

(6) सर्व लोक में आनन्द वर्तता है।

(7) भूमि कंटकादि से रहित होती है।

(8) देव गंधोदक की वृष्टि करते हैं।

(9) भगवान बिहार करें, वहाँ चरण कमलों के नीचे देव स्वर्ण कमलों की रचना करते हैं।

(10) भगवान बिराजते हैं वह भूमि धान्य निष्पत्ति सहित होती है।

(11) दिशा- आकाश निर्मल होते हैं।

(12) भगवान की वाणी सुनने आओ- ऐसा देव आह्वानन करते हैं।

(13) धर्मचक्र आगे चलता है। और

(14) आठ मंगल द्रव्य होते हैं। इसप्रकार चौतीस अतिशय होते हैं। तथा अष्ट प्रतिहार्य होते हैं, वे इसप्रकार हैं-

(1) अशोकवृक्ष (2) पुष्पवृष्टि (3) दिव्यध्वनि (4) चामर (5) सिंहासन (6) छत्र (7) भामण्डल और (8) दुन्दुभिवादित्र- ये आठ प्रतिहार्य हैं।

इसप्रकार अतिशय सहित अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख और अनन्तवीर्य सहित तीर्थंकर परमदेव जीवों के सम्बोधन निमित्त बिहार करते विचरते हैं, उन्हें स्थावर प्रतिमा कहते हैं। इसप्रकार स्थावर प्रतिमा कहकर केवलज्ञान होने के पश्चात् तीर्थंकर का अवस्थान बतलाया और धातु-पाषाण आदि की प्रतिभा की स्थापना करना व्यवहार है।

दर्शनपाहुड़ गाथा- 36

आगे कर्मोंका नाश करके मोक्ष प्राप्त करते हैं ऐसा कहते हैं:-

बारसविहतवजुत्ता कम्मं खविऊण विहिबलेण स्सं।
वोसट्ठचत्तदेहा णिव्वाणमणुत्तरं पत्ता ।।36।।

द्वादशविधतपोयुक्तः कर्मक्षपयित्वा विधिवलेन स्वीयम्।
व्युत्सर्गत्यक्तदेहा निर्वाणमनुत्तंर प्राप्ताः ।।36।।

हिन्दी पद्यानुवादः

द्वादश तपों से युक्त क्षयकर कर्म को विधिपूर्वक।
तज देह जो व्युत्सर्ग युत, निर्वाण पावें वे श्रमण।।36।।

अर्थः- जो बारह प्रकार के तपसे संयुक्त होते हुए विधि के बलसे अपने कर्मको नष्ट कर 'वोसट्टचत्तदेहा' अर्थात् जिन्होने भिन्न-कर छोड़ दिया है देह ऐसे होकर वे अनुत्तर अर्थात् जिससे आगे अन्य अवस्था नहीं है ऐसी निर्वाण अवस्थाको प्राप्त होते हैं।

भावार्थः- जो तप द्वारा केवलज्ञान प्राप्त कर जब तक विहार करें तबतक अवस्थान रहें पीछे द्रव्य, क्षेत्र, काल-भावकी सामग्रीरूप विधिके बलसे कर्म नष्ट कर व्युत्सर्गद्वारा शरीर को छोड़कर निर्वाण को प्राप्त होते हैं। यहाँ आशय ऐसा है कि जब निर्वाण को प्राप्त होते हैं तब लोकशिखर पर जाकर विराजते हैं वहाँ गमनमें एकसमय लगता है, उस समय जंगम प्रतिमा कहते हैं। ऐसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र से मोक्ष की प्राप्ति होती है, उसमें सम्यग्दर्शन प्रधान है। इस पाहुड़ में सम्यग्दर्शन के प्रधानपनेका व्याख्यान किया है ।।36।।

गाथा- 36 पर प्रवचन

अब कर्मों का नाश करके मोक्ष प्राप्त करते हैं- ऐसा कहते हैं।

सम्यग्दर्शनरूप प्रतीति पूर्वक जिनमुद्रा लेकर केवलज्ञान तथा सिद्धपद को प्राप्त कर लिया। मुनिदशा में बारह प्रकार के तप होते हैं। बारह प्रकार के तप से मुनिराज कर्मों का नाश करते हैं- यह निमित्त का कथन है। भगवान को बारह प्रकार के तप (कर्मक्षय में) निमित्त होते हैं। कर्म तो कर्म के कारण से नष्ट होते है, उसमें तप

www.vitragvani.com

निमित्त हैं। इसप्रकार (मुनिराज ने) कर्मों के अभाव किया है। पश्चात् देह छोड़ते हैं। मोक्ष में देहसहित नहीं जाते। अशरीरी निवार्णपद अनुत्तर पद है, उससे उत्तम पद अन्य दूसरा नहीं है-ऐसी निर्वाणदशा को भगवान प्राप्त करते हैं।

बारह प्रकार के तप से केवलज्ञान नहीं होता; परन्तु स्वरूप में उग्र (लीनतारूप) दशा होने पर किसप्रकार के विकल्प का अभाव किया- यह बताने के लिये बारह प्रकार के तप से (केवलज्ञान) हुआ कहते हैं। भगवान पूर्वदशा में तप करके केवलज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् बिहार करते थे। तत्पश्चात् (अघाति) कर्मों का नाश करके देह छोड़कर निर्वाण को प्राप्त करते हैं।

यहाँ आशय यह है कि निर्वाण को प्राप्त करते हैं तब लोक के अग्रभाग में जाते हैं, वहाँ गमन में एकसमय लगता है उससमय जंगम प्रतिमा कहते हैं।

इसप्रकार सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र से मोक्ष की प्राप्ति करते हैं। वहाँ सम्यग्दर्शन प्रधान है। इस पाहुड़ में सम्यग्दर्शन का प्रधानरूप से व्याख्यान किया है। सम्यग्दर्शन के पश्चात् चारित्र दशा केवलज्ञान और निर्वाण होता है। सम्यग्दर्शन के बिना कोई चीज़ सच्ची नहीं होती।

अब दर्शनपाहुड़ की पूर्णता करते हुए भाषाटीकाकार पण्डित जयचन्द जी छावड़ा ने छन्द बनाया है, जो इसप्रकार है:-

- सवैया छन्द-

मोक्ष उपाय कहयो जिनराज जु सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रा।
तामधि सम्यग्दर्शन मुख्य भये निज बोध फलैं सु चरित्रा।।
जे नर आगम जानि करै पहिचानि यथावत मित्रा।
घातिक्षिपाय रू केवल पाय अधाति हने लहि मोक्ष पवित्रा।।1।।

- दोहा -

नमू देव-गुरु-धर्म कूँ, जिन आगम कू मानि।
जा प्रसाद पायो अमल, सम्यग्दर्शन जानि।।2।।

भगवान तीर्थंकरदेव परम पवित्र दशा को मोक्ष कहते हैं। उसका उपाय

www.vitragvani.com

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है। ये तीनों मिलकर एक मोक्षमार्ग है। उसमें सम्यग्दर्शन मुख्य है। सम्यग्दर्शन होने पर सच्चाज्ञान और सच्चाचारित्र होता है। जो पुरुष भगवान के कहे हुए आगम को जानकर दर्शन-ज्ञान-चारित्र की एकता करता है वह चार धाति कर्मों का नाश करके केवलज्ञान प्राप्त करता है और फिर अघाति कर्मों का नाश करके पवित्र मोक्ष दशा को पाता है।

पण्डित जयचन्दजी कहते हैं कि मैं देव-गुरु-धर्म-शास्त्र को नमस्कार करता हूँ जिनके प्रसाद से मैंने शुद्ध सम्यग्दर्शन को पाया और जाना (सम्यग्ज्ञान प्राप्त किया)। जब 'मैं' शुद्ध चिदानन्द हूँ- ऐसी प्रतीति अन्तर के प्रसाद से प्राप्त होती है तब देव-गुरु-शास्त्र के निमित्त के प्रसाद से प्राप्त हुई- ऐसा कहा जाता है।

इसप्रकार परमपूज्य आचार्य कुन्दकुन्द विरचित
अष्टपाहुड़ ग्रन्थ के प्रथम दर्शनप्राभृत की पण्डित जयचन्दजी छावड़ा कृत

देशभाषामय वचनिका पर

आध्यात्मिक सत्पुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

के दि0 8.7.55 से 8.8.55 तक

हुए गुजराती प्रवचनों का हिन्दी अनुवाद पूर्ण हुआ।।

ॐ

नमः सिद्धेभ्य

सूत्रपाहुड़

यह आत्मा पूर्ण शुद्ध चिदानन्द है- ऐसी श्रद्धारूप सम्यग्दर्शन सहित सम्यग्ज्ञान होता है। अतः यहाँ दर्शनपाहुड़ के पश्चात् भगवान जिनेन्द्रदेव कथित सूत्र (जिनवाणी-सम्यग्ज्ञान के निमित्तरूप सत्शास्त्र) की बात करते हैं।

सर्वप्रथम इस ग्रन्थ की देशभाषामय वचनिकाकार पण्डित जयचन्दजी छावड़ा मंगलाचरण करते हैं।

मंगलाचरण

वीर जिनेश्वरको नमूं गौत्तम गणधर लार।
काल पंचमा आदिमैं भए सूत्रकरतार।। 1 ।।

इसप्रकार मंगल करके श्री कुन्दकुन्द आचार्यकृत प्राकृत गाथा मय सूत्रपाहुड़की देशभाषामय वचनिका लिखते हैः-

अर्थात मैं जिनेन्द्रदेव को नमस्कार करता हूँ तथा गौत्तम गणधर को नमस्कार करता हूँ। पंचमकाल की आदि में सूत्र के कर्त्ता भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव को नमस्कार करता हूँ। उन्होंने सर्वज्ञ की परम्परा से चले आये मार्ग का प्रतिपादन किया है। आचार्य कुन्दकुन्द महाविदेह गये थे, वहाँ सीमंधर प्रभु की धर्मसभा के आठ दिन रहे थे। उनके पाँच नाम थे - (1) पद्मनंदि, (2) कुन्दकुन्द, (3) वक्रगीव्राचार्य, (4) एलाचार्य, (5) गृद्धपिच्छाचार्य । उन्हें कलिकाल सर्वज्ञ कहा जाता है। उन्होंने साक्षात भगवान का उपदेश सुना था।

'पंचास्तिकाय' शास्त्र की टीका करते हुए आचार्य जयसेन लिखते हैं कि - 'कुन्दकुन्दाचार्य महाविदेह में गये थे।' 'दर्शनसार' के कर्त्ता आचार्य देवसेन लिखते हैं कि-

www.vitragvani.com

'जइ पउमणंदिणाहो सीमंधरसामि दिव्वणाणेण।
ण विवोहइ तो समणा कहं सुमग्गं पयाणंति।।

अर्थः- (महाविदेह क्षेत्र के वर्तमान तीर्थंकरदेव) श्री सीमंधर स्वामी से प्राप्त हुए दिव्य ज्ञान द्वारा श्री पद्मनंदिनाथ ने (श्री कुन्दकुन्दाचार्य देवने) बोध न दिया होता तो मुनिजन सच्चे मार्ग को कैसे जानते?

इसप्रकार कुन्दकुन्दाचार्य सीमंधर भगवान के पास गये थे- यह बात शास्त्राधार सिद्ध है। तत्पश्चात् उन्होंने इन शास्त्रों की रचना की है। ये सूत्रकार आचार्यदेव पंचमकाल के आरम्भ में (लगभग 2100 वर्ष पूर्व) हुए हैं- इसप्रकार जिनेन्द्रदेव, गौत्तम गणधर और आचार्य कुन्दकुन्द- इन तीनों को वंदन किया।

इसप्रकार मंगल करके आचार्य कुन्दकुन्द रचित प्राकृत गाथाबद्ध श्री 'सूत्रपाहुड़' की देशभाषामय वचनिका लिखते हैं।

Shree kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

सूत्रपाहुड़ गाथा-1

प्रथम ही श्रीकुन्दकुन्द आचार्य सूत्रकी महिमागर्भित सूत्रका स्वरूप बताते हैः-

अरहंतभासियत्थं गणहरदेवेहिं गंथियं सम्मं।
सुत्तत्थमग्गणत्थं सवणा साहंति परमत्थं।।1।।

अर्हद्भाषितार्थं गंणधरदेवैः ग्रथितं सम्यक्।
सूत्रार्थमार्गणार्थं श्रमणाः साधयंति परमार्थम्।। 1 ।।

हिन्दी पद्यानुवादः

अरहंत-भासित ग्रथित-गणधर सूत्र से ही श्रमणजन।
परमार्थ का साधन करें अध्ययन करो हे भव्यजन ।।1।।

अर्थः- जो गणधरदेवोंने सम्यक् प्रकार पूर्वापर विरोधरहित गूंथा (रचना की) वह सूत्र है। वह सूत्र कैसा है?- सूत्रका जो कुछ अर्थ है उसको मार्गण अर्थात् ढूंढने-जाननेका जिसमें प्रयोजन है और ऐसे ही सूत्रके द्वारा श्रमण (मुनि) परमार्थ अर्थात् उत्कृष्ट अर्थ प्रयोजन जो अविनाशी मोक्षको साधते हैं। यहाँ गाथामें 'सूत्र' इसप्रकार विशेष्य पद नहीं कहा तो भी विशेषणोंकी सामर्थ्यसे लिया है।

भावार्थः- जो अरहंत सर्वज्ञ द्वारा भाषित है तथा गणधरदेवोंने अक्षर पद वाक्यमयी गूंथा है और सूत्रके अर्थको जाननेका ही जिसमें अर्थ- प्रयोजन है ऐसे सूत्रसे मुनि परमार्थ जो मोक्ष उसको साधते हैं। अन्य जो अक्षपाद, जैमिनि, कपिल, सुगत आदि छद्मस्थोंके द्वारा रचे हुए कल्पित सूत्र हैं, उनसे परमार्थकी सिद्धि नहीं है, इसप्रकार आशय जानना ।।1।।

गाथा-1 पर प्रवचन

अरहन्तदेव की दिव्यध्वनि में सूत्र का ऐसा अर्थ है। आत्मा के भानपूर्वक केवलज्ञान होने के बाद भगवान की दिव्यध्वनि निकलती है। उसमें सूत्र का अर्थ कहा है। उसके आधार से गणधरदेव ने सम्यक् प्रकार से पूर्वापर विरोध रहित सूत्र गूँथे हैं। गणधर द्वारा रचित सूत्रों में पूर्वापर विरोध नहीं होता। वर्तमान में (श्वेताम्बर) सम्प्रदाय में भगवान के नाम से रचित पैंतालीस और बत्तीस शास्त्र कहते हैं, उनमें बहुत विरोध है। सभी मनुष्य (सम्प्रदाय) अपने शास्त्र कहते हैं; परन्तु सत् शास्त्र में तो पूर्वापर अविरोध होना चाहिये। सर्वज्ञ भगवान स्वभाव के आश्रय से पूर्ण दशा को प्राप्त हुए हैं- उनके पूर्ण विकास हुआ है। निमित्त और व्यवहार होता है; परन्तु उसके आश्रय से विकास नहीं होता। इसप्रकार पूर्वापर अविरोध होता है।

www.vitragvani.com

सूत्र कैसे हैं? सूत्र में क्या कहा है? श्रमण अर्थात् मुनि जिनकी मुद्रा निर्ग्रन्थ होती है। जिनकी अपरिग्रह दृष्टि है- ऐसे सत् दृष्टिवंत श्रमण अर्थ की शोध करते हैं। सर्वज्ञ परमात्मा के सूत्र में क्या कहा है? इसकी तलाश (खोज) करते हैं। आत्मा परिपूर्ण द्रव्य है। उसकी ज्ञान सामर्थ्य परिपूर्ण है। छह द्रव्य, नौ तत्त्व, पंचास्तिकाय आदि की खोज करते हैं। गणधर द्वारा कथित शास्त्रों में शोधते हैं- इसकारण से मुनि परमार्थ को साधते हैं। कुशास्त्रों में साधने योग्य कुछ नहीं है। सभी कहते हैं कि हमारे शास्त्र सच्चे हैं; परन्तु वे पैंतालीस आदि शास्त्र सच्चे नहीं हैं- गणधर द्वारा रचित नहीं है।

निर्ग्रन्थ मुनि साधु है, उनके पास वस्त्र का तागा भी नहीं है- ऐसे साधु गणधर द्वारा कथित सूत्र के अर्थ का शोधन करके मोक्ष का साधन करते हैं। अन्य कुशास्त्रों को मानने से कभी भी मोक्ष का साधन नहीं होता। गणधरों द्वारा रचित शास्त्रों के अर्थ को विचारकर आत्मा में एकाग्र होने से केवलज्ञान प्राप्त होता है। यहाँ गाथा में 'सूत्र'- ऐसा विशेष पद नहीं है, तथापि विशेषण की सामर्थ्य से ले लेना । धवल, जयधवल, समयसार आदि सर्वज्ञ की सीधी वाणी है। समयसार, प्रवचनसार, नियमसार आदि की टीका में शोध करके सम्यग्ज्ञान में एकाग्र होकर दिगम्बर मुनि मोक्ष का साधन करते हैं।

प्रश्नः- तो फिर पंचमकाल में मोक्ष साध सकते हैं न?

समाधानः- भाई! मुनिजन मोक्ष को ही साधते हैं। (दर्शनपाहुड़) गाथा 27 वीं में "सिद्धि गमनम्" शब्द आया था। आत्मा शुद्ध आनन्दकन्द है- ऐसे भान वाले जीव का गमन मोक्ष की तरफ है- ऐसा यहाँ बताना है। यहाँ यह नहीं बताना है कि पंचमकाल में साक्षात मोक्ष है।

भावार्थः- अरहन्त सर्वज्ञ द्वारा भासित वाणी सूत्र है। समयसार, जयधवल, धवल आदि (शास्त्र) सर्वज्ञ की वाणी अनुसार है। गणधरदेवों ने अक्षर, पद-वाक्यमयी गूंथा है। सूत्र के अर्थ को जानने का ही जिसमें प्रयोजन है (ऐसे सूत्र से) मुनिजन परमार्थरूप मोक्ष को साधते हैं। हमारी प्रतिष्ठा रहे, शास्त्रों को जानकर दुनिया को समझावें, मान रहे- ऐसा प्रयोजन नहीं है; परन्तु मोक्ष का प्रयोजन है। विकल्प आवे और वाणी निकले वह प्रयोजन नहीं है। सूत्र के अर्थ में से अपना प्रयोजन मोक्ष है।

www.vitragvani.com

आत्मा सच्चिदानन्द स्वरूप है। वर्तमान अवस्था में क्षणिक दुःख है- इसप्रकार जो स्वभाव का भान करता है वह मोक्ष को साधता है। अन्य सुगत आदि छद्मस्थों द्वारा रचित शास्त्र कल्पित हैं। उनसे मोक्ष की सिद्धि नहीं होती। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि सूत्र में क्या कहना है? उसका प्रयोजन साधते हैं। पद प्राप्त करना प्रयोजन नहीं है। अर्थ की शोध करते हुए स्वयं के सूक्ष्मभाव का ख्याल आ जाए और स्वभाव में एकाग्रता करके मोक्ष दशा को प्राप्त करे। (यह प्रयोजन है।)

बाजीराव पेशवा शंकराचार्य का सन्मान करके उनके पैर धोता था। एक बार उसने शंकराचार्य से पूछा कि- मैं पेश्वा हूँ, मेरे समान महान राजा तुम्हारी सेवा करता है इससे तुम्हें कितना आनन्द आता होगा? शंकराचार्य ने जवाब दिया कि पेशवा! हम हमारे शास्त्र के अर्थ का शोधन करते हैं उसका अर्थ अधिक ख्याल में आनेपर जो आनन्द आता है वह तेरे पैर धोने से नहीं आता। उनके सूत्र तो मिथ्यादृष्टि के थे। यहाँ तो मात्र दृष्टान्त समझने के लिये है कि सूत्र के शोधन में आनन्द था। उसीप्रकार यहाँ कहते हैं कि मुनि सर्वज्ञदेव की वाणी के अनुसार रचित शास्त्रों के अर्थ का विचार करते हैं कि अहो! इस ज्ञानस्वभाव में एकाग्रता होने पर (प्रगट होने वाला) केवलज्ञान एकसमय में राग बिना तीनकाल-तीनलोक को जानता है। इसप्रकार विचार करते हुए स्वभाव में एकाग्रता करते हुए (वे) केवलज्ञान को प्राप्त करते हैं।

सर्वज्ञ भगवान अपनी केवलज्ञान पर्याय में एकसमय में स्व को जानते हुए लोकालोक को जानते हैं- इसप्रकार (मुनिजन) आगम का अभ्यास करते हैं। अज्ञानी के द्वारा रचित शास्त्रों को अज्ञानी जानता है; परन्तु उसके वस्तुस्वभाव में भूल है। (श्वेताम्बर) शास्त्रों में कथन है कि कोई खरगोश की दया पालन करने से संसार से पार हुआ; परन्तु यह बात मिथ्या है। राग से संसार का अभाव नहीं होता। मुनिराज को आहारदान देने से संसार से पार नहीं हुआ जाता ।

यहाँ कहते हैं कि जो भगवान के द्वारा कथित अर्थो को, गणधर द्वारा रचित सूत्रों को शोधते हैं उनको मोक्ष की प्राप्ति होती है । तात्पर्य यह है कि अज्ञानियों द्वारा रचित सूत्रों को कल्पित जानना चाहिये ।

वर्तमान में अरहन्त भगवान तथा गणधर नहीं है तो (सूत्र की) परम्परा किस प्रकार चलती है? कि सूत्र का अर्थ आचार्यो की परम्परा से चलता है । उसको जानकर जो मोक्षमार्ग को साधते हैं वे भव्य हैं।

सूत्रपाहुड़ गाथा- 2

आगे कहते हैं कि जो इसप्रकार सूत्रका अर्थ आचार्योंकी परम्परासे प्रवर्तता है उसको जानकर मोक्षमार्ग को साधते हैं वे भव्य हैं:-

सुत्तम्मि जं सुदिट्ठं आइरियपरंपरेण मग्गेण।
णाऊण दुविह सुत्तं वट्टदि सिवमग्ग जो भव्वो ।।2।।

सूत्रे यत् सुदृष्टं आचार्यपरंपरेण मार्गेण।
ज्ञात्वा द्विविधं सूत्रं वर्त्तते शिवमार्गे यः भव्य।।2।।

हिन्दी पद्यनुवादः

जो भव्य हैं वे सूत्र में उपदिष्ट शिवमग जानकर।
जिनपरम्परा से समागत शिवमार्ग में वर्तन करें।।2।।

अर्थ :- सर्वज्ञभाषित सूत्रमें जो कुछ भलेप्रकार कहा है उसको आचार्योंकी परम्परारूप मार्ग से दो प्रकारके सूत्र को शब्दमय और अर्थमय जानकर मोक्षमार्ग में प्रवर्तता है वह भव्यजीव है, मोक्ष पानेके के योग्य है।

भावार्थः- यहाँ कोई कहे- अरहंत द्वारा भाषित और गणधर देवोंसे गूंथा हुआ सूत्र तो द्वादशांगरूप है वह तो इस कालमें दीखता नहीं है तब परमार्थरूप मोक्षमार्ग कैसे सधे, इसका समाधान करनेके लिये यह गाथा है- अरहंत भाषित गणधर रचित सूत्रमें जो उपदेश है उसको आचार्यों की परम्परासे जानते हैं, उसको शब्द और अर्थके द्वारा जानकर जो मोक्षमार्गको साधता है वह मोक्ष होने योग्य भव्य है। यहाँ फिर कोई पूछे कि- आचार्योंकी परम्परा क्या है? अन्य ग्रन्थोंमें आचार्यों की परम्परा निम्न प्रकारसे कही गई है:-

श्री वर्द्धमान तीर्थंकर सर्वज्ञ देवके पीछे तीन केवलज्ञानी हुए; 1 गौतम, 2 सुधर्म, 3 जम्बू। इनके पीछे पाँच श्रुतकेवली हुए; इनको द्वादशांग सूत्रका ज्ञान था, 1 विष्णु, 2 नंदिमित्र, 3 अपराजित, 4 गौवर्द्धन, 5भद्रबाहु। इनके पीछे दस पूर्वके ज्ञाता ग्यारह हुए; 1 विशाख, 2 प्रौष्ठिल, 3 क्षत्रिय, 4 जयसेन, 5 नागसेन, 6 सिद्धार्थ, 7 धृतिषेण, 8 विजय, 9 बुद्धिल, 10 गंगदेव, 11 धर्मसेन। इनके पीछे पाँच ग्यारह

www.vitragvani.com

अङ्गोके धारक हुए; 1 नक्षत्र, 2 जयपाल, 3 पांडु, 4 ध्रुवसेन, 5 कंस। इनके पीछे एक अङ्गके धारक चार हुए; 1 सुभद्र, 2 यशोभद्र, 3 भद्रबाहु, 4 लोहाचार्य। इनके पीछे एक अङ्गके पूर्णज्ञानी की तो व्युच्छित्ति (अभाव) हुई और अंग एकदेश अर्थके ज्ञाता आचार्य हुए। इनमेंसे कुछके नाम ये हैं- अर्हद्बलि, माघनंदि, धरसेन, पुष्पदंत, भूतबलि, जिनचन्द्र, कुन्दकुन्द, उमास्वामी, समंतभद्र, शिवकोटि, शिवायन, पूज्यपाद, वीरसेन, जिनसेन, नेमिचन्द्र इत्यादि।

इनके पीछे इनकी परिपाटीमें आचार्य हुए, उनसे अर्थका व्यच्छेद नहीं हुआ, ऐसी दिगम्बरोंके संप्रदायमें प्ररूपणा यथार्थ है। अन्य श्वेताम्बरादिक वर्द्धमान स्वामीसे परम्परा मिलाते हैं वह कल्पित है क्योंकि भद्रबाहु स्वामीके पीछे कई मुनि अवस्थामें भ्रष्ट हुए, ये अर्द्धफालक कहलाये। इनकी सम्प्रदायमें श्वेताम्बर हुए, इनमें "देवर्द्धिगणी" नामका साधु इनकी संप्रदायमें हुआ है, इसने सूत्र बनाये हैं सो इनमें शिथिलाचार को पुष्ट करनेके लिये कल्पित कथा तथा कल्पित आचरणका कथन किया है वह प्रमाणभूत नहीं है। पंचमकालमें जैनाभासोंके शिथिलाचारकी अधिकता है सो युक्त है, इस कालमें सच्चे मोक्षमार्गकी विरलता है इसलिये शिथिलाचारियोंके सच्चा मोक्षमार्ग कहाँसे हो इसप्रकार जानना।

(इसके आगे द्वादशांगसूत्र तथा अङ्गबाह्यश्रुतका वर्णन पं० जयचन्द जी ने लिखा है। जिस पर पूज्य गुरुदेव के प्रवचन नहीं है। अतः इस वर्णन को इसी ग्रन्थ के अन्त में परिशिष्ट के रूप में दिया गया है।)

गाथा- 2 पर प्रवचन

सर्वज्ञ कथित सूत्र में जो कुछ भले प्रकार कहा है उसमें आचार्यों की परम्परा मार्ग से जो सूत्र को शब्द और अर्थ से जानकर मोक्षमार्ग में प्रवर्तता है (वह भव्य जीव है।)

सम्यक् श्रुत के शोधन बिना कल्याण नहीं होता – ऐसा यहाँ कहते हैं । सूत्रों के शब्द और अर्थ को जानने वाला जीव भव्य है ।

यहाँ कोई कहे कि – अरहन्त द्वारा कथित और गणधर द्वारा रचित सूत्र तो द्वादशांगरूप है, वह तो इस काल में दिखता नहीं। श्वेताम्बर ग्यारह अंग ही कहते है,

www.vitragvani.com

परन्तु यह बात मिथ्या है। जब इस काल में अंग (द्वादशांग) नहीं दिखता तो किसप्रकार मोक्षमार्ग हो? - इसके समाधान के लिये यह गाथा है। यहाँ सर्वज्ञ और गणधर की परम्परानुसार आचार्य कथित सूत्र की बात है। जो उनके शब्द और अर्थ को जानकर मोक्ष को साधता है वह भव्य है । इस प्रकार नहीं साधकर विपरीत समझ से विपरीत शास्त्रों को मानने वाला भव्य नहीं है, अभव्य है। मात्र दिगम्बर जैन सम्प्रदाय में जन्म लेने से ही सच्चा नहीं कहलाता; परन्तु सूत्र के अर्थ और शब्द का शोधन करने पर ही सूत्र को माना कहलाता है ।

- दिगम्बर सम्प्रदाय की यथार्थ परम्परा -

यहाँ कोई कहे कि- आचार्यों की परम्परा क्या है? (इसके उत्तर में कहते हैं कि) अन्य (दिगम्बर जैन) ग्रन्थों में आचार्यो की परम्परा निम्नानुसार कही गई है-

श्री वर्द्धमान स्वामी तीर्थंकर सर्वज्ञदेव के होने के पश्चात् तीन केवलज्ञानी हुए -
(1) गौतम गणधर (2) सुधर्मास्वामी (3) जम्बूस्वामी ।

तत्पश्चात् पॉच श्रुतकेवली हुए, उनको द्वादशांग का ज्ञान था -
(1) विष्णु (2) नंदिमित्र (3) अपराजित (4) गौवर्धन (5) भद्रबाहु

तत्पश्चात् ग्यारह दस पूर्वधारी हुए -
(1) विशाख (2) प्रौष्ठिल (3) क्षत्रिय (4) जयसेन (5) नागसेन (6) सिद्धार्थ (7) घृतिषेण (8) विजय (9) बुद्धिल (10) गंगदेव (11) धर्मसेन ,

तत्पश्चात् पाँच ग्यारह अंगों के धारक हुए -
(1) नक्षत्र (2) जयपाल (3) पांडु (4) ध्रुवसेन (5) कंस

तत्पश्चात् चार एक अंग के धारक हुए -
(1) सुभद्र (2) यशोभद्र (3) भद्रबाहु (4) लोहाचार्य

तत्पश्चात् एक अंग के पूर्ण ज्ञानी की (भी) व्युच्छिति हुई तथा अंग के एकदेश के ज्ञानी आचार्य हुए । उनके नाम- अर्हद्बलि, माघनन्दि, धरसेन, पुष्पदंत, भूतबलि, जिनचन्द्र, कुन्दकुन्द, उमास्वामी, समन्तभद्र, शिवकोटि, शिवायन, पूज्यपाद, वीरसेन, जिनसेन, नेमिचन्द्र - इत्यादि ।

www.vitragvani.com

तत्पश्चात् इनकी परिपाटी में अन्य भी आचार्य हुए । इनसे अर्थ का व्युच्छेद नहीं हुआ इसप्रकार दिगम्बर सम्प्रदाय की प्ररूपणा यथार्थ है ।

इसप्रकार भगवान के द्वारा कथित शास्त्रों का अभाव नहीं है । ऐसी दिगम्बर सम्प्रदाय में यथार्थ प्ररूपण है । मूर्तिपूजक, स्थानकवासी, स्थानकवासीतेरापंथी आदि (श्वेताम्बर) सम्प्रदाय में बर्द्धमान स्वामी की परम्परा मिलाते हैं वह कल्पित है। इतिहास में उल्लेख है कि बारह वर्ष के दुष्काल में श्वेताम्बर पंथ निकला है। भद्रबाहु स्वामी के बाद कितने ही मुनि भ्रष्ट हुए और अर्धफालक (कपड़ा) पहिना, उनमें से श्वेताम्बर मूर्तिपूजक सम्प्रदाय निकला। उन्होंने कल्पित शास्त्र बनाये हैं । श्वेताम्बर मूर्तिपूजक पंथ में 'देवगण' नामक साधु हुए। उन्होने भगवान के एक हजार वर्ष पश्चात् शास्त्रों की रचना की है जिसमे कुल पैंतालीस सूत्र हैं। उसमें उन्होने विपरीत आचरण के पोषण के लिये कल्पित कथायें गढ़ी है। वे गणधरदेव को वस्त्र सहित कहते हैं? चाण्डाल को मुक्ति, स्त्री को मुक्ति आदि सब कल्पित कथन है, इसकारण वह प्रमाणभूत नहीं है। आचार्य कुन्दकुन्द ने दो हजार वर्ष पूर्व यह बात की है। श्वेताम्बर सूत्र प्रमाणभूत नहीं है। पंचमकाल में जैनाभासियों के शिथिल आचार की बहुलता है।

आत्मा आनन्दकन्द है, उसकी श्रद्धा, करके रमणता करके आनन्द दशा प्रगट होना मुनिपना है। वर्तमान में सच्चे मोक्षमार्ग की विरलता है। जिन शास्त्रों में विपरीतता है वे शिथिलाचारी हैं। उनमें मोक्षमार्ग कहाँ से होगा? नहीं होगा।

इसप्रकार आचार्यो की परम्परा से रचित सूत्र में जो प्रवीण होते हैं उनके संसार का अभाव होता है। जो सूत्र में प्रवीण नहीं हैं उनके संसार का अभाव नहीं होता। क्योंकि समस्त सूत्र (शास्त्रों) का प्रयोजन यह है कि स्वभाव सन्मुख होकर राग का अभाव करके मोक्ष की साधना करना।

भगवान सर्वज्ञदेव ने जो कहा है और गणधरदेव द्वारा जो रचित है उसका सार सूत्र में है। भगवान सर्वज्ञ परमात्मा ने दिव्यध्वनि में क्या कहा? इसका सार इस 'सूत्र प्राभृत' में कहा गया है। सूत्र का प्रयोजन 'मोक्ष' का है-ऐसा कहने में न्याय आ जाते

www.vitragvani.com

हैं। मुनिजन (उसके) अर्थ (प्रयोजन) को शोधते हैं - खोलते हैं। सूत्र का प्रयोजन है कि मोक्ष को साधना और भव का अभाव करना। सूत्रपाहुड़ की इस दूसरी गाथा में सूत्र को सिद्ध किया है। जिस आचार्य परम्परा से कथित सूत्र के शब्द को- अर्थ को जानकर भव्य जीव मोक्ष को साधता है उस सूत्र का सार यह है कि आत्मा राग और पुण्य-पाप में नहीं रूककर स्वभाव सन्मुख होता है। अर्थात् राग का अभाव करके मोक्ष को साधना यही समस्त सूत्र का सार है। सर्वज्ञदेव की दिव्यध्वनि में क्या आया? मुनियों ने क्या शोधा? कि परमार्थ एक मोक्ष है। मैं अनन्त गुणों का पिण्ड हूँ। निमित्त पर और प्रथक् है। व्यवहार माने राग को गौण करके स्वभाव को मुख्य करो- यह यहाँ सार बताया है।

देखो! चारों तरफ एक ही स्वर है। भगवान ने क्या कहा? गणधरों ने क्या रचा? मुनियों ने क्या शोधा?- यह बताते हैं।

अजीवादि आत्मा से पर है, पुण्य-पाप विकार है और स्वभाव अखण्डानन्द है उसकी सन्मुखता होओ! - यह समस्त शास्त्रों का सार है। आत्मा की अवस्था में पुण्य-पाप के भाव होते हैं, उनसे पार तेरा स्वभाव आनन्दकन्द है- उसकी रुचि कर! - ऐसा सूत्र कहते हैं। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि भगवान ने सर्वज्ञपद की प्राप्ति की है वह कहाँ से प्राप्त हुआ? प्राप्त की प्राप्ति है। अर्थात् ध्रुवस्वभाव ज्ञानस्वरूप है उसकी सन्मुख झुकाव करो और निमित्त तरफ की प्रथकता करो, विभाव की विपरीतता को जानो- ऐसा सूत्र में कहते हैं।

देखो! यहाँ मोक्ष की बात की है। मोक्ष अर्थात् मुक्त होना- छूटना। वहाँ क्या राग को रखो, अथवा राग करते-करते सम्यग्दर्शन होगा- ऐसा शास्त्र का सार है? नहीं। एक सैकेण्ड के असंख्यातवें भाग में आत्मा परिपूर्ण है उसे मुनि निरीक्षण करो; विभाव को छोड़ो- ऐसा भगवान ने कहा है और ऐसा (सूत्र)गणधरों ने रचा है और आचार्य भी ऐसा ही शोधते हैं। आत्मा ज्ञानस्वभाव है इसमें सम्यग्दर्शन की एकाग्रता, सम्यग्ज्ञान की एकाग्रता सम्यक्चारित्र की एकाग्रता करो। यही प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग में कहा है और संतो ने ऐसा ही शोधा है। मेरी निर्मल

www.vitragvani.com

पर्याय अन्तर में से आती है; अतः निमित्त की- व्यवहार की उपेक्षा करो, स्वभाव की अपेक्षा करो- इसी कला से मोक्ष प्राप्त होता है। यही शास्त्र, यही कला है।

अब सूत्र दो प्रकार का है- अर्थ और शब्द। उसको जानकर भव्य जीव मोक्षमार्ग में प्रवर्तता है। यहाँ, व्यवहार अथवा राग में प्रवर्तता है- ऐसा नहीं कहा है। 'मोक्षमार्ग में रहना'- इसी परमार्थ को साधने की बात की है। यहाँ व्यवहार करने को नहीं कहा है। भव्यजीव मोक्षमार्ग में लगता है। सूत्र निमित्त को जुटाने को अथवा व्यवहार में जुड़ने को नहीं कहता। शास्त्र में तो परमार्थ के साधने की बात मुख्य है। व्यवहार आता है, वह ज्ञान करने के लिये है; परन्तु धर्मी व्यवहार और निमित्त को साधता नहीं है। यहाँ निमित्त घटने पर राग घटता है अथवा कर्म के मंद पड़ने पर राग मंद पड़ता है- ऐसा नहीं कहा है। आत्मा का स्वभाव स्वयं सिद्ध है उसके सन्मुख दृष्टि करो, कमजोरी से होने वाले राग का लक्ष्य छोड़ो; अन्तर शक्ति विद्यमान है उसके सन्मुख लक्ष्य करो- ऐसा मुनियों ने स्वयं जाना और कहा है।

जो सूत्र का ज्ञाता है वह संसार का नाश करता है। कर्म का उदय आने पर राग करना पड़ता है- क्या ऐसा सूत्र कहता है? नहीं। यहाँ तो कमजोरी के राग की भी बात नहीं है। सूत्र में प्रवीण अर्थात् जैसा सूत्र में कहा है वैसा मानता है। जैसे पिता ने पुत्र से कहा कि पाँच किलो आम लाओ, अब वहाँ पुत्र पाँच किलो आम लाने को भलीभाँति समझे तो उसने सुना कहलाये। उसी प्रकार सर्वज्ञ के ज्ञान में आया कि विभाव को छोड़कर स्वभाव सन्मुखता करना ही परमार्थ है। पदार्थ भी ऐसा है और वाणी में भी ऐसा आया । निमित्त और राग की शोध करो-ऐसा वाणी में नहीं आया। यह तो सूत्रप्राभृत ग्रन्थ है। जिनमुद्रा निर्ग्रन्थ दशा होती है- यह बात दर्शनप्राभृत में कही थी। अब शास्त्र में क्या कहा है उसकी बात चलती है। जो सूत्र में प्रवीण है वह संसार का अभाव करता है। व्यवहार करने से संसार का अभाव होगा- ऐसा शास्त्र में नहीं कहा है। स्वभाव की साधना से ही संसार का अभाव होता है। अपूर्णदशा में व्यवहार आता है वह जानने योग्य है।

सूत्रपाहुड़ गाथा - 3

आगे कहते हैं कि जो सूत्रमें प्रवीण है वह संसारका नाश करता है-

सुत्तं हि जाणमाणो भवस्स भवणासणं च सो कुणदि।
सूई जहा असुत्ता णासदि सुत्ते सहा णो वि ।। 3 ।।

सूत्रे ज्ञायमानः भवस्य भवनाशनं च सः करोति।
सूची यथा असूत्रा नश्यति सूत्रेण सह नापि ।। 3 ।।

हिन्दी पद्यनुवाद

डोरा सहित सुइ नहीं खोती गिरे चाहे वन-भवन।
संसार-सागर पार हों जिनसूत्र के ज्ञायक श्रमण।।2।।

अर्थ :- जो पुरुष सूत्रको जाननेवाला है, प्रवीण है वह संसारमें जन्म होनेका नाश करता है जैसे लोहकी सूई सूत्र (डोरा) के बिना हो तो नष्ट हो जाय और डोरा सहित हो तो नष्ट नहीं हो यह दृष्टांत है ।। 3 ।।

भावार्थ:- सूत्रका ज्ञाता हो वह संसारका नाश करता है जैसे सूई डोरा सहित हो तो दृष्टिगोचर होकर मिल जावे, कभी भी नष्ट न हो और डोरेके बिना हो तो दीखे नहीं, नष्ट हो जाय इसप्रकार जानना ।। 3 ।।

गाथा- 3 पर प्रवचन

जो पुरुष भगवान के कहे हुए और गणधर द्वारा रचित सूत्र का ज्ञाता है वह संसार का अभाव करता है। जो शास्त्र व्यवहार तथा राग से संसार अभाव होगा- ऐसा कहे वह भगवान का शास्त्र नहीं है। क्योंकि भगवान राग का अभाव करके वीतराग होते हैं। शास्त्र तो 'स्वभाव सन्मुख हो'-ऐसा कहते हैं। यहाँ सूत्र के जानने में प्रवीण संसार का अभाव करता है- ऐसा कहा है। अब संसार है अवश्य; परन्तु उसका अभाव करने को कहा है। कोई कहे कि संसार अपनी पर्याय में नहीं है, तो ऐसा मानना भूल है। अवस्था में संसार है। स्त्री- पुत्रादि संसार नहीं है। पर्याय में भ्रान्ति, राग-द्वेषरूप संसार है। स्वभाव सन्मुख होने से संसार की दशा का नाश होता है और मोक्षदशा की प्राप्ति होती है। -यह शास्त्रों का सार है। शास्त्रों में लाखों-करोड़ो बाते हों; परन्तु उसका सार-मक्खन क्या? प्रत्येक गाथा में आचार्य कुन्दकुन्द कहते हैं कि अपनी

www.vitragvani.com

पर्याय में विकार होता है उसका अभाव करो। अर्थात् (शास्त्र में) व्यवहार रखने को नहीं कहा गया। छहढाला में व्यवहार को निमित्त हेतु कहा गया है, अज्ञानी उसको पकड़ लेता है; परन्तु उसका अर्थ तो यह है कि जो जीव निश्चय मोक्षमार्ग प्रगट करता है उसके व्यवहार निमित्त कहलाता है।

दया-दानादि के शुभ परिणाम (पर्याय में) हैं। जो है उसका अभाव होता है। तेरी पर्याय में संसार है वह तुझसे ही नष्ट होगा। उसका अभाव पर जीव से नहीं होगा। विकार तेरी दशा में तेरे (अपराध) से है। पुण्य-पाप विकार कर्म से अथवा पर से हो तब तो तू उसका अभाव नहीं कर सकता। यदि कर्म का अभाव हो तब राग का नाश हो- तब तो वीतरागता प्रगट ही नहीं हो सकती। अज्ञानी को अभिमान है कि मैं शास्त्र को जानता हूँ। वह कहता है कि आत्मा कर्म का खिलौना है, जैसे कर्म खिलाता है वैसे वह खेलता है; परन्तु यह बात मिथ्या है। कारण कि तेरी पर्याय तेरे से होती है-ऐसा निर्णय करके स्वभाव की रुचि करने से मिथ्यात्व का नाश होगा और स्वरूप में स्थिरता होने पर अव्रत और प्रमाद का नाश होगा । विशेष स्थिरता होने पर कषाय का नाश होगा और वीतरागता होने पर केवलज्ञान होगा । तू है और तेरी पर्याय में विकार है। यदि विकार न हो तो परमानन्द होना चाहिये। इसलिये पर्याय में विकार है। स्वभाव के आश्रय से विकार का नाश होता है- यह एक ही उपाय है।

स्वभाव के आश्रय से संसार का नाश होता है- ऐसी शास्त्र की आज्ञा को प्रवीण पुरुष ज़ानता है। विकार होता है; परन्तु विकार करने योग्य है, व्यवहार करते-करते धर्म होगा- ऐसा शास्त्र में नही कहा है।

आत्मा शुद्ध चिदानन्द है। उसकी रुचि करेगा तो मिथ्यात्व छूट जायेगा। उसमें स्थिरता होने पर राग-द्वेष मिट जायेंगे - ऐसा सर्वज्ञ ने जाना है और वैसा ही उनकी वाणी में आया है। तथा गणधरों ने भी सूत्र में ऐसी रचना की है।

यहाँ शिष्य कहता है कि आपने करणानुयोग में ऐसा कहा था कि ज्ञानावरणीय कर्म के कारण ज्ञान रुका है?

समाधान- नहीं। कर्म के कारण ज्ञान नहीं रुका। तेरे स्वयं के कारण ज्ञान रुका है, तो ज्ञानावरणीय कर्म को निमित्त कहा जाता है।

www.vitragvani.com

जिस प्रकार डोरा रहित लोहे की सुई होती है तो वह खो जाती है; परन्तु यदि वह डोरा सहित होवे तो नहीं खोती है। उसी प्रकार सूत्र कहते हैं उसका ज्ञान नहीं हो तो चार गतियों में परिभ्रमण करना पड़ता है। चारो अनुयोगों में- प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग में विकार का अभाव करने को कहा है। जैसे डोरा सहित सुई का नाश नहीं होता; परन्तु डोरा रहित सुई नष्ट हो जाती है- गुम जाती है; उसी प्रकार सूत्र का ज्ञान करने से स्वभाव की प्राप्ति होगी और संसार का अभाव होगा।

तात्पर्य यह है कि- सूत्र का ज्ञाता संसार का नाश करता है। सुई डोरा सहित होवे तो दृष्टिगोचर होती है, डोरा रहित सुई दिखती नहीं, बल्कि नष्ट होती है- गुम जाती है। ऐसा जानना चाहिये।

Shree kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

सूत्र पाहुड़ गाथा - 4

आगे सूईके दृष्टांतका दार्ष्टांत कहते हैं-

पुरिसो वि जो ससुत्तो ण विणासइ सो गओ वि संसारे।
सच्चेदण पच्चक्खं णासदि तं सो अदिस्समाणो वि ।। 4 ।।

पुरूषोऽपि यः ससूत्रः न विनश्यति स गतोऽपि संसारे।
सच्चेतनप्रत्यक्षेण नाशयति तं सः अदृश्यमानोऽपि ।। 4 ।।

हिन्दी पद्यानुवाद

संसार में गत गृहीजन भी सूत्र के ज्ञायक पुरुष।
निज आत्मा के अनुभवन से भवोदधि से पार हों।।4।।

अर्थ :- जैसे सूत्रसहित सूई नष्ट नहीं होती है वैसे ही जो पुरुष भी संसार में गत होरहा है, अपना रूप अपने दृष्टिगोचर नहीं है तो भी सूत्रसहित हो (सूत्रका ज्ञाता हो) तो उसके आत्मा सत्तारूप चैतन्य चमत्कारमयी स्वसंवेदन से प्रत्यक्ष अनुभव में आती है इसलिये गत नहीं है नष्ट नहीं हुआ है, वह जिस संसारमें गत है उस संसारका नाश करता है।

भावार्थः- यद्यपि आत्मा इन्द्रियगोचर नहीं है तो भी सूत्रके ज्ञाताके स्वसंवेदन प्रत्यक्षसे अनुभव गोचर है, वह सूत्रका ज्ञाता संसारका नाश करता है, आप प्रकट होता है इसलिये सूईका दृष्टांत युक्त है ।। 4 ।।

गाथा- 4 पर प्रवचन

यहाँ कहते हैं कि सूत्र के भाव रहित जीव विकार में ही रूक गया है।

जिस प्रकार डोरा सहित सुई नष्ट नहीं होती उसी प्रकार सूत्र का ज्ञाता संसार में परिभ्रमण नहीं करता। जो विकारी पर्याय में एकाकार हो गया है, अर्थात् पुण्य-पाप, शुभ-अशुभ में रुक गया है वह संसारगत हो रहा है। देखो! कर्म के कारण (जीव) संसारगत होता है- ऐसा नहीं कहा है। अपना आत्मा अपनी पर्याय में विकार करके संसार में गुम हो रहा है। मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद आदि संसार है। उनमें परिणत जीव को अपना स्वरूप दृष्टिगोचर नहीं होता। निमित्त से गुम रहा है- ऐसा

www.vitragvani.com

नहीं कहा है। भगवान आत्मा अपनी विकारी अवस्था मिथ्यात्वादि औदयिकभाव में गुम हो रहा है। दया, दान, व्यवहार रत्नत्रय के परिणाम आदि औदयिकभाव हैं। अज्ञानी अपनी पर्याय में अपने कारण से संसारगत हो रहा है, कर्म के कारण संसारगत नहीं है। आत्मा पूर्णानन्द प्रभु है, अनन्त शक्तियों से लबालब (परिपूर्ण) भरा है; परन्तु पर्याय में विकारी हो रहा है- इसकारण उसे अपनी वस्तु का पता नहीं है। ऐसे निमित्त मिले तो मुझे अनुकूल हो- ऐसा मानने वाला भी संसार में गुम है। उसको अपना त्रिकाल शुद्ध चिदानन्द स्वरूप दृष्टिगोचर नहीं हुआ है और पुण्य-पाप दृष्टिगोचर हुए हैं।

आत्मा यदि सर्वज्ञदेव कथित शास्त्र का अभ्यास करे तो सत्तारूप चैतन्य चमत्कारमयी आत्मा स्वसंवेदन से अनुभव में आवे। आत्मा एकसमय में तीनलोक को जानने वाला है। उसमें निमित्त और राग के आश्रय रहित जानने की सामर्थ्य है। आत्मा सत्‌रूप है। अन्य पदार्थ भी सत् है। आत्मा ज्ञाता-दृष्टा चैतन्य चमत्काररूप है। चारों अनुयोगों में एक ही बात कही गई है। तेरी पर्याय में संसार, पुण्य-पाप होने पर भी तू चैतन्य चमत्कार है- ऐसा शास्त्र ने बताया है। अज्ञानी राग मे गुम हो गया है; परन्तु इतना मात्र तू नहीं है। ज्ञान से ज्ञान का वेदन कर- ऐसा है। देखो! व्यवहार से अथवा निमित्त से स्वसंवेदन करने को नहीं कहा; परन्तु ज्ञान से वेदन हो- ऐसा है।

यह बात पहले समझ में नहीं आती थी, पाँच मिनिट पश्चात् समझमें आई- वह किसकारण से समझमें आई? शास्त्र तो पहले से ही है; परन्तु जब समझमें आई उस समय की वाणी को निमित्त कहते हैं।

व्यवहार की उपेक्षा, स्वभाव की अपेक्षा और निमित्त की प्रथकता करो- यह किसप्रकार जाना? अपने ज्ञान से जानता है, वाणी के कारण नहीं जानता। सूत्र के ज्ञाता ने क्या जाना? सूत्र में कहा वह जाना है। क्या जाना? तेरा आत्मा सत्तारूप आनन्दकन्द है, पुण्य और व्यवहार से धर्म नहीं है- यह सूत्र का सार है। यह प्रत्यक्ष स्वसंवेदन की बात करते हैं।

आत्मा का अनुभव परलक्ष्यी ज्ञान से नहीं होता, बल्कि स्वसंवेदन से होता है।

www.vitragvani.com

व्यवहार से तो स्वसंवेदन नहीं होता; परन्तु राग की मंदता करके हुए परलक्ष्यी ज्ञान से भी स्वसंवेदन नहीं होता। आत्मा ज्ञान का भण्डार है, स्वभाव का सागर है, आनन्द की निधि है; उसमें शक्ति पड़ी है। जैसे छोटी पीपल में चौसठ पहरी चरपराहट है वह पत्थर में से नहीं आती। चौसठ अर्थात् चौसठ् पैसे का एक रूपया अर्थात् परिपूर्ण ज्ञान और आनन्द से भरा है। वह आत्मा विकार से लक्ष्य में नही आता। सूत्र की ओर के लक्ष्य से हुआ ज्ञान परोक्षज्ञान है। पुण्य तथा परोक्षज्ञान से तेरा आत्मा अनुभव में आने योग्य नहीं है। इसलिये उनकी-पुण्य व परोक्षज्ञान की-रुचि छोड़कर ज्ञानस्वभाव की रुचि करने से ही आत्मा अनुभव में आयेगा। चैतन्य भगवान ज्ञान से भरा है- ऐसी शक्ति सन्मुख (स्वभाव सन्मुख) होने से आत्मा जानने मे आ सकता है- यह सूत्रपाहुड़ का सार है।

राग तो संसार है। राग को मंद करके परोक्षज्ञान हो वह भी संसार है। उसकी तरफ का झुकाव करने को शास्त्र नहीं कहते। शास्त्र का कहना तो यह है कि आत्मज्ञान के बिना ग्यारह अंग नौ पूर्व का परलक्ष्यी ज्ञान भी संसार का कारण है। सूत्र में ऐसा कहना है कि तू अपनी सत्तारूप वस्तु का अनुभव कर; क्योकि स्वभाव तरफ के झुकाव से विकार तरफ का झुकाव नहीं होता-यह शास्त्र का सिद्धान्त है। स्वसंवेदन होने के पश्चात् जितना राग शेष है उसका जानना व्यवहार है। शास्त्र राग से लाभ मानने के लिये नहीं कहते।

★ पहली गाथा में सूत्र को जानने वाला परमार्थ को साधता है- ऐसा कहा था।

★ [illegible] गाथा में सूत्र को जानने वाला मोक्षमार्ग में वर्तता है- ऐसा कहा था।

[illegible] गाथा में सूत्र को जानने वाला भव का नाश करता है- ऐसा कहा था।

[illegible] में सूत्र का ज्ञाता स्वसंवेदन से प्रत्यक्ष अनुभव करता है- ऐसा कहा [illegible] यह एक ही सिद्धान्त का सार है।

[illegible]र यथार्थ स्वभाव सन्मुख झुके तो परलक्ष्यी ज्ञान और राग को निमित्त [illegible] [illegible]रा स्वभाव पूर्ण है उसकी तरफ झुकाव बिना धर्म नहीं होता- ऐसा शास्त्र कहत ह। अज्ञानी कहता है कि पर की दया पालन करो व्यवहार पालन करो। पर

www.vitragvani.com

भाई! क्या तू पर की पर्याय का नाश कर सकता है? नहीं। अतः प्रत्यक्ष स्वसंवेदन प्रगट कर; क्योंकि जो विकार में एकाकार है वही स्वभाव में एकाकार होकर संसार का नाश करता है।

यह सूत्रप्राभृत का अधिकार है। सूत्र अर्थात् शास्त्र और प्राभृत अर्थात् सार। शास्त्र का कहना क्या है और उसका सार क्या है? यह बात चलती है।

यह आत्मा देह और कर्म से भिन्न है। इसका अन्तर स्वभाव ज्ञान और आनन्द है। उसमें अन्तर्मुख होकर अविकारी दशा प्रगट करके जो सर्वज्ञ परमात्मा हुए उनकी वाणी को आगम सूत्र कहते हैं। सर्वज्ञ हुए वे कहाँ से हुए? आत्मा में से हुए हैं। आत्मा इन्द्रियगोचर नहीं है। इन्द्रियों द्वारा आत्मा का भान नहीं होता। इन्द्रियों की अपेक्षा छोड़कर अन्तर ज्ञाता स्वभाव की दृष्टि करने से अतीन्द्रिय आत्मा लक्ष्य में आता है, इन्द्रियों से लक्ष्य में नहीं आता। अनादि से इन्द्रिय द्वारा देखने का अभ्यास है; परन्तु अपना अभ्यास नहीं किया। मैं शरीर और इन्द्रियों से पार हूँ- इसप्रकार जिसने अन्तर ज्ञान दशा द्वारा अवलोकन किया, अवलोकन द्वारा स्थिर होने पर पूर्णज्ञान और पूर्णआनन्द प्रगट किया, उनकी वाणी में ऐसा आता है कि जिसप्रकार हमने आत्मा को प्रगट किया है उसी प्रकार तुम भी प्रगट करो। तूने अपनी बात सुनी नहीं है। (भगवान को) सर्वज्ञ वीतराग पद प्राप्त हुआ है वह किस प्रकार हुआ? उन्होने अपनी आत्मा का अवलोकन किया। शरीर, इन्द्रिय और पुण्य पाप का लक्ष्य छोड़कर आत्मा का अवलोकन किया। आत्मा पूर्ण शक्तिवान है- ऐसी प्रतीति हुई, पश्चात उसमें स्थिरता करके पूर्ण दशा को प्राप्त हुए हैं। हमने जिस विधि से सर्वज्ञपद प्राप्त किया है उसी विधि से तुम भी प्राप्त करो। ऐसा (भगवान की) वाणी में आया है। शुभराग के अवलम्बन से धर्म होगा- ऐसा कहने वाला शास्त्र नहीं है। अपना द्रव्यस्वभाव आनन्दकन्द है। निमित्त का लक्ष्य छोड़कर अन्तर स्वभाव में एकाग्रता होने पर पूर्णता होती है। इसके बदले इन्द्रिय और राग से आत्मा का अवलोकन होता है- ऐसा कहने वाला शास्त्र नहीं है। तू आत्मा है। पूर्ण शुद्ध चिदानन्द है उसकी अन्तदृष्टि कर, पुण्य-पाप में सर्वस्व माना है उसकी रुचि छोड़! पूर्णानन्द ज्ञानानन्द स्वभाव है उसका अवलोकन कर!

www.vitragvani.com

जैसे पुण्योदय से पैसा मिलने पर भी ऐसा बोला जाता है कि इसप्रकार व्यापारादि करने से पैसा मिलेगा; उसी प्रकार भगवान सर्वज्ञदेव राग का अभाव करके सर्वज्ञ हुए हैं। पुण्य-पाप और संयोग की रुचि छोड़कर स्वभाव की रुचि की तो आत्मा इन्द्रियगोचर नहीं है- ऐसा भासित हुआ। अरूपीआत्मा के गंध नहीं है, आत्मा के रस नहीं है, आत्मा पॉच इन्द्रियों से जानने में आने योग्य नहीं है। शरीर है, इन्द्रियाँ है। वह इन्द्रियाँ रूपी पदार्थो को जानने में निमित्त है; परन्तु इन्द्रियों से आत्मा को नहीं जाना जा सकता। पुण्य की क्रिया से, इन्द्रियों की क्रिया से, बहिरंग अवलम्बन से सर्वज्ञदशा होगी ऐसा कहे यह सर्वज्ञ की वाणी नहीं है। बहिर्मुखता की उपेक्षा और अन्तर्मुखता की अपेक्षा करो ऐसा (सर्वज्ञ की) वाणी कहती है। इतनी दया पालन करो, ऐसा करो-वैसा करो तो स्वलक्ष्य होता है? नही। सर्वज्ञदेव की वाणी में ऐसा आया कि आत्मा इन्द्रियगोचर नहीं, परन्तु स्व से (ज्ञान से) गोचर है।

शास्त्र कहते हैं कि अन्तरज्ञान द्वारा अपने आत्मा को जानो! मैं पवित्र हूँ-ऐसा जानो यह शास्त्र में कहा है। अहो! शास्त्र कहते हैं कि तू अन्तर्मुख अवलोकन कर। परसन्मुखता से लाभ नहीं होता। पहले सुनो, धारण करो और प्रयोग करो; क्योंकि अनादिकाल से आत्मा को जाना नहीं है। 'यह भव मीठा तो पर भव किसने देखा'। लाख दो लाख रूपये की कमाई हो तो 'मै चोड़ा और बाजार सकड़ा' ऐसा अज्ञानी मानता है। भाई! इसमें सुख नहीं है।

आत्मा इन्द्रिय से गम्य नहीं है, तथा खण्ड-खण्ड भावेन्द्रिय से गम्य नहीं है। आत्मा स्वयं अपने को जानता है। आत्मा का स्वयं जानने का स्वभाव है। सूत्र कहता है कि तेरे ज्ञान से ज्ञान का अनुभव होगा, पुण्य से अनुभव नहीं होगा। जो सिद्ध हुए हैं उनमे संयोग, कर्म और विकार तथा अपूर्णता-अल्पज्ञता नहीं है; परन्तु उनमें ज्ञान और आनन्द है; इसलिये स्वभाव सन्मुख दृष्टि करके विभाव सन्मुखता की दृष्टि छोड़ो! सर्वज्ञ परमात्मा त्रिकालवेत्ता (त्रिकाल के ज्ञाता) हुए हैं वे किसप्रकार हुए हैं? क्या मैं पर का उपकार कर सकता हूँ ऐसी बुद्धि से हुए हैं? नहीं। सर्वज्ञ के सूत्र का सार क्या है? सभी पदार्थ पर हैं। आत्मा सभी पदार्थो से भिन्न है। इन्द्रियों से आत्मा का परिज्ञान नहीं होता।

www.vitragvani.com

सूत्र में जैसा कहा है वैसा मुनियों ने जाना है। इन्द्रियों की और विषयों की रुचि छोड़, दया दानादि का पुण्य व्यर्थ है। हिंसा, झूठ, चोरी आदि छोड़! अन्तर ज्ञानानन्द स्वभाव की प्रतीति कर! यह शास्त्र का सार है। सूत्र का अर्थ-सार क्या है- यह बात यहाँ भगवान कुन्दकुन्दाचार्य बताते हैं। वाणी सुनने के समय जो शुभराग आता है उससे रहित होकर ज्ञान से (आत्मा का) वेदन होता है। वे आत्मसाक्षात्कार अथवा सम्यग्दर्शन का अन्य कोई उपाय नहीं कहते हैं। जो सूत्र से विपरीत-सूत्र से अन्यथा बात करते हैं वह भगवान की वाणी नहीं है। बहिर्मुख दृष्टि छोड़कर अन्तर्मुख दृष्टि करे और विभाव को छोड़कर अन्तर स्थिरता करे तो धर्म होता है। जैसे व्यापारी सौ रूपये खर्च करने पर साठ रूपये का माल निकलता हो तो उस काम को नहीं करता,परन्तु मिश्रित सोने में सोने की प्राप्ति होती है तो उसको अग्नि मे डालकर सोने को अलग करता है; उसी प्रकार जो आत्मा में पुण्य-पाप का विकार और विकार से भिन्न ज्ञानानन्द स्वभाव है- ऐसे भेदज्ञान की अग्नि लगाता है तो स्वयं से ही आत्मा की प्राप्ति होती है। देव-शास्त्र-गुरु से आत्मा की प्राप्ति नही होती। आत्मा और अन्य पदार्थ भिन्न-भिन्न है- ऐसा भान होने पर भी यदि शान्ति नहीं आती है तो वह भेदज्ञान नहीं है। मेरा आत्मा जानने-देखने वाला है। दया, दान, भक्ति आदि शुभ भाव है, परन्तु आत्मा शुभभाव से रहित है- ऐसा सूत्र में कहा है वह शिष्य ने जाना। अत्यधिक धन की आय होने पर भी उसमें से शान्ति नहीं आती। गुरु ने बारम्बार क्या कहा? कि तेरी अवस्था में संसार है वह स्वभाव के आश्रय से नष्ट होता है। स्त्री-पुत्रादिक संसार नहीं है। यदि वे संसार हो तो मृत्यु के समय वे सब यहीं पड़े रहते हैं; अतः मोक्ष हो जाना चाहिये। इसलिये (निर्णय होता है कि) पर पदार्थ संसार नहीं है। वे पदार्थ मेरे हैं और मैं उनका हूँ - ऐसी बुद्धि ही संसार है। धन-वैभव आदि संयोग तो छूट जाता है, परन्तु ममता नहीं छूटती, इसलिये (जीव) ममता को साथ ले जाता है।

सूत्र कहते हैं कि अपने स्वभाव के आश्रय से ममता का नाश करे तो उससे आत्मा प्रगट होता है। जैसे अकेली सुई गुम हो जाती है; परन्तु यदि उसमें डोरा पिरोया हो तो वह हाथ में आ जाती है, गुम नहीं होती। उसीप्रकार भगवान के सूत्र

www.vitragvani.com

के ज्ञान का डोरा जिसने चैतन्य में पिरोया है वह संसार में गुम नहीं होता- परिभ्रमण नहीं करता । और जिसे शास्त्र का पता नहीं है वह अकेले विकार में ही अटक गया है वह संसार में गुम होगा-परिभ्रमण करेगा।

भाई! आत्मा आनन्दकन्द है। उसे पुण्य पाप मे मत खोज! अन्तर्मुख होकर खोज तो तेरा आत्मा प्रगट होगा। इसी उपाय से आत्मा प्रगट होगा, अन्य हजारों उपायों से भी प्रगट नही होगा- यह शास्त्र का कहना है। अन्तर्मुख होकर देखो तो परमात्मा विद्यमान है। अज्ञानी को ऐसा भासित होता है कि बाहर देखो तो पुद्गल दिखता है और अन्दर देखो तो अंधेरा दिखता है। यहाँ कहते है कि तू अपने मे देख! तेरे ज्ञान से ही आत्मा प्रगट होने योग्य है। व्यवहार-राग करते-करते धर्म होगा-ऐसा शास्त्र नहीं कहते। सर्वज्ञ को आत्मा परिपूर्ण प्रगट है। तू ज्ञान स्वभाव की रुचि कर! शास्त्र का उपदेश है कि आत्मा का अनुभव कर! पुण्य-पाप मेरे भाव हैं और निमित्त मेरा है- ऐसा अनुभव करता था। अतः पर पदार्थ हैं, पुण्य-पाप है, इन्द्रियाँ हैं, कर्म का प्रारब्ध-उदय है-तो यह क्या है? आत्मा की सन्मुख झुकना चाहता है तो तू पर तरफ कहाँ झुका हुआ था यह बताते हैं। यहाँ ऐसा कहा कि अपने स्वभाव को देख ! (तो इससे निश्चित होता है कि) पर पदार्थ को देख रहा था। अन्य जीव या अजीव पदार्थ हैं या नहीं? पुण्य-पाप हैं या नहीं? ऐसा पूछते हैं। इस प्रकार पर तरफ के झुकाव में क्या चीज थी यह बताते हैं।

आगे कहते हैं कि सूत्र का अर्थ क्या है?

Shree kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

सूत्रपाहुड़ - गाथा - 5

आगे सूत्रमें अर्थ क्या है वह कहते हैं-

सुत्तत्थं जिणभणियं जीवाजीवादिबहुविहं अत्थं।
हेयाहेयं च तहा जो जाणइ सो हु सद्दिट्ठी ।। 5 ।।

सूत्रार्थं जिनमणितं जीवजीवादिबहुविधमर्थम् ।
हेयाहेयं च तथा यो जानति स हि सद्दृष्टिः ।। 5 ।।

हिन्दी पद्यानुवाद

जिनसूत्र में जीवादि बहुविधि द्रव्य तत्त्वारथ कहे।
हैं हेय पर व अहेय निज जो जानते सद्दृष्टि वे।।5।।

अर्थः- सूत्रका अर्थ जिन सर्वज्ञ देवने कहा है और सूत्रका अर्थ जीव अजीव आदि बहुत प्रकार है तथा हेय अर्थात् त्यागने योग्य पुद्गलादिक और अहेय अर्थात् त्यागने योग्य नहीं इसप्रकार आत्माको जो जानता है वह प्रगट सम्यदृष्टि है।

भावार्थः- सर्वज्ञभाषित सूत्रमें जीवादिक नवपदार्थ और इनमें हेय उपादेय इसप्रकार बहुत प्रकारसे व्याख्यान है उसको जानता है वह श्रद्धावान सम्यग्दृष्टि होता है ।। 5 ।।

गाथा 5 पर प्रवचन

धर्म का प्रारम्भ कहाँ से होता है? सम्यग्दृष्टि सत्य दृष्टिवंत है। जैन परमेश्वर द्वारा सूत्र का अर्थ कहा गया है। जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष-ये क्यों कहे हैं? वैसे पदार्थ हैं। तेरा आत्मा ज्ञानानन्द स्वभावी है, उसकी अन्तर्मुख होकर दृष्टि कर! आजतक बहिर्मुख दृष्टि की है। शरीर, कर्म, रोटी, दाल-भात की ओर दृष्टि की है; परन्तु अपने स्वभाव के सन्मुख दृष्टि नहीं की है। स्वयं जीव है, अन्य पदार्थ अजीव है। अतः एक ही आत्मा मानना भूल है। एक ही आत्मा माने तो अपने स्वभाव में झुकाव नहीं हुआ। शरीर, मन, वाणी विलक्षण है। शरीर आदि अजीव है। स्वयं जीव है। इसप्रकार जीव-अजीव का ज्ञान करना चाहिये। तथा एक ही जीव नहीं है। अपने से भिन्न वह भिन्न जीव है। जीव पर के उपर दृष्टि करता है तो पर वस्तु कौनसी है? शरीर, मन, वाणी अजीव है- पर वस्तु है अवश्य; इस प्रकार दो वस्तुओं का ज्ञान होना चाहिये।

www.vitragvani.com

वर्तमान दशा में हिंसा, झूठ, चोरी का भाव पाप है। उसके कारण नरकगति का बंधन होता है। कमाने का भाव पापभाव है। दया, दान, व्रत, तप, अनुकंपा पुण्यभाव है। पुण्य का भाव पाप नहीं है। पुण्य के भाव को स्थानकवासी तेरापंथी पाप कहते हैं। किसी प्राणी को बचाने के भाव- अनुकम्पा के भाव को वे पापभाव कहते हैं।-यह बात मिथ्या है। यह पुण्यभाव है। तथा पुण्यभाव धर्म नहीं है। पुण्य को पुण्य जानना चाहिये। पाप को पाप जानना चाहिये । हिंसा, झूठ चोरी का तीव्र राग पाप है। दया, दानादि का भाव पुण्य है- ये दोनो भाव आस्रव हैं। इन मलिनभावों से नया (कर्म का) बंधन होता है। आस्रव से आत्मा के साथ एकता नहीं होती। पुण्य-पाप के भाव से आत्मा की एकाग्रता नहीं होती। दया, दानादि का भाव विकार है और आत्मा ज्ञान स्वभावी है। विकार में अटक जाना बंध है। बंध नुकसान कारक है। आत्मा ज्ञानानन्द स्वभावी है उसमें दृष्टि करके पुण्य-पाप के भाव से हटकर निर्मलता प्रगट करना संवर है। मलिनभाव का आंशिक अभाव होना और आंशिक निर्मलताभाव प्रगट होना निर्जरा है। पूर्ण निर्मलदशा का प्रगट होना मोक्ष है। इसप्रकार नौ तत्वों की बात हुई।

मलिन पर्याय का रुकना संवर है और निर्मलता का अंश प्रगट करना धर्म है। लोग धर्म करना है- ऐसा तो कहते हैं, परन्तु उनको यह पता नहीं है कि धर्म कहाँ है? आत्मा आनन्दकन्द है- ऐसी दृष्टि और निर्मलता प्रगट करना धर्म है। आत्मा के अवलम्बन से पूर्णदश प्रगट करना मोक्ष है। जीव - अजीव ये दो द्रव्य है। पुण्य, पाप, आस्रव,बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष - ये विकारी और अविकारी दशायें हैं। इसकी पहिचान बिना भेदज्ञान नहीं होता।

जो एक ही आत्मा मानते हैं वे सूत्र नहीं हैं। अकेला द्रव्य माने और पर्याय को नहीं माने अथवा अकेली पर्याय को माने और द्रव्य को नहीं माने, तो ऐसा मानने वालों के नौ तत्व के (ज्ञान का भी) ठिकाना नहीं है।

तीर्थंकर भगवान नौ तत्वों की बात कहते हैं उसको ध्यान से सुनना चाहिये।

शरीर, मन, वाणी पर- अजीव है। उसकी अवस्था- हिलना चलना आदि जीव के आधीन नहीं है। शरीर जड़ पदार्थ है। पुण्य-पाप मलिनता है। मैं त्रिकाल परमानन्द स्वरूप हूँ - ऐसे अपने स्वरूप का पूर्ण अवलम्बन लेने से वीतरागता प्रगट होती है। यह बात ध्यान देकर सुनने योग्य है। कोई बारोठ अपने परिवारजनों के बढ़ने की बात

करे अथवा पूर्वजों की दो हजार वर्ष पुरानी बातें करे, दसवीं पीढी पहले की बात करे; परन्तु यदि सुनने वाला ध्यान नहीं रखे तो बारोठ पूछता है- सुनते होने ! तब वह (सुनने वाला) कहता है.... तुम तो बोले जाओ। उसीप्रकार यह सूत्र किसके लिये है? जिसको आत्मा की प्रतीति जागृत हुई है। परिभ्रमण का रास्ता छोड़ दे- ऐसा तीर्थंकर भगवान 'बारोठ' की तरह कहते हैं। हे भाई! तुझको अनन्तकाल का परिभ्रमण मिटाना हो तो अपने स्वभाव का आश्रय ले! शरीर अजीव है। तेरी इच्छा नहीं होने पर भी उसमें रोग आता है। वह जड़ पदार्थ है- ऐसा तू निर्णय कर! शिष्य ने सुना कि - अहो! शरीर, मन, वाणी जड़ पदार्थ है- अजीव है। वह धर्म का साधन नहीं है और उससे (धर्म में) बाधा नहीं होती। कोई मृत्यु के समय ममता करता है वह पाप है। पुत्र का ध्यान रखने को कहे वह पाप है। यदि ममता घटाता है तो पुण्य है। यह अज्ञानी पुत्र का ध्यान रखने को तो कहता है; परन्तु शास्त्र कहते हैं कि तू अपना तो ध्यान रख!

नव तत्वों को भिन्न-भिन्न जानने वाला सम्यग्दृष्टि है। (शास्त्रों में) नवतत्व कहे हैं वैसा जानने से अजीव की रुचि छूट जाती है। पुण्य-पाप हेय हैं, आदर करने योग्य नहीं है। आत्मा का आदर करने से प्रगट होने वाला धर्म संवर - निर्जरा है। पूर्ण शुद्धदशा प्रगट होना मोक्ष है। इस आत्मा के अलावा अन्य आत्मा अजीव है। साक्षात परमात्मा भी शरणभूत नहीं है। हे भगवान! अब दया करना, उद्धार करना। इसका अर्थ तो यह हुआ कि भगवान की भूल हुई जो आजतक उन्होंने उद्धार नहीं किया। शास्त्र (वाणी) तो ऐसा कहते हैं कि तू आस्रव करता है, तू स्वयं अपनी भूल से परिभ्रमण करता है। भगवान सर्वज्ञ तो (पर के अकर्ता और) त्रिकाल के ज्ञाता हैं। तेरे अन्तर में शुद्धता है। तूने कभी उसकी ओर दृष्टि नहीं की है। तूने स्वयं पुण्य-पाप की रुचि की है, इसलिये परिभ्रमण करता है। तेरा शिवपद हमारे पास नहीं है।'

'शरीर अनुकूल रहे तो मुझे धर्म होगा' -ऐसा अज्ञानी कहता है। शरीर तो अजीव तत्व है, अजीव अच्छा रहे तो तेरा अच्छा होगा? नहीं। तू ज्ञाता-दृष्टा है- ऐसी दृष्टि करने से धर्म होगा। अजीव की दृष्टि छोड़ने योग्य है। आस्रव-बंध छोड़ने योग्य है। मैं ज्ञानानन्द स्वरूपी जीव तत्व हूँ - उसकी सन्मुख एकाग्रता होने से संवर,

www.vitragvani.com

निर्जरा, मोक्ष प्रगट होता है। वह छोड़ने योग्य नहीं है। तात्पर्य यह है कि जो नवतत्वों को यथार्थ जानता है वह प्रगट सम्यग्दृष्टि है। उसको धर्म का प्रारम्भ होता है, अन्य को धर्म का प्रारम्भ नहीं होता है।

सूत्र अर्थात् शास्त्र । उसका सार क्या है? उसका अधिकार चल रहा है। शास्त्र किसने बनाये और कौनसे मानने योग्य है? जिसको मिथ्याभ्रान्ति, राग, द्वेष नष्ट होकर केवलज्ञान प्रगट हुआ हो और उसकी वाणी में जो शास्त्र कहा हो वह शास्त्र है। जिसके आत्मा मे वीतरागता प्रगट हुई है, राग-द्वेष का अभाव हुआ है उसकी वाणी में विसमता रहित सम्यक् स्वरूप आता है। जो किसी पदार्थ को इष्ट-अनिष्ट मानता है और पर में सावधानी रखता है वह सर्वज्ञ नहीं है। वस्तु त्रिकाल है तो उसका ज्ञाता भी होना चाहिये। त्रिकालवेत्ता बिना वस्तु का स्वरूप यथार्थ नहीं आता। जिसके, मैं पर का हित-अहित कर सकता हूँ -ऐसी वृत्ति नष्ट हो गई और पूर्णज्ञान व आनन्ददशा प्रगट हुई है उस पुरुष को जिन कहते हैं। उसका कहा हुआ शास्त्र होना चाहिये। जैसे दुकानदार सर्व प्रकार से परीक्षा करता है; उसी प्रकार यहाँ भी परीक्षा करना चाहिये। जिसकी आत्मा में वीतरागता और केवलज्ञान हुआ है वह जाननहार किसी का करने वाला नहीं रहा, मात्र जाननहार रहा - त्रिकालवेत्ता (सर्वज्ञ) हुआ। त्रिकालवेत्ता अर्थात् त्रिकाल का जानने वाला । जो पदार्थ भूतकाल में थे, वर्तमान में है और भविष्य में रहेंगे - उनका जानने वाला है। मैंने इस पदार्थ को रखा - ऐसा मानने वाला त्रिकालवेत्ता नहीं रहा। पदार्थ की अवस्था जो भूतकाल में हो गई, वर्तमान में है और भविष्य में होगी - उसका जानने वाला है वह पर का करने वाला नहीं हो सकता ।

जो जानता है वह करता नहीं, जो करता है वह जानता नहीं। इसलिये सर्वज्ञ के शास्त्र की परीक्षा करना चाहिये। मिथ्यादृष्टि अल्पज्ञ शास्त्र की रचना करके विपरीत प्ररूपण करता है वह शास्त्र नहीं है।

आत्मा का स्वभाव शुद्ध चिदानन्द है। जिनको उस शक्ति - स्वभाव में से पूर्ण दशा प्रगट हुई है उन केवली भगवान की वाणी को सूत्र कहते हैं। वर्तमान में सर्वज्ञ के नाम पर गड़बड़ हो गई है वह सत्य नहीं है। शास्त्र सर्वज्ञ द्वारा भासित होना चाहिये। बात सूक्ष्म है। अपनी कल्पितमति से शास्त्र लिखे हैं और उन पर भगवान

www.vitragvani.com

का नाम चढ़ा दिया है। महावीर भगवान के छह सौ वर्ष बाद बारह वर्ष के तीन दुष्काल पड़े थे तब शास्त्रों में गड़बड़ कर दी थी। उनमें देव-गुरु-शास्त्र का स्वरूप विपरीत कहा है इसलिये वे सर्वज्ञ कथित शास्त्र कहाँ हैं? -यह जानना चाहिये । यहाँ सर्वज्ञ के सूत्र में कहे गये जीवादि नव तत्वों में हेय-उपादेयपना जानना चाहिये। सिद्धांत में दो प्रकार का व्याख्यान आता है- (एक) पुण्य-पाप के भाव जानने योग्य है और (दो) छोड़ने योग्य है। नवतत्व जानने योग्य है; परन्तु उसमें दो प्रकार है - 1. हेय और 2. अहेय (उपादेय)

हेय अर्थात् छोड़ने लायक और अहेय अर्थात् छोडने लायक नहीं याने आदरणीय। अपना आत्मा एक समय में पूर्ण आनन्दस्वरूप है वह अन्तर श्रद्धा में आदर करने योग्य है। दया, दान (हिंसा झूठ) आदि की पुण्य-पापरूप वृत्तियाँ जानने योग्य है; परन्तु वे आदरणीय नहीं है। अज्ञानी को निश्चय-व्यवहार का कुछ भी पता नहीं है। शुद्धस्वभाव ज्ञानानन्द आत्मा आदरणीय है। पुण्य-पाप, दया, दान, काम, क्रोधरूप भाव आदर करने योग्य नहीं हैं। मैं जो शान्ति चाहता हूँ वह मेरे अन्तर में है, बाहर से शान्ति नहीं आती। (शान्ति) निज स्वभाव में भरी पड़ी है वह अहेय है- छोड़ने योग्य नहीं है, उपेक्षा करने योग्य नहीं है; बल्कि अपेक्षा करने योग्य है। जब आत्मा की पूर्ण शुद्धदशा होती है तब अशुद्धता नहीं रहती है। जैसे सोलहवान सुवर्ण में कुछ भी अशुद्धि नहीं रहती। एक अंश तावें का भी छोड़ने योग्य है। सोलहवान अर्थात् पूर्ण शुद्ध सुवर्ण रखने योग्य है।

आत्मा ज्ञान और आनन्द से परिपूर्ण है। उसकी पर्याय में दया, दानादि व हिंसादि के भाव छोड़ने योग्य है। आत्मस्वभाव की एकाग्रतारूपी ध्यान अग्नि में उनका नाश होता है और पूर्ण शुद्ध अवस्था प्रगट होती है। समाधि अर्थात् शान्ति। आत्मा अनादि-अनन्त है। शरीर अनादि-अनन्त नहीं रहता। संयोगी वस्तु का तो वियोग होगा। वर्तमान अवस्था में जितने भी पुण्य-पाप के भाव होते हैं वे सुवर्ण में कथीर-मलिनता के समान है। हिंसा, झूठ, चोरी, वासना, परिग्रह, हास्य, लोभादि के भाव पाप हैं। ये भाव छोड़ने योग्य है- ऐसी दृष्टि करो! भले ही ये भाव शीघ्र नहीं छूटें, तथापि दृष्टि यथार्थ करो! आत्मा की अवस्था में दया, दान कोमलता का भाव होता है वह पुण्य है और छोड़ने योग्य है-ऐसी प्रतीति करो। पर वस्तु को हेय कहा

www.vitragvani.com

है। राग-द्वेष छोड़ने योग्य है। जैसे सुवर्ण तो सोलहवान (शुद्ध) ही है; परन्तु कथीर तांबा आदि मलिनता के भाग के कारण पन्द्रहवान कहलाता है; उसी प्रकार आत्मा स्वभाव से शुद्ध है; परन्तु पर्याय में अशुद्धता है।

जैसे व्यापार में अत्यधिक ध्यान रखतें हैं, उसी प्रकार यहाँ भी ध्यान रखना चाहिये।

मेरा आत्मा शुद्ध चिदानन्द है। जिस भाव से स्वर्ग मिलता है वह भाव भी छोड़ने योग्य है- ऐसी प्रतीति लाओ, यह भगवान की वाणी में आया है। जो इससे विरूद्ध प्रतिपादन है वह जिनेश्वरदेव की वाणी नहीं है। वर्तमान में अमेरिका में अरबोंपति हैं, पैसे वाले बहुत हैं; परन्तु उनको शान्ति नहीं है। पर पदार्थ अथवा पर पदार्थ के लक्ष्य से होने वाले राग में शान्ति नहीं है। जो विकार होता है वह जानने योग्य है- छोड़ने योग्य है। स्वभाव आदरणीय है। जीव अनादि से पुण्य-पाप करता आया है। सेठपना या स्वर्ग का पद मिलता है वह पूर्व पुण्योदय से मिलता है। जबकि अज्ञानी मानता है कि पैसा मेरी चतुराई से आता है, यह भ्रान्ति है। वस्तुतः पैसा तो पूर्व पूण्य के कारण मिलता है। अज्ञानी को व्यर्थ ही अभिमान होता है।

जो पुण्य-पाप के भाव को आदरणीय मानता है वह मूढ़ है। लौकिक कला तो बहुत दूर की बात है; परन्तु तू अपने में दया, दानादि के भाव करके पाँच लाख रूपये दान में देकर कषाय मंदता का भाव करता है वह भी आदरणीय नहीं है। नामपट्ट के लिये अथवा कीर्ति के लिये दान करना तो पाप ही है, वह पाप तो छोड़ने योग्य है ही; परन्तु लोभ मंद किया हो तो वह (भाव) पुण्य है; परन्तु वह भी धर्म नहीं है।

पंच महाव्रतों का पालन करना, सत्य बोलना, ब्रह्मचर्य पालन करना-इत्यादि भाव आदरणीय नहीं हैं। मुनिराज की बाह्य दशा नग्न दिगम्बर होती है। वे 'मैं पूर्णानन्द स्वभावी हूँ' ऐसी दृष्टि पूर्वक अन्तरदशा में झूलते हैं। उनके पंच महाव्रत के परिणाम होते हैं वे हेय हैं - छोड़ने योग्य हैं। जो पंचमहाव्रतों के परिणाम को आदरणीय मानता है वह मूढ़ है।

वस्तुतः स्वभाव की रुचि करने का नाम उपादेयपना और विकार की रुचि छोड़ने का नाम हेयपना है।

पुण्य-पाप के परिणाम न तो लाये जा सकते हैं और न टाले (मिटाये) जा सकते

www.vitragvani.com

हैं। ज्ञानी को भी दया, दानादि के परिणाम आते हैं; परन्तु वे उन्हें लाते नहीं हैं। जो आते हैं उन्हें छोड़ने योग्य मानते हैं। उनको दया, दानादि के परिणामों की रुचि नहीं है- इसका नाम 'हेय' है और स्वभाव की रुचि करने का नाम 'उपादेय' है। इसप्रकार हेय-उपादेय को जानने वाला जीव सम्यग्दृष्टिवंत है। मैं जिस शुद्धि की आकांक्षा रखता हूँ वह मेरे स्वभाव में है। दया, दानादि की वृत्ति उठती है उसकी उपेक्षा करने का नाम 'हेय' है। स्वभाव की अपेक्षा करने का नाम 'उपादेय' है। इसप्रकार हेय-उपादेय का कथन सर्वज्ञ की वाणी में आया है; परन्तु जो हेय को उपादेय और उपादेय को हेय मानता है वह तो (हेय-उपादेय व्यवस्था की) खिचड़ी कर देता है। आत्मा (स्वभाव से) शुद्ध है। दया, दानादि करते-करते शुद्धता होगी-ऐसा मानना भ्रान्ति है। स्वभाव का आदर करने वाला और विभाव की रुचि छोड़ने वाला सत्य दृष्टिवंत है।

शास्त्रों में सम्पूर्ण स्वरूप लिपिबद्ध है वह जानने योग्य है। उसमें सभी उपादेय नहीं है। दया, दान, व्रत, भक्तिरूप रागादि भाव का अभाव करके सर्वज्ञपद प्राप्त किया है, इसलिये उनकी वाणी में राग के अभाव का उपदेश आता है। राग हेय है और स्वभाव उपादेय है। तुझे अन्तर स्वभाव सन्मुख झुकना है या राग के सन्मुख झुकना है? यदि राग की और झुकेगा तो संसार का अभाव नहीं होगा।

शास्त्र में दो कथन है- स्वभाव आदरणीय है और राग छोड़ने योग्य है। पहले यह बात सुनना चाहिये कि व्यवहार जानने योग्य है; परन्तु वह आदरणीय नहीं है। यदि पुण्य-पाप आदरणीय हो तो पुण्य-पाप का लक्ष्य छोड़कर स्वभाव आदरणीय नहीं हो सकता । अनन्त जीव हैं। उनमें मुक्तदशा को प्राप्त जीव भी अनन्त हैं। वे अपने अन्तर स्वभाव में एकाग्र होकर मुक्तदशा को प्राप्त हुए हैं। तू भी अपनी योग्यता से स्वभाव सम्मुख हो तो मुक्ति होगी। । आत्मा का स्वभाव शुद्ध चिदानन्द है उसकी अंतर दृष्टि करो। जिस प्रकार सोलहवान सुवर्ण उपादेय है; उसीप्रकार आत्मा का शुद्ध स्वभाव उपादेय है। आत्मा जाननहार है। पचास वर्ष पूर्व की बात को याद करने वाला आत्मा है, वैसी सामर्थ्य शरीर और राग में नहीं; किन्तु आत्मा में है। यदि राग रहित स्वभाव में एकाग्र होवे तो एक समय में तीनकाल - तीनलोक को जानने की सामर्थ्य प्रगट होती है। एक मनुष्य 98 वर्ष का था, उसे 90 वर्ष पहिले की बात याद थी, वह सामर्थ्य किसकी है? जड़ में वैसी सामर्थ्य है? नहीं; आत्मा के ज्ञानस्वभाव में

Shree kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

त्रिकाल को जानने की सामर्थ्य है। उसे श्रद्धा में आदरणीय कहा है। पुण्य-पाप और अल्पज्ञता तो छोड़ने योग्य है - ऐसा जानने वाला ही सत्य दृष्टिवंत धर्मी होता है। उसको सम्यग्दृष्टि कहते हैं।

अब हेय-उपादेय में निश्चय-व्यवहार कहते हैं। जिन शब्द साम्प्रदायिक नहीं है। आत्मा पूर्ण शुद्ध चिदानन्द है। उसने राग-द्वेष को जीतकर अविकारीदशा प्रगट की वह 'जिन' है। उनकी वाणी में जो सूत्र आये उनमें व्यवहार और परमार्थ की बात आई है। साधक को भूमिकानुसार व्यवहार आता है; परन्तु व्यवहार परमार्थ नहीं है। परमार्थ का अर्थ 'पर को देना' - ऐसा नहीं है। मैं पूर्णानन्द स्वभावी हूँ - ऐसी दृष्टि करना ही परमार्थ है। दया, दानादि राग की वृत्ति उत्पन्न होती है वह व्यवहार है। भगवान के शास्त्र में दो प्रकार के कथन हैं -

(1) छोड़ने योग्य (2) आदरणीय वस्तु

(1) हेय माने व्यवहार (2) अहेय माने परमार्थ ।

इस प्रकार जिनवाणी में दो प्रकार के कथन हैं वे व्यवहार और परमार्थ के कथन जानना ।उनमें जो परमार्थ की तरफ जुड़ान करता है वह योगी है और वह सुख को प्राप्त करता है। आत्मा के स्वरूप को जानकर उसमें जुड़ान करने वाला योगी है। बाहर के वेष रखे वह योगी नहीं है। योग को साधे वह योगी है। धर्मी को योगी कहते हैं।

यहाँ निश्चय के स्थान पर 'परमार्थ' शब्द का प्रयोग किया है। समयसार की 8 वीं गाथा में कहा है कि - व्यवहार के बिना परमार्थ का उपदेश अशक्य है। वहाँ भी परमार्थ शब्द का प्रयोग किया है।

कथन के दो प्रकार हैं - (1) व्यवहार और (2) परमार्थ । आत्मा एक समय में पूर्ण शुद्ध है, उसमें जुड़ान करना परमार्थ है। परमार्थ की ओर झुकाव करने वाला योगी है। व्यवहार की ओर झुकाव करने वाला तो मिथ्यादृष्टि है। गृहस्थदशा में अशुभराग आता है; परन्तु वह क्षणिक है। दया, दानादि का शुभभाव (भी) क्षाणिक है। पुण्य-पाप व्यवहार है। मेरा स्वरूप त्रिकाल शुद्ध है वह परमार्थ है। उस स्वरूप की ओर जुड़ान करने वाला योगी है। वह अपने स्वरूप में जुड़ान करके शुद्धभाव प्रगट करके सुख को प्राप्त करता है।

सूत्रपाहुड़ गाथा - 6

आगे कहते हैं कि जिनभाषित सूत्र व्यवहार परमार्थरूप दो प्रकार है, उसको जानकर योगीश्वर शुद्धभाव करके सुखको पाते हैं-

जं सुत्तं जिणउत्तं ववहारो तह य जाण परमत्थो।
तं जाणिऊण जोई लहइ सुहं खवइ मलपुंज।।6।।

यत्सूत्रं जिनोक्तं व्यवहारं तथा च ज्ञानीहि परमार्थम्।
तं ज्ञात्वा योगी लभते सुखं क्षिपते मलपुंजं।। 6 ।।

हिन्दी पद्यानुवाद

परमार्थ या व्यवहार जो जिनसूत्र में जिनवर कहे।
सब जान योगी सुख लहें मलपुंज का क्षेपण करें।।6।।

अर्थः- जो जिनभाषित सूत्र है, वह व्यवहाररूप तथा परमार्थरूप है, उसको योगीश्वर जानकर सुख पाते हैं और मलपुंज अर्थात् द्रव्यकर्म, भावकर्म नोकर्मका क्षेपण करते हैं।

भावार्थः- जिनसूत्रको व्यवहार परमार्थरूप यथार्थ जानकर योगीश्वर (मुनि) कर्मोका नाश करके अविनाशी सुखरूप मोक्षको पाते हैं। परमार्थ (निश्चय) और व्यवहार इनका संक्षेप स्वरूप इसप्रकार है कि - जिन आगमकी व्याख्या चार अनुयोगरूप शास्त्रोंमें दो प्रकारसे सिद्ध है, एक आगमरूप दूसरी अध्यात्मरूप। वहाँ सामान्य-विशेषरूपसे सब पदार्थोंका प्ररूपण करते हैं सो आगमरूप है परन्तु जहाँ एक आत्माही के आश्रय निरूपण करते हैं सो अध्यात्म है। अहेतुमत् और हेतुमत् ऐसे भी दो प्रकार हैं, वहाँ सर्वज्ञकी आज्ञाहीसे केवल प्रमाणता मानना अहेतुमत् है और प्रमाण नयके द्वारा वस्तुकी निर्बाध सिद्धि करके मानना सो हेतुमत् है। इसप्रकार दो प्रकारसे आगममें निश्चय व्यवहारसे व्याख्यान है वह कुछ लिखनेमें आ रहा हे।

जब आगमरूप सब पदार्थों के व्याख्यान पर लगाते हैं तब तो वस्तुका स्वरूप सामान्य विशेषरूप अनन्त धर्मस्वरूप है वह ज्ञानगम्य है, इनमें सामान्यरूप तो निश्चयनयका विषय है और विशेषरूप जितने हैं उनको भेदरूप करके भिन्न भिन्न कहे वह व्यवहारनयका विषय हैं, उसको द्रव्य पर्याय स्वरूप भी कहते है। जिस वस्तुको विवक्षित करके सिद्ध करना हो उसके द्रव्य क्षेत्र काल भावसे जो कुछ सामान्य

www.vitragvani.com

विशेषरूप वस्तुका सर्वस्व हो वह तो निश्चय व्यवहारसे कहा है वैसे, सिद्ध होता है और उस वस्तुके कुछ अन्य वस्तुके संयोगरूप जो अवस्था हो उसको उस वस्तुरूप कहना भी व्यवहार है, इसको उपचार भी कहते हैं। इसका उदाहरण ऐसे है- जैसे एक विवक्षित घट नामक वस्तु पर लगावें तब जिस घटका द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावरूप सामान्य- विशेषरूप जितना सर्वस्व है उतना कहा, वैसे निश्चय, व्यवहारसे कहना वह तो निश्चय-व्यवहार है और घटके कुछ अन्य वस्तुका लेप करके उस घटको उस नामसे कहना तथा अन्य पटादिमें घटका आरोपण करके घट कहना भी व्यवहार है।

व्यवहारके दो आश्रय हैं, एक प्रयोजन, दूसरा निमित्त। प्रयोजन साधनेको किसी वस्तुको घट कहना वह तो प्रयोजनाश्रित है और किसी अन्य वस्तुके निमित्तसे घटमें अवस्था हुई उसको घटरूप कहना वह निमित्ताश्रित है। इसप्रकार विवक्षित सर्व जीव अजीव वस्तुओं पर लगाना। एक आत्माहीको प्रधान करके लगाना अध्यात्म है। जीव सामान्यको भी आत्मा कहते है। जो जीव अपनेको सब जीवोंसे भिन्न अनुभव करे उसको भी आत्मा कहते हैं, जब अपनेको सबसे भिन्न अनुभव करके, अपने पर निश्चय लगावे तब इसप्रकार जो आप अनादि- अनन्त अविनाशी सब अन्यद्रव्योंसे भिन्न, एक सामान्य- विशेषरूप, अनन्तधर्मात्मक द्रव्य- पर्यायात्मक जीव नामक शुद्ध वस्तु है, वह कैसा है-

शुद्ध दर्शन ज्ञानमयी चेतनास्वरूप असाधारण धर्मको लिये हुए अनन्त शक्तिका धारक है, उसमें सामान्य भेद चेतना अनन्त शक्तिका समूह द्रव्य है। अनन्तज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्य ये चेतनाके विशेष हैं वह तो गुण हैं और अगुरुलघु गुणके द्वारा षट्स्थान पतित हानि- वृद्धिरूप परिणमन करते हुए जीवके त्रिकालात्मक अनन्त पर्यायें हैं। इसप्रकार शुद्ध जीव नामक वस्तुको सर्वज्ञने देखा, जैसा आगममें प्रसिद्ध है, वह तो एक अभेदरूप शुद्धनिश्चयनयका विषयभूत जीव है, इस दृष्टि से अनुभव करे तब तो ऐसा है और अनन्त धर्मोंमें भेदरूप किसी एक धर्म को लेकर कहना व्यवहार है।

आत्मवस्तुके अनादिहीसे पुद्गल कर्मका संयोग है, इसके निमित्तसे रागद्वेषरूप विकारकी उत्पत्ति होती है उसको विभाव परिणति कहते हैं, इससे फिर आगामी कर्मका बंध होता है। इसप्रकार अनादि निमित्त-नैमित्तिक भावके द्वारा चतुर्गतिरूप संसार-भ्रमणकी

www.vitragvani.com

प्रवृत्ति होती है। जिस गतिको प्राप्त हो वैसे ही नामका जीव कहलाता है तथा जैसा रागादिक भाव हो वैसा नाम कहलाता है। जब द्रव्य क्षेत्र काल- भावकी बाह्यअंतरंग सामग्रीके निमित्तसे अपने शुद्धस्वरूप शुद्धनिश्चयनय के विषयस्वरूप अपनेको जानकर श्रद्धान करे और कर्म संयोगको तथा उसके निमित्त से अपने भाव होते हैं उनका यथार्थ स्वरूप जाने तब भेदज्ञान होता है, तब ही परभावोंसे विरक्ति होती है। फिर उनको दूर करनेका उपाय सर्वज्ञके आगमसे यथार्थ समझकर उसको अंगीकार करे तब अपने स्वभावमें स्थिर होकर अनन्त चतुष्टय प्रगट होते हैं, सब कर्मोंका क्षय करके लोकशिखर पर जाकर विराजमान हो जाता है तब मुक्त या सिद्ध कहलाता है।

इसप्रकार जितनी संसार की अवस्था और यह मुक्त अवस्था इसप्रकार भेदरूप आत्माका निरूपण है वह भी व्यवहारनयका विषय है, इसको अध्यात्म शास्त्रमें अभूतार्थ- असत्यार्थ नामसे कहकर वर्णन किया है, क्योंकि शुद्ध आत्मामें संयोगजनित अवस्था हो सो तो असत्यार्थ ही है, कुछ शुद्ध वस्तुका तो यह स्वभाव नहीं है इसलिये असत्य ही है। जो निमित्तसे अवस्था हुई वह भी आत्माही का परिणाम है, जो आत्मा का परिणाम है वह आत्माही में है इसलिये कथंचित् इसको सत्य भी कहते हैं परन्तु जबतक भेदज्ञान नहीं होता है तबतक ही यह दृष्टि है, भेदज्ञान होने पर जैसे है वैसे ही जानता है।

जो द्रव्यरूप पुद्गलकर्म हैं वे आत्मा से भिन्न ही हैं, उनसे शरीरादिका संयोग है वह आत्मासे प्रगट ही भिन्न है, इनको आत्माके कहते हैं सो यह व्यवहार प्रसिद्ध है ही, इसको असत्यार्थ या उपचार कहते हैं। यहाँ कर्मके संयोगजनित भाव हैं वे सब निमित्ताश्रित व्यवहारके विषय हैं और उपदेश अपेक्षा इसको प्रयोजनाश्रित भी कहते हैं, इसप्रकार निश्चय-व्यवहारका संक्षेप है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रको मोक्षमार्ग कहा, यहाँ ऐसे समझना कि ये तीनों एक आत्माहीके भाव हैं, इसप्रकार इनरूप आत्माहीका अनुभव हो सो निश्चय मोक्षमार्ग है, इसमें भी जबतक अनुभवकी साक्षात् पूर्णता नहीं हो तबतक एकदेशरूप होता है उसको कथंचित् सर्वदेशरूप कहकर कहना व्यवहार है और एकदेश नामसे कहना निश्चय है।

दर्शन, ज्ञान, चारित्रको भेदरूप कहकर मोक्षमार्ग कहे तथा इनके बाह्य परद्रव्यस्वरूप द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव निमित्त हैं उनको दर्शन ज्ञान चारित्रके नामसे कहे वह व्यवहार

Shree kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

है। देव, गुरु, शास्त्रकी श्रद्धाको सम्यग्दर्शन कहते हैं, जीवादिक तत्त्वोंकी श्रद्धा को सम्यग्दर्शन कहते हैं। शास्त्रके ज्ञान अर्थात् जीवादिक पदार्थोंके ज्ञानको ज्ञान कहते हैं इत्यादि। पांच महाव्रत, पांच समिति, तीन गुप्तिरूप प्रवृत्तिको चारित्र कहते हैं। बारह प्रकारके तपको तप कहते हैं। ऐसे भेदरूप तथा परद्रव्यके आलम्बनरूप प्रवृत्तियाँ सब अध्यात्म शास्त्रकी अपेक्षा व्यवहारके नामसे कही जाती हैं क्योंकि वस्तुके एकदेशको वस्तु कहना भी व्यवहार है और परद्रव्यकी आलम्बनरूप प्रवृत्तिको उस वस्तुके नामसे कहना वह भी व्यवहार है।

अध्यात्म शास्त्रमें इसप्रकार भी वर्णन है कि वस्तु अनन्त धर्मरूप हे इसलिये सामान्य-विशेषरूपसे तथा द्रव्य-पर्यायसे वर्णन करते हैं। द्रव्यमात्र कहना तथा पर्यायमात्र कहना व्यवहारका विषय है। द्रव्यका भी तथा पर्यायका भी निषेध करके वचन अगोचर कहना निश्चयनय का विषय है। द्रव्यरूप है वही पर्यायरूप है इसप्रकार दोनोंको ही प्रधान करके कहना प्रमाणका विषय है, इसका उदाहरण इसप्रकार है- जैसे जीवको चैतन्यरूप, नित्य, एक, अस्तिरूप इत्यादि अभेदमात्र कहना वह तो द्रव्यार्थिकनयका विषय है और ज्ञान-दर्शनरूप, अनित्य, अनेक, नास्तित्वरूप इत्यादि भेदरूप कहना पर्यायार्थिकनयका विषय है। दोनों ही प्रकारकी प्रधानताका निषेधमात्र वचन अगोचर कहना निश्चय नयका विषय है। दोनों ही प्रकारको प्रधान करके कहना प्रमाणका विषय है इत्यादि।

इसप्रकार निश्चय-व्यवहारका सामान्य अर्थात् संक्षेप स्वरूप है, उसको जानकर जैसे आगम-अध्यात्म शास्त्रोंमें विशेषरूपसे वर्णन हो उसको सूक्ष्मदृष्टि से जानना। जिनमत अनेकांतस्वरूप स्याद्वाद है और नयोंके आश्रित कथन है। नयोंके परस्पर विरोधको स्याद्वाद दूर करता है, इसके विरोधका तथा अविरोधका स्वरूप अच्छी तरह जानना। **यथार्थ तो गुरु आम्नाय ही से होता है, परन्तु गुरुका निमित्त इस कालमें विरल होगया, इसलिये अपने ज्ञानका बल चले तबतक विशेषरूपसे समझते ही रहना, कुछ ज्ञानका लेश पाकर उद्धत नहीं होना, वर्तमान कालमें अल्पज्ञानी बहुत हैं इसलिये उनसे कुछ अभ्यास करके उनमें महन्त बनकर उद्धत होनेपर मद आ जाता है तब ज्ञान थकित हो जाता है** और विशेष समझने की अभिलाषा नहीं रहती है तब विपरीत होकर यद्वातद्वा-मनमाना कहने लग जाता

www.vitragvani.com

है उससे अन्य जीवोंका श्रद्धान विपरीत हो जाता है, तब अपने अपराध का प्रसंग आता है, **इसलिये शास्त्रको समुद्र जानकरअल्पज्ञरूप ही अपना भाव रखना जिससे विशेष समझनेकी अभिलाषा बनी रहे, इससे ज्ञानकी वृद्धि होती है।**

अल्प ज्ञानियों में बैठकर महन्तबुद्धि रखे तब अपना प्राप्त ज्ञान भी नष्ट हो जाता है, इसप्रकार जानकर निश्चय-व्यवहाररूप आगम की कथन पद्धतिको समझकर उसका श्रद्धान करके यथाशक्ति आचरण करना। इस कालमें गुरु संप्रदायके बिना महन्त नहीं बनना, जिन-आज्ञाका लोप नहीं करना। कोई कहते हैं- हम तो परीक्षा करके जिनमतको मानेंगे वे वृथा बकते हैं- स्वल्पबुद्धिका ज्ञान परीक्षा करनेके योग्य नहीं है। आज्ञाको प्रधान रख करके बने जितनी परीक्षा करनेमें दोष नहीं है, केवल परीक्षा ही को प्रधान रखनेमें जिनमतसे च्युत हो जाय तो बड़ा दोष आवे, इसलिये जिनकी अपने हित-अहित पर दृष्टि है वे तो इसप्रकार जानो, और जिनको अल्प ज्ञानियोंमें महंत बनकर अपने मान, लोभ, बड़ाई, विषय-कषाय पुष्ट करने हों उनकी बात नहीं है, वे तो जैसे अपने विषय-कषाय पुष्ट होंगे वैसे ही करेंगे, उनको मोक्षमार्ग का उपदेश नहीं लगता है, विपरीतको किसका उपदेश? इसप्रकार जानना चाहिये ।। 6 ।।

गाथा- 6 पर प्रवचन

त्रिकाली शुद्ध स्वभाव भूतार्थ है और विकार तथा अपूर्णता अभूतार्थ है।

सर्वज्ञ की आत्मा में चैतन्य प्रकाश खिल गया है। उनके द्वारा कथित सूत्र में व्यवहाररूप कथन और परमार्थरूप कथन है। यदि उपचाररूप कथन को यथार्थ मानले तो जीव मूढ हो जाता है। आत्मा शुद्ध स्वभावी है, उसका आश्रय करना परमार्थ है। वर्तमान दशा में भेद अथवा अंश है वह व्यवहार है- अभूतार्थ है; कारण कि वह नित्य नहीं रहता । आत्मा एक समय में पूर्ण ज्ञान.....ज्ञान.....ज्ञान.....आनन्द..... आनन्द.....आनन्द से भरा हुआ है वह त्रिकाल भूतार्थ कायम पदार्थ है। उसके अवलम्बन से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट होता है। वर्तमान अवस्था में भेद पड़ते हैं वे मेरे स्वभाव में नहीं है, इसलिये अभूतार्थ है। पुण्य-पाप तो हेय है ही; परन्तु अल्पज्ञता भी आश्रय करने योग्य नहीं होने से हेय है। आत्मा पूर्ण शक्तिवान है। अन्तर में परिपूर्ण शक्ति विद्यमान है। वह है तो पदार्थ है। वह त्रिकाली रहने वाला है। वर्तमान अवस्था में प्रवर्त्तमान पुण्य-पाप अथवा अल्पज्ञता के आश्रय से त्रिकाल

www.vitragvani.com

सत् की दृष्टि नहीं होती। त्रिकाल स्वभाव के आश्रय से ही त्रिकाल सत् की दृष्टि होती है और शुद्ध स्वभाव में एकाग्रतारूपी घर्षण से ही केवलज्ञानरूपी ज्योति प्रगट होती है।

जैस माचिस की तिल्ली के टोप में अग्नि भरी है इसलिये उसे घिसते हैं, सफेद लकड़ी में अग्नि की शक्ति नहीं है इसलिये उसको नहीं घिसते। उसीप्रकार आत्मा एक समय में त्रिकाल शुद्ध.....शुद्ध....शुद्ध स्वभाव से भरा है, उसमें एकाग्रता करने से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट होता है। वर्तमान दशा में (विद्यमान) दया, दान, काम, क्रोधदि व अल्पज्ञता में एकाग्रता करने योग्य नहीं है। इनसे चैतन्य ज्योति प्रगट नहीं होती ।

आत्मा अन्तर स्वभाव में पूर्ण ज्ञान आनन्द से भरा पदार्थ है। उसमें एकाग्रतारूपी घर्षण से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट होकर केवलज्ञान प्रगट होगा। पुण्य-पाप और अल्पज्ञता (माचिस की) सफेद लकड़ी के समान है; अतः उनके आश्रय से केवलज्ञान नहीं होता। आत्मा एकसमय में पूर्ण शुद्ध चैतन्य ज्योति है- प्रथम ऐसी दृष्टि होती है, फिर उसमें एकाग्रता होने से पुण्य-पाप नहीं रहते- नष्ट हो जाते है और सर्वज्ञदशा प्रगट होती है। जैसे माचिस की सफेद तिली घिसने से अग्नि नहीं होती, इसलिये उसको कोई नहीं घिसता; उसीप्रकार जीव ने पुण्य-पाप तो बहुत किये; परन्तु धर्म नहीं हुआ। जैसे कोई मनुष्य अंधेरे में भ्रम से सफेद तिल्ली को घिसता है तो अग्नि प्रगट नहीं होती, तब वह उसे फेरकर काली टिपकी की तरफ से घिसता है; परन्तु अज्ञानी अपनी दृष्टि नहीं बदलता। शुद्धस्वभाव में एकाग्र होना चाहिये; दया, दानादि एकाग्र होने योग्य नहीं है। शुद्ध स्वभाव में एकाग्र होने से दया, दानादि के भाव व अल्पज्ञता जल जायेगी, केवलज्ञान ज्योति प्रगट होगी।

त्रिलोकनाथ परमात्मा के शास्त्र में परमार्थ और व्यवहार दोनो कथन आते हैं। क्या वर्तमान में वर्तते दया, दानादि के विकल्प में व अल्पज्ञता में एकाग्र होने से सम्यग्दर्शन होगा? नहीं। वर्तमान पर्याय है अवश्य; परन्तु उसके आश्रय से शान्ति प्रगट नहीं होती, इसलिये उसे व्यवहार कहते हैं। स्वभाव के आश्रय से शान्ति प्रगट होती है, इसलिये उसे परमार्थ कहते हैं। इसप्रकार परमार्थ को समझने से सम्यग्दर्शन प्रगट होकर केवलज्ञान प्रगट होता है। इसलिये व्यवहार छोड़ने योग्य और निश्चय (परमार्थ) अंगीकार करने योग्य है।

www.vitragvani.com

यहाँ सूत्रपाहुड़ चल रहा है। दिव्यध्वनि में आये हुए सूत्रों का सार क्या है- यह इसमें बताते हैं। अजीव, पुण्य-पाप, आस्रव और बंध छोड़ने योग्य है। जीव अपने स्वभाव के सन्मुख होकर संवर, निर्जरा, मोक्ष प्रगट करता है वह आदरणीय है- ऐसा सूत्र कहता है।

जिनभासित सूत्र में एक व्यवहाररूप और एक परमार्थरूप (उपदेश) है। उसे जानकर योगीश्वर सुख प्राप्त करते हैं।

श्वेताम्बर सम्प्रदाय में पहले व्यवहार कहा है और वे कहते हैं कि इस व्यवहार से निश्चय होता है। उनके सामने यह सिद्धान्त है कि व्यवहार हेय है और परमार्थ अहेय अर्थात् उपादेय है। श्री कुन्दकुन्दाचार्य के समय में श्वेताम्बरमत निकल चुका था- इसकारण वे स्पष्टीकरण करते हैं। श्वेताम्बर मानते हैं कि व्यवहार करते-करते निश्चय होगा। अभी तो दिगम्बर सम्प्रदाय में भी बहुत से जीव ऐसा ही मानते हैं; परन्तु ये सब मान्यतायें मिथ्या हैं।

व्यवहार में निमित्तरूप जो जिनप्रतिमा होती है उसके ऊपर केसर आदि नहीं होती। यहाँ तो विशेष बात कहते हैं कि व्यवहार करते-करते निश्चय होगा- ऐसा भगवान के सूत्र (शास्त्रों) में नहीं कहा है।

यहाँ कोई **प्रश्न** पूछता है कि- जिस समय जो अवस्था होने वाली है वह होगी, तो फिर इसमें पुरुषार्थ क्या आया?

समाधानः- जिस पदार्थ की जो अवस्था होने वाली है, उसका तू कर्त्ता नहीं है; उसको हेय जानकर छोड़ दे। पुरुषार्थ करके अपने स्वभाव सन्मुख झुक।- यही पुरुषार्थ है और उपादेय है।

"जो-जो देखी वीतराग ने, सो-सो होसी वीरा रे।
अनहोनी होसी नहिं क्योंहि काहे होत अधीरा रे।।"

तू अधीर किसलिये होता है? पुण्य-पाप की रुचि छोड़कर निज स्वभाव की रुचि कर। सर्वज्ञ ने देखा होगा वैसा होगा- ऐसा निर्णय करने वाला राग को हेय जानता है, परमार्थ को उपादेय मानता है। जब स्वभाव उपादेय हुआ वहाँ क्रमबद्ध में राग आया उसकी हेय बुद्धि होकर स्वभाव की उपादेय बुद्धि हुई। अज्ञानी पर पदार्थ में फेरफार करना चाहता है। दिव्यध्वनि में (सूत्र का) सार यह आया है कि जो राग छूट जाता है वह पहले से ही छोड़ने योग्य है- ऐसा नहीं मानने वाला योगी नहीं है।

Shree kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

सूत्र में दो प्रकार के कथन है-

(1) व्यवहार और (2) परमार्थ। दोनो को जानकर स्वभाव में एकाग्र होने वाला योगी है। जो राग में एकाग्र होता है वह धीर बुद्धि वाला नहीं है। 'मैं राग को बदल दूँ'- ऐसी बुद्धि वाला जीव क्रमबद्ध को नहीं जानता । जो राग को हेय और स्वभाव को उपादेय जानता है, राग और निमित्त को हेय समझता है और स्वभाव को उपादेय मानता है उसको सर्वज्ञ की प्रतीति है।

श्वेताम्बर शास्त्र कहते हैं तथा (श्वेताम्बर उपाध्याय) यशोविजयजी कहते हैं कि 'पहले व्यवहार चाहिये। यशोविजयजी 350 वर्ष पूर्व हो गये हैं उन्होंने अपने द्वारा रचित 'दिग्पट चौरासी बोल' में दिगम्बरों की 84 भूलें निकाली है। वे कहते हैं कि-

'निश्चयनय पहले कहे, पीछे ले व्यवहार।
भाषाक्रम जाने नहीं जैनमार्ग को सार।।"

अर्थात् तुम (दिगम्बर जैन) पहले निश्चय कहते हो और फिर व्यवहार कहते हो; इसलिये तुम जैनमार्ग के सार को नहीं समझते।' पहले राग की मंदता करे, दया-दानादि करे तो समकित होता है। 'निश्चय स्वभाव के आश्रय से समकित होता है; परन्तु व्यवहार से नहीं होता'- यह बात तुम लाये कहाँ से? तथा-

'नहिं निश्चय में शिष्य-गुरु, क्रिया, क्रियाफल योग।
कर्ता नहिं भोक्ता नहिं, विफल सबै संयोग ।।"

तुम निश्चय-निश्चय कहते हो; परन्तु निश्चय में गुरु-शिष्य नहीं रहते तथा क्रिया, क्रिया का फल, कर्त्ता-भोक्तापना नहीं रहता, और इसकारण सर्व संयोग निष्फल जाते है। तथा-

" तातै सो मिथ्यामती, जैन क्रिया परिहार।
व्यवहारी सो समकिती, कहे भाष्य व्यवहार।।"

इसकारण तुम (दिगम्बर जैन) मिथ्यादृष्टि हो। जीव पहले सत् सुने, राग मन्द करे तो सम्यग्दर्शन होता है। तुम तो राग को हेय कहते हो; इसलिये तुम्हारी बात मिथ्या है। जो व्यवहारी है वही समकिती है।

वर्तमान में तो दिगम्बर सम्प्रदाय में भी बहुभाग जीव राग से धर्म मानते हैं। उनकी मान्यता भी श्वेताम्बर जैसी हो गई है।

www.vitragvani.com

वीतराग ने जो-जो देखा है तदनुसार होता है- ऐसा निर्णय होने पर अधीरता मिट जाती है। सर्वज्ञ केवलज्ञान से सबकुछ जानते हैं। उसीप्रकार मैं भी जाननहार स्वभाव हूँ, रागादि हेय हैं। इसप्रकार स्वभाव सन्मुख होकर दृष्टि और स्थिरता होने पर राग मिट जाता है। व्यवहार करना, दया पालन करना- ऐसे भाव से धर्म नहीं है। श्वेताम्बर कहते हैं कि "देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा व्यवहार है और व्यवहारी समकिती है।"

तथा वे और भी कहते हैं-

"जो नय पहले परिणमे, सोई कहै हित होई।
निश्चय क्यों धुरि परिणमे? सूक्ष्म मति करि जोई।"

अर्थात्-शिष्य पहले सुनता है, फिर धर्म को समझता है; इसलिये पहले व्यवहारनय आता है और उससे हित होता है। निश्चय पहले कैसे आता है? सूक्ष्म बुद्धि करके देखे!

इसप्रकार श्वेताम्बर उपाध्याय यशोविजयजी ने दिगम्बरों की भूल निकाली है। वर्तमान में जो दिगम्बर व्यवहार पहले कहते हैं वे भी श्वेताम्बर की तरह मिथ्यादृष्टि ही हैं।

अभी लोगों को सत्य बात का पता नहीं है। त्रिलोकीनाथ की वाणी में क्या आया- इसका पता नहीं है। व्यवहार हेय है, परमार्थ उपादेय है। राग से दृष्टि छूटने का नाम हेयपना है और स्वभाव सन्मुख एकाग्र होना उपादेयपना है। इसी में क्रमबद्धपर्याय का निर्णय है, इसी में सर्वज्ञ की प्रतीति है। क्रमबद्ध कहो या वीतराग ने देखा होगा वैसा होगा कहो- दोनो एक ही है। जैसा वीतराग ने देखा होगा वैसा होगा- यह निमित्त का कथन है। पदार्थ का ऐसा ही स्वभाव है- यह निर्णय पर्याय में होता है। पर्याय स्वभाव के सन्मुख झुकती है। आत्मा ज्ञानानन्द स्वभावी है, इसके निर्णय बिना, सर्वज्ञ ने देखा होगा वैसा होगा- ऐसा निर्णय नहीं होता। तथा हेय और उपादेय का निर्णय भी नहीं होता।

भगवान द्वारा कथित सूत्र में व्यवहार और परमार्थ- ऐसा दो प्रकार का कथन है। ज्ञानानन्द स्वभाव में सूख है- ऐसा निर्णय करना निश्चय है और जितना राग शेष रहा उसको जानना व्यवहार है।

Shree kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

श्वेताम्बर कहते हैं कि पहले शिष्य सुनने आये, विचार करे तो धर्म होता है; परन्तु भाई! जीव ने ऐसा व्यवहार तो अनन्तबार किया है। छहढाला में कहा है कि-

"मुनिव्रतधार अनन्तबार ग्रेवेक उपजायो।
पे निजआतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।।"

जीव ने अपने ज्ञानानन्द स्वभाव की रुचि नहीं की, परन्तु व्यवहार की रुचि अनन्तबार की है, तथापि आत्मज्ञान के बिना रंच भी सुख प्राप्त नहीं हुआ। जीव ध र्म में निर्णय नहीं करता । बही-खातों में चार आने का अन्तर पड़ता है तो उसकी खोज करता है; परन्तु यहाँ खोज नहीं करता।

(1) केवली भगवान ने जैसा देखा होगा वैसा होगा।
(2) वस्तु में क्रमबद्ध (परिणमन) हुआ करता है।
(3) परमार्थ उपादेय है, व्यवहार हेय है।
(4) आत्मज्ञान बिना सुख प्राप्त नहीं हुआ-

इन सब बातों का मेल किसप्रकार है? इसका निर्णय जीव ने नहीं किया। व्यवहार सम्यग्ज्ञानी जीव के होता है। क्योंकि सम्यक् श्रुतज्ञान (प्रमाण) के बिना नय नहीं होते। श्रुतज्ञान सम्यग्दर्शन के बिना नहीं होता और सम्यग्दर्शन स्वभाव सन्मुख झुकाव किये बिना नहीं होता। इसप्रकार (निर्णय करके) स्वभाव सन्मुख होने पर सुख प्राप्त होता है।

आत्मा में दुःख की अवस्था होती है। दया, दानादि के परिणाम होते हैं वे दुःखदायक है। कषाय की मंदता से बाह्य तप आदि वृत्तियां उत्पन्न होती है वह विकार है- हेय है। अन्तर आनन्द स्वभाव उपादेय है। उसमें एकाग्र होने वाला योगी है। वह आनन्द को प्राप्त करता है और द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म को नष्ट करता है। द्रव्यकर्म निमित्त है। निर्विकारी स्वभाव में एकता होने पर राग-द्वेष खिर जाते हैं। स्वभाव में एकता होना निश्चय है और स्वभाव में एकता होने पर दुःख का अभाव होता है और निमित्तरूप कर्म का भी नाश होता है तथा शरीररूप नोकर्म का भी वियोग होकर अशरीरी दशा प्रगट होती है।

www.vitragvani.com

पाँचवीं गाथा में नौ पदार्थों के हेय-उपादेयरूप दो भाग किये थे वे दोनो एक समय में है, आगे-पीछे नहीं। निश्चय स्वभाव आनन्द है। जगत के प्राणियों को सुख चाहिये, दुःख नहीं चाहिये। पर्याय में दया, दानादि के परिणाम होते हैं वह भी दुःख है। स्वभाव में आनन्द है। उसकी रुचि करने से दृष्टि में दुःख हेय हो जाता है और एकाग्रता करने से सर्वथा दुःख मिटकर सुख दशा प्रगट होती है। पहले अधिकार (दर्शनपाहुड़) में दर्शन मुद्रा की बात की थी। वह अन्तर मान सहित नग्नदशा वाले मुनि की बात है। जिसको अन्तर मुनिपना प्रगट होता है उसके बाह्य में वस्त्र हो- ऐसा कभी नहीं होता। तथा जो यह मानता है कि मैं नग्नदशा कर सकता हूँ वह भी मूढ़ है।

यहाँ तो सूत्र की बात करते हैं। सूत्र में निश्चय को उपादेय और व्यवहार को हेय कहा गया है। पूर्व में जो मुद्रा (मुनिमुद्रा) की बात कही थी उसमें मुनि के अट्ठाईस मूलगुण पालन की बात कही थी वह भी हेय है। स्वभाव में एकाग्रता करना उपादेय है। चौथे गुणस्थान में (भी) स्वभाव की एकाग्रता परमार्थ है और जितना राग है वह हेय है- ऐसी वीतरागवाणी है। फिर भी जो विपरीत अर्थ करते हैं उनके द्वारा कहे गये सूत्र-शास्त्र सच्चे नहीं है। परमार्थ को जानकर अपने आनन्द स्वरूप में एकाग्र होना सम्यग्दर्शन है। वहीं से धर्म का प्रारम्भ है। उसके दर्शनमोहनीय कर्म का नाश हुआ और कुदेवादि का निमित्त नहीं होता। वह जीव क्रम-क्रम से आगे बढ़कर वीतरागता और केवलज्ञान प्रगट करता है तब चार घातिया कर्म नष्ट होते हैं और पूर्ण शुद्धदशा (सिद्धदशा) प्राप्त होने पर आठों कर्मों का अभाव होता है और शरीर भी नहीं रहता।

भाई! सत्य के स्वीकार में ही अपना मान है और असत्य के स्वीकार में महा अपमान है।

सर्वज्ञ भगवान की दिव्यध्वनि में जो आया तदनुसार मुनियों ने षटखण्डागम आदि शास्त्रों की रचना की है, वह जिनसूत्र है। सत्य की जीत और झूठ की हार हो वह ठीक ही है। अपने को इतने वर्ष हो गये अब अपनी मानी हुई बात झूठ सिद्ध होगी तो?- ऐसा विचार अज्ञानी करता है। मेरा अपमान होगा तो? भाई! सत्य के स्वीकार में ही तेरा मान है, अपमान नहीं है। व्यवहार से धर्म मानने वाला सर्वज्ञ की

www.vitragvani.com

आज्ञा से बाहर है। निश्चय से धर्म मानने वाला सर्वज्ञ की आज्ञा में है। यही मान है। व्यवहार से धर्म मानने वाले को तो भगवान अभव्य जैसा कहते हैं और यही महा अपमान है। सत्य के स्वीकार में तेरी प्रभुता है। प्रभुता के स्वीकार में मोक्ष है। असत्य के स्वीकार में तेरी दीनता है। उसके फल में निगोद है।

परमार्थ को उपादेय मानने वाला अपनी आत्मा का तथा सर्वज्ञ का आदर करता है, जबकि व्यवहार को उपादेय मानने वाला अपनी आत्मा का तथा सर्वज्ञ का अनादर करता है।

जो व्यवहार को हेय जानता है वह तीर्थंकर का विनय करता है। त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमात्मा की वाणी में ऐसा आया है कि जिसने निश्चय को उपादेय जाना और व्यवहार को हेय जाना उसने अपने आत्मा का विनय किया है तथा भगवान का भी विनय किया है। जो व्यवहार से धर्म होना मानता है वह निश्चय स्वभाव को अंगीकार नहीं करता। वह अपने आत्मा का तथा तीर्थंकर भगवान का अनादर-अविनय-अपमान करता है। भगवान ने व्यवहार को छोड़ने योग्य कहा है। 'व्यवहार है'- ऐसा कहने में आया है; वहाँ अज्ञानी पकड़ बैठता है कि क्या व्यवहार 'गधे के सींग' की तरह हेय! इस प्रकार वह तर्क करता है। परन्तु भाई! व्यवहार को हेय कहा है या उपादेय कहा है? भगवान ने तो व्यवहार को हेय कहा है। भगवान की वाणी में व्यवहार और परमार्थ दोनों कथन आये हैं। भगवान व्यवहार का अभाव करके केवलज्ञान को प्राप्त हुए हैं या व्यवहार को रखकर केवलज्ञान को प्राप्त हुए है? व्यवहार का अभाव करके केवलज्ञान को प्राप्त हुए हैं। इसलिये प्रथम से ही व्यवहार छोड़ने योग्य है- ऐसा मानना चाहिये।

परमार्थ अर्थात् निश्चय तथा व्यवहार का संक्षिप्त स्वरूप कहते हैं। सर्वज्ञ की वाणी में जो अनुयोग आये उनके (1) द्रव्यानुयोग (2) चरणानुयोग (3) करणानुयोग (4) कथानुयोग- ऐसे चार प्रकार हैं। यद्यपि चारों अनुयोग आगम है; परन्तु उनके कथन के दो प्रकार हैं-

(1) आगम, (2) अध्यात्म।

अब आगम माने क्या? जो पदार्थों का सामान्य और विशेषस्वरूप कहता है वह

www.vitragvani.com

आगम है। छहों द्रव्यों में त्रिकालपना अर्थात् सामान्यपना और पर्यायपना अर्थात् विशेषपना- इसप्रकार जो निरूपण करता है उसको आगम कहते हैं। और जो मात्र आत्मा की बातरूप निरूपण करता है वह अध्यात्म है।

कविवर पण्डित बनारसीदास जी कृत 'परमार्थ वचनिका' में आगम पद्धति और अध्यात्म पद्धति कही गई है वह अलग बात है। आत्मा में प्रतिसमय नया-नया विकार होता है और प्रतिसमय कर्मों का आना होता है वह आगम पद्धति है। द्रव्य और गुण की पर्याय सदृश-सदृश चली आती है वह अध्यात्म पद्धति है; परन्तु यहाँ यह बात नहीं है। यहाँ तो छहं द्रव्यों के कथन को आगम कहते हैं और एक आत्मा के आश्रित कथन हो उसे अध्यात्म कथन कहते है।

तथा हेतुमत् और अहेतुमत्- ऐसे दो प्रकार भी हैं। वस्तु की नय-प्रमाण आदि से सिद्धि करना वह हेतु पद्धति अथवा अध्यात्म पद्धति है। समयसार में आता है कि अभव्य जीव नौवें ग्रैवेयक तक जा आया, परन्तु वह चिदानन्द आत्मा का अनुभव नहीं करता, उसका पुण्य परिणाम भोग का हेतु है। मंद राग से संयोग मिलते हैं। जो विकार से हित नहीं मानता वह विकार में नहीं अटकता। अभव्य जीव दया, दानादि से लाभ मानता है- इसकारण उनसे भिन्न नहीं हो पाता और उनके फल से भी भिन्न नहीं हो पाता इसकारण उसका सब व्यवहार भोग का हेतु है। इसप्रकार वहाँ अभव्य का दृष्टान्त दिया है। उसीप्रकार जो भव्य जीव भी दया, दानादि के परिणामरूप भावबंध को हितकर मानता है और भोग के लिये कषाय की मंदता करता है; किन्तु आत्मा के लिये नहीं करता वह भी अभव्य जैसा ही है- यह बात समयसार की 275 वीं गाथा के भावार्थ में आती है 'यह हेतुबादरूप अनुभव प्रधान ग्रन्थ है इसलिये इसमें अनुभव की अपेक्षा से भव्य अभव्य का निर्णय है'। अब यदि इसे अहेतुबाद आगम के साथ मिलायें तो - अभव्य को व्यवहारनय के पक्ष का सूक्ष्म केवलीगम्य आशय रह जाता है जो कि छद्मस्थ को अनुभवगोचर नहीं भी होता, मात्र सर्वज्ञदेव जानते हैं; इसप्रकार केवल व्यवहार का पक्ष रहने से उसके सर्वथा एकान्तरूप मिथ्यात्व रहता है। इस व्यवहारनय के पक्ष का आशय अभव्य के सर्वथा कभी भी मिटता नहीं है। राग मंद होवे तो स्वभाव को लाभ होता है - ऐसा गहरा अभिप्राय अनादि से रह जाता

www.vitragvani.com

है। मुनिपना लेकर नौवें ग्रैवेयक तक जाता है, शिर के टुकड़े करने पर भी कुदेवादिक को नहीं मानता, सच्चेदेव-निर्ग्रन्थगुरु और सच्चेशास्त्र को ही मानता है; परन्तु राग से नहीं हटता है और अरागीस्वभाव की रुचि नहीं करता है। क्रमबद्धपर्याय का निर्णय नहीं करता है, सर्वज्ञ की प्रतीति नहीं करता है, राग को हेय नहीं जानता है, स्वभाव का उत्पाद नहीं करता है । शरीर के टुकड़े होने पर भी क्रोध तो नहीं करता; तथापि राग का ही अनुभव करता है, स्वभाव का अनुभव नहीं करता। भव्य मिथ्यादृष्टि जीव भी अनादि से ऐसा ही कर रहा है ।

यह हेतु प्रधान ग्रन्थ है। जीव राग के अभाव की प्रतीति द्वारा परम्परा से मोक्ष में जाता है। राग की रुचि से संसार में परिभ्रमण करता है। मिथ्यादृष्टि भव्य तथा अभव्य जीव को अनादिकाल से व्यवहारनय के पक्ष का सूक्ष्म राग रह जाता है। जो यह कहता है कि पहले व्यवहारनय चाहिये वह तो स्थूल मिथ्यादृष्टि है। उसकी प्ररूपणा और लिंग तो प्रत्यक्ष विपरीत है। जिसका बाह्य लिंग तो सच्चा है; परन्तु अन्तर में व्यवहार की पकड़ है- व्यवहार की उपेक्षा करके स्वभाव का आश्रय नहीं करता वह संसार में परिभ्रमण करता है। चारो अनुयोगों में दो प्रकार का कथन है। द्रव्य का स्वभाव अर्थात् सामान्य और पर्याय का स्वभाव विशेष-ऐसा छह द्रव्यों का जिसमें कथन है वह आगम है और वहाँ आत्मा की प्रधानता से कथन है वह अध्यात्म है। उसमें नय-प्रमाण से वस्तु की सिद्धि करना हेतुमत है और सर्वज्ञ के आगम अनुसार प्रमाणता मानना अहेतुमत् है। प्रमाण-नय से निर्णय करे वह हेतुमत् है और सर्वज्ञ की आज्ञा से केवल प्रमाण मानना अहेतुमत् है।

भगवान सर्वज्ञदेव ने जो शास्त्र कहें हैं - उनमें उनका क्या हुकम-आदेश है -यह बात चल रही है।

सर्वज्ञ भगवान के द्वारा कथित शास्त्रों मे एक निश्चयरूप कथन है और एक व्यवहाररूप कथन है। योगीश्वर उसको जानकर सुख पाते हैं। मुख्यरूप से योगी मुनि हैं। सम्यग्दृष्टि भी गौणरूप में (योगी) हैं।

देव-गुरु-शास्त्र के राग को व्यवहार कहते हैं और मेरा स्वरूप पूर्ण शुद्ध चिदानन्द है- ऐसी दृष्टि करके उसमें एकाग्रता करने को निश्चय कहते हैं। यह सुख

www.vitragvani.com

का उपाय है। वर्तमान दशा में होने वाले पुण्य के परिणामरूप व्यवहार जानने योग्य है। आगम में छह द्रव्यों का कथन है, अध्यात्म में आत्मा का कथन है। इन दोनों में निश्चय-व्यवहार कहेंगे।

भगवान आत्मा एक समय में पूर्ण अबद्धस्पृष्ट है- ऐसे अन्तर स्वभाव का आश्रय करना सम्यग्दर्शन है। आत्मा की अवस्था में पुण्य-पाप का भाव होता है वह व्यवहारनय का विषय जानने योग्य है, आदरणीय नहीं है। अन्तर स्वभाव में एकाग्रता करने वाले को योगी, मुनि, धर्मात्मा कहते हैं। वे योगीश्वर आत्मा के आनन्द की प्राप्ति करते हैं। व्यवहार जानने योग्य है और निश्चय आदरणीय है। आत्मा पूर्ण द्रव्य स्वभाव है। उसका अवलम्बन लेने से आत्मा की शान्ति प्राप्त होती है। इससे विकार और द्रव्यकर्मों का अभाव हो जाता है। आत्मा के आश्रय से द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म का अभाव हो जाता है- ऐसा भगवान के शास्त्र में आया है। श्वेताम्बर शास्त्र कहते हैं कि दया, दानादि से धर्म होता है परन्तु यह बात सत्य नहीं है। दया, दानादि का भाव पुण्यबंध का कारण है। उनसे रहित ज्ञानस्वभाव की प्रतीति करना सम्यग्दर्शन का कारण है। साधु को आहारदान देने से अथवा अनुकम्पा से संसार का अभाव होता है- ऐसा कहने वाले शास्त्र सच्चे नहीं हैं। व्यवहार, दया, दानादि जानने योग्य है, आदरणीय नहीं। आत्मा पूर्ण शुद्ध चिदानन्द प्रभु है उसके सन्मुख होना ही एक मार्ग है- ऐसा दिव्यध्वनि में आया है। जो इससे विरूद्ध कहते हैं वे शास्त्र नहीं हैं। व्यवहार से निश्चय होगा- यह शास्त्र की वाणी नहीं है। सूत्र में - शास्त्रों में निश्चय-व्यवहार दोनो का कथन है। अन्तर ज्ञानस्वरूप में एकाग्र होने पर सम्यग्दर्शन होता है। श्वेताम्बर कहते हैं वैसा वस्तु का स्वरूप नहीं हैं। अभी तो कितने ही दिगम्बर भी ऐसा ही कहते हैं कि व्यवहार करते करते धर्म होगा; तो वे भी भूल में हैं अर्थात् श्वेताम्बरमत की जाति के हैं। निश्चय और व्यवहार दो हैं अवश्य; परन्तु व्यवहार के आश्रय से कल्याण नहीं होता। निश्चय के आश्रय से कल्याण होता है- ऐसा सर्वज्ञ की वाणी में आया है।

पहले शास्त्र का यथार्थ अभ्यास होना चाहिये। सूत्र को निश्चय-व्यवहाररूप यथार्थ जानकर आत्मा के स्वरूप में एकाग्रता करे तो सुख प्राप्त होता है। परमार्थ

www.vitragvani.com

अर्थात् निश्चय तथा व्यवहार इन दोनो का स्वरूप कहते हैं-

भगवान की वाणी चार प्रकार से आती है।

(1) द्रव्यानुयोग मे मुख्यरूप से आत्मा सम्बन्धी कथन है।

(2) चरणानुयोग में दृष्टि पूर्वक (सम्यग्दर्शन पूर्वक) आचरण का कथन है।

(3) करणानुयोग में सूक्ष्म परिणामों का कथन है।

(4) प्रथमानुयोग में तीर्थंकर आदि के जीवन चरित्र का वर्णन है।

अब इनमें दो प्रकार का कथन है -

(1) आगमरूप पद्धति (2) अध्यात्मरूप पद्धति

भगवान ने जैसा कहा वैसा द्रव्य जानना चाहिये तथा आत्मा को पर द्रव्य से निराला जानना चाहिये । वहाँ सामान्य - विशेषरूप सर्व पदार्थों का प्ररूपण वह आगम है। भगवान ने छह द्रव्य कहे हैं। अनन्त जीव, अनन्तानन्त परमाणु अर्थात पुद्गल, असंख्यात कालाणु, एक आकाश, एक धर्म और एक अधर्म - ऐसे छह द्रव्य कहे हैं। जाति की अपेक्षा से द्रव्य छह हैं और संख्या की अपेक्षा से आत्मा अनन्त हैं, पुद्गल अनन्तानन्त हैं, काल असंख्यात हैं और धर्म, अधर्म, आकाश एक-एक हैं। इसप्रकार छहों द्रव्य नित्य रहते हैं- ऐसा सामान्य स्वरूप तथा इनमें प्रतिसमय पर्यायें होती हैं वे इनका विशेष है। इसप्रकार जिसमें इन द्रव्यों की ध्रुवता तथा उत्पाद-व्यय स्वरूप कहा गया हो उसको आगम कथन कहते हैं और प्रत्येक आत्मा भिन्न-भिन्न है- ऐसे कथन करने को अध्यात्म कथन कहते हैं। देखो! यह भावार्थ पण्डित जयचन्दजी लिखते हैं।

कोई कहे कि मन्दिर आदि बनाना व्यवहार है, तो यह बात मिथ्या है। क्योंकि मन्दिर आदि (पुद्गल द्रव्यरूप) ध्रुव सामान्य और उसकी विशेष अवस्था उससे है, आत्मा से मन्दिर आदि बाह्य पदार्थो की अवस्था नहीं होती। मन्दिर के परमाणु सामान्य (ध्रुव) रहते है और उनमें विशेष (पर्याय) होना पुद्गल के कारण है, आत्मा के कारण मन्दिर आदि नहीं बनते।

प्रश्न - क्या बिना होशियारी के पैसा आता है?

सामाधान - बहुत से मूर्ख मनुष्यों को पैसों की प्राप्ति होती है। यह सब पुण्य के कारण मिलता है, होशियारी से नहीं।

www.vitragvani.com

प्रत्येक पदार्थ का नित्य अंश रहना वह सामान्य है और विशेष अंश (उत्पाद-व्यय) होना वह विशेष है। इसप्रकार आगम छहों द्रव्यों में सामान्य और विशेष अंश होना कहता है। तथा जो अकेले आत्मा की बात करता है वह अध्यात्म है।

तथा हेतुमत् और अहेतुमत्-ऐसा दो प्रकार का कथन है। भगवान की आज्ञा प्रमाण मानना अहेतुमत् है। सब साबित नहीं होता। सर्वज्ञ के ज्ञान में जो देखा वह प्रमाण है। एक आत्मा के असंख्य प्रदेश और उसके अनन्त गुण तथा एक आत्मा के साथ कर्म के अनन्त स्कन्ध, उनके अनन्त परमाणु, एक-एक परमाणु के अनन्त-अनन्त गुण, उनकी एक समय में अनन्त पर्यायें, एक पर्याय में अनन्त अविभागी प्रतिच्छेद हैं- यह सब सर्वज्ञ ने देखा है। यह हेतु बिना मान लेना चाहिये।

प्रमाण से सिद्धि करें कि आत्मा का त्रिकाल अंश है वह द्रव्यार्थिकनय का विषय है और वर्तमान अवस्था व्यवहारनय का विषय हे। इसप्रकार हेतु से निर्णय करना हेतुमत् है।

आगम में निश्चय और व्यवहार - दो प्रकार से व्याख्यान है। वह लिखने में आता है-

"जब आगमरूप सब पदार्थों के व्याख्यान पर लगाते है। तब तो वस्तु का स्वरूप सामान्य - विशेषरूप अनन्त धर्म स्वरूप है वह ज्ञानगम्य है।"

एक आत्मा में अनन्त धर्म हैं, एक परमाणु में अनन्त धर्म हैं वह ज्ञानगम्य है। वहाँ सामान्य निश्चयनय का विषय है। आत्मा आदि छहों द्रव्यों का एकरूप स्वरूप निश्चयनय का विषय है। आत्मा, परमाणु, कालाणु आदि छहों द्रव्यों में अनन्त धर्म हैं- अनन्त स्वभाव हैं। सामान्य और विशेष में अनन्त धर्म हैं। सामान्य एकरूप रहता है वह निश्चयनय का विषय है और अनन्त गुण और पर्यायें ऐसा भेद बताना वह व्यवहारनय का विषय है । वस्तु द्रव्य-पर्याय स्वरूप हैं। द्रव्य अर्थात् सामान्य, पर्याय अर्थात् विशेष-ऐसा कथन जिसमें आता है उसको आगम पद्धति कहते हैं। आत्मा, परमाणु आदि वस्तु में जिस वस्तु को विशेष ख्याल करके साधने में आता है उसके द्रव्य-क्षेत्र-काल भाव से सामान्य विशेष वस्तु का सर्वस्व हो वह निश्चय व्यवहार से सधता है।

www.vitragvani.com

★ द्रव्य अर्थात् गुण-पर्याय का पिण्ड।

★ क्षेत्र अर्थात् फैलाव

★ काल अर्थात् अवस्था।

★ भाव अर्थात् गुण।

ऐसे द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव का सामान्य स्वरूप निश्चय का विषय है और भेद करना व्यवहार का विषय है।

तथा आत्मा के साथ शरीर को जोड़ना संयोगरूप अवस्था है। आत्मा का शरीर, आत्मा का कर्म, पाँच इन्द्रियों वाला जीव, आत्मा के प्राण, आत्मा का स्वाच्छोश्वास-ऐसा कहा जाता है।

संयोग की सापेक्षता से आत्मा का कथन करना व्यवहार है। जो आगम और अध्यात्म में निश्चय-व्यवहार नहीं समझता उसको सम्यग्दर्शन नहीं होता। जैसे चक्रवर्ती के 96000 (छियानवैं हजार) स्त्रियाँ कहीं-यह निमित्तपना बताने के लिये कथन है। आत्मा ने छह पर्याप्ति बांधी। आहार आदि पर्याप्ति तो जड़ है उसे आत्मा बॉधता है? नहीं। परन्तु निमित्त के उपचार से ऐसे कथन किये जाते हैं। उन्हे उसप्रकार जानना चाहिये।

जैसे एक विवक्षित घड़ा लो। उसके द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव में सामान्यरूप निश्चय है और पर्याय व्यवहार है। फिर उस पर लाख जड़ी हो तो 'लाख का घड़ा' कहते है। वह व्यवहार है। उसी प्रकार आत्मा तैजस और कार्माण शरीर लेकर आया है- ऐसा बोला जाता हैं। वहाँ कर्म के कारण आत्मा आया यह कथन निमित्त का है। अन्य वस्त्रादि में घट का आरोपण करके घट कहना व्यवहार है।

वहाँ व्यहहार के दो आश्रय हैं -

(1) प्रयोजन (2) निमित्त

वहाँ प्रयोजन साधने के लिये किसी वस्तु को घट कहना वह प्रयोजनाश्रित है तथा किसी वस्तु के निमित्त से घट में अवस्थ हुई उसे घटरूप कहना वह निमित्ताश्रित है। आत्मा कार्माण शरीर को लेकर आया - इस कथन में निमित्त सिद्ध करना है। तथा शरीर के कारण आत्मा में आकार हुआ- यह व्यवहार कथन निमित्त का ज्ञान कराने

www.vitragvani.com

के लिये है। आत्मा को 'स्वदेह परिणाम' (द्रव्यसंग्रह गाथा-2) कहते हैं वहाँ देह का निमित्त बताना है। इसप्रकार विवक्षित सर्वजीव-अजीव वस्तु में लगाना चाहिये।

अब एक आत्मा का विचार करना हो वह अध्यात्म है। समस्त जीवों को सामान्य आत्मा कहते हैं। तथा शरीर भिन्न है, पुण्य-पाप आस्रव है। उनसे रहित आत्मा का अनुभव करने को आत्मा कहते हैं। नवतत्वों में जीव तत्व की बात करना- यह आत्मा शरीर और पुण्य-पाप से भिन्न है और अपने अन्तर स्वरूप का अनुभव करके संवर, निर्जरा, मोक्ष प्रगट होते हैं। उन संवर, निर्जरा पर्याय को आत्मा के साथ अभेद करके उसे आत्मा कहते हैं। शरीर, पुण्य-पाप आत्मा नहीं है। आत्मा पर से अबद्धस्पृष्ट है- ऐसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के अनुभव सहित को आत्मा कहते हैं। शरीर, मन, वाणी, पैसा तो आत्मा है ही नहीं; परन्तु पैसा मेरा है- ऐसी ममता और दया, दान के परिणाम को भी आत्मा नहीं कहते। शुद्ध निर्मल अवस्था सहित आत्मा को आत्मा कहते हैं।

अज्ञानी कहता है कि शरीर को रचना, पुण्य-पाप की रचना-करना (आत्मा है)- परन्तु यह भ्रान्ति है। पुण्य-पाप के भाव विभाव हैं। विभाव रहित ज्ञानस्वभाव में एकाग्रता करने को आत्मा कहते हैं। आत्मा स्वयं अनादि-अनन्त है, अविनाशी है, अन्य द्रव्य से भिन्न है, सामान्य विशेष स्वरूप अनन्त धर्मात्मक जीव है। उसको जीव कहते हैं। निर्मल पर्याय स्वभाव सन्मुख हुई उस सहित आत्मा को यहाँ आत्मा कहा है। आत्मा में अनन्त धर्म हैं, भेद है; परन्तु भेदरूप दृष्टि नहीं। शुद्ध द्रव्य और उसके सन्मुख होकर जो निर्मल पर्याय प्रगट हुई-ऐसे एकाकार को जीव वस्तु कहते हैं।

अब अध्यात्म में शुद्ध निश्चयनय की बात करते हैं।

वह (आत्मा) कैसा है? शुद्ध दर्शन-ज्ञान उपयोग (त्रिकाल) ज्ञाता-दृष्टा है- इत्यादि अनन्त शक्तियों का धारक है। उसमें सामान्य भेद चेतना में आ जाते हैं। उसको भी द्रव्य कहते हैं। तथा अनन्तज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य चेतना के विशेष हैं। तथा अगुरुलघु द्वारा षटस्थान पतित हानि-वृद्धिरूप परिणमते जीव के उत्पाद-व्ययरूप निर्मल पर्याय है-ऐसी शुद्ध जीव नामक वस्तु सर्वज्ञ भगवान ने देखी है। वह एक अभेदरूप निश्चयनय का विषय है। यह अध्यात्म कथन से अकेले आत्मा की बात

Shree kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

चलती है। इसके यथार्थ अभ्यास बिना धर्म नहीं होता। व्रत, पूजा, भक्ति आदि में धर्म नहीं है। सर्वप्रथम सच्ची समझ करो! एक समय में चैतन्य का पिण्ड, उसके गुण तथा उसकी अगुरुलघु गुण की पर्याय सहित आत्मा शुद्ध निश्चयनय का विषय है। भेद करके आत्मा को जानना व्यवहार है।

एक आत्मा में अनन्त गुण कहे थे तथा अभेद एकाकार की बात की थी। उसमें एक गुण अथवा भेद करके कहना व्यवहार है। वहाँ गुण प्रथक होता नहीं है; परन्तु प्रथक करके- भेद करके कहना और जानना व्यवहार है।

आत्मा की संसार अवस्था, मोक्षमार्ग अवस्था और मोक्ष अवस्था- यह सब व्यवहारनय का विषय है। कर्म के निमित्त से होने वाली अवस्था-संसार अवस्था, मोक्षमार्ग और मोक्ष की पर्याय आदि सब व्यवहारनय का विषय है। त्रिकाल अभेद स्वरूप में भेद पड़ने से इसको व्यवहार कहते हैं। अनादिकाल से कर्म के संयोग के निमित्त से विकार की उत्पत्ति होती है उसको जीव का कहना व्यवहार है। जीव स्वयं विकार करता है तो कर्म को निमित्त कहते हैं। यहाँ निमित्त की बात है। 'विकार जीव का है' ऐसा कहने से त्रिकाली में भेद पड़ता है इसलिये वह व्यवहार का विषय है।

आत्मा अनादि-अनन्त एकरूप पिण्ड में विकार का भेद पड़ता है उसके कारण नवीन कर्म बंधन होता है। उस विकार से जीव को पहिचानना व्यवहार है। कर्म के निमित्त से जीव में विकार हुआ और विकार के कारण नवीन कर्म बंध हुआ- ऐसा निमित्त- नैमित्तिक सम्बन्ध व्यवहार का विषय जानने योग्य है; परन्तु आदरणीय नहीं। इसप्रकार अनादि निमित्त-नैमित्तिक भाव से जीव की चतुर्गतिरूप संसार परिभ्रमण की प्रवृत्ति होती है तथा जैसी गति प्राप्त करे वैसा जीव कहलाता है। जैसे एकेन्द्रिय जीव, द्वीन्द्रिय जीव, निगोद जीव, मनुष्य जीव-ऐसा कहना व्यवहार है। संसार, मोक्षमार्ग और मोक्ष तीनों व्यवहारनय का विषय है। उसमें अनादि-अनन्त एकरूपता नहीं है; इसलिये व्यवहार कहा है।

यह जीव लोभी है, कपटी है, विषय-वासना वाला है, क्रोधी है- ऐसे भेद वाले विकार के व्यवहार कथन जानने योग्य है। ऐसा व्यवहारनय का विषय जानना चाहिये। इसप्रकार निश्चय-व्यवहार दोनो यथार्थ जानना चाहिये। व्यवहार का विषय सर्वथा है

www.vitragvani.com

ही नहीं-ऐसा नहीं है। वेदान्त की तरह (व्यवहार का विषय है ही नहीं) ऐसा नहीं है। कर्म है, विकार होता है, नया कर्म बंधन होता है, जीव चारगति में परिभ्रमण करता है, जीव क्रोधी, लोभी आदि कहलाता है- यह सब व्यवहारनय का विषय है; परन्तु यह आदरणीय नहीं है। एकरूप अनादि अनन्त स्वभाव निश्चयनय का विषय है और वही आदरणीय है। (आत्मा के सम्बन्ध में) अबद्धस्पृष्ट आदि बोल है वह व्यवहारनय का विषय है। अनादि-सांत संसार, सादि-सांत मोक्षमार्ग और सादि-अनन्त मोक्ष- ये सब व्यवहारनय के विषय हैं और जानने योग्य हैं; परन्तु आदरणीय नहीं। एकरूप स्वभाव जो कि निश्चयनय का विषय है वही आदरणीय है।

मैं शुद्ध चिदानन्द हूँ -ऐसा कहने में अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल और भाव की योग्यता वह अन्तरंग योग्यता है और बाह्य देव-शास्त्र-गुरु का योग, मनुष्य देह आदि बाह्य योग्यता है। ऐसे योग के समय अपने शुद्धस्वरूप, जो कि निश्चयनय का विषय है, उसको जान कर श्रद्धान करना, पर से भिन्न श्रद्धा करना, ज्ञान करना, स्थिरता करना व्यवहारनय का विषय है। तात्पर्य यह है कि आत्मा स्वयं तो निश्चयनय का विषय है; परन्तु उसके आश्रय से प्रगट होने वाला सम्यग्दर्शन व्यवहारनय का विषय है। इसप्रकार निश्चय और व्यवहार दोनो को जानना चाहिये और स्वभाव सन्मुख ढलना चाहिये।

अध्यात्म शास्त्रों में किसप्रकार के कथन होते हैं और आत्मा के स्वभाव सन्मुख होने का निश्चयनय का स्वरूप कैसा है-यह बात यहाँ चल रही है। आत्मा के गति आदि होती है वह व्यवहारनय का विषय है वह जानने योग्य है, आदरणीय नहीं है। कर्म के निमित्त का सम्बन्ध, विकार, गति आदि से जीव का कथन व्यवहार से जानने योग्य है, आदरणीय नहीं । अन्तर में आत्मा की योग्यता, स्वभाव सन्मुखता का भाव, उससमय का काल, अपने क्षेत्र की योग्यता अन्तर सामग्री है और बाह्य देव-शास्त्र-गुरु, संहनन आदि बाह्य सामग्री है। अन्तर शुद्ध निर्मल स्वभाव है- ऐसा जानकर अपनी श्रद्धा करना सम्यग्दर्शन है। आत्मा एकसमय में पूर्ण शुद्ध होता है। वर्तमान गति आदि नही, वर्तमान क्षयोपशम नहीं; परन्तु अखण्ड पूर्णस्वभाव है वह दृष्टि का विषय है। उस विषय को अपना जानकर श्रद्धा करना सम्यग्दर्शन है। आत्मा पूर्ण ज्ञायक है

Shree kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

उसकी अन्तर्मुख दृष्टि करना शुद्ध निश्चयनय का विषय है। सम्यग्ज्ञान स्वभाव सन्मुख ढलता है वह धर्म है। वर्तमान संसार पर्याय का लक्ष्य नहीं, सम्यग्दर्शन और मोक्ष पर्याय होगी, उसका लक्ष्य नहीं; परन्तु मेरा स्वभाव पूर्ण शुद्ध नित्यानन्द है- ऐसे आत्मा का- अपना स्वरूप जानकर उसकी श्रद्धा करने को धर्म का प्रारम्भ कहते हैं। वह सम्यग्दर्शन पर्याय है। पर्याय होने से व्यवहारनय का विषय है। आत्मा पूर्णशुद्ध है वह शुद्धनय का विषय है; परन्तु इसके आधार से जो श्रद्धा (सम्यग्दर्शन) प्रगट होती है वह व्यवहानय का विषय है। वर्तमान अवस्था का लक्ष्य छोड़कर अपना स्वरूप नित्यानन्द है वैसी दृष्टि करना। उसका (दृष्टि का) विषय अभेद हे; परन्तु जो श्रद्धा प्रगट होती है वह भेद है इसकारण उसको व्यवहारनय का विषय कहते हैं, वह जानने लायक है। व्यवहारनय समकित को जानता है। पूर्ण स्वभाव का अवलम्बन लेने पर सम्यग्दर्शन होता है। पुण्य-पाप से, निमित्त से सम्यग्दर्शन नहीं होता। भगवान की प्रतिमा से, समवसरण से, सर्वज्ञ के दर्शन से, उनके प्रति होने वाले शुभराग के निमित्त से होने वाले ज्ञान के क्षयोपशम के आश्रय से सम्यग्दर्शन नहीं होता। निमित्त और पुण्य-पाप का लक्ष्य छोड़कर त्रिकाली स्वभाव की श्रद्धा करना (सम्यग्दर्शन है) और उसको व्यवहारनय जानता है। वह निर्मल पर्याय जानने के लिये है। आत्मा त्रिकाल ध्रुव है, अनन्त गुणों का एकरूप स्वभाव है उसकी प्रतीति करना ही सम्यग्दर्शन है।

आत्मा रागादि से भिन्न है- ऐसा जो भेदज्ञान प्रगट होता है वह भेदज्ञान व्यवहारनय का विषय है।

मुझको संयोगरूप कर्म है वह मात्र वर्तमान सम्बन्ध है। उनके निमित्त से अपने को जो दया, दानादि का विकल्प उत्पन्न होता है उसका यथार्थ स्वरूप जाने तव भेदज्ञान होता है। परमार्थ एकस्वरूप आत्मा को जानना निश्चयनय का विषय है और सम्यग्दर्शन पर्याय है वह त्रिकाली का भेद है, इसलिये व्यवहारनय का विषय है। तथा कर्म के निमित्त से स्वयं से होने वाले राग-द्वेष आदि का यथार्थ स्वरूप जानने से भेदज्ञान होता है। कर्म है; परन्तु कर्म विकार नहीं कराता - इसप्रकार भेदज्ञान होता है वह व्यवहारनय का विषय है। केवलज्ञान और सिद्धपना भी त्रिकाली द्रव्य में भेद पड़ने से भेदरूप होने से व्यवहारनय का विषय है। राग रहित चारित्र भी व्यवहारनय का विषय है।

Shree kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

इसप्रकार पुण्य-पाप से विरक्त होकर उनके मिटाने का उपाय सर्वज्ञ के आगम कथित पदार्थों का निर्णय करना है। स्वभाव में एकाग्र होकर उसमें स्थिरता होना चारित्र है, अट्ठाईस मूलगुणादि का पालन चारित्र नहीं है; बल्कि पुण्य-मंदराग है। पंच महाव्रत के परिणाम कर्मोदय के निमित्त से जानना चाहिये। उनसे रहित अपने स्वरूप में स्थिरता को चारित्र कहते हैं। वह चारित्र भी त्रिकाली स्वरूप में भेद पड़ने के कारण व्यवहारनय का विषय है। आत्मा सामान्यरूप शुद्ध द्रव्यस्वभाव है वह निश्चयनय का विषय है; परन्तु उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट होता हैं वह व्यवहार का विषय हैं। चारित्र व्यवहारनय का विषय है। अनादि-अनन्त एकरूप आत्मा निश्चयनय का विषय है। सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्र तीनों पर्यायें होने से व्यवहारनय का विषय है। चारित्र धर्म है। चारित्र अर्थात् अरागी परिणाम। वे परिणाम त्रिकाली द्रव्य के आश्रय से होते हैं। त्रिकाली द्रव्य निश्चयनय का विषय है और पर्याय व्यवहारनय का विषय है। दोनो को यथार्थ जानना चाहिये। मूल पाठ में परमार्थ और व्यवहार - ये दो शब्द हैं। परमार्थ का आशय निश्चय समझना चाहिये। यह बात सर्वज्ञ के आगम सिवाय समझमें नहीं आ सकती। अन्य कितने ही कहते हैं कि हमारे मुनि के वस्त्र, पात्र और महाव्रत होते हैं वह चारित्र है, -तो वह चारित्र यथार्थ नहीं है। इसलिये त्रिकालज्ञ परमात्मा के श्रीमुख से जिसवाणी में साधुपना कहा है उसकी यहाँ बात है। अतः सर्वज्ञ के आगम से यथार्थ समझना चाहिये।

अट्ठाईस मूलगुणों का पालन आस्रव है, शरीर परवस्तु है- इसप्रकार समझकर अपने स्वभाव में स्थिर होने पर केवलज्ञान, केवलदर्शन, केवलचारित्र, केवलवीर्य आदि प्रगट होते हैं वह व्यवहारनय का विषय है। वर्तमान अवस्था को व्यवहारनय जानता है। मुनिपना अथवा प्रतिमा का विकल्प उत्पन्न होता है वह पुण्य है, उसे व्यवहारनय जानता है। परन्तु व्यवहारनय किसको---? जो निश्चय प्रगट करता है उसको । जो राग को अन्यथा प्रकार (अर्थात् धर्म) मानता है उसके तो श्रद्धा का भी ठिकाना नहीं है। मेरा ज्ञान राग को जानता हुआ प्रगटता है- ऐसा जिसे पता नहीं है उसकी बात नहीं है। पर द्रव्य की अनुकूलता उसके अपने स्वकाल में आती है। स्व द्रव्य के राग का काल (पर्याय) स्व अवसर में आता है। उस साधक को भूमिका के योग्य राग आता

Shree kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

है उससे विरक्त होकर अन्तर स्थिरता करने को चारित्र कहते हैं। आत्मा शुद्ध अखण्डानन्द है वह निश्चयनय का विषय है; परन्तु अनादि अनन्त में जितना भेद दिखता है वह सब व्यवहारनय का विषय है। केवलज्ञान भी व्यवहारनय का विषय है। वह एकसमय का उत्पाद है; दूसरे समय दूसरा उत्पाद है। उत्पाद-व्यय व्यवहारनय का विषय है। ध्रुव निश्चयनय का विषय है। त्रिकाली द्रव्य में भेद पड़ता है उस भेदपने को जानने वाला व्यवहारनय है।

भगवान कुन्दकुन्दाचार्य कहना चाहते हैं कि परमार्थ और व्यवहार- दोनों की यथार्थ जानकर जो स्वरूप में स्थिर होता है उसके कर्म का नाश होता है। परन्तु यहाँ सर्वज्ञ के शास्त्र में कथित निश्चय-व्यवहार को जानने की बात की है, अन्य की बात नहीं है। कर्म को कर्म जानना चाहिये। कर्म के कारण जीव को राग नहीं होता। अपनी कमजोरी से होने वाले राग से रहित दशा होना व्यवहारनय का विषय है। अपने स्वभाव मे स्थिर होकर जो अनन्त चतुष्ट्य प्रगट होते हैं और समस्त कर्मों का क्षय होकर जीव लोकाग्र में जा विराजमान होता है उसको मुक्त अथवा सिद्ध कहते हैं - वह भी व्यवहारनय का विषय है। आत्मा की संसार अवस्था, मोक्षमार्ग अवस्था, सिद्ध अवस्था-भेदरूप जानने वाले व्यवहारनय का विषय है। संसार, पुण्य-पाप भी आदरणीय नहीं है। शुद्ध स्वभाव अनादि-अनन्त एकरूप निश्चयनय का विषय आदरणीय है। शास्त्र की इस शैली को नहीं समझने के कारण अर्थ का अनर्थ होता है। अज्ञानी जीव को आजतक एक सैकेण्ड मात्र भी अपना स्वरूप ख्याल में नहीं आया है। यदि एक सैकेण्ड मात्र भी स्वरूप ख्याल में (ज्ञान-श्रद्धान-अनुभव में) आवे तो सम्यग्दर्शन होता है।

देखो! संसार, मोक्षमार्ग, सिद्धदशा तीनों एकसमय की अवस्था है। त्रिकाली स्वभाव की अपेक्षा से इन्हें अभूतार्थ कहते हैं।

संसारदशा, मोक्षमार्ग, केवलज्ञान, सिद्धदशा आदि भेद है। आत्मा पूर्ण सामान्य भाव है वह अस्तिरूपभाव है। ध्रुवरूप चैतन्यद्रव्य निश्चय का विषय है। संसारदशा, मोक्षमार्ग और मोक्ष व्यवहारनय का विषय है। इन सबको अध्यात्म में अभूतार्थ कहते हैं। समयसार की 11 वी गाथा में कहा है कि-

www.vitragvani.com

व्यवहारनय अभूतार्थ दर्शित शुद्धनय भूतार्थ है।
भूतार्थ आश्रित आत्मा सुदृष्टि निश्चय होय है।

यहाँ इस सम्यग्दर्शन पर्याय, मोक्षमार्ग पर्याय, सिद्ध पर्याय को अभूतार्थ कहा गया है, असत्यार्थ कहा गया है। ये विद्यमान (नित्य-त्रिकाली) स्वभाव नहीं है; क्योकि ये सब एक समय की अवस्था है। सिद्धदशा एक समय की अवस्था है, त्रिकाली पदार्थ नहीं। आत्म वस्तु ध्रुव अनादि-अनन्त है। ध्रुव की अपेक्षा से सिद्ध अवस्था कायम रहे वैसी नहीं है; असत्यार्थ है, कायम रहे ऐसा सत्व नहीं है। सब व्यवहार झूठा-असत्य है। अ=नही, भूत=विद्यमान। समय-समय की विकारी अवस्था, गति, सम्यग्दर्शन पर्याय, सिद्ध पर्याय त्रिकाल नहीं है, त्रिकाली की अपेक्षा भेद पड़ते हैं इसलिये इन्हें झूठा-व्यवहार कहा है। यहाँ अध्यात्म कथनी अथवा अकेले आत्मा की कथनी चलती है। उपाधि रहित ध्रुवज्ञायक स्वभाव निश्चय का विषय है। व्यवहार अभूतार्थ है। वह त्रिकाल नहीं रहता, इसलिये उसे झूठा-अभूतार्थ कहा है। ध्रुव चिदानन्द स्वभाव नित्य सत्य है उसकी अपेक्षा से केवलज्ञान एक समय की पर्याय है, दूसरे समय दूसरी केवलज्ञान की पर्याय है। एक समय की सिद्ध पर्याय दूसरे समय नहीं रहती, दूसरे समय दूसरी पर्याय है। यह पर्याय नित्य नहीं रहती इस अपेक्षा से इसे झूठ (अभूतार्थ) कहा है। यहाँ निचलीदशा वाले श्रुतज्ञानी को समझना है उसे समस्त भेद जानने योग्य है; परन्तु आदरणीय नहीं है। स्वभाव सम्मुख ढलना ही योग्य है।

कर्म के सद्भाव व अभाव में होने वाली समस्त अवस्थायें त्रिकाली स्वभाव की अपेक्षा असत्यार्थ है।

कर्म के सद्भाव में होने वाला विकार और उसके अभाव में होने वाली अविकारी अवस्था भी असत्यार्थ है। वह नित्य शुद्ध वस्तु का स्वभाव नहीं है। विकार में कर्म की अपेक्षा आती है और केवलज्ञान में कर्म के अभाव की अपेक्षा आती है। इसप्रकार संसार, मोक्षमार्ग और मोक्ष में संयोग की अपेक्षा आती है; अतः वह असत्यार्थ है। एकरूप स्वभाव के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है; परन्तु वह सम्यग्दर्शन आश्रय करने योग्य नहीं है। आत्मा पूर्ण ध्रुव स्वरूप है वह वास्तविक है। क्षायिकभाव भी कर्म के अभाव की अपेक्षा रखता है- इसकारण असत्यार्थ है।

www.vitragvani.com

पुण्य-पाप, काम, क्रोध, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र और मोक्ष आत्मा के परिणाम हैं। 'निमित्त से अवस्था हुई' अर्थात् संसार, मोक्षमार्ग और मोक्ष अवस्था- ये लेना। निमित्त के सद्भाव में तथा निमित्त के अभाव में- ऐसे दोनो (सद्भाव व अभाव) निमित्त की अपेक्षा ली जाए तो बंध और मोक्ष दो भेद पड़ते हैं और इनकी अपेक्षा नहीं ली जाए व अकेला निरपेक्ष तत्व ही लक्ष्य में लिया जाए तो स्व पर्याय प्रगट होती है।

अब वे परिणाम आत्मा के ही परिणाम हैं। गति के परिणाम अपने हैं। मोहकर्म निमित्त है और (भावमोहरूप) मोह के परिणाम जीव के हैं। दर्शनमोह कर्म का अभाव निमित्त है और सम्यग्दर्शन का परिणाम जीव का है। ज्ञानावरणीय कर्म का अभाव निमित्त है और केवलज्ञान जीव का परिणाम है। वर्तमान परिणाम जीव में होते हैं, इसलिये उन्हे कथंचित् सत्यार्थ कहते है। वे परिणाम, मनुष्यगति की योग्यता, क्रोध के योग्य योग्यता, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र-केवलज्ञान की योग्यता के परिणाम आत्मा के हैं; इसलिये कथंचित सत्यार्थ है। जीव स्वभाव की अपेक्षा से कैसा भी परिणाम भेद होने से उसे भिन्न कहा है; परन्तु वे परिणाम अपने में होते हैं, पर के कारण नहीं होते इसलिये पर्यायदृष्टि से वे सत्यार्थ हैं। उत्पाद अपनी अपेक्षा से होता है वह सत्यार्थ है। निमित्त को अपना जानना चाहिये-ऐसा नहीं कहा है। निमित्त के सद्भाव में अपने परिणाम और निमित्त के अभाव में भी अपने परिणाम अर्थात समय मात्र की अवस्था अपने में है; इसलिये वह सत्यार्थ है। सम्यग्दर्शन गुण नहीं; किन्तु पर्याय है। वह पर्याय अपेक्षा से सत्यार्थ है। जहाँतक भेदविज्ञान नहीं वहाँतक विकार को अपना मानता है; परन्तु भेदविज्ञान होने पर जैसा है वैसा जानता है कि विकार अवस्था में है, स्वभाव में विकार नहीं है- इसप्रकार अस्ति-नास्ति जानना चाहिये।

देखो! गृहस्थ विद्वान पण्डित जयचन्दजी कैसा सरस लिखते है।

अब कहते हैं कि शरीर, कर्म आदि को आत्मा का कहना उपचारमात्र है।

द्रव्यकर्मरूप पुद्गल कर्म तो आत्मा से भिन्न ही है। विकारादि पर्याय व्यवहार से सत्यार्थ है। विकार, मोक्षमार्ग और मोक्ष तो अपने परिणाम है, इसलिये कथंचित सत्यार्थ है। अब बाहर की बात करते हैं-

www.vitragvani.com

आठ कर्म तो आत्मा से भिन्न है। उनके निमित्त से (संयोगरूप) शरीर भिन्न है। शरीर को आत्मा का कहना उपचार कथन है। वह तो आत्मा से भिन्न वस्तु हे। भिन्न को अपना कहना व्यवहार कथन है- ऐसा शास्त्र में कथन है। इसको जाने बिना सम्यग्ज्ञान नहीं होता। कर्म का संयोग और शरीर का संयोग आत्मा के है- ऐसा कहना झूठ है। कर्म के संयोग जनित भाव वह सब निमित्ताश्रित व्यवहार का विषय है। उपदेश अपेक्षा से प्रयोजनाश्रित कथन है। देव को वैक्रियक शरीर मिलता है, जीव नरक या स्वर्ग में उत्पन्न होता है- यह उपदेश कथन है। जबतक इन कथनों की अपेक्षा नहीं समझे तबतक स्वावलम्बी दृष्टि नहीं होती। जीव को स्त्री-पुत्रादि वाला कहना अथवा स्त्री-पुत्रादि छोड़ने वाला कहना व्यवहार है। केवली भगवान ने चार कर्मों को नाश किया है, साधक के (चारित्र) मोहनीय कर्म शेष है वह उसका अभाव करेगा- यह सब व्यवहार आश्रित कथन है।

इसप्रकार निश्चय-व्यवहार का संक्षिप्त स्वरूप कहा गया है।

अब मोक्षमार्ग में निश्चय-व्यवहार उतारते हैं। वहाँ आत्मा शुद्ध चैतन्य है उसकी अन्तर प्रतीति और ज्ञान का वेदन तथा राग रहित विरक्ततारूप चारित्र को मोक्षमार्ग कहा है।आत्मा पूर्ण आनन्द और ज्ञानस्वरूप है उसकी अन्तर्मुख प्रतीति होना सम्यग्दर्शन है, स्वसंवेदन ज्ञान को ज्ञान कहते हैं और रागरहित स्वरूप रमणता को चारित्र कहते हैं। यह मोक्षमार्ग है। महावीर भगवान की आज्ञा क्या है ? इसके परिज्ञान बिना आत्मा का लाभ नहीं होता। आत्मा पूर्ण आनन्दरूप शुद्ध है। ऐसी अन्तर्दृष्टि-ज्ञान और रमणता करना मोक्षमार्ग है। यह तीनों आत्मा के भाव हैं। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र शरीर का भाव नहीं है। और न ही पुण्य परिणाम मोक्षमार्ग है। तीनोंरूप आत्मा का अनुभव होना निश्चय मोक्षमार्ग है। आत्मा ज्ञानमूर्ति है। रागमिश्रित विचार छोड़कर स्वस्वभाव का वेदन होना निश्चय मोक्षमार्ग है।

अपूर्ण मोक्षमार्ग को पूर्ण कहना व्यवहार है और अपूर्ण को अपूर्ण जानना निश्चय हे।

अब उसमें छठवें-सातवें गुणस्थान में एकदेश अनुभव है। आत्मा के ज्ञान आनन्द का पूर्ण अनुभव हो जाए तो मुक्ति हो जाती है; परन्तु उसके पूर्व छठवें-सातवें गुणस्थान

www.vitragvani.com

में एकदेश आनन्द प्रगट हुआ है; तथापि उसको पूर्ण मोक्षमार्ग कहना व्यवहार है। जैसे व्यवहार में सच्चा अर्थ नहीं समझे तो अर्थ विपर्यास होता है; उसी प्रकार शास्त्रों का यथार्थ अर्थ नहीं समझने से अर्थ का अनर्थ होता हे। निमित्त और पुण्य-पाप की श्रद्धा छोड़कर आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान और रमणता मोक्षमार्ग है। पूर्ण मोक्षमार्ग होने पर तो मोक्ष होता है, किन्तु एकदेश मोक्षमार्ग को मोक्षमार्ग कहना तथा ज्ञान और चारित्र अपूर्ण होने पर भी मुनि के सम्पूर्ण मोक्षमार्ग कहना व्यवहार है। इसप्रकार के कथन शास्त्र में आते हैं । देह, मन, वाणी आत्मा से भिन्न हैं। आत्मा पुण्य-पाप से भिन्न है- ऐसे आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र होना मोक्षमार्ग है। ज्ञान और चारित्र की परिपूर्णता- एकता आगे होगी; तथापि छठवें गुणस्थान में दर्शन-ज्ञान-चारित्र की एकता कह देना व्यवहार है। अपने में श्रद्धा का विषय पूरा है, ज्ञान परिपूर्ण नहीं, परन्तु वेदन है और चारित्र कम है- ऐसी अपूर्णता को पूर्ण कहना व्यवहार है। एक अंश को पूर्ण कहना व्यवहार है। जब सम्पूर्ण आत्मा एकरूप परिणमता है तब पूर्ण मोक्षमार्ग कहते हैं, उसकी अपेक्षा मुनि के मोक्षमार्ग को व्यवहार कहते हैं। यद्यपि वह मोक्षमार्ग स्वयं निश्चय (वीतरागरूप) है; तथापि पूर्णता की अपेक्षा वह व्यवहार है। मोक्षमार्ग चौदहवें गुणस्थान में पूर्ण होगा। एकदेश को पूर्ण कहना व्यवहार है और एकदेश को एकदेश कहना निश्चय है। पूर्ण अभेद होने के पूर्व अपूर्ण-भेद को मोक्षमार्ग अथवा पूर्ण कहना अथवा निचलीदशा में-छठवें सातवें गुणस्थान में पूर्णता का आरोप करना व्यवहार है। जितना चारित्र का अंश प्रगट हुआ है उसे उतना जानना निश्चय है।

अब कहते हैं कि एकदेश गुण की पर्याय को भेद करके कहना व्यवहार है।

अब दूसरी बात कहते हैं कि सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्र को भेदरूप जानना व्यवहार है। आत्मा की निर्विकल्प प्रतीति मोक्षमार्ग है- ऐसे एक-एक गुण पर्याय का भेद करके मोक्षमार्ग कहना व्यवहार है।

देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा तथा नव तत्वों की भेद वाली श्रद्धा को समकित कहना व्यवहार है।

सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र के जितने बाह्य पर द्रव्य स्वरूप द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव और निमित्त हैं उन्हे दर्शन ज्ञान और चारित्र कहना व्यवहार है।

www.vitragvani.com

देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा को समकित कहना भी व्यवहार है। सच्चे देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा के राग को व्यवहार समकित कहते हैं, वह वास्तविक समकित नहीं है। जिसको निश्चय सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ है उसके ही व्यवहार होता है। सर्वज्ञ देव-निर्ग्रन्थ गुरु-अनेकान्त स्वरूप दर्शकवाणी की श्रद्धा को समकित कहते हैं। सात तत्व और नौ पदार्थो की भेद वाली श्रद्धा को व्यवहार समकित कहते हैं। जो शुद्ध चिदानन्द आत्मस्वभाव की श्रद्धा करता है उसके सात तत्व की भेद वाली श्रद्धा को व्यवहार समकित कहते हैं। 'तत्वार्थ सूत्र' में सात तत्व की श्रद्धा को निश्चय समकित कहा है, वहाँ अभेद की बात है। यहाँ विकल्प वाली श्रद्धा की बात है। यद्यपि विकल्प आस्रव है, पुण्य है, समकित नहीं है; तथापि उसे समकित कहना व्यवहार है। व्यवहार को व्यवहार जानना चाहिये, निश्चय को निश्चय जानना चाहिये। फिर व्यवहार का लक्ष्य छोड़कर निश्चय का आश्रय करने से कर्मो का नाश होता है। सच्चे देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा के राग रहित (निज) स्वभाव की निश्चय श्रद्धा करे तो राग को श्रद्धा (व्यवहार समकित) कहते हैं।

आत्मा ज्ञानानन्द स्वरूप है उसके सन्मुख होकर ज्ञान होना निश्चय है, तब शास्त्र के ज्ञान को व्यवहार कहते हैं। अज्ञानी कहता है कि व्यवहार करते-करते धर्म होगा। यहाँ शास्त्र ज्ञान को व्यवहार कहते है। यदि आत्मा का ज्ञान करे तो शास्त्र लक्ष्यी राग वाला जीवादि पदार्थो का ज्ञान भी व्यवहार है।

तेरह प्रकार के चारित्र के भेद आस्रव है और आस्रव को चारित्र कहना व्यवहार है- इसप्रकार अब चारित्र की बात करते हैं।

पंच महाव्रत आदि के परिणाम व्यवहार चारित्र हैं। अभी तो जो मुनि के लिये उद्देशिक आहार आदि लाता है वह पाप है और ऐसे आहार-पानी को लेने वाला तो द्रव्य मुनि भी नहीं है; क्षुल्लक अपने लिये बनाया हुआ आहार ले तो वह क्षुल्लक नहीं है। पानी की एक बूँद में असंख्य जीव हैं। पानी गरम करने में हिंसा होती है- अतः जो ऐसा उद्देशिक आहार नहीं लेता; दया, दानादि का पालन करता है वह व्यवहार है..... परन्तु कब? राग रहित आत्मा में रमणता करे तो महाव्रत आदि के राग को व्यवहार चारित्र कहते हैं। आत्मा के ज्ञानानन्द स्वरूप का अनुभव ही चारित्र है। अपने

www.vitragvani.com

लिये बनाया हुआ आहार लेना व्यवहार नहीं है। अभी तो जिनके शुभराग का भी ठिकाना नहीं है उनको मुनि क्षुल्लकपना मानते हैं। क्षुल्लक के खण्ड वस्त्र होता है और वे निर्दोष आहार लेते हैं उसे व्यवहार कहते है। (मुनि) ईर्यासमिति आदि पंच समितियों का पालन करते हैं, बयालीस दोष आदि से रहित आहार लेते हैं। ये पाँच समिति आदि आस्रव है, तथापि इस आस्रव को चारित्र कहना व्यवहार है। अशुभ से हटकर शुभ गुप्ति में आना व्यवहार है। तेरह प्रकार के चारित्र का राग पुण्प है; परन्तु स्वरूप लीनता में कमजोरी होने से ऐसा राग आता है। राग को चारित्र कहना व्यवहार हे।

इसीप्रकार बारह प्रकार के शुभरागरूप तप को तप कहना व्यवहार है।

वस्तुतः आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द को तपश्चर्या कहते हैं तब बारह प्रकार के तप को व्यवहार तप कहते हैं। जिसको निश्चय (स्वभाव) का अनुभव नहीं है उसके (तप के राग को) व्यवहार नहीं कहते है। माल भरा हो तो बारदान को वह नाम दिया जाता है, जैसे चावल भरें हों तो चावल का बारदान ऐसा कहा जाता है, उसी प्रकार अन्तर्मुख स्वभाव में लीनता करना निश्चय चारित्र है। उसके साथ महाव्रत, समिति, गुप्ति, आदि का विकल्प उत्पन्न होना वह खोटा-विकारी चारित्र है। दर्शन-ज्ञान-चारित्र का भेदरूप कथन व्यवहार है और पर द्रव्यरूप अवलम्बन प्रवृत्ति अध्यात्म शास्त्र की अपेक्षा व्यवहार नाम से कही जाती है। वस्तु के एकदेश को वस्तु कहना भी व्यवहार है। पर द्रव्य की अवलम्बनरूप प्रवृत्ति को अन्य वस्तु के नाम से कहना व्यवहार है।

अब द्रव्यार्थिकनय, पर्यायार्थिकनय और निश्चयनय का कथन करते हैं।

अध्यात्म शास्त्र में ऐसा भी वर्णन है कि वस्तु अनन्त धर्म स्वरूप है। आत्मा में अनन्त धर्म हैं, अनन्त स्वभाव है। वहाँ सामान्य द्रव्य है और पर्याय विशेष है। वहाँ द्रव्यमात्र कहना (या पर्यायमात्र कहना) व्यवहारनय का विषय है। विशेष का भेद करना व्यवहार है। तथा द्रव्य व पर्याय का भेद भंग किये बिना वचन अगोचर कहना निश्चयनय का विषय है। शास्त्र में कहाँ किसप्रकार से बात आई है उसका मेल करने पर सब समान (यथावत) ज्ञात होती है।

अखण्ड सामान्य अंश को निश्चयनय का विषय कहा था उसको यहाँ व्यवहारनय का विषय कहते हैं। सामान्य और विशेष का भेद छोड़कर निर्वचनीय कहना

www.vitragvani.com

हित-अहित की दृष्टि है वह तो ऐसा ही जानता है कि सर्वज्ञ की आज्ञानुसार परीक्षा करना चाहिये। जो अल्पज्ञानी महंत वह मान, लोभ, बड़प्पन, विषय-कषाय का पोषण करना चाहता है उसकी बात नहीं है। वे लोग नासमझ लोगों के पास महंतता करते हैं।

तात्पर्य यह है कि केवलज्ञानी की आज्ञा को लक्ष्य में रखकर परीक्षा करे तो सत्य ही है, अन्यथा वह मान या विषय- कषाय का पोषण करता है- ऐसे जीव को आत्महित नहीं करना है। कीर्ति, प्रतिष्ठा आदि बढ़ाने के लिये ही ऐसी बातें करता है। उसको तो उपदेश लगेगा नहीं। मेरा हित और अहित किसमें है- यह निर्णय बिना विपरीत मति को उपदेश कैसा? ऐसे जीव को मोक्षमार्ग का उपदेश नहीं लगता यह जानना।

इसप्रकार शास्त्र में व्यवहार को हेय कहा है और निश्चय स्वभाव को उपादेय कहा है- आदरणीय कहा है। श्वेताम्बरों ने व्यवहार पहले कहा है उनके सामने यह गाथा लिखी है। आत्मा पूर्ण ज्ञानानन्द स्वभावी है। उसके आश्रय से धर्म और केवलज्ञान होता है, तो भी भूमिकानुसार राग होता है। चौथे गुणस्थानवर्ती के सच्चे देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा का राग होता है, पाँचवें में अणुव्रतादि का राग होता है और छठवें में नग्न दशा, खड़े-खड़े आहार लेने का भाव आदि होता है; परन्तु यह व्यवहार है तो निश्चय है- ऐसा नहीं है। व्यवहार हेय है और निश्चय आदरणीय है- ऐसा नहीं मानकर 'व्यवहार पहले होता है' ऐसा श्वेताम्बर मानते है, उनके सामने यह गाथा आई।

व्यवहार हेय है, निश्चय उपादेय है। व्यवहार हेय होने पर भी व्यवहार से लाभ मानना अथवा संसार का अभाव होना मानना मिथ्या बात है। श्वेताम्बर विपायसूत्र में मुनि को आहार देने से संसार के अभाव होने का कथन है- यह बात भी मिथ्या है। आहारदान से संसार का अभाव नहीं होता। शुभराग परलक्ष्यी भाव है। शुभराग से तीनकाल में भी संसार का अभाव नहीं होता। आत्मा ज्ञानानन्द है- ऐसी दृष्टिपूर्वक राग का अभाव होकर संसार का अभाव होता है। श्वेताम्बर 45 सूत्र और स्थानकवासी 32 सूत्र मानते हैं। उनके माने हुए सूत्रों में महाविपरीतता है।

www.vitragvani.com

चिदानंद स्वभावी आत्मा के आश्रय से संसार का अभाव होता है। भगवान की भक्ति से संसार का अभाव नहीं होता । आत्मा की भक्ति से संसार का अभाव होता है।

अब सातवीं गाथा में कहते हैं कि जो शास्त्र के अर्थपद से भ्रष्ट है उनको मिथ्यादृष्टि जानना चाहिये। जब श्वेताम्बर पंथ निकाल था तब वे वस्त्र रखते थे और हाथ में आहार लेते थे- ऐसा करने वाला शास्त्र की आज्ञा नहीं मानने वाला भ्रष्ट है। उसको मुनि मानकर आहार नहीं देना चाहिये। जिससमय बारह वर्ष का दुष्काल पड़ा था उससमय भ्रष्ट हुए मुनि एक वस्त्र का टुकड़ा रखकर हाथ में आहार लेते थे, वे आज्ञा बाहर हैं; वे मुनि नहीं हैं। उन्हें मुनि मानकर आहार देने वाला भ्रष्ट है। वीतराग देव ने तो अन्तर भान सहित नग्नदशा को वीतरागमार्ग कहा है, शेष सब उन्मार्ग है।

Shree kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

सूत्रपाहुड़-गाथा 7

आगे कहते हैं कि जो सूत्रके अर्थ- पदसे भ्रष्ट है उसको मिथ्यादृष्टि जानना-

सुत्तत्थपयविणट्ठो मिच्छादिट्ठी हु सो मुणेयव्वो।
खेडे वि ण कायव्वं पाणिप्पत्तं सचेलस्स ।। 7 ।।

सूत्रार्थपदविनष्टः मिथ्यादृष्टिः हि सः ज्ञातव्य।
खेलेऽपि न कर्तव्यं पाणिपात्रं सचेलस्य ।। 7 ।।

हिन्दी पद्यानुवाद

सूत्रार्थ से जो नष्ट हैं, वे मूढ़ मिथ्यादृष्टि हैं।
तुम खेल में भी नहीं धरना यह सचेलक वृत्तियाँ।।7।।

अर्थः- जिसके सूत्रका अर्थ और पद विनष्ट है वह प्रगट मिथ्यादृष्टि है, इसीलिये जो सचेल है, वस्त्रसहित है उसको 'खेडे वि' अर्थात् हास्य कुतूहलमें भी पाणिपात्र अर्थात् हस्तरूप पात्र आहारदान नहीं करना।

भावार्थः- सूत्रमें मुनिका रूप नग्न दिगम्बर कहा है। जिसके ऐसा सूत्रका अर्थ तथा अक्षररूप पद विनष्ट है और आप वस्त्र धारण करके मुनि कहलाता है वह जिन-आज्ञासे भ्रष्ट हुआ प्रगट मिथ्यादृष्टि है, इसलिये वस्त्र सहितको हास्य कुतूहलसे भी पाणिपात्र अर्थात् हस्तरूपपात्र से आहारदान नहीं करना तथा इसप्रकार भी अर्थ होता है कि ऐसे मिथ्यादृष्टिको पाणिपात्र आहार लेना योग्य नहीं है, ऐसा भेष हास्य कुतूहलसे भी धारण करना योग्य नहीं है, कि वस्त्रसहित रहना और पाणिपात्र भोजन करना, इसप्रकारसे तो क्रीड़ामात्र भी नहीं करना ।। 7 ।।

गाथा-7 पर प्रवचन

देखो! सच्चें शास्त्रों से विरूद्ध अर्थ करने वाला और पद बदलने वाला प्रगट मिथ्यादृष्टि है। अभी तो दिगम्बर सम्प्रदाय में भी विपरीतता का आग्रह होगया है। शुभराग भूमिकानुसार आता है; परन्तु राग करने योग्य नहीं है। स्वभाव की दृष्टि और स्थिरता से राग का अभाव होता है; अन्य कोई उपाय नहीं है। सूत्र के अर्थ अथवा एक पद को भी बदलने वाला प्रगटरूप से मिथ्यादृष्टि है। जो स्त्री को मुक्ति

www.vitragvani.com

होना, मुनिपना होना, तीर्थंकर के आहार-पानी होना मानते-मनाते हैं, मुनि के वस्त्र मानते है। वे सूत्र सर्वज्ञ की परम्परा से चले आये षटखण्डागमादि सूत्रों से विपरीत बनाये हैं। अर्थात् उनमें सूत्र का अर्थ तोड़-मरोड़ किया है।

व्यवहार से निश्चय होता है- ऐसा मानने वाले प्रगट मिथ्यादृष्टि हैं। कोई नग्न दिगम्बर मुनि नाम धराकर सूत्र का ऐसा अर्थ करे कि व्यवहार करो! जड़ की क्रिया करो तो धर्म होगा, तो वह भी अर्थ का तोड़-मरोड़ करता है। कषाय की मंदता करो, व्रत करो; तो कल्याण होगा-ऐसा मानने वाले प्रगट मिथ्यादृष्टि हैं। स्वयं को वीतराग का भक्त कहकर वीतरागता से लाभ नहीं मानकर राग से लाभ मानता है वह वीतराग का भक्त नहीं है, उसको तो मूल में भूल है। भगवान सर्वज्ञ देवाधिदेव की वाणी में जो शास्त्र आये उनमें प्रगट बात है कि- आत्मा पर का कुछ नही कर सकता, दया, दानादि का भाव पुण्य बंध का कारण है- ऐसी श्रद्धा से सम्यग्दर्शन होता है। शुद्ध आत्मा की दृष्टि और स्थिरता से संसार का अन्त आता है, अन्य कोई उपाय नहीं है। भगवान की वाणी की परम्परा चलती थी उसमें फेरफार कर दिया। जो स्त्री को साधुपद मानते हैं, मुनि के वस्त्र-पात्र मानते हैं उन्होंने बहुत फेरफार किया है। दिगम्बर सम्प्रदाय में भी वर्तमान में (विपरीतता की) पकड़ हो रही है। क्या व्यवहार के बिना धर्म होता होगा? इसप्रकार का आग्रह है।

सूत्र किसे कहते हैं? जो सम्यग्ज्ञान का निमित्त हो वही सूत्र है। व्यवहार और राग के प्रति झुकाव मत कर, स्वभाव सन्मुख झुकाव कर-ऐसा सूत्र कहते हैं। निमित्त तथा विकार रहित स्वभाव का ज्ञान करना निश्चय है। उसका ज्ञान करने पर भी (साधक को) कुछ राग रह जाता है उसको जानना व्यवहार है। ऐसा शास्त्र में कहा है। इस बात को पलट दिया है। कोई दया, दानादि में धर्म मानते हैं तो तेरापंथी स्थानकवासी दया, दनादि में पाप मानते हैं दोनो मिथ्या है। दया, दानादि पुण्य है। पुण्य के लक्ष्य से पवित्रता नहीं होती है। पवित्रता आत्मा के लक्ष्य से होती हे। जिसने 'मैं विकार से रहित हूँ' ऐसी दृष्टि की थी वह स्वभाव में स्थिरता करके राग का अभाव करके केवलज्ञान प्रगट करता है। अरहन्तों ने इसी विधि से केवलज्ञान प्राप्त

www.vitragvani.com

किया है। उन्होने जैसा देखा वैसा कहा और ऐसी ही वस्तु है। दुष्काल के समय श्वेताम्बर मत निकला है और उन्होंने कुशास्त्रों की रचना की है।

विभाव की उपेक्षा करने के बदले विभाव की अपेक्षा करके विभाव से लाभ मनाने वाले शास्त्र सूत्र के पद से भ्रष्ट हैं। जो सूत्र के एक पद से भ्रष्ट है वह मिथ्यादृष्टि है। सम्यग्ज्ञान में निमित्तभूत सूत्र में फेरफार करने वाला मिथ्यादृष्टि है।

वस्त्र सहित मुनिपना मनाकर स्वभाव सन्मुख झुकाव करने के मार्ग का - वीतराग मार्ग का नाश किया है। वस्त्र रखकर हाथ से आहार लेना कुतूहल है। ऐसा जीव साधुपद के स्वरूप को नहीं समझता है। उसे मुनि के स्वरूप का पता नहीं है। ऐसी कौतूहलता से ऐसा वेष धारण नहीं करना चाहिये। वस्त्र रखकर खड़े-खडे आहार लेने से निन्दा होती है,-ऐसा कौतूहल नहीं करना चाहिये। इससे संतो की अवहेलना होती है। ऐसो को मुनि मानने वाला जीव मिथ्यादृष्टि है। वस्त्र-पात्र रखकर अपने को मुनि मानने वाला प्रगट मिथ्यादृष्टि है और उसको मुनि मानने वाला भी भ्रष्ट है।

वस्तु का जैसा स्वभाव है वैसी श्रद्धा होनी चाहिये। आशय यह है कि भगवान के शासन में मुनिदशा अत्यन्त नग्न कही गई है। वहाँ मात्र नग्न दशा की बात नहीं है; (परन्तु तीन कषाय चौकड़ी के अभाव पूर्वक नग्न दशा ही मुनिपना है- ऐसा आशय है।)

प्रश्नः- हम तो श्रद्धा से उनके पेरों में पड़ते हैं। (उनकी अन्तरंग स्थिति वे जाने, इससे हमें क्या.....) ?

समाधान :- हमको श्रद्धा है कि आकड़े (के वृक्ष) में से आम पकेगा; परन्तु ऐसा नहीं होता है। जैसा वस्तु का स्वरूप हो वैसी श्रद्धा होनी चाहिये। इसीप्रकार जैसा मुनि का स्वरूप हो वैसी श्रद्धा होनी चाहिये।

कोई पूछता है कि जड़ प्रतिमा को भगवान कैसे मानते हो ?

समाधान :- प्रतिमा पर सम्यग्दृष्टि निक्षेप करता है। उसे आत्मा प्रतीति में आया है। उसका ज्ञान स्व को जानता है और साथ ही ज्ञान ऐसा जानता है कि राग है, राग का लक्ष्य प्रतिमा के प्रति जाता है और निक्षेप (स्थापना निक्षेप) करता है।

www.vitragvani.com

स्वयं पूर्ण भगवान नहीं हुआ है, अपूर्ण अवस्था में (परिणति के) दो भाग पड़ जाते हैं- एक ज्ञान स्व को जानता है, एक ज्ञान दया, दानादि को जानता है। भगवान के पूर्ण शुद्धदशा है इसलिये निक्षेप नहीं है। समन्तभद्राचार्य के पुण्य का योग था तो प्रतिमाजी प्रगट हुई है। वे महादेव को नमस्कार नहीं करते थे, तो उन्होंने राजा से कहा कि- यह महादेव की प्रतिमा हमारा नमस्कार सहन नहीं कर सकती है। उस समय के परमाणुओं की अवस्था पलटने की थी और जैन शासन का पुण्य था तो प्रगट हो गई। वहाँ साक्षात भगवान प्रगट नहीं हुए, प्रतिमाजी प्रगट हुई है।

तात्पर्य यह है कि वस्तु का जैसा स्वरूप है वैसी श्रद्धा होना चाहिये ।

मुनि के अन्तरंग में अविकारी दशा है और बाह्य में नग्नदशा है- ऐसे मुनि को मानने की श्रद्धा स्वभाव के आश्रय से हो वह सम्यग्दर्शन है। शास्त्रों में मुनि का रूप नग्न दिगम्बर कहा है। इसे स्वीकार न करके शास्त्रों के अर्थ और शब्द बदल दिये हैं। जो वस्त्र सहित को मुनि कहते हैं वे प्रगट मिथ्यादृष्टि है। नग्न दशा रखकर भी अपने लिये बनाया हुआ आहार लेने वाले भी भ्रष्ट है। क्षुल्लक होकर बक्सा और पेटी रखने वाले भी भ्रष्ट हैं। दिगम्बर शास्त्रों के नाम से ऐसा चलाने वाले भ्रष्ट हैं। जब श्वेताम्बरमत निकला था तब प्रारम्भ में (उनके साधु) छोटा सा कपड़ा साथ में रखते थे और खड़े-खड़े आहार लेते थे; तत्पश्चात् पात्र रखने लगे। वस्त्र रखकर खड़े-खड़े आहर लेना मुनि की रीति नहीं है। अतः वस्त्र रखकर हाथ में आहार लेना-ऐसा वेष धारण नहीं करना चाहिये। अरागी आत्मा की दृष्टिपूर्वक मुनि दशा में वस्त्र नहीं होते हैं। मुनि होकर वस्त्र रखना और कर पात्र में भोजन करना शोभास्पद नहीं है। इसीप्रकार भगवान की मुद्रा वीतराग होती है। उनकी प्रतिमा बनाकर उस पर वस्त्र अथवा मुकुट नहीं लगाना चाहिये।

सूत्रपाहुड़-गाथा-8

आगे कहते हैं कि जिनसूत्रसे भ्रष्ट हरि हरादिकके तुल्य हो तो भी मोक्ष नहीं पाता है-

हरिहरतुल्लो वि णरो सग्गं गच्छेइ एइ भवकोडी।
तह वि ण पावइ सिद्धिं संसारत्थो पुणो भणिदो ।। 8 ।।

हरिहरतुल्योऽपि नरः स्वर्गं गच्छति एति भवकोटिः।
तथापि न प्राप्नोति सिद्धिं संसारस्थः पुनः भणितः ।। 8 ।।

हिन्दी पद्यानुवाद

सूत्र से जो भ्रष्ट वे हरहरी सम भी क्यों न हों।
स्वर्गस्थ हों पर कोटि भव भटकत फिरें ना मुक्त हों।।8।।

अर्थः- जो मनुष्य सूत्रके अर्थ पदसे भ्रष्ट है वह हरि अर्थात् नारायण हर अर्थात् रूद्र इनके समान भी हो, अनेक ऋद्धि संयुक्त हो तो भी सिद्धि अर्थात् मोक्षको प्राप्त नहीं होता है। यदि कदाचित दान पूजादिक करके पुण्य उपार्जन कर स्वर्ग चला जावे तो भी वहाँसे चय कर करोड़ों भव लेकर संसार ही में रहता है- इसप्रकार जिनागममें कहा है।

भावार्थः- श्वेताम्बरादिक इसप्रकार कहते हैं कि- गृहस्थ आदि वस्त्र सहितको भी मोक्ष होता है- इसप्रकार सूत्रमें कहा है, उसका इस गाथामें निषेधका आशय है कि- जो हरिहरादिक बड़ी सामर्थ्यके धारक भी हैं तो भी वस्त्र सहित तो मोक्ष नहीं पाते हैं। श्वेताम्बरों ने सूत्र कल्पित बनाये हैं उनमें यह लिखा है सो प्रमाणभूत नहीं है, वे श्वेताम्बर जिनसूत्रके अर्थ- पदसे च्युत हो गये हैं, ऐसा जानना चाहिये ।। 8 ।।

गाथा-8 पर प्रवचन

भगवान त्रिलोकीनाथ की वाणी की परम्परा चली आती है। जो उससे भ्रष्ट है, भले ही वह नारायण और रूद्र तुल्य हो और बहुत ऋद्धि सहित हो; तथापि उनकी मुक्ति नहीं होती। यह वजन देने का हेतु यह है कि - 'वस्त्र सहित मुनिपना' -यह सूत्र का वचन नहीं है। श्वेताम्बर, स्थानकवासी, तेरापंथी स्थानकवासी- सभी मार्ग से भ्रष्ट हैं। भले ही उनमें से किसी को बहुत क्षयोपशम हो और पुण्य का योग हो- उससे क्या.....? वे मोक्ष प्राप्त नहीं करते। कदाचित दान करें, पूजा करे, व्रत करें तो

www.vitragvani.com

भी स्वर्ग जाते हैं; परन्तु वहाँ से आकर संसार मे परिभ्रमण करते हैं। पुण्य परिणाम करे- भगवान की पूजा करे, मन्दिर बनाने के भाव करे, तो स्वर्ग में जाते हैं; परन्तु भव का अभाव नहीं होता है।

ऐसा बोले कि हे नाथ! हम तेरे दासानुदास हैं। परन्तु भगवान कहते हैं "अपना (आत्मा का) दासानुदान बने विना भगवान का दासानुदास नहीं बनता"। प्रतिमा को मानने से पुण्य बंध होता हैं; परन्तु वह स्वर्ग से आकर कोटि भव करेगा।

जिस मुनि के बाह्य में नग्न दिगम्बर दशा होती है , व्यवहार प्ररूपण सच्चा होता है, व्यवहार आचरण सच्चा होता है- ऐसे मुनि नौवें ग्रैवेयक तक जाते हैं। परन्तु कुलिंगि ग्रैवेयक तक नही जा सकता है, स्वर्ण में जाता है। सो ऐसे स्वर्ण तो अनन्तबार मिले हैं। दया,दान,पूजादि से सम्पग्दर्शन होता है अथवा मुक्ति होती है-ऐसा जिनागम में नहीं कहा है। तेरा ज्ञान झलहल ज्योति है। स्वभाव में भव का अभाव है- इसका महात्म्य नहीं आवे और अकेले पूजा आदि के भाव में रुके तो पुण्य बंधता है; परन्तु भव का अभाव नहीं होता हैं।

कोई कहे कि पंच कल्याणक कराने से आठ भव में मुक्ति होगी, तो यह बात मिथ्या है। वह भाव शुभराग है। शुभराग से पुण्य बंधता है। भगवान ने शुभराग से भव का अभाव होना नहीं कहा है।दान, पूजादि को धर्म मानने वाले को भगवान के आगम की श्रद्धा नहीं है।

मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि को -दोनो को शुभराग से पुण्य बधंता है उससे संयोग मिलेगा ,स्वभाव की प्राप्ति नहीं होगी। सम्यग्दर्शन का शुभराग स्वभाव का कारण नहीं है। राग के अभाव स्वभावरूप आत्मा के आश्रय से धर्म होता है; इसलिये दृष्टि बदलो! निमित और पुण्य में धर्म नहीं हैं, धर्म स्वभाव के आश्रय से होता है। दया, दानादि से धर्म मनवाना वस्तु से विपरीत है

प्रश्नः- यदि ऐसा है तो कोई मन्दिर बनवायेगा ही नहीं ?

समाधानः- पर को कौन करता अथवा नहीं करता है ? जैसे कोई जीव आकाश के फूल तोडता था उसे इन्कार करोगे तो वह रूठ जायेगा; परन्तु आकाश में फूल होते ही नहीं; इसलिये यह प्रश्न ही नहीं है। उसीप्रकार पर की अवस्था कोई कर ही नहीं

www.vitragvani.com

सकता; अतः इसके कारण वह रुक जायेगी -ऐसा है ही नहीं। राग के काल में शुभराग आता है; परन्तु शुभराग वाला धर्मी है- ऐसा नहीं है। उसकी दृष्टि कहाँ है? राग पर दृष्टिवंत अधर्मी हैं और स्वभाव पर दृष्टिवंत धर्मी है। अज्ञानी राग को छोडने लायक नहीं मानता। वह मानता है कि राग से स्वभाव में जाऊँगा (यही उसकी मिथ्या दृष्टि है।)

जो गृहस्थ आदि वस्त्र सहित होते हैं उनका भी मोक्ष होता है -ऐसा श्वेताम्बर सूत्र में कहा है। इसके निषेध के लिये इस गाथा का अभिप्राय है।

मरूदेवी माता ने हाथी पर केवलज्ञान पाया है तथा एलाचीकुमार ने नाचते-नाचते केवलज्ञान प्राप्त किया है- ये सब बातें मिथ्या हैं। गृहस्थ दशा में मोक्ष होता है- यह बात ही खोटी है। सामर्थ्य धारक हरि-हरादिक भी वस्त्र सहित मोक्ष दशा प्राप्त नहीं कर सकते। (वस्त्र सहित मोक्ष होने की मान्यतारूप) श्वेताम्बर आदि ने जो कल्पित सूत्र बनाये हैं वे प्रमाणभूत नहीं है। वे वीतरागी संतो के द्वारा कथित नहीं है।

तथा नग्नदशा धारण करके भी दृष्टि विपरीत होवे तो वह भी नट समान है- ऐसा आगे कहेंगे। व्यवहार-निश्चय का यथार्थ ज्ञान नहीं करके व्यवहार से लाभ मानने वाले जिनागम के अर्थ से भ्रष्ट हैं- ऐसा जानना चाहिये।

वस्तुतः विकार रहित चैतन्य स्वरूप के आनन्द का अनुभव करना ही सार है। भूमिका के योग्य राग आता है वह जानने योग्य है। आत्मा पूर्ण चिदानन्द है उसका अनुभव करना सार है। सच्चे सूत्र को नहीं मानकर और अरागी आत्मा की दृष्टि नहीं करके शुभराग हो हेय नहीं जानने वाला सूत्र के अर्थ से भ्रष्ट मिथ्यादृष्टि है। मुनि और धर्मी निश्चय व्यवहार के जानने वाले होते हैं। वस्त्र सहित मुनिपना माने और हाथ में आहार ले वे मिथ्यादृष्टि हैं। और उनको मुनि मानकर आहार देने वाले भी मिथ्यादृष्टि हैं। हरि-हरादि बाह्य में समर्थ होने पर भी सर्वज्ञ से विरूद्ध मान्यता वाले होने से भले ही शुभभाव से स्वर्ग में जाए; परन्तु वे मोक्ष प्राप्त नहीं करते।

संतों का मार्ग क्या है? आत्मा शुद्ध चिदानन्द है। पुण्य-पाप रहित अन्तर स्थिरता मुनिपना है यही संतों का मार्ग है। निपरिग्रही मार्ग में मुनि के नग्न दशा होती है- ऐसा सूत्र का आदेश छोड़कर जिनसूत्र से भ्रष्ट हुए हैं। भगवान महावीर के छह

www.vitragvani.com

सौ वर्ष पश्चात् दुष्काल के समय वस्त्र सहित मुनिपना मानने लग गये। उनको आगम के मार्ग का पता नहीं है। आत्म स्वभाव अरागी है। उसके मार्ग पर चलने वाले मुनि के वस्त्र नहीं होते। उस भूमिका में होने वाले अल्पराग को वे हेय समझते हैं। इससे विरूद्ध श्वेताम्बर आदि हो गये हैं वे मार्ग से विपरीत हैं। आचार्य कुन्दकुन्द कहते हैं कि जो परम्परा सनातन मार्ग में गड़बड़ करके उससे अलग हुए हैं उनको केवलज्ञान के उग्रसाधनरूप मुनिपने के स्वरूप का पता नहीं है। जो वस्त्र-पात्र सहित मुनिपना मानते या मनवाते हैं वे चार गतियों में परिभ्रमण करते हैं। इस बात को शान्तिपूर्वक समझना चाहिये। सनातन नग्न दिगम्बर (मुनि) मार्ग चला आ रहा था उसमें से श्वेताम्बर मूर्तिपूजक पंथ निकला, फिर उसमें से स्थानकवासी पंथ निकला है। जो सूत्र से भ्रष्ट हुए हैं वे स्वच्छन्दी हैं और चार गतियों में परिभ्रमण करते हैं।

Shree kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

सूत्रपाहुड़ - गाथा 9

आगे कहते हैं कि- जो जिनसूत्रसे च्युत हो गये हैं वे स्वच्छंद होकर प्रवर्तते हैं, वे मिथ्यादृष्टि हैं:-

उक्किट्ठसीहचरियं बहुपरियम्मो य गरुयभारो य।
जो विहरइ सच्छंदं पावं गच्छंदि होदि मिच्छतं ।। 9 ।।

उत्कृष्ट सिंहचरितः बहुपरिकर्मा च गुरुभारश्च।
यः विहरति स्वच्छंदं पापं गच्छति भवति मिथ्यात्वम् ।। 9 ।।

हिन्दी पद्यानुवाद

सिंह सम उत्कृष्टचर्या हो तपी गुरु भार हो।
पर हो यदी स्वच्छन्द तो मिथ्यात्व है अर पाप हो।।9।।

अर्थः- जो मुनि होकर उत्कृष्ट सिंहके समान निर्भय हुआ आचरण करता है और बहुत परिकर्म अर्थात् तपश्चरणादिक्रिया विशेषोंसे युक्त है तथा गुरुके भार अर्थात् बड़ा पदस्थरूप है, संघ नायक कहलाता है परन्तु जिनसूत्रसे च्युत होकर स्वच्छंद प्रवर्तता है तो वह पापहीको प्राप्त होता है और मिथ्यात्वको प्राप्त होता है।

भावार्थः- जो धर्मका नायकपना लेकर-गुरु बनकर निर्भय हो तपश्चरणादिक से बड़ा कहलाकर अपना संप्रदाय चलाता है, जिनसूत्रसे च्युत होकर स्वेच्छाचारी प्रवर्तता है तो वह पापी मिथ्यादृष्टि ही है उसका प्रसंग भी श्रेष्ठ नहीं है।। 9 ।।

गाथा- 9 पर प्रवचन

देखो! वस्त्र सहित मुनि नाम धराने वाला भले ही उग्र तपश्चर्या करता हो, तथापि वह मिथ्यात्व को ही प्राप्त करता है।

यह शास्त्र दो हजार वर्ष पूर्व बनाया हुआ है। अन्तर में भरी पड़ी सर्वज्ञ शक्ति को उग्ररूप से साधने के लिये तत्पर हुए मुनि का स्वरूप नग्न दिगम्बर ही होता है। इससे विरूद्ध स्वरूप कहकर जो वस्त्र सहित मुनिपना मनाते हैं वे सूत्र का लोप करते हैं, अतः वे नामधारी साधु कितने ही तप करे, तो भी संसार मे ही परिभ्रमण करते हैं।

www.vitragvani.com

प्रश्नः- क्या ककड़ी के चोर को फाँसी की सजा.....?

समाधानः- यह ककडी का चोर नहीं है। जैसे कोई चोर राजा के यहाँ चोरी करने जाए तो वह महाअपराधी है; उसीप्रकार सर्वज्ञ द्वारा कहे हुए शुद्धमार्ग से विपरीत मार्ग निकालने वाला वीतराग का चोर है। सर्वज्ञ को परम्परा से विरूद्ध कल्पित सूत्र मिथ्याभाव के पोषण के लिये बनाये हैं- ऐसा जीव भले ही नायक हो, आचार्य हो, अपने को उपाध्याय मनवाता हो; तो भी पापी ही है। वह कषाय मंदता के होने पर भी मिथ्यात्व के पाप का सेवन करता है। अज्ञानियों ने पूरे मार्ग में फेरफार कर दिया है। लोगों को पता नहीं है। आत्मा आनन्दकन्द स्वरूप है। उसकी ज्ञान और आनन्द दशा का उपाय चारित्रदशा है। उसमें नग्नदशा होती है, वस्त्र-पात्र नहीं होते हैं। कोई सदोष आहार तो न ले; परन्तु वस्त्र-पात्र सहित मुनिपना मनावे और आचार्य नाम धरावे तो भी उसको मिथ्यात्व की प्राप्ति होती हे।

कोई कहे कि स्थावरकल्पी अर्थात् वस्त्र सहित मुनिपना और जिनकल्पी अर्थात् वस्त्ररहित मुनिपना- तो यह बात भी मिथ्या है। भगवान के मार्ग में मुनिपना एक ही प्रकार का है। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य सीमन्धर भगवान के पास गये थे, वहाँ आठ दिन रहे थे; वहाँ से आकर इन शास्त्रों की रचना की है। अरागी दशा उत्पन्न करना ही शास्त्र का सार है। जिन्होंने वस्त्र-पात्र रखकर अपने को मुनि मनाकर शास्त्रों का विपरीत अर्थ किया वे अपने को गच्छाधिपति, नायक, आचार्य मानकर पाप का सेवन करते हैं। उस विपरीत मार्ग का पोषण करने वाले- अनुमोदन करने वाले सब मिथ्यादृष्टि हैं। सर्वज्ञ के मार्ग की अनादि परम्परा यह है कि राग से धर्म नहीं होता तथा सदोष-उद्दिष्ट आहार लेने का भाव नहीं होता। यदि ऐसा दोष होने पर भी उसे मुनि माने तो मिथ्यादृष्टि है। दिगम्बर मुनि नाम धराकर निश्चय-व्यवहार के स्वरूप का पता न हो, सदोष आहार लेता हो, वह भले ही बारह-बारह महीने के उपवास करता हो; तो भी मिथ्यादृष्टि पापपने को प्राप्त होता है। मिथ्यादृष्टि का पुण्य फिर जायेगा। वीतराग द्वारा कथित तत्व से विरूद्ध मान्यता वाले जीव के कषायमंदता से हुआ पुण्य बदलकर पापरूप हो जायेगा; कारण कि उसने सत्य दृष्टि का विरोध किया है।

www.vitragvani.com

हम संघ में प्रमुख हैं, हम धर्म के ठेकेदार हैं, ऐसा माने; वह भले ही विशाल मन्दिर बनावावे, खोटी-विपरीत परम्परा चलावे, भले ही लाखों मनुष्य उसको मानते हों; परन्तु वह वीतराग दिगम्बर मार्ग से विपरीत है। वह स्वच्छन्दी है। वह पापी ही है। उसका संग नहीं करना चाहिये। उसके संग में युक्ति लगाकर तू विपरीत रास्ते जायेगा। अधिपति होकर फिरना, सम्प्रदाय चलाना, सर्वज्ञ के शास्त्र को नहीं मानना, कल्पित शास्त्रों को मानना- यह सब मिथ्यात्व का प्रसंग है। ऐसा प्रसंग करने वाला मिथ्यादृष्टि है।

प्रश्नः- सब करते तो धर्म के लिये ही है, किसी को नरक में जाना अच्छा लगता है क्या ?

समाधानः- भाई! सर्वज्ञ की वाणी में निर्ग्रन्थ मार्ग चलता है। अकेले नग्न हो और उनके लिये चौका बनाया हो उस उद्दिष्ट आहार को वह ले, तो पापी है। प्रतिज्ञा लेकर तोड़ना दंडनीय अपराध है। बड़ी प्रतिज्ञा नहीं करना पाप नहीं है। (परन्तु प्रतिज्ञा लेकर तोड़ना महापाप है।)

प्रश्नः- अपने से तो ठीक है न ?

समाधानः- बिगड़ा हुआ दूध छाछ से भी खराब है। छाछ से तो रोटी खाई जाती है, जबकि बिगड़े हुए दूध से रोटी नहीं खाई जा सकती। खोटा मुनिपना खराब है। मुनिपना नहीं लिया जा सके तो दृष्टि सम्यक् रखना चाहिये।

कोई कहे कि अध्यात्म की बात अर्थात् आत्मा की बात अच्छी लगती है; परन्तु देव-शास्त्र-गुरु के स्वरूप की बात कठिन लगती है ?

समाधानः- भाई! दोनो एक ही बात है। अध्यात्म मार्ग मे निमित्त कैसा होता है- यह बात यहाँ चलती है। सर्वज्ञ देवाधिदेव सीमन्धर भगवान ने यह निर्ग्रन्थ मार्ग इसी प्रकार कहा है।

Shree kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

सूत्रपाहुड़-गाथा 10

आगे कहते हैं कि- जिनसूत्र में ऐसा मोक्षमार्ग कहा है-

णिच्चेलपाणिपत्तं उवइट्ठं परमजिणवरिंदेहिं।
एक्को वि मोक्खमग्गो सेसा य अमग्गया सव्वे ।। 10 ।।

निश्चेलपाणिपात्रं उपदिष्टं परमजिनवरेन्द्रैः।
एकोऽपि मोक्षमार्गः शेषाश्च अमार्गाः सर्वे ।। 10 ।।

हिन्दी पद्यानुवाद

निश्चेल एवं पाणिपात्री जिनवरेन्द्रों ने कहा।
बस एक है यह मोक्षमारग शेष सब उन्मार्ग हैं।।10।।

अर्थः- जो निश्चेल अर्थात् वस्त्ररहित दिगम्बर मुद्रास्वरूप और पाणिपात्र अर्थात् हाथरूपी पात्रमें खड़े खड़े आहार करना इसप्रकार एक अद्वितीय मोक्षमार्ग तीर्थंकर परमदेव जिनेन्द्रने उपदेश दिया है, इसके सिवाय अन्य रीति सब अमार्ग हैं।

भावार्थ :- जो मृगचर्म, वृक्षके वल्कल, कपास कट्ट, दुकूल, रोमवस्त्र, टाटके और तृणके वस्त्र इत्यादि रखकर अपनेको मोक्षमार्गी मानते हैं तथा इस कालमें जिनसूत्रसे च्युत होगये हैं, उन्होंने अपनी इच्छासे अनेक भेष चलाये हैं, कई श्वेत वस्त्र रखते हैं, कई रक्त वस्त्र, कई पीले वस्त्र, कई टाट के वस्त्र, कई घासके वस्त्र और कई रोमके वस्त्र आदि रखते हैं, उनके मोक्षमार्ग नहीं है, क्योंकि जिनसूत्रमें तो एक नग्न दिगम्बर स्वरूप पाणिपात्र भोजन करना इसप्रकार मोक्षमार्ग कहा है, अन्य सब भेष मोक्षमार्ग नहीं है और जो मानते हैं वे मिथ्यादृष्टि हैं ।। 10 ।।

गाथा- 10 पर प्रवचन

अब कहते हैं कि- जिनसूत्र में ऐसा मोक्षमार्ग कहा है।

मुनि की दशा वस्त्र रहित होती है तथा वे खड़े-खड़े आहार लेते हैं। चारित्र मार्ग ऐसा है कि मुनि नग्न ही होते हैं, वे जंगल में रहते हैं। जिसे नग्न मुनि होकर भी आत्मज्ञान का पता न हो और व्रत करो, तप करो, दया करो, उपवास करो, सोलहकारण भावना भाओ तो धर्म होगा- ऐसा मानने वाला मिथ्यादृष्टि है- अनन्त संसारी है। उसको मुनि मानकर आहार देने वाला भी मिथ्यादृष्टि है। संतों की दशा

www.vitragvani.com

अलौकिक होती है। 'णमों लोए सव्व साहूणं' में जैनों के, अन्य के तथा फकीर आदि सभी साधु आते हैं- ऐसा कोई कहे, तो वह झूठ है । जो आनन्द में लीन होता है और विकल्प उठे तो उपदेशादि होता है वह मुनि है। मात्र अकेले शरीर की नग्नता की बात नहीं है। त्रिलोकनाथ परमात्मा ने यह एक ही मार्ग कहा है- अद्वितीय मोक्षमार्ग का उपदेश दिया है। अन्य उपदेश (ठग द्वारा साहूकार के नाम से लिखी गई हुण्डी के समान) भगवान के नाम से हुण्डी लिख दी है जो चलने वाली नहीं है। जैसे थैले में भरा हो चिरायता और ऊपर शक्कर लिख दे तो इससे वह चिरायता मीठा नहीं हो जाता। उसीप्रकार आत्मा और परमाणु स्वतन्त्र है- ऐसे भान पूर्वक नग्न दशा होती है इसके बदले वस्त्र-पात्र सहित मुनिदशा मानना कल्पित मार्ग है, वीतराग का मार्ग नहीं है। वीतराग मार्ग के अतिरिक्त अन्य समस्त अमार्ग है। दूसरा कोई मार्ग नहीं है। अज्ञानियों ने शास्त्रों के अर्थ को बदलकर विपरीत मार्ग कर दिया है। अरे! सत्य मार्ग को फेर दिया वह अमार्ग है- ऐसा आचार्य करूणा से कहते हैं।

आशय यह है कि वस्त्र सहित मुनिपना मानना उन्मार्ग है, सन्मार्ग नहीं है।

मृगछाला पहिनकर बाबा होना साधुता नहीं है। वस्त्र की छाल पहिनने वाला साधु नहीं है। उसके श्रद्धा-ज्ञान सब मिथ्या है। कपास के वृक्ष पहने, दुकूल, रोमवस्त्र, टाट के वस्त्र, तृण के वृक्ष पहिनकर साधु नहीं हो सकता है। जो चिदानन्द आत्मा की रमणता करता हो उसकी दशा जन्मते शिशुवत (नग्न दिगम्बर) होती है। वस्त्र-पात्र सहित मुनिदशा मानने पर भी अपने को दर्शन-ज्ञान-चारित्र मानता है वह वीतराग के शास्त्र से विपरीत है। उसकी प्ररूपणा सत्य नहीं है। उसका संग करने वाला मिथ्यादृष्टि हो जाता है।

यह मार्ग है। परीक्षा करो! जिस सम्प्रदाय में जन्म लिया उस सम्प्रदाय की रूढ़ि से नहीं मानना चाहिये। (श्वेताम्बरो ने) भगवान के मार्ग के विरूद्ध होकर वस्त्रादि सहित मुनिपना मनाया है। श्वेत वस्त्र, लाल, पील वस्त्र, टाट के, घास के वस्त्र रखकर मुनिपना मानने वाला भ्रष्ट है। वीतराग का मार्ग- केवली का मार्ग एक ही है। कल्पित शास्त्र रचकर मुनिपना विपरीत प्रकार से माना-मनाया है वह कुमार्ग है।

यदि यथार्थ चारित्र का पालन नहीं हो सकता हो तो गृहस्थ रहना; परन्तु वस्त्र-पात्र सहित मुनिपना नहीं मानना। इसमें आचार्य भगवान की करूणा है। अन्तर स्वभाव का दरवाजा खोलकर (चैतन्य) राजा को प्रगट करने वाली चारित्रदशा अलग ही है। उसमें वस्त्र रखना और धोना शोभास्पद नहीं है। यदि पालन नहीं हो सकता हो तो श्रावक रहना; परन्तु दंड आदि रखकर मुनि मानने में तो मोक्षमार्ग नहीं है। अरे! तीर्थंकर देव भी वस्त्र सहित हो तो उनकी भी मुक्ति नहीं होती- ऐसा आगे 23 वीं गाथा में कहेंगे। यही आधार श्रीमद्राजचन्द्रजी ने भी दिया है।

अन्तर में वीतरागी दशा और बाह्य में नग्न दिगम्बर दशा- यह एक ही सत्यमार्ग है, शेष सब उन्मार्ग है। यदि स्वयं से चारित्र और त्याग नहीं होता है तो श्रद्धा करो! आत्मा की और सच्चे देव-शास्त्र-गुरु के स्वरूप की श्रद्धा करो! विपरीत श्रद्धा करने से एक भी भव नहीं घटेगा। विपरीत मान्यता वाले की तो पाप दृष्टि है। अनादि दिगम्बर मार्ग एक ही था अन्य नहीं था।

सूत्रपाहुड़ गाथा-11

आगे दिगम्बर मोक्षमार्गकी प्रवृत्ति कहते हैं:-

जो संजमेसु सहिओ आरंभपरिग्गहेसु विरओ वि।
सो होइ वंदणीओ ससुरासुरमाणुसे लोए ।। 11 ।।

यः संयमेषु सहितः आरंभपरिग्रहेषु विरतः अपि।
सः भवति वंदनीयः ससुरासुरमानुषे लोके ।। 11 ।।

हिन्दी पद्यानुवाद

संयम सहित हों जो श्रमण हों विरत परिग्रहारंभ से।
वे वन्द्य हैं सब देव-दानव और मानुष लोंक से।।11।।

अर्थः- जो दिगम्बर मुद्राका धारक मुनि इन्द्रिय-मनको वशमें करना, छहकायके जीवोंकी दया करना इसप्रकार संयम सहित हो और आरम्भ अर्थात् गृहस्थके सब आरम्भोंसे तथा बाह्यअभ्यन्तर परिग्रहसे विरक्त हो, इनमें नहीं प्रवर्ते तथा आदि शब्दसे ब्रह्मचर्य आदि गुणोंसे युक्त हो वह देव-दानव सहित मनुष्यलोकमें वंदने योग्य है, अन्य भेषी परिग्रह-अरंभादिसे युक्त पाखण्डी (ढोंगी) वंदने योग्य नहीं है ।। 11 ।।

गाथा-11 पर प्रवचन

संत की दशा नग्न दिगम्बर होती है। उनको अन्तर में अतीन्द्रिय आनन्द के प्रचूर स्वसंवेदन के कारण इन्द्रियाँ और मन वश में हो गये होते हैं। जिनको पूर्णानन्द ज्ञानानन्द स्वरूप में एकाग्रता करने से (पर्याय में) आनन्द और शान्ति की बाड़ आती है वे मुनि हैं। अपने लिये बनाये हुए आहार को वे नहीं लेते हैं। गृहस्थ ने स्वयं अपने लिये आहार बनाया हो तो वे अन्तराय रहित मौनरूप रहकर आहार लेते हैं ऐसा मार्ग है।

प्रश्नः- काल के अनुसार तो परिवर्तन होता है न?

समाधानः- जैसे तीनों काल हलुआ तो धी, नारियल व आटे आदि से ही बनता है- यह एक ही रीति है। उसीप्रकार मार्ग एक ही है। मार्ग को पहिचानो! मुनिराज पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति तथा त्रस की दया का पालन करते हैं। उन्हे

www.vitragvani.com

छहकाय की हिंसा का विकल्प नहीं होता है। वे उसकी अनुमोदना भी नहीं करते हैं। अभी तो मुनियों के लिये चौका बनाते हैं वह आहारदान नहीं है। सम्यग्दर्शन और निर्ग्रन्थदशा सहित मुनि को छहकाय के जीवों की हिंसा का भाव नहीं होता है। ऐसे संयम सहित हों वे सच्चे मुनि है। तथा उनके आरम्भ नहीं होता। वे बाह्य में वस्त्र-पात्र से रहित होते हैं और अन्दर मे आनन्दकन्द दशा में झूलते हैं। जैसे जिस चावल की लालिमा चली गई है उसका छिलका तो नष्ट हो ही गया है; उसीप्रकार मुनियों के अन्तर में राग का अभाव हो गया है और बाह्य में वस्त्र रह जाए- ऐसा नहीं हो सकता। वस्त्र रखने का भाव ममता है। मेरा स्वभाव ममता रहित है- ऐसी श्रद्धा करो! ममता का अभाव होने पर ही समता सहित चारित्रदशा होती है। अन्तर मे मूर्छा का अभाव हुआ है और बाह्य में वस्त्र रखे- यह खोटी बात है। मुनि मन-वचन-काया से विरक्त हैं। तथा वे आत्मा के आनन्द में क्रीड़ा करते हैं। काया से स्त्री संग के त्यागी हैं। वे मुनि देव-दानवों सहित मनुष्यलोक में वंदनीय हैं। अन्य वेषी परिग्रहयुक्त पाखण्डी वंदन करने योग्य नहीं हैं। इसप्रकार यथार्थ वस्तुस्वरूप समझाया है। किसी व्यक्ति के प्रति विद्वेष नहीं है। जिसको सत्य नहीं रुचता वह तो परिभ्रमण करता ही आया है। स्वर्ग के और पशु के अनन्त भव किये हैं; परन्तु सच्ची दृष्टि नहीं की है, सच्चे मार्ग का अनुभव नहीं किया है- इसकारण चारगति के दुःख सहन कर रहा है। इसलिये मार्ग को यथार्थ पहिचानना चाहिये।

अब सर्वज्ञ के मार्ग में कैसे मुनि होते हैं- उनकी अन्तर-बाह्य प्रवृत्ति कैसी होती है यह बताते हैं।

Shree kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

सूत्रपाहुड़ गाथा-12

आगे फिर उनकी प्रवृत्तिका विशेष कहते हैं:-

जे बावीसपरीसह सहंति सत्तीसएहिं संजुत्ता।
ते होंति वंदणीया कम्मक्खयणिज्जरासाहू ।। 12 ।।

ये द्वाविंशतिपरीषहान् सहंते शक्तिशतैः संयुक्ताः।
ते भवंति वंदनीयाः कर्मक्षयनिर्जरासाधवः ।। 12 ।।

हिन्दी पद्यानुवाद

निजशक्ति से सम्पन्न जो बाईस परीसह को सहें।
अर कर्म क्षय वा निर्जरा सम्पन्न मुनिजन वंद्य हैं।।

अर्थः- जो साधु मुनि अपनी शक्तिके सैंकड़ोंसे युक्त होते हुए क्षुधा, तृषादिक बाईस परीषहोंको सहते हैं और कर्मोंकी क्षयरूप निर्जरा करनेमें प्रवीण हैं वे साधु वंदने योग्य हैं।

भावार्थः- जो बड़ी शक्तिके धारक साधु हैं वे परीषहोंको सहते हैं, परीषह आने पर अपने पदसे च्युत नहीं होते हैं उनके कर्मोंकी निर्जरा होती है, वे वंदने योग्य है ।। 12।।

गाथा- 12 पर प्रवचन

मुनि अपनी शक्ति अनुसार बाईस प्रकार के परीषह सहन करते हैं।

'णमो लोए सव्व साहूणं' में भले ही वे साधु हैं,तथापि गणधरदेव नमस्कार मंत्र में उनको नमस्कार करते हैं। अहा! तीर्थंकर देव के धर्म बजीर नमस्कर करते हैं- हे संत! तेरे चरण कमल में नमस्कार होओ! जैसे व्यापारी धन की कमाई के लिये काला बाजारी करते हैं वह साहूकार का धंधा नहीं है, वह पैसा मिलना नहीं कहलाता; उसी प्रकार बाह्य में मुनि नाम धराकर मान चाहना कालाबाजारी से पैसा इकट्टा करने जैसा है। मुनि के सम्यग्दर्शन उपरांत उनकी सैंकड़ों शक्तियां होती हैं। आत्मा में आनन्द और वीर्य (बल) भरा हुआ है। स्वरूप सामर्थ्य की रचना के पंथ मे चढ़े हुए मुनि के सैंकड़ों शक्तियां खिल गई हैं। वे उग्र तपश्चर्या करते हैं। आनन्दकन्द स्वरूप में झूलते हैं। "हमें उपवास करते हुए आठ दिन हो गये, अरे रे! हमारा अभिग्रह है- इस कारण आहार नहीं मिलता"- ऐसी आकुलता उनको नहीं होती है।

www.vitragvani.com

तत्वार्थसूत्र में आता है कि मोक्षमार्ग से च्युत न होने के लिये मुनि के परीषह होते हैं। आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान-चारित्ररूप मोक्षमार्ग से च्युत न होने के लिये और विशेष निर्जरा के लिये परीषह सहन करते हैं। वे आत्मा के आनन्द के अमृत का अनुभव करते हैं। उनके सैकड़ों शक्तियाँ प्रगट हुई है- इसे साधुपद कहते हैं। इस प्रकार साधुपद की पहिचान कराई है और इससे विरूद्ध का निषेध किया है।

यह आत्मा ज्ञानस्वरूप है। इसकी वर्तमान दशा पुण्य-पाप और पर पदार्थो में रुकी है- इसकारण पूर्ण विकास और आनन्द नहीं दिखता है। जिसको मैं देह से भिन्न हूँ- ऐसा भान नहीं है और आत्मा का ज्ञानस्वभाव है उससे छूटकर पूण्य-पाप और पर को निज मानकर विकार जितना अपने को मानकर अटक जाता है वह अधर्म और दुःखदायक दशा है। मेरा स्वभाव ज्ञाता-दृष्टा है। 'है' उसे चूककर पर मेरे हैं और मैं शुद्ध चिदानन्द नहीं हूँ- ऐसी मिथ्यामान्यता ही अधर्म दृष्टि है- असत्यार्थ दृष्टि है।

यह जीव चौरासी के अवतार में परिभ्रमण क्यों करता है- यह बात चल रही है।

आत्मा है, 'है' उसका कभी प्रारम्भ नहीं है; वर्तमान में अभाव नहीं है और भविष्य में अभाव नहीं है। तो फिर आजतक कहाँ रहा? दया, दान शुभाशुभ भाव में रहा। शरीर, मन, वाणी आदि पर को अपना मानना, पुण्य को हितकर मानना, ज्ञानस्वभाव को नहीं मानना- इस अधर्म दृष्टि में रहा है। भगवान आत्मा देह से भिन्न है, उसका जानने वाला है। वह ज्ञेय है। आत्मा दृष्टा है वह दृश्य है। ज्ञेय तथा दृश्य न मानकर ये मेरे हैं और मैं इनका हूँ- ऐसा मानकर आनन्द का रोकना मिथ्यामान्यता है। धन, प्रतिष्ठा अथवा पर में सुख नहीं है। पर में सुख मानना और अपने में सुख न मानना भ्रम है। स्वयं त्रिकाल ज्ञान और आल्हाद प्रदाता है इसे भूलकर पर सत् को अपना मानना, पर ज्ञेय को निज मानना, पर में आल्हाद-सुख मानना मिथ्याभ्रान्ति है-विपरीत मान्यता है। आत्मा स्वयं आनन्द स्वरूप है। पुण्य-पाप में, पर में सुख नहीं है- यह मान्यता सम्यक् और सम्यग्दृष्टि की है।

अब परमात्मा, परमात्मा का आराधक और परमात्मा का विराधक कौन है?- यह कहते हैं।

धर्म प्रगट हुआ मानें क्या?

www.vitragvani.com

आत्मा त्रिकाल सत् स्वरूप है। अन्य का सत्-अस्तित्व अन्य में है। आत्मा का ज्ञान आत्मा में है, आत्मा का ज्ञान पर में नहीं है। आत्मा का आनन्द आत्मा में है, पर में नहीं -ऐसा भान होना सम्यग्दर्शन है। तत्पश्चात् पूर्ण ज्ञान होना वह अरहन्त भगवान (की दशा) है। अरहन्त भगवान को नमस्कार किस प्रकार होता है? जो राग-द्वेषरूप शत्रु को आत्म स्थिरता के द्वारा जीतते हैं वे अरहन्त परमात्मा हैं। ऐसे अरहन्त परमात्मा को जानकर निज अन्तर स्वरूप की साधना करने वाला साधक है- परमात्मा का आराधक है। पर को- विकार को निज मानने वाला आत्मा का विराधक मिथ्यादृष्टि बहिरात्मा है। अपना अस्तित्व किसप्रकार है? मैं कायम रहता हुआ किसप्रकार बदलता हूँ और अन्य पदार्थ किसप्रकार बदलते हैं। अर्थात् मैं और अन्य पदार्थ किस प्रकार बदल रहे हैं- इसका उसको पता नहीं है। (वह परमात्मा का विराधक है।)

यह आत्मा एक सैकेण्ड के असंख्यातवें समय में पूर्णानन्द से भरा है। वह ज्ञान और सुखस्वरूप है। नित्य स्वभाव सामर्थ्यवान है। उसे भूलकर पुण्य-पाप और विषय-वासना में रुकना- यह सब विकार है। लोगों को पैसे में सुख दिखता है। क्या सुख शरीर में है? शरीर से सुखी तो सब तरह से सुखी- ऐसा लोग मानते हैं। ऐसा मानने वाले मूढ हैं। ये शरीरादि पदार्थ जड़ हैं। इनको अपना मानना असत्य और दुःखरूप है- इस बात का उन्हे पता नहीं हैं। असत्य मान्यता का अभाव करके 'मै' चैतन्य मूर्ति हूँ, मेरी आत्मा में शान्ति भरी है- ऐसी मान्यता करना चाहिये। विकार और पर की रुचि छोड़कर मैं शुद्ध ज्ञानानन्द स्वभावी हूँ- ऐसा निर्णय करना सम्यग्दर्शन है। इसप्रकार सच्चा ज्ञान होने पर ज्ञान का वेदन करना चारित्र है।

यह आत्मा कौन है? यह क्या हो रहा है? मैं क्या मानता हूँ? जीव ने इसका वास्तविक रीति से जैसा है वैसा ज्ञान नहीं किया है।

जिनका ज्ञानस्वभाव पूर्ण प्रगट हो गया है ऐसे केवली भगवान की वाणी को सूत्र कहते हैं। जिनके आत्मा का पूर्ण विकास हुआ है और अल्पज्ञता का नाश हुआ है उनकी वाणी को आगम अथवा शास्त्र कहते हैं। उस वाणी का सार इस सूत्रपाहूड़ में है। इसकी देशभाषामय वर्चानका पंडित जयचन्दजी श्रावक ने बनाई है। इस जगत

www.vitragvani.com

में सर्वज्ञ ने क्या कहा है- उसका सार इसमें कहते हैं।

सर्वज्ञ भगवान की वाणी में मुनि दशा कैसी होती है? जिस दशा से (भगवान ने) केवलज्ञान प्राप्त किया वह चारित्र दशा कैसी होती है? उसकी बात चलती है।

मै ज्ञानानन्द मूर्ति हूँ। मेरा स्वभाव आनन्द में रहने का है। जिसको राग-द्वेष होने पर भी मैं राग द्वेष रहित पूर्ण ज्ञानानन्द स्वभाव हूँ- ऐसी प्रतीति हुई है उसके धर्म का प्रारम्भ होता है। (वर्तमान में) राग-द्वेष से रहित नहीं हो सकता, इसलिये विरक्तता नहीं हुई है, तत्पश्चात पुण्य-पाप के भाव को छोड़कर स्वभाव में रमने को चारित्र कहते हैं। विकार दशा में अटका हुआ है उसका नाश होकर शक्ति में से पूर्ण दशा प्रगट होने को मोक्ष दशा कहते हैं।

वे चारित्र दशावंत कैसे होते हैं? अन्तर स्वरूप में रमण करते हैं और बाह्य में नग्न दशा हो जाती है- उनकी यहाँ बात है। आत्मा ज्ञान और आनन्द की मूर्ति है उसकी प्रतीति हुई है, तदुपरांत स्वरूप में अन्तर स्थिरता करके वेदन प्रगट हुआ है। इसलिये शरीर पर वस्त्र की मूर्छा नहीं रहती। ऐसी स्वरूप रमणता वाले को पूर्ण दशा का साधक कहते हैं।

यह आत्मा पूर्ण ज्ञान और आनन्द से भरा है- ऐसी प्रतीति सहित चारित्रवंत को बाह्य ने नग्न दशा होती है। इसप्रकार विकार को जीतने वाले के मार्ग में सहज़ चारित्रदशा हो जाती है। अन्यजन ऐसे मुनि का आदर करते हैं।

ज्ञानस्वभाव को पुण्य-पाप से अधिक अर्थात् भिन्न मानकर जिनके अन्तर में बहुत राग घट जाता है उनको मुनि कहते हैं।

सेठिया लोग बाहर की पंचायत में पड़े हैं। "घर का लड़का लोटा चाटे और पडौसी को आटा"- इस तरह का (व्यवसाय) कर रहे हैं। स्वयं के कल्याण के लिये कुछ दरकार नहीं है। यह आत्मा कौन है? क्या मेरी शान्ति पैसा, प्रतिष्ठा, स्त्री के कारण है? नहीं। मेरा आनन्द किसप्रकार (प्रगट होता) है- इसप्रकार आत्मस्वभाव का परिचय करना धर्म की दशा है। सेठाई, अधिकारीपन, पंचायत, वकीलात आदि में सुख नहीं है। पाँच हजार रूपये कमा लेनें में सुख नहीं है। -ये सब पाप वृत्तियाँ हैं- विकार है। आत्मा त्रिकाल शुद्ध आनन्दस्वरूप है- इसकी उग्रदशा चारित्र है। इसकी

www.vitragvani.com

पूर्णदशा मोक्ष है। जिस आत्मा ने पूर्ण केवलज्ञान दशा को प्राप्त किया है उसके शास्त्र में क्या नियम कहा है? यही कि- वस्त्र-पात्र रखने वाला मुनि नहीं है। तथा वस्त्र-पात्र रहित अकेला नग्न हो वह भी मुनि नहीं है। ऐसा नग्न तो बहुत बार हुआ है। छहढाला में कहा भी है-

"मुनिव्रत धार अनन्त बार, ग्रीवक उपजायो।
पे निज आत्मज्ञान बिना सुख लेश न पायो।।

पण्डित दोलतरामजी कहते हैं कि (जीव ने अनन्तबार) मुनिव्रत का पालन किया है। ऐसा आहार लेना, ऐसी क्रिया करना- इससे स्वर्ग मिलता है, और फिर चार गतियों में घूमता है।

पर के ग्रहण-त्याग की वृत्ति विकार है। विकार स्वभाव के लिये बेकार है। भगवान आत्मा की प्रतीति करके अन्तर आनन्द के अंश को प्रगट करना सम्यग्दर्शन है- सम्यग्ज्ञान है। अज्ञानी सम्प्रदाय में प्रतिमा ले लेने को धर्म मानता है। "साधु - साधयिती इति साधु।" जो स्वभाव को साधता है वह साधु है। मेरा स्वभाव ज्ञान और आनन्द स्वरूप है। पुण्य-पाप फुंशियाँ है, शरीर भिन्न है। आत्मा को शरीर से प्रथक् मानकर, पुण्य-पाप से अधिक- भिन्न ज्ञानस्वभाव को मानने से अन्तर में राग छूट जाता है और बाह्य में वस्त्र-पात्र छूट जाते हैं तब उसको मुनिपना कहते हैं- यह त्रैकालिक नियम है।

आत्मा त्रिकाल सच्चिदानन्द मूर्ति है उसका विश्वास करना चाहिये। वर्तमान दशा में कमजोरीवश शुभाशुभ भाव होते हैं, मैं उनसे भिन्न ज्ञानानन्द स्वभावी आत्मा हूँ। ऐसा भान करना सम्यग्दर्शन है। उसको धर्म कहते हैं। अब जो नग्न दशा के अतिरिक्त कोई वस्त्रधारी सम्यग्दर्शन-ज्ञान सहित हो वह इच्छाकार करने योग्य है। चारित्र नहीं, किन्तु सम्यग्दर्शन-ज्ञान है उसकी बात करते हैं।

Shree kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

सूत्रपाहुड़ - गाथा 13

आगे कहते हैं कि जो दिगम्बरमुद्रा सिवाय कोई वस्त्र धारण करे, सम्यग्दर्शन ज्ञानसे युक्त हों वे इच्छाकार करने योग्य हैं:-

अवसेसा जे लिंगी दंसणणाणेण सम्म संजुत्ता।
चेलेण य परिगहिया ते भणिया इच्छणिज्जा य।। 13 ।।

अवशेषा ये लिंगिनः दर्शनज्ञानेन सम्यक् संयुक्ता।
चेलेन च परिगृहीताः ते भणिता इच्छाकारयोग्याः ।। 13 ।।

हिन्दी पद्यानुवाद

अवशेष लिंगी वे गृही जो ज्ञान दर्शन युक्त हैं।।
शुभ वस्त्र से संयुक्त इच्छाकार के वे योग्य हैं।।13।।

अर्थः- दिगम्बरमुद्रा सिवाय जो अवशेष लिंगी भेष संयुक्त और सम्यक्त्व सहित दर्शन ज्ञान संयुक्त हैं तथा वस्त्रसे परिगृहीत हैं, वस्त्र धारण करते हैं वे इच्छाकार करने योग्य हैं।

भावार्थः- जो सम्यग्दर्शन ज्ञान संयुक्त हैं और उत्कृष्ट श्रावकका भेष धारण करते हैं, एक वस्त्र मात्र परिग्रह रखते हैं वे इच्छाकार करने योग्य हैं इसलिये 'इच्छामि' इसप्रकार कहते हैं। इसका अर्थ है कि- मैं आपको इच्छू हूँ, चाहता हूँ ऐसा 'इच्छामि' शब्दका अर्थ है। इसप्रकारसे इच्छाकार करना जिनसूत्र में कहा है।। 13 ।।

गाथा - 13 पर प्रवचन

ज्ञानानन्द का स्वीकार करके ज्ञान का अनुभव करने वाला सम्यग्दृष्टि श्रावक है।

दिगम्बर अर्थात् अकेली नग्नता की बात नहीं हैं, अन्तर की (वीतराग) दशा सहित (बाह्य) की बात है। जो अन्तर भाव (विकार) से छूटकर अन्तर स्वरूप में रमण करता है उसके वस्त्र-पात्र का लक्ष्य नहीं होता है। आहार की वृत्ति उत्पन्न होती है उसे छोड़कर स्वभाव में स्थिर होता है तो केवलज्ञान हो जाता है। मुनि के अन्तर में आनन्द दशा है और बाह्य में नग्न दशा है। परन्तु ऐसी दशा के अतिरिक्त अन्य वेषवालों की बात अब करते हैं। सम्यग्दर्शन-ज्ञान सहित गृहस्थ की बात करते हैं। तीर्थंकर भी गृहस्थ दशा में थे। आत्मा मे लीन होकर आनन्द की प्रतीति सम्यग्दर्शन

www.vitragvani.com

है। आत्मा का ऐसा भरोसा आया है कि अन्तर मे एकाग्र होने से कल्याण होगा। संयोग को साधन बनाने से शान्ति नहीं मिलेगी। स्वभाव को साधन बनाने पर ही शान्ति प्राप्त होने योग्य है। इसप्रकार संयोग और पुण्य-पाप की दृष्टि छोड़कर स्वभाव की प्रतीति करना सम्यग्दर्शन है। संसार में होने पर भी पूर्ण ज्ञान और आनन्द का स्वीकार है वह सम्यग्दर्शन है।

अब ज्ञान की बात करते हैं। संसार का ज्ञान तो धूल-धाणी (व्यर्थ) है। आत्मा ज्ञानमुर्ति है- उस ज्ञान का ज्ञान, ज्ञान का अनुभव होकर वेदन होना सम्यग्ज्ञान है। शेष समस्त ज्ञान को मिथ्याज्ञान कहते हैं।

अब जिसके वस्त्र का राग नहीं छूटा-ऐसे सम्यग्दृष्टि श्रावक का अन्य जीव किस प्रकार आदर करते हैं- यह बात कहते हैं।

अहो! तुम्हारे ज्ञानस्वभाव की सन्मुखता वाले झुकाव की दशा को मैं चाहता हूँ- इसप्रकार श्रावक को 'इच्छामि' कहते हैं- यह बात अब करते हैं।

मैं तुम्हारे ज्ञानदशा को अथवा धर्मदशा को चाहता हूँ। तुम्हारा आत्मा पूर्ण शुद्ध स्वभाव सन्मुख झुका है, मैं भी (उस दशा को) चाहता हूँ। जिसको अन्तर में ज्ञान-दर्शन स्वभाव का भान हुआ है, उसका आदर अन्य श्रावक किस प्रकार करते हैं- यह यहाँ बताते हैं।

अहो! तुम्हारे ज्ञानस्वभाव की सन्मुखतारूप झुकाव दर्शन और ज्ञान हुआ हैं उसको चाहता हूँ। तुम्हारी ऐसी दशा को मैं चाहता हूँ- ऐसा अन्य (जीव) कहता है। धर्मात्मा तो धर्म की तरफ है; परन्तु उसका आदर करने वाला कहता है कि मैं तुम्हारी दशा को चाहता हूँ। मैं पुण्य और संयोग को नहीं चाहता हूँ। राग की मंदता पुण्य है- उससे मुझे ठीक रहेगा, पुण्य के फल में मुझे ठीक रहेगा -ऐसी पुण्य और पुण्य के बंध तथा संयोग की जिसको इच्छा है वह आत्मा आत्मा में भरी हुई शान्ति को नहीं चाहता है। अज्ञानी तो पाप की इच्छा करता है; पाँच हजार की आय की इच्छा करता है; परन्तु धर्म की इच्छा नहीं करता है। आत्मा आनन्द स्वरूपी वस्तु है। धर्मी को उसकी इच्छा है। मन्द इच्छा है परन्तु संयोग के लिये नहीं; अपितु अस्थिरता जन्य इच्छा है उस धर्मी को 'इच्छाकार' कहते हैं।

www.vitragvani.com

जो नग्नदशा सहित अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव करते हैं वे मुनि हैं। क्षण में अतीन्द्रिय आनन्द में लीन हो जाते हैं तो क्षण में उपदेशादि का विकल्प आता है- इसप्रकार उनकी झूलने वाली दशा को चारित्रवंत दशा कहते हैं। झूला अपनी मर्यादा में झूलता-हिलता-डुलता है; उसीप्रकार मुनि आनन्द की दशा में झूलते हैं, एकाकार होकर आत्मा का झूला झूलते हैं। क्षण में उपदेश, आहारादि की वृत्ति उत्पन्न होती है, क्षण में नित्यानन्द स्वभाव में झूलते हैं- ऐसी दशा को चारित्र दशा कहते हैं। जो अल्पकाल में पूर्ण दशा प्रगट करेंगे वे साधक-साधु हैं। जो ऐसा साधु न हो उस श्रावक की यहाँ बात करते हैं।

भाई! सर्वज्ञ का हुकम सर्वज्ञ होने का है। वीतराग का हुकम वीतराग होने का है।

यहाँ सर्वज्ञ भगवान के आगम के नियम की बात चल रही है। वे एक समय में तीनकाल-तीनलोक को जानते हैं। सर्वज्ञ की आज्ञा सर्वज्ञ होने की है। सर्वज्ञ अर्थात् जिनको कुछ भी जानना शेष नहीं रहा और आनन्द प्रगट होना शेष नहीं रहा (अर्थात् पूर्णानन्द प्रगट हो गया है।) वे सर्वज्ञ हैं। उनका आदेश विकार और अल्पज्ञता की रुचि छोड़कर सर्वज्ञ शक्ति का आश्रय करके सर्वज्ञ होने का है। वीतराग का हुकम वीतराग होने का है, रागी होने का नहीं।

त्रिकाली वेत्तापना-सर्वज्ञपना कहाँ से होता है? अन्तर में सर्वज्ञ शक्ति भरी है उसमे एकाग्रता होने से त्रिकालवेत्तापना-सर्वज्ञता होती है। जैसे छोटी पीपल में चौसठ पहरी चरपराहट भरी है, वह पत्थरादि घिसने से नहीं आती; पीपल के दाने-दाने में पूर्ण चरपराहट भरी है, जो है वह प्राप्त होती है। उसीप्रकार आत्मा में सर्वज्ञता अर्थात् पूर्णज्ञान और आनन्द भरा है उसमें से ज्ञान प्रगट होता है। अज्ञानी संयोग से देखता है, वह स्वभाव को नहीं देखता है। यदि चरपराहट पत्थर में से आती हो तो चूहें की लींडी को घिसने से भी आनी चाहिये; परन्तु ऐसा नहीं होता। प्राप्त की प्राप्ति होती है। जैसे पीपल के अन्दर पूर्ण चरपराहट और हरा रंग भरा है वह प्रगट होता है। उसीप्रकार प्रत्येक आत्मा में सर्वांगपूर्ण सर्वज्ञ शक्ति भरी पड़ी है, पूर्ण आनन्द भरा है उसकी प्रतीति और ज्ञान होने को सम्यग्दर्शन और ज्ञान कहते हैं।

www.vitragvani.com

धर्मात्मा पुण्य की तथा संयोग की भावना नहीं भाता, बल्कि स्वभाव की भावना भाता है। सम्यग्दृष्टि जीव को राग होता है; परन्तु वह शुभ इच्छा को (भी) रखने योग्य नहीं मानता है। आत्मा परिपूर्ण शक्तियों का पिण्ड है, पर से शून्य है। तू पर में नहीं है, परवस्तु तुझमें नहीं है; तथापि अपने को पर से सहित मानना भ्रान्ति है। जो जीव स्वभाव के भान द्वारा इस भ्रान्ति का अभाव करता है ऐसे जीव का आदर करते है। वह जीव सम्यग्दर्शन ज्ञान के संयुक्त है और उत्कृष्ट श्रावक का वेष धारण करता है। एक वस्त्र मात्र परिग्रह रखता है वह 'इच्छाकार' करने योग्य है। इसलिये उसको 'इच्छामि' ऐसा कहना चाहिये। मैं तुमको इच्छता हूँ अर्थात् स्वभाव की भावना भाता हूँ।

जीव को अधर्म को इच्छा तो अनादि से है और धर्म को इच्छा कितनी दुर्लभ है। धर्मी जीव को इच्छा होती है परन्तु वह वासना- इच्छा को रखने योग्य नहीं मानता है। धर्मी जीव अन्य धर्मी जीव को 'इच्छामि' कहता है। वह पर पदार्थ को नहीं चाहता। वह तो चाहता है कि तुम्हारा आत्मा श्रद्धा ज्ञान में एकाग्र होता है ऐसे भाव को में चाहता हूँ, पुण्य पाप रहे ऐसी भावना वह नहीं भाता।

चक्रवर्ती आदि मुनि को वंदन करते हैं- वह यह बताता है कि स्वभाव भाव करने योग्य है।

इन्द्र, चक्रवर्ती अथवा बड़े-बड़े राजा त्यागियों का आदर करते हैं। इसलिये बाह्यत्याग के नाम पर बहुभाग ठगा गया है - उसकी तो यहाँ बात नहीं है। यहाँ तो जिनको सर्वज्ञ कथित आत्मा को जानकर राग का अभाव होकर अरागीदशा प्रगट हुई है- ऐसे त्यागी मुनि को इन्द्र नमन करते हैं। इन्द्र का शरीर प्रकाशवाला कांतियुक्त होता है, मुनि का शरीर साधारण होता है। छह खण्ड के अधिपति चक्रवर्ती के छियानवें हजार स्त्रियां होती हैं, सोलह हजार देव सेवा करते हैं। एक हजार देव अंग रक्षक होते हैं। उसे आत्मा का भान होने पर भी पुण्य बहुत है। ऐसी ऋद्धिवाला चक्रवर्ती भी मुनिराज को वंदन करता है। यह प्रसंग बताता है कि संयोग सन्मुखता का भाव करने योग्य नहीं है। आप (मुनिराज) स्वभाव में लीनता करते हो, विभाव का अभाव करना चाहते हो - यह भाव आदरणीय हैं - ऐसा चक्रवर्ती मानता है। यह

www.vitragvani.com

सच्चे मुनि की बात है। जिसको तत्वदृष्टि पूर्वक संतदशा प्रगट हुई उसकी बात है। जिनके शरीर पर वस्त्र का धागा भी नहीं है और ऊपर से मूसलाधार पानी गिरता हो तो भी अन्तर स्वभाव को दृष्टि है- अन्तर अनुभव में निमग्न होते हैं - ऐसे मुनि को वंदन करते हैं।

मुनि के पास कुछ भी नहीं होने पर भी आदर क्यों? धर्मी ने पुण्य-पाप और संयोग की उपेक्षा की है और अन्तर स्वभाव की अपेक्षा की है। वह स्वभाव में स्थित है ऐसा ही हमें करने योग्य है - ऐसा समझे बिना अज्ञानी जहाँ-तहाँ 'जय नारायण' करता है। जीव वस्त्रों का परित्याग करके नग्न तो अनन्तबार हुआ है (परन्तु आत्मज्ञान बिना रचमात्र सुख प्राप्त नहीं हुआ है।)

जो पूर्ण शान्ति प्रगट करने का प्रयास कर रहा है, जिसे पूर्ण परमात्मा दशा होनी है उसके अवतार-जन्म-मरण नहीं रहेगा।

आपको संयोग नहीं है, आप अन्तर स्वभाव में एकाग्रता करते हो वह मेरे द्वारा आदर करने योग्य है- ऐसे भान बिना सच्चा 'इच्छामि' नहीं होता है। जिसको मैं ज्ञानानन्द स्वभावी हूँ- ऐसी रुचि नहीं है, क्या वह ऐसी दशा का आदर कर सकता है? (नहीं कर सकता) तीर्थंकर के समवसरण होता है, बाह्य विभूति बहुत होती है। तो क्या भगवान समवसरण में हैं? चंवर में हैं? नहीं। जिन्होंने आत्मा की पूर्ण शुद्धता प्रगट की है वह भगवान हैं। उनका आदर करता हूँ अर्थात् अपनी शक्ति का आदर करना चाहता हूँ। तुम पूर्ण हो गये हो, मेरी दशा अपूर्ण है - इसकारण मैं पूर्ण दशा की भावना करता हूँ। भगवान का हुकम यह है कि जो मुनि नहीं हो ऐसे सम्यग्दर्शन ज्ञान वाले (उत्कृष्ट श्रावक) को इच्छामि करना चाहिये। इसका आशय यह है कि मैं स्वभाव का आदर करता हूँ। पुण्य-पाप और संयोग होने पर भी उनका आदर नहीं करता हूँ। इसप्रकार समझकर आदर करते हैं तो आदर करने वाला जिसका आदर करता है उसका निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध हुआ कहा जाता है। इसप्रकार (उत्कृष्ट श्रावक को) इच्छाकार-इच्छामि करना चाहिये - ऐसा जिनसूत्र में कहा गया है।

सूत्रपाहुड़ गाथा - 14

आगे इच्छाकार योग्य श्रावकका स्वरूप कहते हैं-

इच्छायारमहत्थं सुत्तठिओ जो हु छंडए कम्मं।
ठाणे ट्ठियसम्मत्तं परलोयसुहंकरो होदि ।। 14 ।।

इच्छाकारमहार्थं सूत्रस्थितः यः स्फुटं त्यजति कर्म।
स्थाने स्थितसम्यक्त्वः परलोकसुखंकरः भवति ।। 14 ।।

हिन्दी पद्यानुवाद

मर्मज्ञ इच्छाकार के अर शास्त्र सम्मत आचरण।
सम्यक् सहित दुष्कर्म त्यागी सुख लहें परलोक में।।14।।

अर्थः- जो पुरुष जिनसूत्रमें तिष्ठता हुआ इच्छाकार शब्दके महान प्रधान अर्थको जानता है और स्थान जो श्रावकके भेदरूप प्रतिमाओंमें तिष्ठता हुआ सम्यक्त्व सहित वर्तता है, आरंभ आदि कर्मोंको छोड़ता है वह परलोकमें सुख करनेवाला होता है।

भावार्थ :- उत्कृष्ट श्रावकको इच्छाकार करते हैं सो जो इच्छाकारके प्रधान अर्थको जानता है और सूत्र के अनुसार सम्यक्त्व सहित आरंभादिक छोड़कर उत्कृष्ट श्रावक होता है वह परलोकमें स्वर्गका सुख पाता है ।। 14 ।।

गाथा- 14 पर प्रवचन

अब इच्छाकार करने योग्य श्रावक का स्वरूप कहते हैं।

जो इच्छाकार शब्द का अर्थ जानकर सम्यक्त्व सहित प्रतिमा का पालन करता है वह परलोक में सुख पाता है।

जो पुरुष जिनसूत्र में सर्वज्ञ द्वारा कथित आगम को सम्यक प्रकार से जानकर उनकी आज्ञा में स्थित है वह इच्छाकार शब्द का महान- प्रधान अर्थ जानता है। सम्यग्दर्शन सहित- आत्मा ज्ञानानन्द स्वरूप है - ऐसे भान सहित जो अपने स्वरूप में स्थित है वह (जिनेन्द्र की) आज्ञा में स्थित है, वह इच्छाकार के अर्थ को जानता है। जो शुद्र चिदानन्द स्वभाव को चाहता है और आरम्भ के योग्य रागादि को छोड़ता है वह श्रावक 'इच्छाकार' करने योग्य है। जिसको शुद्ध चिदानन्द आत्मा का भान है

www.vitragvani.com

वह इच्छाकार का अर्थ समझता है। वह शुद्धता के अंशों में रहता है और अशुभ के आरम्भ में निवृत हुआ है। वह परलोक में सुख प्राप्त करने वाला है।

उत्कृष्ट श्रावक को इच्छाकार करना चाहिये। सो जो इच्छाकार के प्रधान अर्थ को जानता है तथा सूत्र अनुसार सम्यक्त्व सहित आरम्भादिक को छोड़ता है वह उत्कृष्ट श्रावक है। आत्मा का स्वभाव ज्ञान है जो उसमें एकाग्रता करके राग को छोड़ता है वह उत्कृष्ट श्रावक है। वह परलोक में स्वर्ग सुख को प्राप्त करता है। धर्मी मरकर मनुष्य नहीं होता, बल्कि देव होता है। आत्मा ज्ञानानन्द स्वभावी है उसकी भावना करना और अस्थिरता को छोड़ना यह इच्छाकार (उत्कृष्ट श्रावक का स्वरूप) है। स्वभाव की भावना (एकाग्रता-रमणता) बिना विभाव नहीं छूटता है। स्वभाव की भावना के बिना व्रत, तप, आदि अन्य धर्मों का आचरण मुक्ति का कारण नहीं है। यह अब कहते हैं।

Shree kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

सूत्रपाहुड़ गाथा - 15

आगे कहते हैं कि जो इच्छाकारके प्रधान अर्थको नहीं जानता है और अन्य धर्मका आचरण करता है वह सिद्धिको नहीं पाता है:-

अह पुण अप्पा णिच्छदि धम्माइं करेइ णिरवसेसाइं।
तह वि ण पावदि सिद्धिं संसारत्थो पुणो भणिदो ।। 15 ।।

अथ पुनः आत्मानं नेच्छति धर्मान् करोति निरवशेषान्।
तथापि न प्राप्नोति सिद्धिं संसारस्थः पुनः भणितः ।। 15 ।।

हिन्दी पद्यानुवाद

जो चाहता नहिं आतमा वह आचरण कुछ भी करे।
पर सिद्धि को पाता नहीं संसार में भ्रमता रहे।।15।।

अर्थः- 'अथ पुनः' शब्दका ऐसा अर्थ है कि- पहली गाथामें कहा था कि जो इच्छाकारके प्रधान अर्थको जानता है वह आचरण करके स्वर्गसुख पाता है, वही अब फिर कहते हैं कि इच्छाकारका प्रधान अर्थ आत्माको चाहना है, अपने स्वरूपमें रुचि करना है वह इसको जो इष्ट नहीं करता है और अन्य धर्मके समस्त आचरण करता है तो भी सिद्धि अर्थात् मोक्षको नहीं पाता है और उसको संसारमें ही रहनेवाला कहा है।

भावार्थः- इच्छाकारका प्रधान अर्थ आपको चाहना है सो जिसके अपने स्वरूपकी रुचिरूप सम्यक्त्व नहीं है, उसके सब मुनि-श्रावककी आचरणरूप प्रवृत्ति मोक्षका कारण नहीं है।।15।।

गाथा- 15 पर प्रवचन

अब कहते हैं कि आत्मा की चाह बिना समस्त शुभ आचरण संसार का कारण है। यहाँ धर्म अर्थात् पुण्य समझना। (धर्म का आचरण=शुभाचरण=पुण्य)

जिस जीव को आत्मा पूर्णानन्द है, उसकी भावना नहीं है और वह व्रत, प्रतिमा आदि का पालन करता है वह पुण्यभाव है।

"अथ पुनः" शब्द का अर्थ ऐसा है कि - पूर्व गाथा (नं. 14) में कहा था कि आत्मा शुद्ध चिदानन्द है, उसके भानपूर्वक आचरण करने वाला स्वर्ग सुख को पाता है। स्वभाव की भावनापूर्वक राग छोड़ने वाले को श्रावक कहते हैं। वही अब फिर

www.vitragvani.com

कहते हैं कि इच्छाकार का प्रधान अर्थ आत्मा को चाहना है। कोई दया, दानादि का पालन करता है, अथवा ज्ञानानन्द स्वरूप की भावना के बिना क्षुल्लकदशा, ऐलकदशा का पालन करता है ; यहाँ उदिष्ट आहार लेने वाले की तो बात ही नहीं है ; परन्तु भूमिकानुसार यथार्थरूप से पालन करता है, तथापि देह को क्रिया और राग की क्रिया से रहित अबंध आत्मा का भान नहीं है - इस कारण उसको धर्म नहीं होता है। 'अन्यधर्म' अर्थात् सूत्र में जो व्यवहार कहा है उसकी बात है।

दिगम्बर सम्प्रदाय में प्रतिमा लेने की उतावल करते हैं। कर्म से विकार मानते हैं। इसतरह तत्व में संदेह रहने पर भी प्रतिमा ले लेने वाले का कोई ठिकाना नहीं है। जिसको राग के अभाव स्वभावरूप ज्ञान के सहित स्वभाव का पता नहीं है उसको जरा भी धर्म नहीं होता हैं। देव-शास्त्र-गुरु क्या कहते हैं ? इस बात का उसे पता नहीं है। मुनि की बात (पूर्व में) आ गई है। उनको सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की एकता सहित पंचमहाव्रतादि का विकल्प होता है। उनकी अन्तर दशा परमार्थ है और विकल्प व्यवहार है। आत्मा का भान नहीं होने वाले मुनि नहीं कहलाते हैं। इसीप्रकार आत्मा के भान रहित श्रावक को श्रावक नहीं कहते हैं। वह तो संसार में परिभ्रमण करता है।

इच्छाकार का अर्थ अपने आपको चाहना है। जिसको अपना पता नहीं है उसको अपने स्वरूप की रुचिरूप सम्यक्त्व कहां से हो ? वह मुनि अथवा श्रावक के आचरण करता हो तो भी मुक्ति का कारण नहीं है। आगे इसी अर्थ को दृढ करने का उपदेश करते हैं।

Shree kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

सूत्रपाहुड़ गाथा - 16

आगे इसही अर्थको दृढ़ करके उपदेश करते हैं:-

एण कारणेण य, तं अप्पा सद्दहेह तिविहेण।
जेण य लहेह मोक्खं तं जाणिज्जह पयत्तेण ।। 16 ।।

एतेन कारणेन च तं आत्मानं श्रद्धत्त त्रिविधेन।
येन च लमध्वं मोक्षं तं जानीत प्रयत्नेन ।। 16 ।।

हिन्दी पद्यानुवाद

बस इसलिए मन वचन तन से आत्म की आराधना।
तुम करो जानो यत्न से मिल जाय शिवसुख साधना।।16।।

अर्थः- पहिले कहा कि जो आत्मा को इष्ट नहीं करता है उसके सिद्धि नहीं है, इस ही कारणसे हे भव्यजीवों! तुम उस आत्मा की श्रद्धा करो, उसका श्रद्धान करो, मन वचन कायसे स्वरूपमें रुचि करो, इस कारणसे मोक्षको पाओ और जिससे मोक्ष पाते हैं उसको प्रयत्न द्वारा सब प्रकार के उद्यम करके जानो। (भाव पाहुड़ गा० 87 में भी यह बात है।)

भावार्थः- जिससे मोक्ष पाते हैं उसहीको जानना, श्रद्धान करना यह प्रधान उपदेश है, अन्य आडम्बरसे क्या प्रयोजन ? इसप्रकार जानना।। 16 ।।

गाथा- 16 पर प्रवचन

सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान पुरुषार्थ से ही होते है,उनका होना कर्माधीन नहीं है।

सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान प्रयत्न से होते है। 'देवयोग' से सम्यग्दर्शन होता है- यह बात सत्य नहीं है। व्रत, नियम का पालन पुरुषार्थ से होता है। अज्ञानी मानता है कि कर्म का अभाव अथवा काललब्धि पकने पर सम्यग्दर्शन होता है, परन्तु यह बात मिथ्या है। इसलिये जिस व्रत में तेरा प्रयत्न जाता है उसके बदले स्वभाव को समझने में प्रयत्न कर!

अज्ञानी कहता है कि यदि निमित्त से लाभ माने तो निमित्त को माना कहा जाए, कर्म के उदय के कारण नुकसान होता है - ऐसा माने तो गुरु को माना कहा जाए, परन्तु भाई ! शुभराग आता है और उसके योग्य निमित्त सुनिश्चित होता है। तू तो निमित्त ओर शुभराग से रहित आत्मा की प्रतीति कर !

www.vitragvani.com

पूर्व में कथित आत्मा की दृष्टि नहीं करने वाले की सिद्धि नहीं होती है। आत्मा को इष्ट करना अर्थात् मेरा स्वभाव स्वतन्त्र है - ऐसा मानना चाहिये। अतः हे भव्य जीवों ! आत्मा ज्ञानस्वरूपी है। क्रमवद्धपर्याय का जानने वाला है, रागादि का भी जानने वाला है - ऐसी श्रद्धा करो ! देखो ! यह करने का आया।

मन से आत्मा की रुचि करो ! वाणी से भी ऐसा कहो और काय से भी यही रुचि करो! आत्मा शुद्ध चिदानन्द है - ऐसा कहो ! शक्तिरूप स्वभाव में मोक्ष है, अतः वह उसके आश्रय से प्रगट होता है। आत्मा क्रमबद्धपर्याय का जानने वाला है, परन्तु फेरफार करने वाला नहीं है- ऐसी श्रद्धा करो! यह सूत्र का सार है। आत्मा ज्ञानानन्द स्वरूप है- ऐसा प्रयत्न से जान ! सूत्र में ऐसा आया है। दया, दान, व्रत से मुक्ति प्राप्त नहीं होगी। किसी भी प्रकार से आत्मा ज्ञानानन्द है- ऐसा जान! सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान पुरुषार्थ से होते हैं

अज्ञानी कुतर्क करता है कि क्रमबद्ध में प्रयत्न-पुरुषार्थ कहाँ रहा ? समयसार के सर्वविशुद्ध ज्ञान अधिकार में क्रमबद्ध की बात आई है उसको इस बात के साथ विरोध नहीं है। पर की पर्याय क्रमबद्ध होती है, मैं उसका फेरफार करने वाला नहीं हूँ। राग मेरे में क्रमबद्ध होता है, मै उसका जानने वाला हूँ- ऐसे निर्णय में ही पुरुषार्थ आया (अर्थात् ऐसा निर्णय होकर स्व सन्मुख दृष्टि होना ही पुरुषार्थ है।)

यहाँ आत्मा को मन-वचन-काय से श्रद्धना और प्रयत्न से जानना - ऐसा कहा है। आत्मा के जानने में क्रमबद्ध आ जाती है। मेरे अलावा अनन्त पर पदार्थ-शरीर-मन-वाणी आदि पर की अवस्था होती है उसको बदलना-पलटाना रहा नहीं, अब आत्मा रहा- इसप्रकार त्रिविध आत्मा की श्रद्धा करते हुए क्रमबद्धपर्याय का जानने वाला रहा। आत्मा की रुचि के बिना मुक्ति नहीं होती, इसलिये मन-वचन-काय से आत्मा की श्रद्धा करना और पुरुषार्थ से आत्मा को जानना चाहिये। आत्मा पर का अकर्ता है और रागादि का जानने वाला है- ऐसे जानने वाले- देखने वाले को जानना और उसकी मन-वचन-काय से श्रद्धा करना, इसी में क्रमबद्ध आ जाती है। आत्मा के श्रद्धा-ज्ञान के बिना आचरण व्यर्थ है। आत्मा ज्ञानस्वभावी है। सर्वज्ञ होने का और

www.vitragvani.com

अविकारी होने का उसका स्वभाव है- ऐसे आत्मा की श्रद्धा करना और प्रयत्न पूर्वक उसको जानना - इसी में अबद्धस्पृष्ट आदि बोल आ जाते हैं। कर्म की स्थिति-अपकर्षण आदि है वह कर्म के कारण होती हैं। आत्मा को जानना ही सूत्र का सार है।

भाई! निमित्त के कथन जैसे हैं वैसे यथार्थ समझना चाहिये। पथ्य-आहार के कारण शरीर अच्छा रहता है- यह निमित्त का कथन है। मर्यादित आहार लेने से शरीर में स्फुर्ति रहती है- ऐसा लोग कहते हैं। कौन आहार ले सकता है या छोड़ सकता है? वे परमाणु आने हों तो आते हैं। मर्यादित आहार लेने पर भी रोगी होते देखते हैं, वह तो शरीर की अवस्था उसके क्रमबद्ध के कारण होती है, वह आत्मा के परिणाम के कारण वैसी नहीं होती।

उनोदर से प्रमाद नहीं आता, ध्यान में कठिनता नहीं पड़ती- ऐसे निमित्त के कथन शास्त्र में आते हैं। वहाँ तो उस समय राग मंदता के परिणाम कैसे होते हैं- यह बताते हैं। ऐसा आहार करूँ तो स्वाध्याय होती है- यह बात (श्रद्धा में से) निकाल दे और आत्मा की श्रद्धा कर! इसमे नव तत्व आ जाते हैं।

यहाँ प्रयत्न से समकित होना कहा। कितने ही 'समकित प्रयत्न से नहीं होता' ऐसा कहते हैं- यह बात मिथ्या है। आत्मा ज्ञानानन्द स्वभाव है- ऐसी प्रतीति कर सकते हैं। 'प्र' अर्थात् सर्व प्रकार से 'यत्न' अर्थात् उद्यम। आत्मा ज्ञानानन्द स्वभावी है- ऐसा निर्णय सर्वप्रकार के उद्यम से कर! सम्यग्दर्शन से मुक्ति होगी। आत्मा को समझे बिना सब व्यर्थ है। भगवान आत्मा ज्ञानस्वभावी है। सर्वज्ञ स्वभाव जो प्रगट हुआ है वह कहाँ से प्रगट हुआ? जो था उसमें से हुआ है- ध्रुव शक्ति में से प्रगट होता है। ऐसे आत्मा को पुरुषार्थ से जान! जो आत्मा ध्रुव रहता है और प्रवाहरूप से पलटता है वह सब (ध्रुव और प्रवाह-पर्याय-परिणामन) मिलकर द्रव्य है। द्रव्य को जानने से राग का भी ज्ञाता हो जाता है और इस कारण से मुक्ति प्राप्त होती है। देखो! व्यवहार और राग से मुक्ति होती है- ऐसा नहीं कहा। आत्मा से ही मुक्ति होती है। आत्मा को जानने से जड़ कर्म बंधन आदि जानने में आ जाते हैं, अन्य जानने

www.vitragvani.com

पर आत्मा जानने में नहीं आता है। अतः जिस कारण से मोक्ष प्राप्त होता है उसका प्रयत्न करके सर्व प्रकार से उद्यम करके (आत्मा को) जानो!

जिससे आत्मा के आनन्द की पूर्ण प्राप्ति हो उसको जानना, श्रद्धान करना- यह प्रधान उपदेश है। यह पाला और यह छोड़ा- यह सब आडम्बर है -वर रहित बारात जैसा है। प्रथम यह जानना चाहिये कि आत्मा क्या है और वह क्या कर सकता है। आत्मा शरीर की क्रिया नहीं कर सकता है। अज्ञानी मन्दिर बनाने को व्यवहार कहते है; परन्तु वह व्यवहार नहीं है। जड़ की क्रिया और राग से रहित आत्मा को जानते हुए (भूमिकानुसार होने वाले) राग को जानना व्यवहार है। आत्मा चिदानन्द शक्ति का पिण्ड है, उसे सर्व उद्यम से जान! अन्य आडम्बर से क्या प्रपीजन है? अपनी भूमिकानुसार राग और तदनुकूल निमित्त होता है; परन्तु राग करने योग्य नहीं है। आत्मा ज्ञानानन्द स्वरूप है- ऐसी श्रद्धा व ज्ञान करना ही योग्य है।

www.vitragvani.com

सूत्रपाहुड़ - गाथा 17

आगे कहते हैं कि जो जिनसूत्र को जाननेवाले मुनि हैं उनका स्वरूप फिर दृढ़ करनेको कहते हैं:-

वालग्गकोडिमेत्तं परिगहगहणं ण होइ साहूणं।
भुंजेइ पाणिपत्ते दिण्णण्णं इक्कठाणम्मि ।। 17 ।।

बालाग्रकोटिमात्रं परिगहग्रहणं न भवति साधूनाम्।
भुंजीत पाणिपात्रे दत्तमन्येन एकस्थाने ।। 17 ।।

हिन्दी पद्यानुवाद

बालाग्र के भी बराबर ना परीग्रह हो साधु के।
अर अन्य द्वारा दत्त पाणीपात्र में भोजन करें।।17।।

अर्थः- बालके अग्रभागकी कोटि अर्थात् अणी मात्र भी परिग्रहका ग्रहण साधुके नहीं होता है, यहाँ आशंका है कि यदि परिग्रह कुछ भी नहीं है तो आहार कैसे करते हैं? इसका समाधान करते हैं- आहार करते हैं सो पाणिपात्र (करपात्र) अपने हाथही में भोजन करते हैं, वह भी अन्यका दिया हुआ प्रासुक अन्न मात्र लेते हैं वह भी एक स्थान पर ही लेते हैं, बारबार नहीं लेते हैं और अन्य-अन्य स्थानमें नहीं लेते हैं।

भावार्थः- जो मुनि आहार ही परका दिया हुआ प्रासुक योग्य अन्नमात्र निर्दोष एकबार दिनमें अपने हाथमें लेते हैं तो अन्य परिग्रह किसलिये ग्रहण करे? अर्थात् नहीं ग्रहण करे, जिनसूत्रमें इसप्रकार मुनि कहे हैं ।। 17 ।।

गाथा- 17 पर प्रवचन

अब सर्वज्ञ के आगम अर्थात् भगवान की वाणीरूप सूत्र को जानने वाले मुनि का स्वरूप फिर कहते हैं।

साधु के बाल के अग्रभाग की अणी जितना भी परिग्रह नहीं होता है। त्रिलोकनाथ की वाणी में ऐसा आया कि जरा सा भी परिग्रह रखकर अपने को मुनि मानने वाला भ्रष्ट है। मुनि के इतने वस्त्र अथवा पात्र हो सकते हैं- ऐसा कहने वाले भगवान के सूत्र अर्थात् शास्त्र नहीं हैं। मोर पिच्छी दया का निमित्त है और कमण्डल शरीर को साफ करने के लिये-शौच के निर्वाह करने के लिये है। (इसके अतिरिक्त) मुनि जरा भी परिग्रह नहीं रखते हैं।

www.vitragvani.com

प्रश्नः- यदि परिग्रह नहीं है तो आहार किस प्रकार करते हैं?

समाधानः- आहार हाथ में लेते हैं- करपात्र में भोजन करते हैं। मुनि के पात्र नहीं होते, हाथरूपी पात्र होता है। तथा अन्य का (श्रावक का) दिया हुआ भोजन करते हैं। तथा प्रासुक-निर्दोष आहार करते हैं। उनके लिये बनाया हुआ आहार नहीं लेते हैं। एक स्थान (और दिन में) एक बार आहार लेते हैं। खड़े-खड़े और हाथ में भोजन करते हैं। अन्य-अन्य स्थान में भोजन नहीं करते- ऐसा सर्वज्ञ के आगम में कहा है।

जो मुनि पर का दिया हुआ प्रासुक योग्य अन्न मात्र, निर्दोष, उनके लिये नहीं बनाया हुआ भोजन दिन में एकबार अपने हाथ में लेते है, तो वे अन्य परिग्रह किसलिये ग्रहण करेंगे? नहीं ग्रहण करते। -ऐसा मुनि के लिये जिनसूत्र में कहा है। इससे विरूद्ध (प्रवृत्ति वाले को) मुनि नहीं कहते हैं। वस्त्र सहित मुनिपना नहीं हो सकता है। जो सर्वज्ञ की आज्ञा है वही सूत्र में- शास्त्र में प्रतिपादित की गई है।

प्रश्नः- ऐसे मुनि नहीं होवे तो.....?

समाधानः- जैसे हंस नहीं हों तो कौए को हंस नहीं माना जा सकता है; उसी प्रकार यहाँ सच्चं मुनि नहीं देखने में आवें तो खोटे को मुनि नहीं माना जा सकता। यह बात पूर्व में दर्शनपाहुड में आ चुकी है। तो फिर सूत्रपाहुड़ में क्यों आई? कि मुनि की बात हेतु लिये हुए है। दर्शनपाहुड़ में श्रद्धा की बात है और सूत्रपाहुड़ में ज्ञान की बात है।

प्रश्नः- अब अल्प परिग्रह ग्रहण करे तो उसमें क्या दोष है? 'ककड़ी के चोर को फाँसी की सजा!' दूज का चन्द्र और पूर्णिमा का चन्द्र- सभी चन्द्र कहलाते हैं?

समाधानः- पर्याय में कम-ज्यादा निर्मलता भले ही हो; परन्तु चन्द्रमा का टुकड़ा (तो) होना चाहिये; उसीप्रकार मुनि के वस्त्र-पात्र नहीं होते, वे नग्न होते हैं। मुनि वस्त्र-पात्र रखें तो क्या बाधा है? (यह तर्क समुचित नहीं है।) यह गाथा कड़क है। सूत्र से विपरीत मान्यता से ज्ञेय का विपरीत स्वरूप आता है वह ज्ञान की विपरीतता है। वस्त्र सहित होने पर भी मैं मुनि हूँ, आचार्य हूँ- ऐसा नाम धरावे तो क्या दोष है? (यह आगामी गाथा में बताते हैं।)

Shree kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

सूत्रपाहुड़ गाथा-18

आगे कहते हैं कि अल्प परिग्रह ग्रहण करे उसमें दोष क्या है? उसको दोष दिखाते हैं:-

जहजायरूवसरिसो तिलतुसमेत्तं ण गिण्हदि हत्थेसु।
जइ लेइ अप्पबहुयं तत्तो पुण जाइ णिग्गोदम् ।। 18।।

यथाजातरूपसदृशः तिलतुषमात्रं न गृह्णति हस्तयोः।
यदि लाति अल्पबहुकं ततः पुनः याति निगोदम् ।। 18 ।।

हिन्दी पद्यानुवाद

जन्मते शिशुवत् अकिंचन नहीं तिल-तुष हाथ में।
किंचित् परीग्रह साथ हो तो श्रमण जाँयें निगोद में।।18।।

अर्थः- मुनि यथाजातरूप है जैसे जन्मता बालक नग्नरूप होता है वैसेही नग्न रूप दिगम्बर मुद्राका धारक है, वह अपने हाथसे तिलके तुषमात्र भी कुछ ग्रहण नहीं करता है और यदि कुछ थोड़ा- बहुत लेवे-ग्रहण करे तो वह मुनि ग्रहण करने से निगोदमें जाता है।

भावार्थः- मुनि यथाजातरूप दिगम्बर निर्ग्रंथको कहते हैं वह इसप्रकार होकरके भी कुछ परिग्रह रखे तो जानो कि इनके जिनसूत्रकी श्रद्धा नहीं है, मिथ्यादृष्टि है; इसलिये मिथ्यात्वका फल निगोद ही है, कदाचित कुछ तपश्चरणादिक करे तो उससे शुभकर्म बांधकर स्वर्गादिक पावे तो भी फिर एकेन्द्रिय होकर संसारहीमें भ्रमण करता है।

यहाँ प्रश्न है कि- मुनि के शरीर है, आहार करता है, कमंडलु, पीछी, पुस्तक रखता है, यहाँ तिल तुषमात्र भी रखना नहीं कहा, सो कैसे?

इसका समाधान यह है कि- मिथ्यात्व सहित रागभाव से अपनाकर अपने विषय कषाय पुष्ट करनेके लिए रखे उसको परिग्रह कहते हैं, इस निमित्त कुछ थोड़ा बहुत रखनेका निषेध किया है और केवल संयमके निमित्तका तो सर्वथा निषेध नहीं है। शरीर तो आयु पर्यन्त छोड़ने पर भी छूटता नहीं है, इसका तो ममत्व ही छूटता है सो उसीका निषेध किया ही है। जबतक शरीर है तबतक आहार नहीं करे तो सामर्थ्य ही नहीं हो, तब संयम नहीं सधे, इसलिये कुछ योग्य आहार विधिपूर्वक शरीरसे रागरहित होते हुए लेकरके शरीरको खड़ा रखकर संयम साधते हैं।

www.vitragvani.com

कमंडलु बाह्य शौचका उपकरण है, यदि नहीं रखे तो मलमूत्रकी अशुचितासे पंच परमेष्ठीकी भक्ति वंदना कैसे करे और लोकनिंद्य हो। पीछी दयाका उपकरण है, यदि नहीं रखे तो जीवसहित भूमि आदि की प्रतिलेखना किससे करे। पुस्तक ज्ञानका उपकरण है यदि नहीं रखे तो पठन पाठन कैसे हो। इन उपकरणोंका रखना भी ममत्व पूर्वक नहीं है, इनसे रागभाव नहीं है। आहार-विहार, पठन, पाठनकी क्रियायुक्त जबतक रहे तबतक केवलज्ञान भी उत्पन्न नहीं होता है, इन सब क्रियाओंको छोड़कर शरीरका भी सर्वथा ममत्व छोड़ ध्यान अवस्था लेकर तिष्ठे, अपने स्वरूपमें लीन हो तब परम निर्ग्रन्थ अवस्था होती है, तब श्रेणीको प्राप्त हुए मुनिराजके केवलज्ञान उत्पन्न होता है, अन्य क्रिया सहित हो तबतक केवलज्ञान उत्पन्न नहीं होता है, इसप्रकार निर्ग्रंथपना मोक्षमार्ग जिनसूत्रमें कहा है।

श्वेताम्बर कहते हैं कि भव स्थिति पूरी होने पर सब अवंस्थाओंमें केवलज्ञान उत्पन्न होता है तो यह कहना मिथ्या है, जिनसूत्र का यह वचन नहीं है, इन श्वेताम्बरोंने कल्पित सूत्र बनाये हैं उनमें लिखा होगा। फिर यहाँ श्वेताम्बर कहते हैं कि जो तुमने कहा वह तो उत्सर्गमार्ग है, अपवादमार्गमें वस्त्रादिक उपकरण रखना कहा है, जैसे तुमने धर्मोपकरण कहे वैसेही भी वस्त्रादिक धर्मोकरण हैं, जैसे क्षुधाकी बाधा आहारसे मिटाकर संयम साधते हैं, वैसे ही शीत आदिकी बाधा वस्त्र आदिसे मिटाकर संयम साधते हैं, इसमें विशेष क्या? इसको कहते हैं कि इसमें तो बड़े दोष आते हैं तथा कोई कहते हैं कि काम विकार उत्पन्न हो तब स्त्री सेवन करे तो इसमें क्या विशेष? इसलिये इसप्रकार कहना युक्त नहीं है।

क्षुधाकी बाधा तो आहारसे मिटाना युक्त है, आहार बिना देह अशक्त हो जाता है तथा छूट जावे तो अपघातका दोष आता है परन्तु शीत आदिकी बाधा तो अल्प है यह तो ज्ञानाभ्यास आदिके साधनसे ही मिट जाती है। अपवादमार्ग कहा वह तो जिसमें मुनिपद रहे ऐसी क्रिया करना तो अपवादमार्ग है परन्तु जिस परिग्रहसे तथा जिस क्रियासे मुनिपद भ्रष्ट होकर गृहस्थके समान होजावे वह तो अपवादमार्ग नहीं है। दिगम्बर मुद्रा धारण करके कमंडलु, पीछी सहित आहार विहार उपदेशादिकमें प्रवर्ते वह

www.vitragvani.com

अपवादमार्ग है और सब प्रवृत्तिको छोड़कर ध्यानस्थ हो शुद्धोपयोगमें लीन होजाने को उत्सर्गमार्ग कहा है। इसप्रकार मुनिपद अपनेसे सधता न जानकर किसलिये शिथिलाचारका पोषण करना? मुनिपदकी सामर्थ्य न हो तो श्रावकधर्महीका पालन करना, परम्परासे इसीसे सिद्धि हो जावेगी। जिनसूत्र की यथार्थ श्रद्धा रखनेसे सिद्धि है इसके बिना अन्य क्रिया सब ही संसारमार्ग है, मोक्षमार्ग नहीं है- इसप्रकार जानना ।। 18 ।।

गाथा- 18 पर प्रवचन

यह भगवान की परम्परा का परम सत्य है। भगवान के श्रीमुख से निकला, संतो द्वारा स्वीकार किया हुआ और सम्यग्दृष्टि की श्रद्धा में आया हुआ परम सत्य है।

जैसा माता के उदर से जन्मा हो वैसा (यथाजात नग्न) साधु होता हैं। पर्याय में विकार का अभाव करने और निर्दोषता प्रगट करने के पंथ में गतिशील मुनिपना माता से जन्मा वैसा होता है। जैनशासन के मार्ग में अल्पकाल में मुक्ति प्राप्त करने के पंथ मे मुनि यथाजातरूप होते हैं। श्रावक को भी ऐसी श्रद्धा होती है। जिनके अन्तर स्वभाव की दृष्टि से अरागी परिणमन हुआ है उनके लज्जा नहीं होती है। उनके सेवक उन्हे 'जगत पिता' कहते हैं। वे पंच परमेष्ठी पद में शामिल हैं। उन्हें गणधर भी नमस्कार मंत्र में नमस्कार करते हैं। केवली भगवान ने ऐसे मुनिपने की आज्ञा की है। वे हाथ में तिल- तुषमात्र भी परिग्रह ग्रहण नहीं करते है; कदाचित अल्प भी (परिग्रह) ग्रहण करे तो वह ग्रहण करने वाला निगोद में जाता है। मिथ्यात्व का फल निगोद है। यह बात 'मोक्षमार्गप्रकाशक' (छठवें अधिकार में) आ गई है।

आत्मा में अरागीदशा वह चारित्रदशा है। वह केवलज्ञान का कारण है। वह चारित्र कैसा होता है-यह बात यहाँ चल रही है। यह बात सम्प्रदाय के आग्रह वालों को समझमें आये ऐसी नहीं है, अतः शान्ति से समझने योग्य है।

आत्मा ज्ञान और आनन्द स्वरूप है। उसकी प्रतीति करके उसमें रमणता करना ही चारित्र है। शरीर, मन, वाणी से भिन्न पड़कर, पुण्य-पाप की रुचि छोड़कर स्वभाव में लीन होना ही चारित्र है। यह चारित्र मुक्ति प्रदाता है। वह मुक्ति परम आनन्द का कारण है। इस चारित्र के विषय में सर्वज्ञ की आज्ञा क्या है- यह बताते हैं-

www.vitragvani.com

वस्त्र सहित मुनिपना मानना मिथ्यात्व है और उसका फल निगोद है।

मुनियों का शरीर नग्न होता है। बाह्य में वस्त्र-पात्र का परिग्रह रहे- ऐसा नहीं होता ऐसी निर्ग्रन्थदशा होती है। जिनके पुण्य-पाप की रुचि की गाँठ छूट गई है, पूर्णानन्द स्वभाव की प्रतीति हुई, तदुपरांत बहुत राग का अभाव हुआ है और स्वभाव की स्थिरता की है- ऐसे मुनि को जैसे माता ने जन्म दिया वैसा नग्न शरीर होता है। यथाजातरूप होता है। आकाश ही जिनके वस्त्र होते हैं- ऐसे दिगम्बर मुनि होते हैं। जो दिगम्बर मुद्रा के धारक हैं- ऐसे मुनि आत्मा के आनन्द में निमग्न अपने हाथ से तिल के तुष मात्र भी परिग्रह धारण नहीं करते हैं। और मुनि नाम धराकर, चारित्र नाम धराकर, केवलज्ञान के साधक नाम धराकर ज़रा भी परिग्रह रखे तो मिथ्यात्व के कारण निगोद में जाते हैं। क्योंकि उसने वस्तुस्वरूप से विपरीत माना, चारित्र का स्वरूप विपरीत माना और मनवाया, उसे संवर-निर्जरा के स्वरूप का पता नहीं है, स्वभाव के आश्रय से अरागीदशा कैसी होती है, कितना राग घटता है- इसका पता नहीं है- इसकारण उसके मिथ्यात्व होता है। यह मिथ्यात्व अनन्तकाल तक संसार में परिभ्रमण करने का कारण है। सम्प्रदाय वृद्धि से वस्त्र-पात्र सहित मुनि मानने -मनवाने और अनुमोदन करने वाले भी मिथ्यादृष्टि अज्ञानी हैं। सर्वज्ञ के यथार्थ आदेश वाले शास्त्रों में ऐसा वर्णन है और ऐसा ही वस्तु का स्वरूप है, इसमें अपने घर की बात नहीं है। जो अपने को मुनि मनाता है, चारित्र दशा होना मनाता है और वह थोड़ा-बहुत भी परिग्रह रखता है उसको मिथ्यात्व के फल में मोक्ष तो नहीं, बल्कि निगोद होगा।

मुनि बालक की तरह यथाजात-नग्न दिगम्बर होता है। तथापि जो थोड़ा भी परिग्रह रखता है उसको भगवान के सूत्र की श्रद्धा नहीं है। सर्वज्ञ का फरमान है कि- मुनि को एक भी वस्त्र नहीं रखना चाहिये, वस्त्र-पात्र की ममता छूटने पर ही मुनिपना होता है। जो एक लंगोटी रखकर भी साधुपद मनाता है उसको सर्वज्ञ भगवान के आगम की श्रद्धा नहीं है वह मिथ्यादृष्टि है। मिथ्यात्व का फल निगोद है। वर्तमान में शुभभाव होवे तो (भले ही) स्वर्ग में जाए; परन्तु फिर परम्परा एकेन्द्रिय होकर संसार

www.vitragvani.com

ही में भ्रमण करेगा, क्योंकि वह सर्वज्ञ के आगम का आदेश नहीं मानता है। कदाचित ब्रह्मचर्य पालन से, दया पालन से पुण्य बंधे और उससे स्वर्ग में देव अथवा राजा आदि हो जाए; तथापि परम्परा से निगोद में चला जायेगा। उसके संसार का परिभ्रमण नहीं मिटेगा।

इसप्रकार मुनि नाम धराकर उद्दिष्ट आहार ले तो वह भी मिथ्यादृष्टि है। भगवान का ऐसा हुकम है कि मुनि होकर वस्त्र का एक धागा भी रखे तो भ्रष्ट होकर निगोद में जायेगा। किंचित पुण्य के कारण देव होकर तत्पश्चात् तिर्यन्च होकर निगोद में जायेगा। उसके भव कम नहीं होते हैं। जीव ने आत्मा का धर्म जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है उसे एक समयमात्र भी समझा नहीं, सम्यग्दर्शन को समझे तो ज्ञान चारित्र को समझे। बंधभाव को भलीभांति समझे तो अबंधभाव को समझे। आत्मा को समझे तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को समझे।

यहाँ **प्रश्न** होता है कि मुनि के शरीर होता है, वे आहार लेते हैं, मोर पिच्छी, पुस्तक और कमण्डलु रखते हैं; जबकि यहाँ तिल-तुष मात्र भी रखना नहीं कहा है- वह कैसे ?

समाधानः- यदि विपरीत अभिप्राय करके राग को निज मानकर विषय-कषाय के पोषण के लिये इन्हें रखे तो परिग्रह कहलाये। बाह्य वस्त्र होने पर भी मुनिपना माने और राग को अपना माने तो उसके परिग्रह है। ऐसे मिथ्यात्व सहित परिग्रह रखने का निषेध है; परन्तु मुनि के संयम के लिये परिग्रह का सर्वथा निषेध नहीं है। (जैसे) शरीर छोड़ने से नहीं छूटता; क्योंकि उसका आयुकर्म के साथ निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है; परन्तु शरीर से ममता छोड़ने को कहा है। मुनि के आहार ग्रहण की वृत्ति होती है। आहार शरीर को टिकने में निमित्त है, शरीर संयम में निमित्त है- इसकारण आहार लेने की वृत्ति आती है; अतः निर्दोष आहार लेते हैं। अपने लिये बनाया हुआ आहार और पानी नहीं लेते हैं। दोष रहित आहार लेते हैं। तथा शरीर से राग रहित होकर लेते हैं और खड़े-खड़े आहार लेते हैं- यह संयम मार्ग है।

मुनिराज के पिच्छी संयम में, कमण्डलु शौच में और पुस्तक ज्ञान में निमित्त है; इसलिये ये परिग्रह नहीं हैं।

www.vitragvani.com

तथा मल-मूत्रादि करने गये हों तब मलयुक्त शरीर से शास्त्र का छूना, मन्दिर आदि में जाना किसप्रकार संभव है? तथा मल सहित रहना लोकनिंद्य होता है। वे कमण्डलु में पानी लेते हैं सो शौच के लिये लेते हैं, पीने के लिये पानी नहीं लेते हैं। आहार के समय पानी ले लेते हैं अन्य समय पानी नहीं पीते हैं। तथा पिच्छी दया का निमित्त है। शरीर पर मच्छर आदि हो अथवा नीचे चींटी आदि हो उनकी प्रतिलेखना के लिये पिच्छी होती है। तथा पुस्तक ज्ञान का उपकरण है। यदि वह नहीं रखे तो पठन-पाठन किसप्रकार होगा? तथा ममत्वपूर्वक कमण्डलु पिच्छी और पुस्तक नहीं रखते है। उनके प्रति रागभाव नहीं है।

तथा जहाँतक आहार-बिहार, पठन-पाठन का शुभभाव वर्तता है वहाँतक केवलज्ञान नहीं होता है। यद्यपि वे उस राग को अपना नहीं मानते हैं, तथापि छठवें गुणस्थान तक राग आता है। अब जब वें उस राग को छोड़कर, शरीर की ममता छोड़कर आत्मध्यान में लीन होते हैं और श्रेणी माँडते हैं तब केवलज्ञान उत्पन्न होता है। जहाँतक आहार आदि का राग होता है वहाँतक केवलज्ञान नहीं होता।- ऐसा निर्ग्रन्थपना आगम में कहा गया है।

श्वेताम्बर कहते हैं कि भव स्थिति पूर्ण होने पर सभी अवस्थाओं में केवलज्ञान होता है; तो यह कहना मिथ्या है। यह जिनसूत्र के वचन नहीं है। ऐसा कहने वाले सभी शास्त्र कल्पित हैं। वे दुष्काल के समय से अलग हुए हैं। मुनि के (वस्त्र-पात्रादि) उपकरण कहने वाले शास्त्र सच्चे नहीं हैं। श्वेताम्बर कहते हैं कि एलाचीकुमार को नृत्य करते हुए और माता मरूदेवी को हाथी के ओहदे पर केवलज्ञान प्रगट हुआ, गृहस्थवेष में केवलज्ञान उत्पन्न हुआ- ऐसा कहा है वह कल्पित बात है । वह बात सर्वज्ञ के शास्त्रानुसार सत्य नहीं है। ये सब कल्पित है, जिनसूत्र के वचन नहीं हैं।

भाई! इस मनुष्य अवतार में सत्य-असत्य का निर्णय करना चाहिये। जिसको आत्मा की शान्ति-सत्य का स्वीकार करना है उसको यह निर्णय पहले करना चाहिये। जीव ने बहुत बार पशु के अवतार-भव किये हैं; परन्तु सच्चा तत्व क्या है? आत्मा का सच्चा लाभ कैसे हो? इसका स्वीकार नहीं किया। तथा क्षुधा, तृषा लगती है,

www.vitragvani.com

शरीर कमज़ोर पड़ जाता है और दुःखी-दुःखी होता है। ऊँट का पैर छेदते हैं वहाँ मरने से ही छुटकारा है, कोई बचाने वाला नहीं मिलता है- ऐसे भव जीव ने बहुत बार धारण किये हैं; परन्तु यहाँ छोटी-छोटी बातों पर झगड़ा करता है। तुझे ऐसा दुर्लभ मनुष्य अवतार मिला है इसलिये संत कहते हैं कि विवेक कर! अरे! जवान पुरुष -स्त्रियों को क्षय रोग हो जाता है अतः भाई! विवेक कर! जरा जवानी खिलती हो वहाँ इसको पैसा इकट्ठा करने की सूझती है, धर्म करने की नहीं सूझती। वृद्ध अवस्था में महा हैरान होता है। शरीर में कीट पड़ जाते हैं तो कहता है कि यह सहन नहीं होता- ऐसा कहता है; परन्तु आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान करके क्या करेगा? इसलिये तत्व की परीक्षा कर! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र किसको कहना चाहिये- इसका निर्णय कर! यहाँ वाद-विवाद का काम नहीं हैं।

प्रश्नः- श्वेताम्बर कहते हैं कि किसी भी लिंग अथवा किसी भी वेष में केवलज्ञान हो सकता है?

समाधानः- भगवान महावीर के छह सौ वर्ष के पश्चात् दुष्काल पड़ा था उससमय वे नग्नरूप में नहीं रह सके थे; अतः वस्त्र पात्र रखने लगे। इसलिये उनके शास्त्र में कल्पित कथन है।

श्वेताम्बर कहते हैं कि तुम कहते हो वह उत्सर्गमार्ग है, अपवादमार्ग में वस्त्रादि उपकरण रखना कहा है। प्रवचनसार में कोमल मार्ग कहा है वह हमारा साधुपना है?

समाधान :- प्रवचनसार में ऐसा नही कहा है। वस्त्र सहित मुनिपना हो ही नहीं सकता।

फिर वे **तर्क** करते है कि- जिस प्रकार मोरपिच्छी, कमण्डलु और पुस्तक धर्म के उपकरण है; उसी प्रकार वस्त्र उपकरण है। जिसप्रकार क्षुधा की बाधा आहार से सधती है; उसीप्रकार सर्दी आदि की बाधा वस्त्र से सधती है- इसमें क्या अन्तर पड़ता है? इसप्रकार कुतर्क निकालकर उसे घोटते है?

समाधान :- इसमें महादोष आता है। वस्त्र रखकर मुनिपना मनाने में महादोष आता है। कोई कहें कि काम विकार उत्पन्न होता है इसलिये स्त्री रमणता करने में

www.vitragvani.com

क्या दोष है? इसकी जैसी यह दलील-तर्क है। इसलिये तुम्हारा मानना योग्य नहीं है। क्षुधा की बाधा आहार से मिटाना युक्त है, आहार के बिना देह असक्त होती है और छूट जाती है इससे अपघात का दोष आता है और वृत्ति का विवेक नहीं रहता। शीत आदि की बाधा अल्प है। वह ज्ञानाभ्यास से मिट जाती है। प्रतिकूलता के समय अन्दर की शान्ति में लीन हो जाए तो वह मिट सकती है।

वस्त्र सहित मुनिपना अपवादमार्ग नही; किन्तु मिथ्यादृष्टिपना है।

अपवादमार्ग उसे कहा है कि जिसमें मुनिपद रहे- ऐसी क्रिया करना वह अपवादमार्ग है। वस्त्र को अपवाद नहीं कहा है। वस्त्र रखने से तो गृहस्थवत् हो जाता है। इसलिये वह अपवादमार्ग नहीं है। दिगम्बर मुद्राधारी कमण्डलु-पिच्छी सहित आहार-विहार, उपदेशदिक में प्रवर्तता है वह अपवादमार्ग है और सर्वप्रवृत्ति को छोड़कर ध्यान में रहकर शुद्धोपयोगी होता है वह उत्सर्गमार्ग है। अन्तर आनन्द में लीन होना मुख्य मार्ग है। वीतराग की आज्ञा में (अपवाद व उत्सर्गमार्ग का स्वरूप) इसप्रकार कहा गया है। अतः अपवाद अर्थात् दोष है वहाँ तक केवलज्ञान नहीं होता। आनन्दस्वरूप आत्मस्वभाव में लीन होना ही मुख्यमार्ग है- उत्सर्गमार्ग है। आहार-पानी लेना, विहार, उपदेशादि का विकल्प उत्पन्न होना अपवादमार्ग है, अन्य अपवादमार्ग नहीं है।

भाई! निर्ग्रन्थ मुनिदशा का पालन नहीं कर सके तो उसकी श्रद्धा रखना; परन्तु विपरीत मत मानना। ऐसा मुनिपना नहीं साधा जा सके तो विपरीत श्रद्धा और आग्रह किसलिये रखना? मुनिपना नहीं लिया जा सके तो श्रावक रहना। यहाँ मुनिदशा अर्थात् मात्र नग्न रहने की बात नहीं है। जो आत्मा के भान सहित आनन्दकन्द में झूलते हैं वे मुनि हैं। ऐसा मुनिपना नहीं लिया जा सके तो श्रावकपना लेना, पश्चात् उसका अभाव करके मुनि होकर मुक्ति हो जायेगी। पॉचवें गुणस्थान में (साक्षात) मुक्ति नहीं होती, इसलिये परम्परा (से मुक्ति होगी-ऐसा) कहते हैं। वीतराग के शास्त्रों की यथार्थ श्रद्धा रखने से सिद्धि है। इसके बिना अन्य सर्व संसारमार्ग है, मोक्षमार्ग नहीं- ऐसा जानना चाहिये। यह भगवान के आगम का सार है। वस्त्र सहित

www.vitragvani.com

मुनिपना मानना, मुनि होकर बैठे-बैठे भोजन लेना, दो-दो बार आहार लेना- यह मुनिमार्ग नहीं है। गणधर के वस्त्र होना तथा आहार ले आना मानने वाले यथार्थ नहीं है।

भाई! वस्त्र सहित मुनिपना मानने वाले की त्रस पर्याय की स्थिति पूरी होने को आगई है।

आचार्य कुन्दकुन्द के समय में श्वेताम्बर मत निकल चुका था; इसलिये वे स्पष्टीकरण करते हैं। वस्त्र-पात्र सहित मुनिपना माने, नैगमनय से मुनिपना माने उसकी त्रय की स्थिति पूर्ण होने को आई है। 'दर्शनपाहुड़'- गाथा 12 वीं के भावार्थ में कहा है कि- ***इस पंचमकाल में मिथ्यामत के आचार्य बनकर लोक में विनय-पूजादिक चाहते हैं उनके लिये जानना कि उनका त्रस राशि का काल पूरा हुआ है और वे एकेन्द्रिय होकर निगोद में निवास करेंगे।***

जैसे पुण्य फिरता है तो पैसे जाते है; वैसे ही तीव्र मिथ्यात्व होने पर त्रस की स्थिति पूरी होती है। नग्न होकर इंजेक्शन लगवावे, घास रखे वे मुनि नहीं हैं। अकेले नग्न हो जाना ही मुनित्व नहीं है। उग्र प्रतिज्ञा लेकर तोड़ना योग्य नहीं है- महान पाप है। जो सूत्र की आज्ञा को मान्य रखता है उसको सिद्धि होती है। सूत्र की आज्ञा से विपरीत वाला तो निगोद में जाता है। यह सनातन सत्य है। आचार्य कुन्दकुन्द तो साक्षात् भगवान के पास गये थे, वहाँ आठ दिन रहे थे, भगवान की वाणी सुनी थी। इसका विवेक करो! विरूद्ध अभिप्राय को छोड़ो!! दुनिया की लज्जा छोड़ो! परिवार आदि कोई भी सहायक नहीं है। भाई! इस मिथ्यात्व का फल निगोद है। वस्त्र को अपवाद कहने वाले निगोद के पात्र हैं।

आगे इसी बात का समर्थन करते हैं कि मुनि नाम धराकर वस्त्र-पात्र रखना निदंनीय है, प्रशंसा योग्य नहीं है।

Shree kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

सूत्रपाहुड़-गाथा 19

आगे इसी का समर्थन करते हैं:-

जस्स परिग्गहगहणं अप्पं बहुयं च हवई लिंगस्स।
सो गरहिउ जिणवयणे परिगहरहिओ णिरायारो ।। 19 ।।

यस्य परिग्रहग्रहणं अल्पं बहुकं च भवति लिंगस्य।
स गर्ह्यः जिनवचने परिग्रहरहितः निरागारः ।। 19 ।।

हिन्दी पद्यानुवाद

थोड़ा-बहुत भी परिग्रह हो जिस श्रमण के पास में।
वह निन्द्य है निर्ग्रन्थ होते जिनश्रमण आचार में।।19।।

अर्थः- जिसके मतमें लिंग जो भेष उसके परिग्रहका अल्प तथा बहुत ग्रहण करना कहा है वह मत तथा उसका श्रद्धावान पुरुष गर्हित है, निंदायोग्य है, क्योंकि जिनवचनमें परिग्रह रहित ही निरागार है, निर्दोष मुनि है, इसप्रकार कहा है।

भावार्थः- श्वेताम्बरादिकके कल्पित सूत्रों में भेषमें अल्प बहुत परिग्रहका ग्रहण कहा है, वह सिद्धान्त तथा उसके श्रद्धानी निंद्य हैं। जिनवचनमें परिग्रह रहितको ही निर्दोष मुनि कहा है।।19 ।।

गाथा- 19 पर प्रवचन

अब कहते हैं कि वस्त्र सहित मुनिपना कहने वाला मत और उसे मानने वाला निन्दा का पात्र है।

जिसके अभिप्राय में मुनि के लिंग अथवा वेष में अल्प अथवा बहुत परिग्रह हो, अथवा किसी समय आधा कपड़ा रखकर मुनिपना मनावे, पश्चात् बहुत वस्त्र रखकर मुनिपना मनावे वह मिथ्यादृष्टि है। जो आत्मा के साधने के लिये रमणता करते हैं उनका वेष परिग्रह सहित होता है- ऐसा मानने वाला मत और उसका श्रद्धालु पुरुष निन्दा योग्य है। जिनके सिद्धान्त में और सिद्धान्त के मार्ग में मुनि के वस्त्र-कपड़ा रखना कहा हो उस मार्ग और उसके श्रद्धालु को जिनमत में निन्दा योग्य कहा गया है। जो मुनि परिग्रह से रहित हैं वे प्रशंसा योग्य हैं- यह सूत्र का सार है। भगवान के शास्त्र में निर्दोष मुनि को वस्त्र-पात्र रहित गिनने में आया है। अन्य को निन्दा

www.vitragvani.com

योग्य गिनने में आया है। अर्थात् धर्मी जीव द्वारा वह मत और उसकी श्रद्धा वाले आदर करने योग्य नहीं है। जो, आत्मा ज्ञानानन्द स्वरूप है- ऐसी दृष्टि करता है उसको धर्म की शुरूआत होती है। परन्तु जिसके राग रहित चारित्र होता है उसके वस्त्र नहीं होते हैं। तथापि जो मुनि में वस्त्र होना मानते हैं वे वीतराग के शास्त्र नहीं है, वे प्रशंसा योग्य नहीं हैं- भगवान की आज्ञा में नही हैं।

श्वेताम्बर, स्थानकवासी आदि ने जो कल्पित 84, 45, 32 शास्त्र बनाये हैं वे भगवान के शास्त्र नहीं हैं। जिसमें मुनि के वेष में वस्त्र-पात्रादि परिग्रह कहा गया है वह सिद्धान्त प्रशंसनीय नहीं है; ग्रहण करने योग्य नहीं है। सर्वज्ञदेव को पूर्ण आनन्द की दशा प्रगट हुई है। उनकी राग रहित वाणी प्रगटी उसमें ऐसा आया कि मुनि के वस्त्रादि का राग नहीं होता, इससे विरूद्ध कहने वाला आगम नहीं है। उस आगम को मानने वाले सच्ची श्रद्धा वाले नहीं हैं। जो ऐसा कहते हैं कि-वीतरागभाव तो कहीं भी साधा जा सकता है, चाहे श्वेताम्बर हो या दिगम्बर या अन्य कोई हो,- तो ये आगम के वचन नहीं हैं। ये सब कल्पित बातें जोड़ दी गई हैं। जो निर्ग्रन्थ मुनिपने का स्वरूप नहीं समझता उसको देव-शास्त्र-गुरु की सच्ची श्रद्धा नहीं है। संवर-निर्जरा तत्व की श्रद्धा नहीं है, पुण्य-पाप की मर्यादा कितनी होती है- इसकी श्रद्धा नहीं है। जीवों को पक्ष के आग्रह के कारण सत्य समझ में नहीं आता है। आचार्य कुन्दकुन्द छठवें-सातवें गुणस्थान में झूलते थे, उन्होने भगवान की वाणी के अनुसार यह कथन किया है।

प्रश्नः- धर्म करने के लिये ऐसी माथा-पच्ची में क्यों पड़ना?

समाधानः- भाई! जीव को यथार्थ विवेक करना चाहिये। जैसे स्त्री, माता, पुत्री, बहिन ने एक रंग की साड़ियां पहिन रखी हो तो वहाँ विवेक करता है; उसीप्रकार यहाँ धर्म करने में भी यथार्थ विवेक करना चाहिये। दिव्य शक्ति प्रगट हुए देव कैसे होते हैं, वैसी शक्ति प्रगट करने वाले गुरु कैसे होते हैं- इसका विवेक होना चाहिये।

तात्पर्य यह है कि वस्त्र सहित मुनि मानने योग्य नहीं है। जैसा मुनि का स्वरूप जिनवचन में कहा है वह वंदनीय है।

Shree kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

सूत्रपाहुड़ गाथा - 20

आगे कहते हैं कि जिनवचनमें ऐसा मुनि वन्दने योग्य कहा है:-

पंचमहव्वयजुत्तो तिहिं गुत्तिहिं जो स संजदो होई।
णिग्गंथमोक्खमग्गो सो होदि हु वंदणिज्जो य ।। 20।।

पंचमहाव्रतयुक्तः तिसृभिः गुप्तिभिः यः स संयतो भवति।
निर्ग्रंथमोक्षमार्गः स भवति हि वन्दनीयः च ।। 20 ।।

हिन्दी पद्यानुवाद

महाव्रत हों पाँच गुप्ती तीन से संयुक्त हों।
निरग्रन्थ मुक्ती पथिक वे ही वंदना के योग्य हैं।।20।।

अर्थः- जो मुनि पंच महाव्रतयुक्त हो और तीन गुप्ति संयुक्त हो वह संयत है, संयमवान है और निर्ग्रंथ मोक्षमार्ग है तथा वह ही प्रगट निश्चयसे वंदन योग्य है।

भावार्थः- अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन पांच महाव्रत सहित हो और मन, वचन, कायरूप तीन गुप्ति सहित हो वह संयमी है, वह निर्ग्रंथ स्वरूप है, वह ही वंदने योग्य है। जो कुछ अल्प बहुत परिग्रह रखे सो महाव्रती संयमी नहीं है, यह मोक्षमार्ग नहीं है और गृहस्थके समान भी नहीं है।। 20।।

गाथा-20 पर प्रवचन

अब कहते हैं कि आत्मभान सहित पंचमहाव्रतधारी नग्न दिगम्बर मुनि वंदनीय है।

जिस मुनि को पंच महाव्रत-अहिंसा, सत्य, अचोर्य, बह्मचर्य और अपरिग्रह का भाव प्रगट हुआ है; मन-वचन-काय के निमित्त से होने वाले शुभराग से रहित होकर (स्वरूप) गुप्त हैं वे चारित्रवंत संयमी मुनि हैं। वह निर्ग्रन्थ मोक्षमार्ग है। देव अरहन्त, गुरु निर्ग्रन्थ- ऐसा लोग बोलते हैं न; परन्तु वस्त्र सहित निर्ग्रन्थ दशा नहीं हो सकती है। मुनि को आत्मा के आनन्द में इतनी अधिक लीनता होती है कि उनका राग अल्प रह गया है। आहार लेने का अल्प राग होता है; परन्तु उनको वस्त्र-पात्र का अथवा माँगकर आहार लेने का राग नहीं होता है। ऐसे निर्ग्रन्थ मुनि- चारित्रवंत गुरु वंदनीय हैं।

मुनि अहिंसाव्रत का पालन करते हैं। पृथ्वीकाय, अपकाय, तेजसकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय के जीवों का हनन नहीं करते, नहीं कराते और हनन को

www.vitragvani.com

अच्छा नहीं जानते। वे सत्य महाव्रत का पालन करते हैं। जैसा वस्तु का स्वरूप है वैसा कहते हैं। बिना आज्ञा किसी वस्तु को नहीं लेते हैं। नवकोटि से ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं और अपरिग्रह महाव्रत का पालन करते हैं। जिनके अन्दर में आनन्द की चर्या होती है उनको मुनि कहते हैं। उनके तिल-तुष मात्र भी परिग्रह नहीं होता है। मोर पिच्छी, कमण्डलु, पुस्तक और मात्र आहार लेने की वृत्ति होती है। - इसप्रकार वे पंच महाव्रत सहित होते हैं। मन-वचन-काया के निमित्त से होने वाले पुण्य-पाप से रहित होकर अन्तर गुप्त होते हैं। वह निर्ग्रन्थ स्वरूप वंदन योग्य है। जो थोड़ा बहुत भी परिग्रह रखता है वह महाव्रती नहीं है, संयमी नहीं है वह मोक्षमार्ग में नहीं है तथा वह गृहस्थ भी नहीं है, वह सम्यग्दृष्टि नहीं है, वह तो आत्मा के ज्ञान सहित मुनिपने और श्रावकपने दोनो से भ्रष्ट है।

इसप्रकार मुनि का वेष कहा। अब उत्कृष्ट श्रावक का वेष कहते हैं।

Shree kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

सूत्रपाहुड़ गाथा - 21

आगे कहते हैं कि पूवोक्त एक भेष तो मुनिका कहा, अब दूसरा भेष उत्कृष्ट श्रावकका इसप्रकार कहा है:-

दुइयं च उत्त लिगं उक्किट्ठं अवरसावयाणं च।
भिक्खं भमेइ पत्ते समिदीभासेण मोणेण ।। 21 ।।

द्वितीयं चोक्तं लिंग उत्कृष्टं अवरश्रावकाणां च।
भिक्षां भ्रमति पात्रे समितिभाषया मौनेन।। 21 ।।

हिन्दी पद्यानुवाद

जिनमार्ग में उत्कृष्ट श्रावक लिंग होता दूसरा।
भिक्षा ग्रहण कर पात्र में जो मौन से भोजन करे।।21।।

अर्थः- द्वितीय लिंग अर्थात् दूसरा भेष उत्कृष्ट श्रावक जो गृहस्थ नहीं है इसप्रकार उत्कृष्ट श्रावक का कहा है, वह उत्कृष्ट श्रावक ग्यारहवीं प्रतिमाका धारक है, वह भ्रमण करके भिक्षा द्वारा भोजन करे और पत्ते अर्थात् पात्रमें भोजन करे तथा हाथमें करे और समितिरूप प्रवर्तता हुआ भाषासमितिरूप बोले अथवा मौनसे रहे।

भावार्थः- एक तो मुनिका यथाजातरूप कहा और दूसरा यह उत्कृष्ट श्रावकका कहा, वह ग्यारहवीं प्रतिमाका धारक उत्कृष्ट श्रावक है, वह एक वस्त्र तथा कोपीन मात्र धारण करता है और भिक्षा भोजन करता है, पात्रमें भी भोजन करता है और करपात्रमें भी करता है, समितिरूप वचन भी कहता है अथवा मौन भी रखता है, इसप्रकार यह दूसरा भेष है।। 21 ।।

गाथा- 21 पर प्रवचन

दूसरा लिंग अथवा वेष उत्कृष्ट श्रावक का है। साधारण सम्यग्दृष्टि श्रावक अथवा गृहस्थ की बात अलग है। यहाँ तो चारित्रधारी- प्रतिमाधारक श्रावक की बात है। वह लंगोटी तथा कोपीन रखता है। भ्रमण करके भिक्षा-भोजन-आहार लेता है। अपने लिये बनाया हुआ आहार नहीं लेता है। वह पात्र में भी भोजन करता है अथवा हाथ में भी आहार लेता है। तथा समितिरूप भाषा बोलता है अथवा मोन रहता है।

www.vitragvani.com

भावार्थ यह है कि- एक वेष तो यथाजातरूप मुनि का कहा है तथा दूसरा वेष उत्कृष्ट श्रावक का है। वह ग्यारहवीं प्रतिमा धारक उत्कृष्ट श्रावक है। वह एक वस्त्र का टुकड़ा और लंगोटी रखता है। भिक्षा भोजन करता है। तथा पात्र में भोजन करता है। अथवा कर पात्र में भोजन लेता है। देखकर चलता है। विचारकर बोलता है अथवा मौन रखता है। वह क्षुल्लक और ऐलक है, मुनि नहीं है। तथा सामान्य गृहस्थ भी नहीं है। इसप्रकार दूसरा वेष कहा।

दर्शनपाहुड़ में तीन लिंग श्रद्धा योग्य कहे गये थे, यहाँ सूत्रपाहुड़ में वे तीन लिंग कौनसे है- यह कहा गया है।

अब तीसरा लिंग स्त्री का कहते हैं।

Shree kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

सूत्रपाहुड़ गाथा-22

आगे तीसरा लिंग स्त्री का कहते हैं:-

लिंगं इत्थीण हवदि, भुंजइ पिंडं सुएयकालम्मि।
अज्जिय वि एक्कवत्था वत्थावरणेण भुंजेदि ।। 22 ।।

लिंगं स्त्रीणां भवति भुंक्ते पिंडं स्वेक काले।
आर्या अपि एकवस्त्रा वस्त्रावरणेन भुंक्ते ।। 22 ।।

हिन्दी पद्यानुवाद

अर नारियों का लिंग तीजा एक पट धारण करे।
वह नग्न ना हो दिवस में एकबार ही भोजन करें।।22।।

अर्थः- स्त्रियोंका लिंग इसप्रकार है- एककाल में भोजन करे, बारबार भोजन नहीं करे, आर्यिका भी हो तो एक वस्त्र धारण करे ओर भोजन करते समय भी वस्त्रके आवरण सहित करे, नग्न नहीं हो।

भावार्थः- स्त्री आर्यिका भी हो और क्षुल्लिका भी हो वह दोनों ही भोजन तो दिनमें एकबार ही करे, आर्यिका हो वह एक वस्त्र धारण किये हुए ही भोजन करे, नग्न नहीं हो। इसप्रकार तीसरा स्त्रीका लिंग है।। 22 ।।

गाथा- 22 पर प्रवचन

अब कहते हैं कि तीसरा वेष आर्पिका अथवा क्षुल्लिका का है।

स्त्री साध्वी नहीं हो सकती, उसे छठवाँ गुणस्थान नहीं आ सकता है। स्त्री को मुनिपना नहीं हो सकता है। स्त्री होकर साधु नाम धराने वाले खोटे हैं, उनके मानने वाले खोटे हैं और ऐसा मानने वाला सिद्धान्त खोटा है। आर्यिका एक बार भोजन करती है, बार-बार भोजन नहीं करती है। आर्यिका भी एक वस्त्र धारण करती है और भोजन भी वस्त्र धारण किये हुए ही करती है; परन्तु नग्न होकर नहीं। राजमति, सीताजी आदि आर्यिकायें थी, अभी देव हुए हैं, वहाँ से मनुष्य होकर केवलज्ञान प्राप्त करेंगी। स्त्री देह से मुक्ति या केवलज्ञान नहीं होता है। (श्वेताम्बरों ने) चन्दनबाला तथा मरूदेवी को उसी भव से मोक्ष होना कहा है यह बात मिथ्या है। वीतराग के आगम का हुकम-दिव्यध्वनि के उपदेश का सार यहाँ कह रहे हैं। वह यह कि यदि मुनिपने का पालन नहीं हो सके तो यथार्थ श्रद्धा करो! गड़बड़ मत करो!

आशय यह है कि स्त्री आर्यिका हो सकती है अथवा क्षुल्लिका हो सकती है। दोनो एक बार भोजन करती हैं। आर्यिका एक वस्त्र धारण करके भोजन करती है किन्तु वह नग्न नहीं होती।

इसप्रकार इन तीन लिंगो के अतिरिक्त चौथा लिंग संयमधर के रूप में गिनने में नहीं आया है, अनन्तकाल में महाविदेह में अथवा यहाँ भी स्त्री के साधु पद गिनने में नही आया है, क्षुल्लिका अथवा आर्यिकापद ही गिनने में आया है। स्त्री के पंचपरमेष्ठी पद में साधुपद मानने वाले खोटे-झूठे हैं। वस्त्र धारक को मोक्ष नहीं होता है। मोक्षमार्ग में नग्नपना होता है। वीतराग के आगम मे मुनि के वस्त्र नहीं होते हैं। उत्कृष्ट श्रावक के एक लंगोटी व एक वस्त्र का टुकड़ा होता है। आर्यिका के एक वस्त्र होता है।

अब कहते है कि वस्त्र धारक के मोक्ष नहीं है, मोक्षमार्ग (मुनिपना) नग्नपने में हैं।

सूत्र पाहुड़ गाथा-23

आगे कहते है कि- वस्त्र धारकके मोक्ष नहीं है, मोक्षमार्ग नग्नपणा ही है:-

ण वि सिज्झदि वत्थधरो जिणसासणे जइ वि होइ तित्थयरो।
णग्गो विमोक्खमग्गो सेसा उम्मग्गया सव्वे ।। 23 ।।

नापि सिध्यति वस्त्रधरः जिनशासने यद्यपि भवति तीर्थंकरः ।
नग्नः विमोक्षमार्गः शेषा उन्मार्गकाः सर्वे ।। 23 ।।

हिन्दी पद्यानुवाद

सिद्ध ना हो वस्त्रधर वह तीर्थंकर भी क्यों न हो।
बस नग्नता ही मार्ग है अर शेष सब उन्मार्ग हैं।।23।।

अर्थः- जिनशासनमें इसप्रकार कहा है कि वस्त्रको धारण करनेवाला सीझता नहीं है, मोक्ष नहीं पाता है, यदि तीर्थंकर भी हो तो जबतक गृहस्थ रहे तबतक मोक्ष नहीं पाता है, दीक्षा लेकर दिगम्बररूप धारण करे तब मोक्ष पावे क्योंकि नग्नपना ही मोक्षमार्ग है, शेष सब लिंग उन्मार्ग हैं।

भावार्थः- श्वेताम्बर आदि वस्त्रधारकके भी मोक्ष होना कहते हैं वह मिथ्या है, यह जिनमत नहीं है।। 23 ।।

गाथा- 23 पर प्रवचन

अब कहते हैं- कि आत्मज्ञान सहित नग्नपना ही मोक्षमार्ग है, शेष सब उन्मार्ग है।

जिनशासन में ऐसा कहा है कि आत्मा राग रहित है- ऐसा जानना-अनुभव करना ही जिनशासन है। यह बात समयसार की 15 वी गाथा में आई है। यहाँ जिनशासन शब्द आया है उसमें ऐसा कहा है कि जो वस्त्रधारण करके अपने को मुनि मानता है उसको सम्यग्दर्शन नहीं होता है और मोक्ष भी नहीं होता हैं। उन्नति क्रम में चढ़े हुए आत्मा के राग शेष हो तो वह स्वर्ग में जाता है और पूर्व में नरकायु बांधी हो तो नरक में जाता है।

जिन तीर्थंकरों के गर्भ और जन्म कल्याणक इन्द्रादि मनाते हैं वे तीर्थंकर भी जहाँ तक वस्त्र सहित हो वहाँतक मुनिपना प्राप्त नहीं कर सकते। इसके अतिरिक्त

www.vitragvani.com

विरूद्धमार्ग उत्मार्ग है; अज्ञान और भ्रान्ति का मार्ग है। अरागीदशा प्राप्त करने का मार्ग नहीं है। वस्त्र रखकर मुनिपना और केवलज्ञान नहीं होता है। श्वेताम्बर ने पन्द्रह भेद (वेष) स्त्रीलिंग से, गृहस्थ लिंग से, अन्य लिंग इत्यादि से (मोक्ष होना) सिद्ध किया है वह यथार्थ नहीं है। अरागी दशा निश्चय है और निमित्तरूप वस्त्रादि न होना व्यवहार है। ऐसा व्यवहार होना चाहिये।

गाथा 10 के साथ इस गाथा का सम्बन्ध है। वहाँ आत्मज्ञान सहित दिगम्बर एक ही मोक्षमार्ग है, शेष सब अमार्ग है- ऐसा कहा था।

प्रश्न :- सभी मार्ग समान है तो समन्वय करना या नहीं ?

समाधान :- जहर और अमृत का समन्वय नहीं होता। वस्त्र रखकर केवलज्ञान होता है, ऐसा नहीं है- ऐसा जिनशासन में कहा हैं। तीर्थंकर को उसी भव में कालक्रम में केवलज्ञान होने वाला है, इसमें कोई परिवर्तन संभव नहीं है, तथापि उनको वस्त्र सहित मुनिपना होता ही नहीं है। उग्र पुरुषार्थ होने पर वस्त्र का राग नहीं होता है और वस्त्र सहित के उग्र चारित्रदशा नहीं होती है। पंचमहाव्रतधारी आचार्य कुन्दकुन्द भगवान के पास गये थे, वहाँ वाणी सुनकर ये सूत्र लिखे हैं। सत्य को समझना चाहिये। किसी के साथ वाद-विवाद करने के लिये नहीं। -ऐसा ही वस्तु स्वरूप हैं। तीर्थंकर का जीव भी वस्त्र रहित नग्न दशा धारण करता है तत्पश्चात् केवलज्ञान और मोक्षदशा को प्राप्त करता है। इसके सिवाय अन्य सभी लिंग उन्मार्ग है। अन्य लिंग मोक्षमार्ग नहीं हैं।

श्रीमद् राजचन्द्रजी ने लिखा है कि- "दिगम्बर कहते है कि नग्न को अर्थात् नग्न स्थिति वाले को मोक्ष है। शेष सब तो उन्मत्तमार्ग हैं।" तथा नग्न है वह बादशाह से आगे है। अर्थात् वह स्थिति बादशाह द्वारा भी पूज्य है। यहाँ दुनिया कहती है वह नग्न नहीं, किन्तु अन्तर में राग की वृत्ति छूट गई है और बाह्य में नग्न हो उसकी बात हैं।

जैन शास्त्र में दिगम्बर को मोक्ष कहा है। वहाँ अकेले दिगम्बर की बात नहीं है, किन्तु जो अन्तर स्वभाव की समझ में है और किंचित् राग शेष रहा है व बाह्य में नग्न है वह मुक्ति प्राप्त करता है, अन्य को केवलज्ञान प्राप्त नहीं होता है।

www.vitragvani.com

इसके अतिरिक्त अन्य लिंग में साधुपद, साध्वीपद माने- मनावे वह उन्मार्ग है।

प्रश्नः- यदि क्रमबद्ध में मुनिपने में वस्त्र आवे तो.....?

समाधानः- क्रमबद्ध के समझने वाले को देव-शास्त्र-गुरु की सच्ची श्रद्धा होती है। स्वभाव की दृष्टिवंत के वस्त्र का राग टूटे बिना मुनिपना नहीं आता है। यहाँ तीर्थंकर का दृष्टान्त दिया है, वे नियम से केवलज्ञान प्राप्त करने वाले हैं। क्षायिक सम्यग्दर्शन लेकर आये हैं। उनके जन्मादि कल्याण मनाये जाते हैं; परन्तु वस्त्र रहित दिगम्बर न हो तो उनके भी मुनिपना नहीं आता है तो फिर साधारण मनुष्य वस्त्र सहित मुनिपना माने तो वह जैनशासन से बाहर है। वह वीतरागमार्ग में नहीं है।

श्वेताम्बर अथवा अन्य भी जो कोई वस्त्र सहित मोक्ष कहता है वह वीतराग का मार्ग नहीं है, वीतराग का मत नहीं है; तथा आत्मा के भान बिना तो नग्न बाबा बहुत होते हैं उससे भी क्या? एक हरितकाय का हनन करके आहार दे तो उसे मुनि नहीं लेते हैं, तो फिर पंचेन्द्रिय को हनन करके आहार ले ऐसा तो होता ही नहीं है। मुनि के लिये पानी गर्म करके रखा हो उसको वे नहीं लेते हैं। घर के लिये बनाया हो तो ठीक, परन्तु मुनि के लिये बनाकर रखा हो वह तो स्थापना दोष है। मुनि के लिये लड्डू आदि आहार बनाकर देने में दोष आता है। बयालीस दोषो में यह दोष आता है। अतः मुनि को शुद्धि भली प्रकार होनी चाहिये।

इसप्रकार वस्त्र सहित मुनिपना मानना मिथ्यामत है, जिनमत नहीं है।

स्त्री के मुनिपना नहीं होता, छठवाँ गुणस्थान नहीं आता, संयमपद नहीं होता, इसका कारण कहते हैं।

Shree kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

सूत्र पाहुड़ गाथा-24

आगे स्त्रियोंको दीक्षा नहीं है इसका कारण कहते हैं:-

लिंगम्मि य इत्थीणं थणंतरे णाहिकक्खदेसेसु।
भणिओ सुहुमो काओ तासिं कह होइ पव्वज्जा ।। 24 ।।

लिंगे च स्त्रीणां स्तनांतरे नाभिकक्षदेशेषु।
भणितः सूक्ष्मः कायः तासां कथं भवति प्रव्रज्या।। 24 ।।

हिन्दी पद्यानुवाद

नारियों की योनि नाभी काँख अर स्तनों में।
जिन कहें हैं बहु जीव सूक्षम इसलिए दीक्षा न हो।।24 ।।

अर्थः- स्त्रियोंके लिंग अर्थात् योनिमें, स्तनांतर अर्थात् दोनों कुचोंके मध्यप्रदेशमें तथा कक्ष अर्थात् दोनों कांखोंमें, नाभिमें सूक्ष्मकाय अर्थात् दृष्टिके अगोचर जीव कहे हैं अतः इसप्रकार स्त्रियोंके प्रवज्या अर्थात् दीक्षा कैसे हो?

भावार्थः- स्त्रियोंके योनि, स्तन, कांख, नाभिमें पंचेन्द्रिय जीवोंकी उत्पत्ति निरंतर कही है, इनके महाव्रतरूप दीक्षा कैसे हो? महाव्रत कहे हैं वह उपचारसे कहे हैं, परमार्थ से नहीं है, स्त्री अपने सामर्थ्यकी हद्द को पहुँचकर व्रत धारण करती है, इस अपेक्षासे उपचारसे महाव्रत कहे हैं।। 24।।

गाथा-24 पर प्रवचन

स्त्री के शरीर में सूक्ष्म जीवों की उत्पत्ति के कारण से वे महाव्रतों का पालन नहीं कर सकती, इसलिये स्त्री को मुनिपना नहीं होता।

यहाँ त्रिलोकनाथ के कथन को आचार्य कुन्दकुन्ददेव प्रसिद्ध करते हैं। स्त्री की योनि, स्थन, तथा नाभि, कॉख आदि में सूक्ष्मकाय जीवों की उत्पत्ति होती है- इस कारण स्त्री को साधुपद नहीं होता । राजमती-सीताजी आदि साधु नहीं थे, वे आर्यिकायें थी। आत्मा के भान सहित आनन्ददशा थी, परन्तु साधुदशा नहीं थी। वे अभी देवगति में हैं। वहाँ से आकर मनुष्य होकर संयम धारण करके केवलज्ञान प्रगट करके मोक्षदशा प्राप्त करेंगे। स्त्री देह से मुक्ति नहीं होती है।

www.vitragvani.com

प्रश्नः- स्त्रियों को समान अधिकार होना चाहिये ?

समाधानः- स्त्री का शरीर ही ऐसा है, समस्त स्थानों में जीवों की उत्पत्ति होती है- इसकारण संयम नहीं होता है।

स्त्री के योनि, स्तन, कॉख, नाभि आदि अंगो में पंचेन्द्रिय जीव उत्पन्न होते हैं। इसकारण उसके पूर्ण अहिंसा नहीं हो सकती है। पृथ्वीकाय, अपकाय, वायुकाय, अग्निकाय और वनस्पति काय तथा त्रसकाय- ऐसे छहकाय के जीवों का मन-वचन-काय से हनन नही करना, नहीं कराना और हनन का अनुमोदन नहीं करना- ऐसी (अहिंसा) स्त्री के संभव नहीं है इसलिये उसके महाव्रतरूप दीक्षा किस प्रकार हो सकती है ? तथा उसके महाव्रत उपचार से हैं। वस्तुतः महाव्रत होते नहीं है। स्त्री अपनी हद तक पहुँचकर व्रत धारण करती है इसकारण उपचार से महाव्रत कहे हैं। वास्तव में महाव्रत नहीं होते हैं। स्त्री क्षुल्लिका या आर्यिका होती है वह अपनी (स्त्री की पर्यायगत चारित्र की) हद (मर्यादा) को दर्शाती है, इसलिये (महाव्रत का) उपचार किया है। स्त्री को मुनिपना तीनकाल में भी नहीं हो सकता है। जो शास्त्र स्त्री को मुनि कहते हैं, मोंक्ष होना कहते हैं वे वीतरागी के शास्त्र-आगम नहीं हैं, परन्तु कल्पित शास्त्र हैं। यही शास्त्र का सार है। श्वेताम्बर 'उत्तराध्ययनसूत्र' में स्त्री को मोक्ष बताया गया है यह बात मिथ्या है। स्त्री के क्षुल्लिका तथा आर्यिका की दशा होती है; परन्तु मुनिदशा नहीं होती है।

भगवान के ज्ञान में तीनकाल के पदार्थ जानने में आये हैं। उनकी दिव्यध्वनि में ऐसा आया है कि स्त्री देह के समय मुनिपना अथवा केवलज्ञान नहीं हो सकता हैं। इससे विरूद्ध मानना विपरीत मान्यता है। तथापि स्त्री की मर्यादा कितनी होती है- यह (शास्त्र में) बताते हैं। वहाँ आत्मा की ऐसी योग्यता है। स्त्री को उसी भव से मुक्ति नहीं होती- इसकारण वे पापकारी है- ऐसा नहीं है। वह भी सम्यग्दर्शन प्रगट करके शुद्ध होती है और पाप रहित होती है- ऐसा अब कहते हैं।

सूत्रपाहुड़ गाथा-25

आगे कहते हैं कि यदि स्त्री भी दर्शनसे शुद्ध हो तो पापरहित है, भली है:-

जइ दंसणेण सुद्धा उत्ता मग्गेण सावि संजुत्ता।
घोरं चरिय चरित्तं इत्थीसु ण पव्वया भणिया।।25।।

यदि दर्शनेन शुद्धा उक्ता मार्गेण सापि सुयुक्ता।
घोरं चरित्वा चारित्रं स्त्रीषु न पापका भणिता।। 25 ।।

हिन्दी पद्यानुवाद

पर यदी वह सुद्दृष्टि हो संयुक्त हो जिनमार्ग में।
सद्आचरण से युक्त तो वह भी नहीं है पापमय।।25।।

अर्थः- स्त्रियोंमें जो स्त्री दर्शन अर्थात् यथार्थ जिनमतकी श्रद्धासे शुद्ध है वह भी मार्गसे संयुक्त कही गई है। जो घोर चारित्र तीव्र तपश्चरणादिक आचरणसे पापरहित होती है इसलिये उसे पापयुक्त नहीं कहते हैं।

भावार्थः- स्त्रियोंमें जो स्त्री सम्यक्त्व सहित हो और तपश्चरण करे तो पापरहित होकर स्वर्गको प्राप्त हो इसलिये प्रशंसा योग्य है परन्तु स्त्रीपर्यायसे मोक्ष नहीं नहीं है ।। 25 ।।

गाथा- 25 पर प्रवचन

अब कहते हैं कि (दर्शन व आचरणयुक्त स्त्री) मोक्षमार्ग में है। उस भव से मोक्ष नहीं होने पर भी मोक्षमार्ग में है। उसके योग्य आचरण करके क्षुल्लिका, आर्यिका आदि पंचम गुणस्थान तो प्रगट करती है इसलिये पापकारिणी नहीं है। उसके आत्मा की हद-मर्यादा ऐसी ही है। मनुष्यपने का निमित्त और अन्तर में ऐसी योग्यता न हो तो वहाँ तक मुक्ति नहीं होती; किन्तु वहाँ तक वह पापकारी है- ऐसा नहीं है।

स्त्री सम्यग्दर्शन प्राप्त करके (तपादिरूप) आचरण करे तो स्वर्ग में जाती है, वह प्रशंसा योग्य है; परन्तु वह उसी भव से मोक्ष नहीं जाती। मोक्षमार्ग में अपनी मर्यादा प्रमाण वह उत्कृष्ट आचरण करे तो भी साधुपद नहीं कहलाता है। वीतराग के शास्त्र स्त्री को उसी भव से मोक्ष होना नहीं कहते है। जो शास्त्र स्त्री को उसी भव से साधु पद और मुक्ति कहते हैं वे जिन आगम न होकर कल्पित शास्त्र हैं।

www.vitragvani.com

अब स्त्री को मुक्ति के लिये ध्यान और ज्ञानस्वभाव की एकाग्रता नहीं होती। यहाँ स्त्री का देह ध्यान को रोकता है- ऐसा नहीं कहना है; परन्तु उसकी वर्तमान पर्याय की योग्यता नहीं है इसलिये वह (मुक्ति प्राप्ति के योग्य) ध्यान नहीं कर सकती है। स्त्री के देह से केवलज्ञान नहीं होता, मुनिपना नहीं होता। वस्त्र सहित मुनिपना नहीं होता- ऐसा कहते हैं। क्या वहाँ निमित्त की बलवत्ता है? नहीं। निमित्त की बलवत्ता की बात नहीं है, परन्तु स्त्री पर्याय की आत्मा की योग्यता ही ऐसी हैं।

Shree kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

सूत्रपाहुड़ गाथा-26

आगे कहते हैं कि स्त्रियों को ध्यानकी सिद्धि भी नहीं है:-

चित्तासोहि ण तेसिं ढिल्लं भावं तहा सहावेण।
विज्जदि मासा तेसिं इत्थीसु ण संकया झाणा ।। 26 ।।

चित्ताशोधि न तेषां शिथिलः भावः तथा स्वभावेन।
विद्यते मासा तेषां स्त्रीषु न शंकया ध्यानम् ।। 26।।

हिन्दी पद्यानुवाद

चित्तशुद्धी नहीं एवं शिथिलभाव स्वभाव से।
मासिकधरम से चित्त शंकित रहे वंचित ध्यान से।।26।।

अर्थः- उन स्त्रियोंके चित्तकी शुद्धता नहीं है, वैसेही स्वभावहीसे उनके ढीला भाव है, शिथिल परिणाम है और उनके मासा अर्थात् मासमासमें रूधिरका स्राव विद्यमान है उसकी शंका रहती है उससे स्त्रियोंके ध्यान नहीं है।

भावार्थः- ध्यान होता है वह चित्त शुद्ध हो, दृढ़ परिणाम हो, किसी तरहकी शंका न हो तब होता है; सो स्त्रियोंके तीनों ही कारण नहीं है तब ध्यान कैसे हो? ध्यानके बिना केवलज्ञान कैसे उत्पन्न हो और केवलज्ञानके बिना मोक्ष नहीं है, श्वेताम्बरादिक मोक्ष कहते हैं वह मिथ्या है ।। 26 ।।

गाथा- 26 पर प्रवचन

अब कहते हैं कि स्त्री के परिणाम हीन होते हैं, उसके मुनिपने के योग्य ध्यान नहीं होने से मोक्ष नही होता है।

स्त्री को चित्त की शुद्धता नहीं है। स्वभाव से ही हीनभाव है, पर्याय में उग्र पुरुषार्थ नहीं है। उसके साधु पद लें सकने की योग्यता नहीं है। इसप्रकार की योग्यता के कारण शिथिल परिणाम होते हैं। स्त्री का शरीर तो निमित्तमात्र है। उसके मासिक धर्म की शंका रहा करती है- इसकारण उसके केवलज्ञान अथवा मुनिपना प्राप्त करने योग्य ध्यान नहीं होता। स्त्री को ध्यान होता है; परन्तु जिस ध्यान से मुनिपना अथवा केवलज्ञान प्रगट होता है- ऐसा ध्यान नहीं होता है।

www.vitragvani.com

आशय यह है कि- चित्त शुद्धि हो, दृढ़ परिणाम हो तथा किसी प्रकार की शंका न हो तो ध्यान होता है। स्त्री के चित्त शुद्धि नहीं है, दृढ़ परिणाम नहीं है तथा वह शंका रहित नहीं है। यदि चित्त शुद्धि हो, दृढ़ परिणाम हो, और शंका रहित हो तो ध्यान हो सकता है। स्त्री के (ध्यान के) ये तीनों कारण नहीं है, इसलिये ध्यान नहीं होता है। ध्यान के बिना केवलज्ञान नहीं होता और केवलज्ञान के बिना मोक्ष नही होता है। श्वेताम्बर और स्थानकवासी आदि स्त्री को मोक्ष होना कहते हैं- यह मिथ्या बात है। स्त्री को परमात्मा का साक्षात्कार होना मानते हैं, वह प्रसन्न हो वैसा मानते हैं, वे विपरीत भ्रम में है।

अब सूत्रपाहुड़ की अन्तिम गाथा कहते हैं। अर्थात् सूत्र पाहुड़ को पूर्ण करते हैं और सामान्य से सुख का कारण कहते हैं

Shree kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

सूत्रपाहुड़ गाथा-27

आगे सूत्रपाहुड़को समाप्त करते हैं, सामान्यरूपसे सुखका कारण कहते हैं:-

गाहेण अप्पगाहा समुद्दसलिले सचेलअत्थेण।
इच्छा जाहु णियत्ता ताह णियत्ताइं सव्वदुक्खाइं ।। 27।।

ग्राह्येण अल्पग्राह्यः समुद्रसलिले स्वचेलार्थेन।
इच्छा येभ्यः निवृत्ताः तेषां निवृत्तानि सर्वदुःखानि ।। 27 ।।

हिन्दी पद्यानुवाद

जलनिधि से पटशुद्धिवत जो अल्पग्राही साधु हैं।
हैं सर्व दुख से मुक्त वे इच्छा रहित जो साधु हैं।।27।।

अर्थः- जो मुनि ग्राह्य अर्थात् ग्रहण करने योग्य वस्तु आहार आदिकसे तो अल्पग्राह्य हैं, थोडा ग्रहण करते हैं, जैसे कोई पुरुष बहुत जलसे भरे हुए समुद्रमेंसे अपने वस्त्रको धोनेके लिये वस्त्र धोनेमात्र जल ग्रहण करता है, और जिन मुनियोंके इच्छा निवृत्त होगई उनके सब दुःख निवृत्त हो गये।

भावार्थ :- जगतमें यह प्रसिद्ध है कि जिनके संतोष है वे सुखी हैं इस न्यायसे यह सिद्ध हुआ कि जिन मुनियोंके इच्छाकी निवृत्ति होगई है, उनके संसारके विषयसंबंधी इच्छा किंचित् मात्र भी नहीं है, देहसे भी विरक्त हैं इसलिये परम संतोषी हैं और आहारादि कुछ ग्रहण योग्य हैं उनमेंसे भी अल्पको ग्रहण करते हैं इसलिये वे परम संतोषी हैं, वे परम सुखी हैं, यह जिनसूत्रके श्रद्धानका फल है, अन्य सूत्रमें यथार्थ निवृत्तिका प्ररूपण नहीं है इसलिये कल्याणके सुखको चाहनेवालों को जिनसूत्रका निरंतर सेवन करना योग्य है ।। 27 ।।

गाथा- 27 पर प्रवचन

अब कहते हैं कि मुनि के इच्छा की निवृत्ति विशेष है, इसलिये वह सर्व दुःख से निवृत्त है।

मुनि होकर योग्य आहार ग्रहण करते हैं; परन्तु वस्त्रपात्र ग्रहण नहीं करते- शरीर को टिकाने मात्र आहर लेते हैं। जिसप्रकार कोई पुरुष समुद्र में से थोड़ा पानी लेकर वस्त्र धोता हैं; उसीप्रकार जगत में बहुत पदार्थो का समुद्र है, परन्तु उसमे आहार की वृत्ति जितना आहार लेते हैं, अधिक नहीं लेते । जिसको बहुत इच्छा निवृत्त हो गई है इसके अतिरिक्त मुनिपना नहीं कहा गया है। मुनि आहार-पानी लेते है, पुस्तक कमण्डलु रखते हैं सो शरीर के निर्वाह मात्र आहार लेते हैं। दुनियाँ में तो बहुत

www.vitragvani.com

पदार्थ हैं; परन्तु मुनि के अकषायभाव विशेष प्रगट हुआ है इसलिये अल्प आहार लेते हैं, अन्य कुछ ग्रहण नहीं करते।

दुनिया कहती हैं कि 'सन्तोषी सदा सुखीं; परन्तु पैसा वाला सुखी-ऐसा नहीं कहती। निर्धन होने पर भी सन्तोषी सुखी है- यह माप से निश्चित होता है। मुनि के इच्छा निवृत्त हो गई है। संसार के विषय सम्बन्धी इच्छा नहीं है, वे देह से विरक्त हैं, परमसन्तोषी हैं। मुनि के राग बहुत मिट गया है; इसलिये वे पूजनीय हैं।

जिनसूत्र की श्रद्धा का फल यह है कि आत्मा का भान करके मुनि को राग से निवृत्ति होती हैं।

जिनसूत्र में ही आत्मभान सहित निवृत्ति का प्ररूपण है इसलिये निरन्तर जिनसूत्र का सेवन करना चाहिये।

भगवान (वीतराग) के अतिरिक्त अन्यमत के सूत्रों में यथार्थ निवृत्ति का निरूपण नहीं है, इसलिये वे कल्याण और सुख के कारण नहीं हैं। मुनि के चारित्र का उत्कृष्ट प्रकार कैसा होता है- इसका अज्ञानी को पता नहीं है। अन्यमत वालों को साधक के चारित्र तथा साधक की प्रतीति का पता नहीं है। स्त्री के संयम पद हो, साधुपद हो अथवा केवलज्ञान हो- ऐसा नहीं होता है। जो स्त्री को मुनि और केवलज्ञान होना बताते हैं वे जिनसूत्र नहीं हैं। जिनसूत्र अर्थात् वीतरागता बताने वाले सूत्र। श्वेताम्बर, स्थानकवासी और अन्यमत के सूत्रों में निवृत्ति का स्वरूप नहीं है। आत्मा के भान सहित समकिती के कितना राग निवृत्त हुआ है, श्रावक के कितना राग निवृत्त हुआ है और मुनि के कितना राग निवृत्त हुआ है तथा पूर्ण वीतरागता को प्राप्त केवली कैसे होते है- यह सब अन्य सूत्र में नहीं है। इसलिये कल्याण के इच्छुक जीवों को वीतरागी शास्त्रों का वाचन, मनन करना चाहिये। अन्य किसी शास्त्र में सत्य बात नहीं है।

जिसने गुण-गुणी की एकता का भान किया है और गुण-गुणी के लक्षण भेद का भान किया है उसको ही पता होता है कि किस प्रकार के राग का अभाव होकर श्रद्धा होती है और किस प्रकार के राग का अभाव होकर चारित्र होता है तथा कैसे संयोग नहीं होते। कुन्दकुन्दाचार्य महाविदेह में गये थे। उन्होने वहाँ से आकर शास्त्रों की रचना की है। वे सर्वज्ञ कथित शास्त्र षटखण्डागम, समयसार, जयधवल, महाधवल आदि हैं। इन शास्त्रों का श्रवण-मनन करना चाहिये। इनमें देव-गुरु-शास्त्र का वास्तविक स्वरूप प्रतिपादित है। मुनिराज के कितने राग का अभाव हुआ है और उनके कैसे संयोग नहीं होते हैं यह बात जो राग से पूर्ण निवृत हुए है- ऐसे भगवान

www.vitragvani.com

की वाणी में आई है। मुनि होकर वस्त्र धारण करना महाममतामय परिणाम है। वह संतोषी नहीं, बल्कि असंतोषी है। ऐसे जीव को आत्मभान नहीं है।

दर्शनपाहुड़ में 36 गाथायें हैं वहाँ भी योग मे 9 अंक आया है और सूत्रपाहुड में 27 गाथायें आई हैं यहाँ भी योग 9 आया है। चारित्र पाहुड़ में 45 गाथायें आयेगी वहाँ भी योग 9 है। इसप्रकार सहज 9 का अंक आया है। 9 (नौ) का अंक अफर होता है।

इसप्रकार सूत्रपाहुड़ ग्रन्थ पूर्ण हुआ। अब इसके भाषा वचनिकाकार पण्डित जयचन्दजी अन्तिम मंगल करते हैं :-

छप्पय

जिनवर की ध्वनि मेघध्वनि सम मुखतैं गरजै।
गणधर के श्रुतिभूमि वरषि अक्षरपद सरजै।।
सकल तत्व परकास करै जगताप निवारै।
हेय-अहेय विधान लोक नीके मन धारै।।
विधि पुण्य-पाप अरूलोक की, मुनि श्रावक आचरन फुनि।
करि स्व-पर भेद निर्णय सकल कर्म नाश शिव लहत मुनि।।1।।

जिनेन्द्र भगवान की वाणी जगत के दुःख का नाश करके मोक्ष प्राप्त कराती है।

जो वीतराग हुए हैं और केवलज्ञान प्राप्त किया हैं उनकी वाणी में ऐसा आया कि मुनि के वस्त्र नहीं होते।जबतक तीर्थंकर के भी साधक दशा में वस्त्र होते हैं वहाँ तक मुनिपना नहीं आता है। अज्ञानी जीवों ने कल्पित शास्त्रों की रचना करके वस्त्र सहित मुनिपना मनाया है। वे इस मिथ्या अभिप्राय से चार गतियों में परिभ्रमण करते हैं। देव-शास्त्र-गुरु के यथार्थ स्वरूप परिज्ञान बिना श्रद्धा सच्ची नहीं होती है। वीतराग की दिव्यध्वनि में से निकले हुए शास्त्र ही सत्शास्त्र हैं। और गणधर ने अक्षर-पद की रचना की है। भगवान की वाणी द्रव्य-गुण-पर्याय का प्रकाश करती है। देव की पर्याय कैसी होती है, गुरु की पर्याय कैसी होती है- यह सब दर्शाती है। (श्वेताम्बर) लोग 84, 45 अथवा 32 सूत्र कहते हैं वे शास्त्र सच्चे नहीं है। भगवान की वाणी तत्व का प्रकाश करती है और जगताप का निवारण करती है। जैसे चन्द्रमा के प्रकाश से शीतलता आती है; उसी प्रकार भगवान की वाणी से जग का अंधेरा-मिथ्यात्व नष्ट होता है। भगवान की वाणी में योग्य पदार्थो का यथार्थ वर्णन आया है। भूमिकानुसार कैसे पुण्य-पाप होते हैं उसको जाने, कर्म को जाने, -इसप्रकार स्व-पर

www.vitragvani.com

के भेद का निर्णय करना चाहिये। आत्मा स्व है और पुण्य-पाप आदि पर है -ऐसा भेदज्ञान करके मुनि समस्त कर्मों का अभाव करके मोक्षदशा को प्राप्त करते हैं। यही सूत्र के वाचन और मनन का फल है।

-दोहा-

वर्द्धमान जिन के वचन वरतैं पंचमकाल।
भव्यपाय शिवमग लहै नमूं तास गुणमाल।। 2 ।।

वर्द्धमान जिनके वचन का सार पंचमकाल में वर्तता है। योग्य प्राणी उन्हें प्राप्त करके मोक्षमार्ग प्राप्त करता है। जो ऐसे शास्त्र को समझता है उसकी गुण श्रेणी बढ़ती है इसप्रकार मैं नमस्कार करता हूँ- यह वचनिकाकार कहते हैं।

इसप्रकार पण्डित जचयन्दजी छावड़ा द्वारा की गई देशभाषामय वचनिका सहित आचार्य कुन्दकुन्दस्वामी विरचित 'सूत्रपाहुड़' पूर्ण हुआ। समकित का सार (दर्शनपाहुड़में) 36 गाथाओं में है और सूत्र का सार (सूत्र पाहुड़ में) 27 गाथाओं में है। जिसको समकित सहित सच्चा ज्ञान होता है उसके ही सच्चा चारित्र होता है। जिसको देखने से जिनमुद्रा जैसा लगता है। जिसकी अन्तर निर्ग्रन्थ दशा और अल्पराग सहित व बाह्य वस्त्र रहित दशा 'दर्शन' है। इसप्रकार दर्शन और ज्ञान सहित दशा वाले को चारित्र होता है। इस कारण आगे चारित्र पाहुड़ लिखतें हैं।

इसप्रकार परमपूज्य आचार्य कुन्दकुन्द विरचित
अष्टपाहुड़ ग्रन्थ के द्वितीय सूत्रप्राभृत की पण्डित जयचन्दजी छावड़ा कृत

देशभाषामय वचनिका पर

आध्यात्मिक सत्पुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

के दि0 8.8.55 से 31.8.55 तक

हुए गुजराती प्रवचनों का हिन्दी अनुवाद पूर्ण हुआ।।

Shree kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

परिशिष्ट द्वादशांगसूत्र तथा अङ्गबाह्यश्रुत का वर्णन

अब यहाँ कुछ द्वादशांगसूत्र तथा अङ्गबाह्यश्रुतका वर्णन लिखते हैं- तीर्थंकरके मुखसे उत्पन्न हुई सर्व भाषामय दिव्यध्वनिको सुनकरके चार ज्ञान, सप्तऋद्धिके धारक गणधर देवोंने अक्षर पदमय सूत्ररचना की। सूत्र दो प्रकारके हैं- 1 अंग 2 अङ्गबाह्य। इनके अपुनरूक्त अक्षरोंकी संख्या बीस अङ्क प्रमाण है ये अङ्क एक घाटि इकट्ठी प्रमाण हैं। ये अङ्क-18446744073709551615 इतने अक्षर हैं। इनके पद करें तब एक मध्यपद के अक्षर सोलहसौ चौतीस करोड़ तियासी लाख सात हजार आठसौ अठयासी कहे हैं। इनका भाग देनेपर एकसौ बारह करोड़ तियासी लाख अठावन हजार पाँच इतने पावें, ये पद बारह अङ्गरूप सूत्रके पद हैं ओर अवशेष बीस अङ्गोमें अक्षर रहैं, ये अङ्गबाह्य सूत्र कहलाते हैं। ये आठ करोड़ एक लाख आठ हजार एकसौ पिचहत्तर अक्षर हैं, इन अक्षरोंमें चौदह प्रकीर्णकरूप सूत्ररचना है।

अब इन द्वादशांरूप सूत्ररचनाके नाम और पद संख्या लिखते हैं- प्रथम अंग आचारांग है, इसमें मुनिश्वरोंके आचारका निरूपण है, इसके पद अठारह हजार हैं।

दूसरा सूत्रकृत अंग है, इसमें ज्ञानका विनय आदिक अथवा धर्मक्रिया में स्वमत परमतकी क्रियाके विशेषका निरूपण है, इसके पद छत्तीस हजार हैं। तीसरा स्थान अंग है, इसमें पदार्थों के एक आदि स्थानोंका निरूपण है- जैसे जीव सामान्यरूप से एक प्रकार विशेषरूपसे दो प्रकार, तीन प्रकार इत्यादि ऐसे स्थान कहे हैं, इसके पद बियालीस हजार हैं। चौथा समवाय अंग है, इसमें जीवादिक छहद्रव्योंका द्रव्य क्षेत्र कालादि द्वारा वर्णन है, इसके पद एक लाख चौसठ हजार हैं।

पाँचवा व्याख्याप्रज्ञप्ति अङ्ग है, इसमें जीवके अस्ति नास्ति आदिक साठ हजार प्रश्न गणरदेवोंने तीर्थंकर निकट किये उनका वर्णन है, इसके पद दो लाख अट्ठाईस हजार है। छठा ज्ञातृधर्म कथा नामका अङ्ग है इसमें तीर्थंकरोंके धर्मकी कथा के जीवादिक पदार्थों स्वभाव का वर्णन तथा गणधरके प्रश्नोंके उत्तरका वर्णन है, इसके पद पाँव लाख छप्पन हजार है। सातवाँ उपासकाध्ययन नामका अङ्ग है, इसमें ग्यारह प्रतिमा आदि श्रावकके आचारका वर्णन है, इसके पद ग्यारह लाख सत्तर हजार हैं। आठवाँ अन्तकृतदशांग नामका अंग है, इसमें एक एक तीर्थङ्करके कालमें दस दस अन्तकृत केवली हुए उनका वर्णन है, इसके पद तेईस लाख अठाईस हजार हैं।

नौवां अनुत्तरोपपादक नामका अंग है, इसमें एक एक तीर्थंकरके कालमें दस-दस महामुनि घोर उपसर्ग सहकर अनुत्तर विमानोंमें उत्पन्न हुए उनका वर्णन है, इसके पद बाणवै लाख चवालीस हजार हैं। दसवां प्रश्न व्याकरण नामका अंग है, इसमें अतीत अनागत काल

www.vitragvani.com

सम्बन्धी शुभाशुभका प्रश्न कोई करे उसका उत्तर यथार्थ कहनेके उपायका वर्णन है तथा आक्षेपणी, विक्षेपणी, संवेदनी, निर्वेदनी इन चार कथाओंका भी इस अंगमें वर्णन है, इसके पद तिराणवें लाख सोलह हजार हैं। ग्यारहवाँ विपाकसूत्र नामक अंग है, इसमें कर्मके उदयका तीव्र, मद अनुभाग का द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी अपेक्षा लिये हुए वर्णन है, इसके पद एक करोड़ चौरासी लाख हैं। इसप्रकार ग्यारह अंग हैं, इनके पदोंकी संख्याको जोड़ देने पर चार करोड़ पन्द्रह लाख दो हजार पद होते हैं।

बारहवां दृष्टिवाद नामका अंग है, इसमें मिथ्यादर्शन सम्बन्धी तीनसौ तरेसठ कुवादोंका वर्णन है, इसके पद एकसौ आठ करोड़ अडसठ लाख छप्पन हजार पाँच पद हैं। इसबारहवें अंगके पाँच अधिकार हैं- 1 परिकर्म, 2 सूत्र, 3 प्रथमानुयोग, 4 पूर्वगत, 5 चूलिका। परिकर्ममें गणितके करण सूत्र हैं; इसके पाँच भेद है- प्रथम चन्द्र प्रज्ञप्ति है, इसमें चन्द्रमाके गमनादिक, परिवार वृद्धि, हानि ग्रह आदिका वर्णन है, इसके पद छत्तीस लाख पांच हजार हैं। दूसरा सूर्यप्रज्ञप्ति है, इसमें सूर्यकी ऋद्धि, परिवार, गमन आदिका वर्णन है, इसके पद पांच लाख तीन हजार हैं। तीसरा जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति है, इसमें जम्बूद्वीप संबंधी मेरू गिरि क्षेत्र कुलाचल आदिका वर्णन है, इसके पद तीन लाख पच्चीस हजार हैं। चौथा द्वीपसागर प्रज्ञप्ति है, इसमें द्वीपसागरका स्वरूप तथा वहाँ स्थित ज्योतिषी, व्यन्तर, भवनवासी देवोंके आवास तथा वहाँ स्थित जिनमन्दिरोंका वर्णन है, इसके पद बावन लाख छत्तीस हजार हैं। पाँचवाँ व्याख्या-प्रज्ञप्ति है, इसमें जीव, अजीव पदार्थोंके प्रमाणका वर्णन है, इसके पद चौरासी लाख छत्तीस हजार हैं। इसप्रकार परिकर्मके पांच भेदोंके पद जोड़ने पर एक करोड़ इक्यासी लाख पांच हजार होते हैं।

बारहवें अंगका दूसरा भेद सूत्र नामका है, इसमें मिथ्यादर्शन सम्बन्धी तीनसौ तरेसठ कुवादोंका पूर्वपक्ष लेकर उनको जीव पदार्थ पर लगाने आदिका वर्णन है, इसके पद अठय्यासी लाख हैं। बारहवें अंगका तीसरा भेद प्रथमानुयोग है, इसमें प्रथम जीवके उपदेश योग्य तीर्थंकर आदि तरेसठ शलाका पुरुषोंका वर्णन है, इसके पद पाँच हजार हैं। बारहवें अंगका चौथा भेद पूर्वगत है, इसके चौदह भेद हैं, प्रथम उत्पाद नामका है इसमें जीव आदि वस्तुओं के उत्पाद व्यय ध्रौव्य आदि अनेक धर्मोंकी अपेक्षा भेद वर्णन हे, इसके पद एक करोड़ हैं। दूसरा अग्रायणी नामका पूर्व है, इसमें सातसौ सुनय दुर्नयका और षट्द्रव्य, सप्ततत्त्व, नव पदार्थोंका वर्णन हे, इसके छियानवें लाख पद हैं।

तीसरा वीर्यानुवाद नामका पूर्व है, इसमें छहद्रव्योंकी शक्तिरूप वीर्यका वर्णन हे, इसके पद सत्तर लाख हैं। चौथा अस्तिनास्तिप्रवाद नामका पूर्व है, इसमें जीवादिक वस्तुका स्वरूप द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी अपेक्षा अस्ति, पररूप द्रव्य क्षेत्र काल भावकी अपेक्षा नास्ति आदि अनेक धर्मोंमें विधि निषेध करके सप्तभंगके द्वारा कथंचित् विरोध मेटनेरूप मुख्य गौण करके वर्णन है,

Shree kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

इसके पद साठ लाख हैं। पाँचवां ज्ञानप्रवाद नामका पूर्व है, इसमें ज्ञानके भेदोंका स्वरूप, संख्या, विषय, फल आदिका वर्णन है, इसके पद एक कम करोड़ हैं। छठा सत्यप्रवाद नामका पूर्व है, इसमें सत्य असत्य आदि वचनोंकी अनेक प्रकारकी प्रवृत्तिका वर्णन है, इसके पद एक करोड़ छह हैं। सातवाँ आत्मप्रवाद नामका पूर्व है, इसमें आत्मा (जीव) पदार्थके कर्त्ता, भोक्ता, आदि अनेक धर्मोंका निश्चय-व्यवहारनयकी अपेक्षा वर्णन है, इसके पद छब्बीस करोड़ हैं।

आठवाँ कर्मप्रवाद नामका पूर्व है, इसमें ज्ञानावरण आदि आठ कर्मोंके बंध, सत्व, उदय, उदीरणा आदिका तथा क्रियारूप कर्मोंका वर्णन हे, इसके पद एक करोड़ अस्सी लाख हैं। नौवाँ प्रत्याख्यान नामका पूर्व है, इसमें पापके त्यागका अनेक प्रकारसे वर्णन है, इसके पद चौरासी लाख हैं। दसवां विद्यानुवाद नामका पूर्व है, इसमें सातसौ क्षुद्रविद्या और पांचसौ महाविद्याओंके स्वरूप, साधन, मंत्रादिक और सिद्ध हुए इनके फलका वर्णन है तथा अष्टांग निमित्तज्ञानका वर्णन है, इसके पद एक करोड़ दस लाख हैं। ग्यारहवां कल्याणवाद नामका पूर्व है, इसमें तीर्थंकर चक्रवर्ती आदिके गर्भ आदि कल्याणका उत्सव तथा उसके कारण षोडश भावनादिके तपश्चरणादिक तथा चन्द्रमा सूर्यादिकके गमन विशेष आदिका वर्णन है, इसके पद छब्बीस करोड़ हैं।

बारहवां प्राणवाद नामका पूर्व है, इसमें आठ प्रकार वैद्यक तथा भूतादिककी व्याधिके दूर करनेके मत्रादिक तथा विष दूर करनके उपाय और स्वरोदय आदिका वर्णन है, इसके तेरह करोड़ पद हैं। तेरहवां क्रियाविशाल नामका पूर्व है, इसमें संगीतशास्त्र, छन्द, अलंकारादिक तथा चौसठ कला, गर्भाधानादि चौरासी क्रिया, सम्यग्दर्शन आदि एक सौ आठ क्रिया, देववंदनादि पच्चीस क्रिया. नित्य नैमित्तिक क्रिया इत्यादिका वर्णन है, इसके पद नव करोड़ हैं। चौदहवां त्रिलोकबिंदुसार नामका पूर्व है, इसमें तीनलोकका स्वरूप और बीजगणितका स्वरूप तथा मोक्षका स्वरूप तथा मोक्षकी कारणभूत क्रियाका स्वरूप इत्यादिका वर्णन है, इसके पद बारह करोड़ पचास लाख है। ऐसे चौदह पूर्व हैं, इनके सब पदोंका जोड़ पिच्याणवे करोड़ पचास लाख है।

बारहवें अंगका पांचवां भेद चूलिका है, इसके पाँच भेद हैं, इनके पद दो करोड़ नव लाख नवासी हजार दो सौ हैं। इसके प्रथम भेद जलगता चूलिकामें जलका स्तंभन करना, जलमें गमन करना। अग्निगता चूलिकामे अग्नि स्तंभन करना, अग्निमें प्रवेश करना, अग्निका भक्षण करना इत्यादिके कारणभूत मंत्र तंत्रादिकका प्ररूपण है, इसके पद दो करोड़ नव लाख नवासी हजार दो सौ हैं। इतने इतने ही पद अन्य चार चूलिकाके जानने। दूसरा भेद स्थलगता चूलिका है, इसमें मेरू पर्वत भूमि इत्यादिमें प्रवेश करना शीध्र गमन करना इत्यादि क्रियाके कारण मंत्र तंत्र तपश्चरणादिकका प्ररूपण है।

www.vitragvani.com

तीसरा भेद मायागता चूलिका है, इसमें मायामयी इन्द्रजाल विक्रियाके कारणभूत मंत्र तंत्र तपश्चरणादिकका प्ररूपण है। चौथा भेद रूपगता चूलिका का है, इसमें सिंह, हाथी, घोड़ा बैल, हरिण इत्यादि अनेक प्रकारके रूप बना लेनेके कारणभूत मंत्र तंत्र, तपश्चरण आदिका प्ररूपण है तथा चित्राम, काष्ठलीपादिकका लक्षण वर्णन है और धातु रसायनका निरूपण है। पाँचवां भेद आकाशगता चूलिका है, इसमें आकाशमें गमनादिकके कारणभूत मंत्र यंत्र तंत्रादिकका प्ररूपण हे। ऐसे बारहवाँ अंग है। इसप्रकारसे बारह अंग सूत्र हैं।

अंगबाह्य श्रुतके चौदह प्रकीर्णक हैं। प्रथम प्रकीर्णक सामायिक नामका है, इसमें नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावके भेदसे छह प्रकार इत्यादि सामायिकका विशेषरूपसे वर्णन है। दूसरा चतुर्विंशतिस्तव नामका प्रकीर्णक है, इसमें चौबीस तीर्थंकरोंकी महिमाका वर्णन है। तीसरा वंदना नामका प्रकीर्णक है, इसमें एक तीर्थंकरके आश्रय वन्दना स्तुतिका वर्णन है। चौथा प्रतिक्रमण नामका प्रकीर्णक है, इसमें सात प्रकार के प्रतिक्रमणका वर्णन है। पाँचवाँ वैनयिक नामका प्रकीर्णक है, इसमें सात प्रकारके विनयका वर्णन है। छठा कृतिकर्म नामका प्रकीर्णक है, इसमें अरहत आदि की वंदनाकी क्रियाका वर्णन है। सातवाँ दशवैकालिक नामका प्रकीर्णक है इसमें मुनिका आचार, आहारकी शुद्धता आदिका वर्णन है। आठवां उत्तराध्ययन नामका प्रकीर्णक है, इसमें परीषह उपसर्गको सहनेके विधानका वर्णन है।

नवमा कल्पव्यवहार नामका प्रकीर्णक है, इसमें मुनिके योग्य आचरण और अयोग्य सेवनके प्रायश्चित्तोंका वर्णन है। दसवां कल्पाकल्प नामका प्रकीर्णक है, इसमें मुनिको यह योग्य है यह अयोग्य है ऐसा द्रव्य, क्षेत्र, काल भावकी अपेक्षा वर्णन है। ग्यारहवां महाकल्प नामका प्रकीर्णक है, इसमें जिनकल्पी मुनिके प्रतिमायोग, त्रिकाल योगका प्ररूपण है तथा स्थविरकल्पी मुनियोंकी प्रवृत्तिका वर्णन हैं। बारहवां पुण्डरीक नामका प्रकीर्णक है, इसमें चार प्रकारके देवोमें उत्पन्न होनेके कारणोंका वर्णन है। तेरहवां महापुण्डरीक नामका प्रकीर्णक है, इसमें इन्द्रादिक बड़ी ऋद्धिके धारक देवोंमें उत्पन्न होनेके कारणोंका वर्णन है। चौदहवां निषिद्धिका नामका प्रकीर्णक है, इसमें अनेकप्रकारके दोषोंकी शुद्धताके निमित्त प्रायश्चित्तोंका प्ररूपण है, यह प्रायश्चित्त शास्त्र है, इसका नाम निसितिका भी है। इसप्रकार अंगबाह्य श्रुत चौदह प्रकारका है।

पूर्वों उत्पत्ति पर्यायसमास ज्ञानसे लगाकर पूर्वज्ञानपर्यंत बीस भेद हैं इनका विशेष वर्णन, श्रुतज्ञानका वर्णन गोमट्टसार नामके ग्रन्थमें विस्तार पूर्वक है वहाँसे जानना ।। 2 ।।

मोक्षार्थी को सदा स्मरण रखने योग्य परमागम के अमूल्य ११ सिद्धान्त

१. एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को स्पर्श नहीं करता है।

(श्रीसमयसार, गाथा 3)

२. प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है।

(श्रीसमयसार, गाथा 308 से 311 तक)

३. उत्पाद उत्पाद से है व्यय या ध्रुव से नहीं है।

(श्रीप्रवचनसार, गाथा 101)

४. प्रत्येक पर्याय अपने जन्मक्षण में ही होती है।

(श्रीप्रवचनसार, गाथा 102)

५. उत्पाद अपने षटकारक के परिणमन से ही होता है।

(श्रीपंचास्तिकाय संग्रह, गाथा 62)

६. पर्याय और ध्रुव के प्रदेश भिन्न-भिन्न हैं।

(श्रीसमयसार, गाथा 181 से 183 तक)

७. भाव शक्ति के कारण पर्याय होती ही है, करनी पड़ती नहीं।

(श्रीसमयसार, 33 वीं शक्ति)

८. निज भूतार्थस्वभाव के आश्रय से ही सम्यग्दर्शन होता है।

(श्रीसमयसार, गाथा 11)

९. चारों अनुयोगों का तात्पर्य मात्र वीतरागता है।

(श्रीपंचास्तिकाय संग्रह, गाथा 172)

१०. स्वद्रव्य में भी द्रव्य, गुण, पर्याय का भेद विचारना वह अन्यवशपणा है।

(श्रीनियमसार, गाथा 145)

११. ध्रुव का आलम्बन है वेदन नहीं है और पर्याय का वेदन है परन्तु आलम्बन नहीं है।

(श्रीवचनामृत, क्रमांक 372)

(पूज्य गुरुदेव द्वारा स्वहस्तलिखित)

www.vitragvani.com

मानस्तम्भजी

सुवर्णपुरी, सोनगढ

Shree kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.